अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

प्रधान सम्पादक :

डॉ. शीतलचन्द्र जैन
जयपुर

डॉ. रमेश चन्द्र जैन
बिजनौर

सम्पादक मण्डल :

डॉ. सुरेश चन्द्र जैन
डॉ. फूलचन्द्र जैन "प्रेमी"
डॉ. कमलेश कुमार जैन
डॉ. शोभालाल जैन

प्राच्य श्रमण भारती
मुजफ्फरनगर

सराकोद्धारक परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज
के ससंघ सान्निध्य में
अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्
स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह के अवसर पर प्रकाशित

पुण्यार्जक : भोपाल सिंह अशोक कुमार जैन (छपरौली वाले), शामली
ज्ञान चन्द जैन ढोलिया (रैनवाल राजस्थान वाले), शामली
शेखर चन्द जैन पटोदी (नावो राजस्थान वाले), शामली

संस्करण : 'प्रथम' 17 जून, 2001

प्रतियां : 1100

मूल्य : 200 00

इस पुस्तक के विक्रय से जो राशि आयेगी
उससे पुन: प्रकाशन होगा।

प्राप्ति स्थान :

प्राच्य श्रमण भारती
12/ए, निकट जैन मन्दिर
प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर - 251001 (उ॰प्र॰)
फोन : (0131) 450228, 408901
एवम्

डॉ. शीतलचन्द्र जैन
अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्
81/94, नीलगिरी मार्ग
मानसरोवर, जयपुर (राज.)
फोन : 781649

मुद्रक :
दीप प्रिंटर्स
ए-8, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-I
नई दिल्ली-110064
फोन : 5131393, 5132579

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

संरक्षक एवं कार्यकारिणी

स्वस्तिश्री कर्मयोगी
भट्टारक चारुकीर्तिजी, संरक्षक

संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री
संरक्षक

प्रो. उदयचन्द जैन, सर्वदर्शनाचार्य
संरक्षक
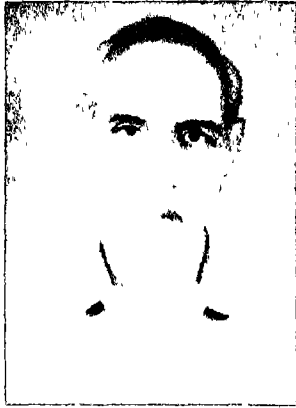
डॉ. रमेशचन्द्र जैन
अध्यक्ष
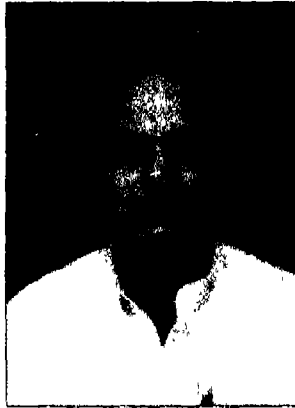
डॉ. सुरेश चन्द जैन
उपाध्यक्ष
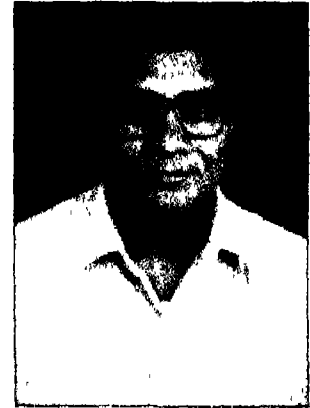
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
मन्त्री

डॉ. फूलचन्द जैन "प्रेमी"
संयुक्त मंत्री

श्री ब्र. अमरचन्द जैन
कोषाध्यक्ष
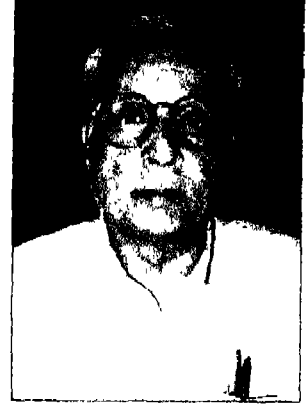
डॉ. नेमीचन्द जैन
उपमंत्री

डॉ. कमलेश कुमार जैन
प्रकाशन मंत्री

डॉ. सुदर्शनलाल जैन
सदस्य

पं. गुलाबचन्द जैन 'पुष्प"
सदस्य

डॉ. भागचन्द जैन, "भास्कर"
सदस्य
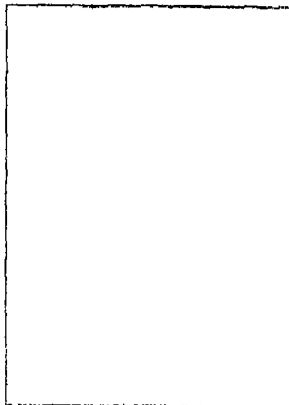
पं. पदमचन्द जैन शास्त्री
सदस्य

डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन
सदस्य

डॉ. नन्दलाल जैन
सदस्य

डॉ. जयकुमार जैन
सदस्य

डॉ. प्रेमचन्द रांवका
सदस्य

डॉ. कपूरचन्द जैन
सदस्य

डॉ. लालचन्द जैन
सदस्य

पं. अरुण कुमार शास्त्री
सदस्य

डॉ. विजयकुमार जैन
सदस्य

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन ''भारती''
सदस्य

डॉ. एच. पी. संगवे
सदस्य
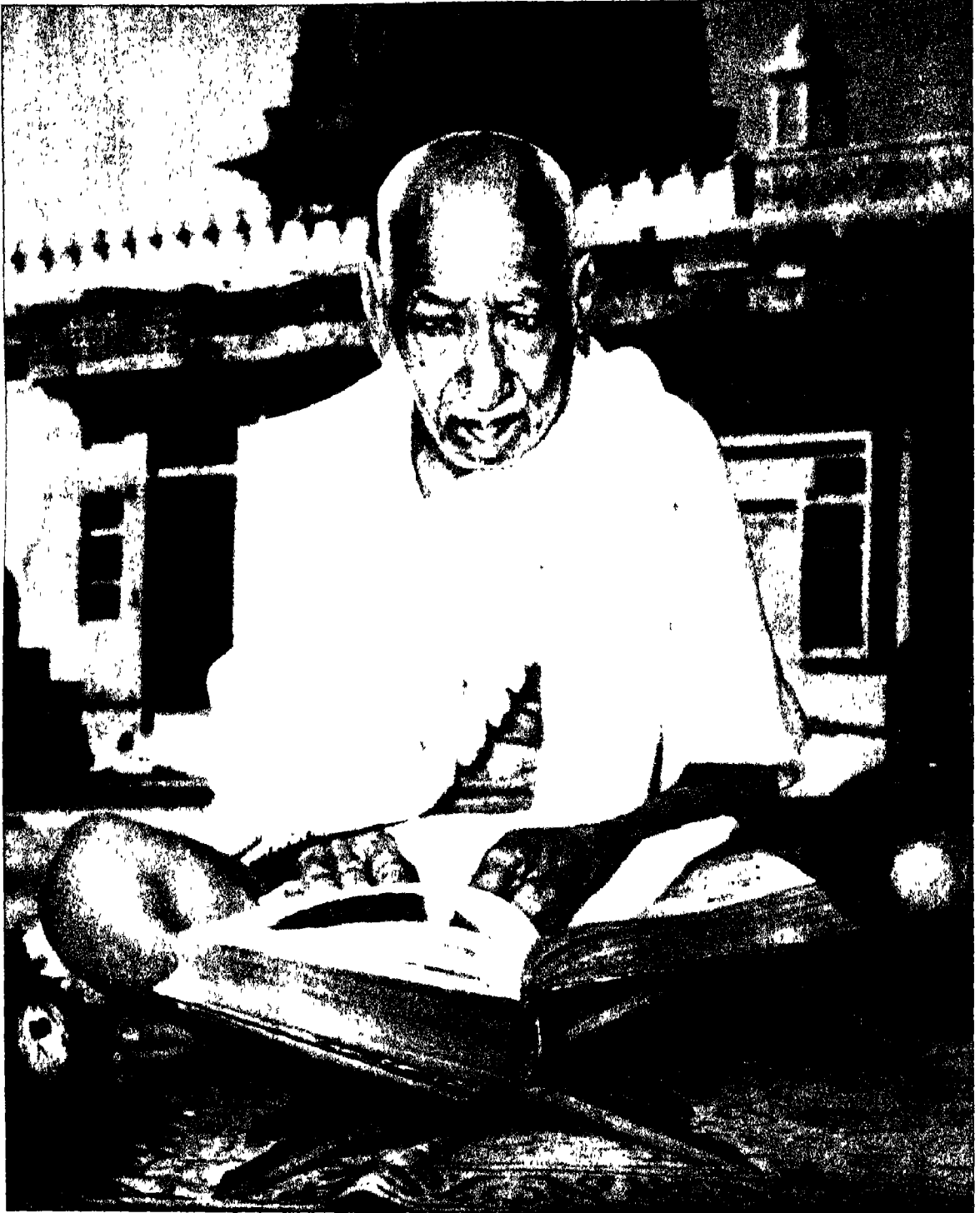
त्यागमूर्ति, आध्यात्मिक सन्त, गुरुवर्य पूज्य श्रीगणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्य

बीसवीं शती के महान् शिक्षा प्रसारक, शिक्षा संस्था-संस्थापक

समाज-जागरण के प्रधान अग्रदूत

शुभाशंसनम्

''मुझे पण्डितों के समागम से बहुत ही शान्ति मिली और इतना विपुल हर्ष हुआ कि इसकी सीमा नहीं। जिस प्रान्त में सूत्र-पाठ के लिए दस या बीस ग्राम में कोई एक व्यक्ति मिलता था, आज उन्हीं ग्रामों में राजवार्तिक आदि ग्रन्थों के विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ गुणस्थानों के नाम जानने वाले कठिनता से पाये जाते थे, आज वहाँ जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड के विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर पूजन-पाठ के शुद्ध उच्चारण करने वाले न थे, आज वहाँ पञ्चकल्याणक के कराने वाले विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर 'जैनी नास्तिक हैं' यह सुनने को मिलता था, आज वहीं पर यह शब्द लोगों के द्वारा सुनने में आता है कि 'जैनधर्म ही अहिंसा का प्रतिपादन करने वाला है और इसके बिना जीव का कल्याण दुर्लभ है। जहाँ पर जैनी पर से वाद करने में भयभीत होते थे, आज वहीं पर जैनियों के बालक पण्डितों से शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं। यह सब देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो आनन्द-सागर में मग्न न हो जावे। आज सब ही लोग जैन धर्म का अस्तित्त्व और गौरव स्वीकार करने लगे हैं। इसका श्रेय इन विद्वानों को ही तो है। साथ ही हमारे दानी महाशयों को भी है जिनके द्रव्यदान से यह मण्डली बन गई।''

गणेश वर्णी
(मेरी जीवन-गाथा, प्र. भा. पृ. ५१०)

गुरुवर्य पं. गोपालदासजी वरैया

स्याद्वाद्वारिधि, वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति
बीसवीं शती के जैन शिक्षा एवं जैन विद्यालयों के प्रवर्तक
तथा वर्त्तमान विद्वत्परम्परा के पितामह

दो शब्द

यह जानकर प्रसन्नता हुयी कि विद्वानों की शीर्षस्थ संस्था अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद का स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह 1008 श्री भगवान पार्श्वनाथ प्राचीन अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव (खेकड़ा) उ.प्र. में 15-17 जून 2001 तक आयोजित है। इस अवसर पर विद्वत्परिषद् द्वारा तैयार "ज्ञानायनी" ग्रन्थ को प्रकाशन का सौभाग्य प्राच्य श्रमण भारती संस्था को प्राप्त हो रहा है।

इस संस्था का उद्देश्य ही चारों अनुयोगों के ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ इस प्रकार के ऐतिहासिक ग्रन्थों का प्रकाशन करना है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से प्राचीन विद्वानों के विचारों में समाज, राष्ट्र एवं धर्म के प्रति क्या सोच था? ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण जिज्ञासाओं का पता चलेगा और आने वाली विद्वानों की पीढ़ी को प्राचीन विद्वानों के अनुकरणीय आदर्शों का ज्ञान भी होगा। समाज में विद्वानों का स्थान सर्वोच्च हैं। आज विद्वानों के द्वारा अधिकाधिक अनुपलब्ध ग्रन्थों का सम्पादन अनुवाद आदि कार्य इस युग की माँग है। साथ ही हम विद्वानों से विनम्र अनुरोध करते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति से सिद्धान्तों का लखन करें. यह संस्था विद्वानों, आचार्यों की कृतियों के प्रकाशन के लिय कटिवद्ध हैं। इस संस्था को प.पू. उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज का आर्शीवाद प्राप्त है। अत: हम उनके चरणों में शत शत नमन करते हैं।

यौगेश कुमार जैन (खतौली)
अध्यक्ष
प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर

प्रकाशकीय

देश के शीर्षस्थ विद्वानों की 56 वर्षी प्राचीन संस्था अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का इतिहास गौरवमयी एवं गरिमापूर्ण हैं। वि. परिषद् के मंत्री प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान डॉ. शीतलचन्द जैन जयपुर से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि परिषद् का गत वर्ष से स्वर्ण जयन्ती वर्ष चल रहा है और स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह 15 से 17 जून 2001 तक 1008 श्री पार्श्वनाथ प्राचीन अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव (खेकड़ा) में प.पू. उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में सम्पन्न होने जा रहा है और इस अवसर पर विद्वत्परिषद् द्वारा तैयार लगभग 300 पृष्ठ का 'ज्ञानायनी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित होगा। प्रथम खण्ड में विद्वत्परिषद् का इतिहास एवं 56 वर्ष की प्रगति यात्रा। द्वितीय खण्ड में प्रसिद्ध विद्वानों के आलेख और तृतीय खण्ड में मूर्धन्य विद्वानों के अध्यक्षीय महत्त्वपूर्ण भाषण जिसमें समाज एवं देश की उन्नति के लिए मार्गदर्शन है। यह सब जानकर मैंने डॉ. साहब से आग्रह किया कि यह ग्रन्थ प्राच्य श्रमण भारती से प्रकाशित हो जाये तो हमारी संस्था गौरव का अनुभव करेगी। हमारे इस आग्रह को वि. परिषद् ने स्वीकार कर हमें गौरवान्वित किया है। एतदर्थ हम वि. परिषद् के आभारी हैं कि इस बहुमूल्य कृति के प्रकाशन का अवसर प्रदान किया।

ज्ञातव्य है कि प्राच्य श्रमण भारती प.पू. उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के प्रेरणा एवं आशीर्वाद से संस्थापित है। इस संस्था ने अभी तक चारों अनुयोगों के बहुमूल्य अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। जिसमें तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, प्रमेयकमल मार्तण्ड परिशीलन, न्यायकुमुदचन्द्र परिशीलन जैसे दार्शनिक एवं करणानुयोग के दुर्लभ एवं अनुपलब्ध ग्रन्थों का प्रकाशन कर यह संस्था जिनवाणी की निरन्तर सेवा कर रही है। अभी अनेक ग्रन्थ प्रकाशनाधीन है। इस संस्था का प्रयास है कि अनुपलब्ध एवं जनसामान्य को रूचिकर लगने वाला साहित्य प्रकाशित हो। इस दिशा में यह संस्था प्रामाणिक एवं ठोस कार्य कर रही है।

इस 'ज्ञानायनी' कृति के सम्पादक महानुभावों के प्रति हम आभार मानते हैं कि आपने दिन रात परिश्रम करके समाजोपयोगी एवं जनोपयोगी कृति तैयार की। हमारे सहयोगी मनीष जैन जो प्रकाशन कार्य में रूचि लेते हैं। वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

हम पूज्य गुरूवर उपाध्याय श्री के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि संस्था के सभी पदाधिकारियों को इस कार्य हेतु सदैव आशीर्वाद देते हैं। अतः उनके चरणों में शत् शत् नमन्।

रविन्द्रकुमार जैन (नावले वाले)
मंत्री
प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर

सम्पादकीय...

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् दिगम्बरत्व के प्रति आस्था रखने वाले विद्वानों की अखिल भारतीय स्तर की संस्था है। इसकी स्थापना 2 नवम्बर, सन् 1944 को वीर शासन जयन्ति के अवसर पर कलकत्ता में हुई थी। जैन धर्म एवं संस्कृति के संरक्षण, प्रचार-प्रसार तथा विद्वानों की सामयिक उन्नति-ये इसके मूल उद्देश्य हैं। सन् 1944 से अब तक लगभग छप्पन वर्षों की इस दीर्घ-अवधि में विद्वत्परिषद् ने अपने मूल उद्देश्यों के अनुकूल अनेक ऐसे लोकोपयोगी एवं कल्याणकारी कार्य किये हैं, जिससे जैनधर्म एवं संस्कृति को एक नवीन दिशा मिली है तथा अनेक सामाजिक कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हुये हैं।

विद्वत्परिषद् की उत्तरोत्तर उन्नति को देखकर प्रात: स्मरणीय पूज्य गणेश प्रसाद जी ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

विद्वानों की प्रारम्भिक ग्यारह सदस्यीय इस विद्वत्परिषद् के प्रथम सभापति पूज्य वर्णीजी के शिष्य विद्वद्वर्य पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी चुने गये और तब से लेकर आज तक विद्वत्परिषद् को अनेक विद्वानों का सहयोग एवं संरक्षण मिला है। इस क्रम को पूज्य क्षु. 105 गणेश प्रसादजी वर्णी, सिद्धान्तवाचस्पति पं. वंशीधर जी न्यायालंकार, पं. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री, सिद्धान्ताचार्य पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री, सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, पं. दयाचन्दजी सिद्धांतशास्त्री, सिद्धांताचार्य पं. फूलचन्द्रजी शास्त्री, पं. सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर, पं. राजेन्द्रकुमार न्यायतीर्थ, पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, पं. जीवन्धर जी न्यायतीर्थ, पं. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य, न्यायाचार्य, डॉ. दरबारीलालजी कोठिया, संहितासूरि पं. नाथूलाल शास्त्री, पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, भँवर लाल जी न्यायतीर्थ, ब्र. माणिक चन्द्र जी चँवरे, डॉ. हरीन्द्र भूषण जैन, पं. हीरालाल कौशल, पं. धन्य कुमार भौंरे, डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री एवं प्रोफेसर सुदर्शन लाल जैन आदि गणमान्य विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अध्यक्ष मंत्री अथवा अन्य गौरवशाली पदों पर रहकर अपनी सेवाएँ दी हैं।

इस गौरवशाली संस्था के भारत वर्ष के विभिन्न प्रान्तों में बीस अधिवेशन एवं नैमित्तिक अधिवेशन सम्पन्न हुए हैं। जिसमें अनेक सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक एवं पुरातत्व संबंधी प्रस्तावों को पारित कर क्रियान्वयन की दिशा में अच्छा कार्य किया है।

विद्वत्परिषद् के द्वारा जैनागम, सिद्धान्तों एवं तत्त्व के प्रचार-प्रसार के लिए तथा विद्वानों में अनुसंधान की प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिये अत्यधिक उपयोगी इतिहास एवं संस्कृति से सम्बन्धित और सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने के लिए परिषद् की ओर से प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया गया।

परिषद् के द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार हैं:-

1. श्री श्रुत सप्ताह नवनीत (1944)
2. श्री गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ (1967 ई.)
3. पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ
4. पं. जुगलकिशोर मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
5. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (4 भागों में)-(डॉ. नेमीचन्द जैन)
6. अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् - रजत जयन्ती स्मारिका (1973 ई.)
7. भारतीय संस्कृति के विकास में जैनाचार्यों का अवदान (दो भागों में)
   (डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के दुर्लभ शोध निबन्धों का संग्रह) सम्पादक - डॉ. देवेन्द्र शास्त्री एवं डॉ. राजाराम जैन
8. देव-शास्त्र-गुरु - डॉ. सुदर्शनलाल जैन

छप्पन वर्ष के इतिहास में विद्वत्परिषद् की ओर से विभिन्न अवसरों पर परिषद् के प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों की कृतियों पर लगभग पन्द्रह विद्वानों को पुरस्कार भी दिये गये हैं।

विद्वत्परिषद् के 18वें साधारण सभा के तिजारा अधिवेशन में निर्णय लिया गया था कि परिषद् की त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होनी चाहिये तदनुसार सांगानेर में स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर प्रथम अंक प्रकाशित किया गया। परिषद् का प्रयास है कि पत्रिका निरन्तर चालू रहे जिससे विद्वानों को परिषद् की गतिविधियों के साथ-साथ सैद्धान्तिक शंका-समाधान आदि का भी लाभ मिले।

स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह के अवसर पर विद्वत्परिषद् के छप्पन वर्ष का इतिहास एवं बीस अधिवेशनों के अध्यक्ष के भाषण एवं विद्वानों के आलेख संग्रह करके ग्रंथ प्रकाशन की योजना की। तदनुरूप **"ज्ञानायनी"** नाम से प्रकाशित यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है। ग्रन्थ में सर्वप्रथम विद्वत्परिषद् का इतिहास एवं प्रगतिपथ खंड में सन् 1944 से अद्यावधि आयोजित बीस अधिवेशनों के प्रमुख प्रस्ताव एवं क्रियान्विति का ब्यौरेवार विवरण प्रस्तुत है। इस विवरण से ज्ञात होगा कि प्रथम अधिवेशन में 1945 में हुआ था और बीसवा अधिवेशन 23 फरवरी, 2001 के कुण्डलपुर (दमोह) में सम्पन्न हुआ। इन छप्पन वर्षों में विद्वत्परिषद् में क्या-क्या उतार चढ़ाव आया इसका लेखा-जोखा इसमें दिया गया है जो महत्त्वपूर्ण है।

द्वितीय खंड में **"विद्वान एवं विद्वत्परिषद्"** शीर्षक में विभिन्न विद्वानों के महत्त्वपूर्ण आलेख संग्रहीत हैं। जो परिषद् एवं परिषद् के विद्वानों की गरिमा का दिग्दर्शन कराते हैं। इस खंड में परिषद् के उद्देश्य उसके कार्य एवं उससे जुड़े हुए विद्वानों की सेवाओं का मूल्यांकन किया गया है।

तृतीय खंड **"अतीत का परिदृश्य"** शीर्षक में विद्वत्परिषद् के बीस अधिवेशनों एवं नैमित्तिक अधिवेशनों में तत्कालीन अध्यक्षों द्वारा उद्बोधित किये गये भाषणों को दिया गया है। ये मात्र भाषण नहीं है अपितु ये

ऐतिहासिक दस्तावेज हैं जो तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का विहंगावलोकन कराते हैं। अध्यक्षीय उद्बोधनों का एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। उसके अनुरूप ही प्रयास कर अविकल भाषणों का संग्रहकर प्रकाशन किया गया है। इन भाषणों की समीक्षा कर विद्वत्परिषद् भावी योजनाओं को बनाए और क्रियान्विति करे तो अति उत्तम होगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रेरणा और आशीर्वाद परमपूज्य उपाध्याय मुनि ज्ञानसागर जी महाराज की रही है। यही कारण है कि परिषद् के समस्त विद्वानों की इच्छा थी स्वर्ण-जयन्ती वर्ष का समापन समारोह पूज्य उपाध्यायश्री के सान्निध्य में मनाया जाए। तदनुसार 15 से 17 जून 2001 तक आपके सान्निध्य में आयोजित है। आशा है कि समागत विद्वानों को पूज्य उपाध्याय श्री से मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। पूज्य उपाध्याय श्री का विद्वानों के प्रति उन्नयन का भाव रहता है। अत: ऐसे मार्गदर्शक के प्रति हम शत-शत बार चरणों में नमन करते हैं। आपकी प्रेरणा से ही १००८ भ. पार्श्वनाथ प्राचीन अतिशय क्षेत्र बड़ागांव (खेकड़ा) की तीर्थ क्षेत्र समिति ने तन, मन, धन से जो सहयोग दिया है। उसके हम आभारी हैं। आदरणीय ब्रह्मचारिणी विदुषी अनीता जी एवं विदुषी मंजुला जी का विद्वानों के प्रति विद्वत्सत्कार की भावना अन्य बहिनों के लिये अनुकरणीय हैं।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में परिषद् के अध्यक्ष डॉ. रमेश चन्द्र जैन ने अद्यावधि सूक्ष्म रीति से ग्रन्थ सामग्री को देख कर अनुगृहीत किया है। हमारे सहयोगी डॉ सनत कुमार जैन, डॉ शोभालाल जैन, जयपुर और परिषद् के पदाधिकारी डॉ. सुरेश चन्द्र जैन, डॉ फूलचन्द्र 'प्रेमी' ब्र: पं. अमरचन्द जी जैन, डॉ. नेमीचन्द खुरई, डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी एवं श्रीमती शारदा जैन के सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं था और कार्यकारिणी के समस्त सदस्यों का समय-समय मार्गदर्शन एवं सहयोग मिलता रहा एतदर्थ हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इस ग्रंथ के साथ परिषद् के विद्वानों का परिचय प्रकाशन करने का विचार था। इस खंड का सम्पादन डॉ. विजय कुमार जैन लखनऊ ने कर भी दिया था, परन्तु अनेक विद्वानों के परिचय अभी भी प्राप्त नहीं हुए हैं, अत: इसे स्वतंत्र विद्वत् परिचय ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करेंगे।

इस ग्रंथ के सम्पादक मण्डल के सदस्यों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ और परिषद् के जिन माननीय सदस्यो ने आलेख भेजे हैं उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा। प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर (उ.प्र) संस्था ने विद्वत् स्नेह देते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन का दायित्व स्वीकार किया। एतदर्थ आभारी है। दीप प्रिन्टर्स के मालिक श्री मनोहर लाल जैन ने बडे ही मनोयोग से प्रकाशन कार्य किया। अत: उनके उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं। शुभमस्तु।

डॉ. शीतलचन्द्र जैन
कृते सम्पादक मण्डल
अ. भा. दि. जैन वि. परिषद्

स्थान : **जयपुर**
दिनांक : **17 जून, 2001**

श्रमण संस्कृति के उन्नायक

आचार्य विद्यासागर जी महाराज

आपके सान्निध्य में बीना, (बाराहा) सागर, खजुराहो, अहार,
कुण्डलपुर (दमोह) आदि स्थानों पर ऐतिहासिक अधिवेशन सम्पन्न हुए।

विद्वानों के उन्नायक एवं सराकोद्धारक

उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज

आपके सान्निध्य में तिजारा का अधिवेशन एवं बड़ागांव (खेकड़ा) में स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह आयोजित।

विद्वानों के शिल्पी :

पूज्य मुनिवर सुधासागर जी महाराज

आपके सान्निध्य में ऐतिहासिक स्वर्ण जयन्ती समारोह

श्री दि. जैन. अतिशय क्षेत्र संघी जी सांगानेर, जयपुर में आयोजित हुआ।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

अध्यक्षगण
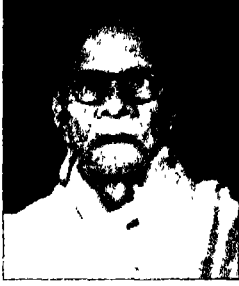
सिद्धान्तवाचस्पति स्व. पं. बंशीधरजी, न्यायालंकार
इन्दौर (म. प्र.)

अध्यक्ष – कटनी अधिवेशन (१९४५)
तथा सोलापुर अधिवेशन (१९४९)
भूतपूर्व प्राचार्य – सर सेठ हुकुमचन्द्र-महाविद्यालय, इन्दौर
संरक्षक – श्रीगणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, वाराणसी

स्व. पं. जगन्मोहनलालजी, सिद्धान्तशास्त्री
कटनी (म.प्र.)

अध्यक्ष – मथुरा-अधिवेशन (१९४६)
प्राचार्य – जैन शिक्षा-संस्था, कटनी
अध्यक्ष – श्रीगणेश वर्णी दि. जैन सस्थान, वाराणसी
प्रधानमंत्री – श्रीभारतवर्षीय दि जैन संघ, मथुरा

सिद्धान्ताचार्य स्व. पं. कैलाशचन्द्रजी, सिद्धान्तशास्त्री
वाराणसी

अध्यक्ष – सोनगढ़ अधिवेशन (१९४७)
तथा ललितपुर अधिवेशन (१९५९)
प्राचार्य एवं अधिष्ठाता – स्याद्वाद-महाविद्यालय, वाराणसी
सम्पादक – जैन-सन्देश

स्व. दयाचन्द्रजी, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
सागर (म. प्र.)

अध्यक्ष – खुरई अधिवेशन (१९५३)
भूतपूर्व प्राचार्य – श्रीगणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, वाराणसी

सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र जी, सिद्धान्तशास्त्री
वाराणसी

अध्यक्ष – श्री द्रोणगिरि-अधिवेशन (१९५५)
निदेशक – श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, वाराणसी
मंत्री – सन्मति जैन निकेतन, वाराणसी
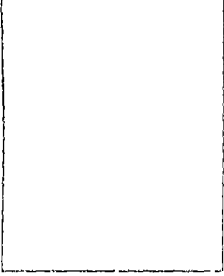
स्व. पं. जीवन्धरजी, न्यायतीर्थ शास्त्री
इन्दौर (म प्र.)

अध्यक्ष – मढ़ियाजी-जबलपुर-अधिवेशन (१९५८)
भूतपूर्व प्राचार्य – सर सेठ हुकुमचन्द महाविद्यालय, इन्दौर

स्व. पं. वंशीधरजी, व्याकरणाचार्य न्यायतीर्थ, साहित्य-दर्शनशास्त्री
बीना (म.प्र.)

अध्यक्ष – सिवनी-अधिवेशन (१९६५) तथा श्रावस्ती-नैमित्तिक अधिवेशन (१९६६)
भूतपूर्व मंत्री – श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी

स्व. डा. नेमिचन्द्रजी, शास्त्री, ज्योतिषाचार्य
आरा (बिहार)

अध्यक्ष – सागर-अधिवेशन (१९६८) तथा नैमित्तिक खतौली - अधिवेशन (१९७१)
संयुक्त मंत्री – श्रीगणेश वर्णी दि जैन संस्थान, वाराणसी

स्व. डॉ. दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य
बीना (म.प्र.)

अध्यक्ष – शिवपुरी-अधिवेशन (१९७३)
रीडर – काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
मंत्री – श्री गणेश वर्णी दि जैन संस्थान एवं वीरसेवामन्दिर-ट्रस्ट
सहसंपादक – जैन सन्देश

स्व. डॉ. पं. पन्नालालजी, साहित्याचार्य
सागर (म प्र.)

अध्यक्ष – खजुराहो अधिवेशन, १९८१
प्राचार्य – श्री गणेश वर्णी दि जैन महाविद्यालय, सागर
सह सम्पादक – जैन गजट

स्व. पं. भंवरलालजी, न्यायतीर्थ
जयपुर (राज.)

अध्यक्ष – फिरोजाबाद अधिवेशन (१९८५)
सम्पादक – वीर-वाणी।
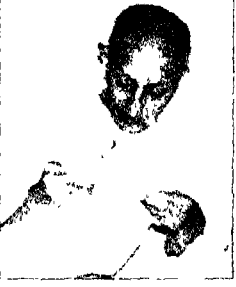
स्व. माणिकचन्द्र जयकुमार चँवरे
कारंजा (महा.)

अध्यक्ष – मतना अधिवेशन (१९९०)
अधिष्ठाता – ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा

डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन शास्त्री
नीमच (म.प्र.)

अध्यक्ष – खुरई अधिवेशन (१९९३)
प्रोफेसर – शासकीय महाविद्यालय, नीमच

डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर

अध्यक्ष – तिजारा १९९८, सांगानेर १९९९, कुण्डलपुर २००१
बड़ागांव अधिवेशन २००१
रीडर – वर्धमान जैन डिग्री कॉलेज, बिजनौर (उ. प्र.)

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

मंत्री-गण

स्व. पं. सुमेरुचन्द्रजी
दिवाकर सिवनी
संस्थापक मंत्री (१९४४)
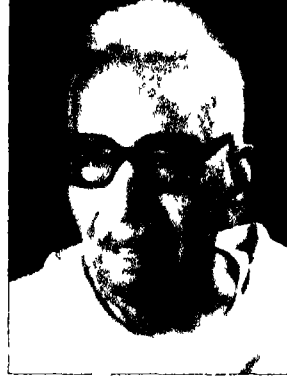
स्व. पं. डॉ. पन्नालालजी
साहित्याचार्य
मंत्री विद्वत्परिषद् (दीर्घ समय तक)
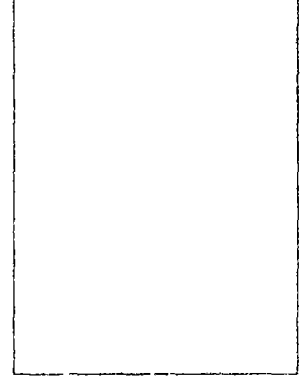
स्व. डॉ. पं. हरीन्द्रभूषण जी
उज्जैन

स्व. पं. हीरालाल जी "कौशल"
मंत्री- विद्वत्परिषद्
(लगभग 6 वर्ष)

डॉ. सुदर्शनलाल जैन
मंत्री विद्वत्परिषद्
(लगभग 8 वर्ष)

डॉ. शीतलचन्द्र जैन
मंत्री-विद्वत्परिषद्
(1998 से)
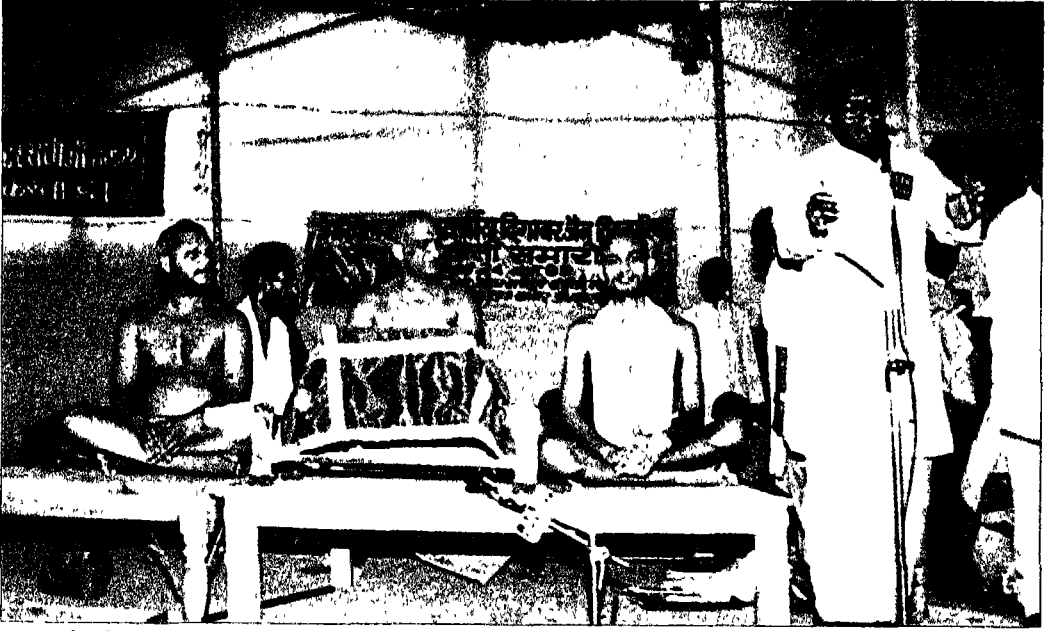
सांगानेर में पूज्य मुनिवर सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में विद्वत्परिषद् के मंत्री डॉ. शीतलचन्द्र जैन स्वर्ण जयन्ती समारोह एवं 19वें अधिवेशन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए। 23-24 जून, सन् 1999

सांगानेर में पूज्य मुनिवर सुधासागर जी के सान्निध्य में विद्वत्परिषद् के स्वर्ण जयन्ती समारोह के विशिष्ट अतिथि साहू रमेश चन्द जैन दिल्ली एवं मुख्य अतिथि श्री भंवरलाल सरावगी जयपुर और विद्वत्परिषद के अध्यक्ष डॉ. रमेशचन्द जैन एवं ब्र. भैय्यागण। 23-24 जून, 1999

श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में 20वें अधिवेशन का प्रगति-विवरण प्रस्तुत करते हुए मंत्री-डॉ. शीतलचन्द्र जैन।
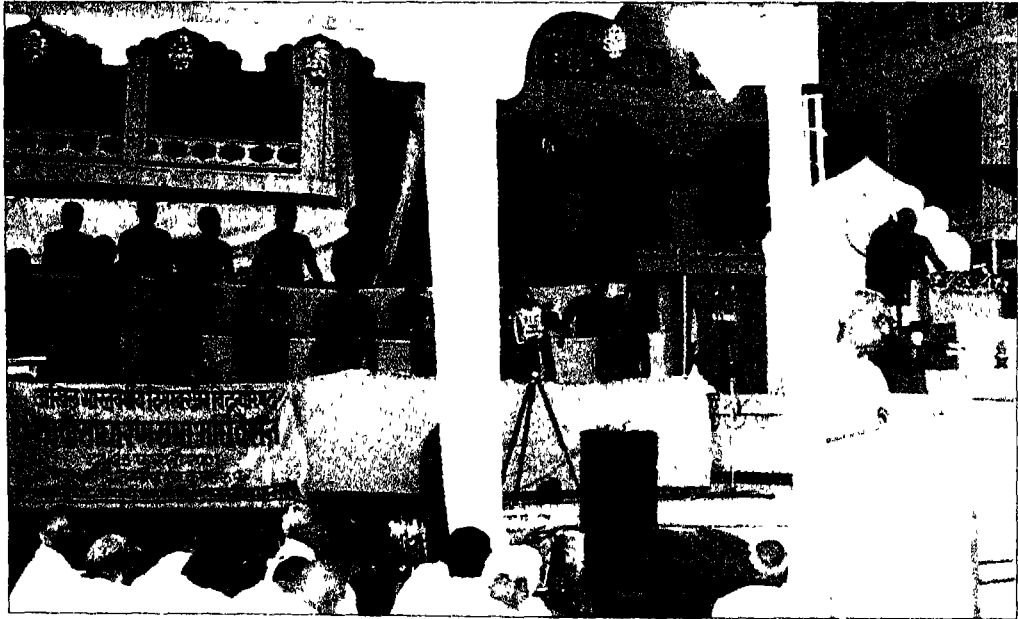
श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए अध्यक्ष - डॉ. रमेशचन्द्र जैन।
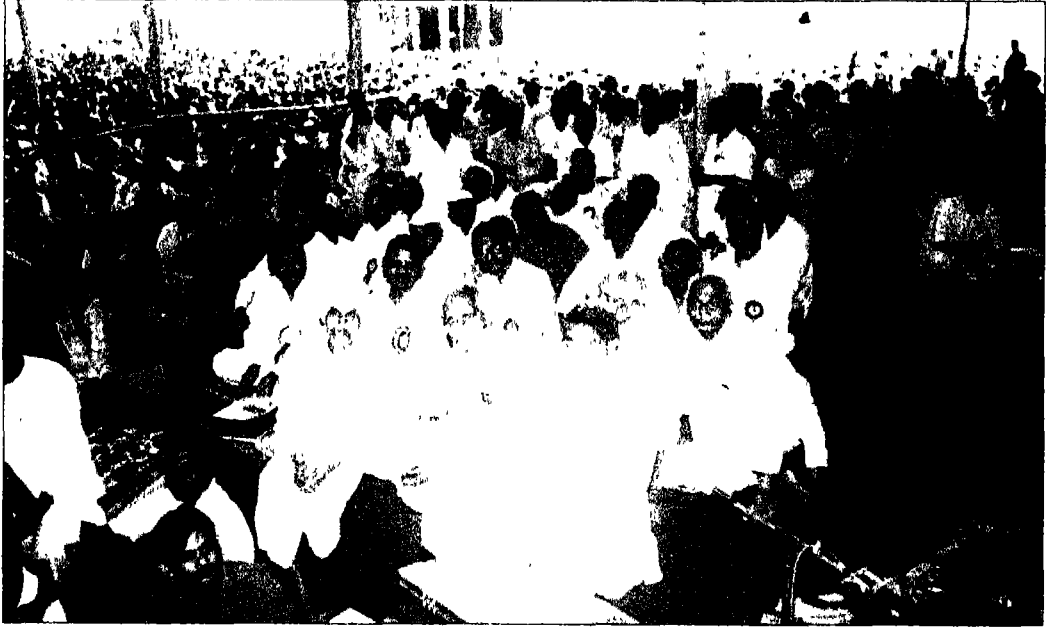
श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में उपस्थित विद्वत्परिषद् के विद्वानों की वृहद् उपस्थिति।

श्री दि. जैन समाज इलाहाबाद के सौजन्य से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी के अवसर पर आयोजित विद्वत्संगोष्ठी।

ज्ञानायनी

प्रथम खण्ड

इतिहास
एवं
प्रगतिपथ

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

(इतिहास एवं प्रगतिपथ)

इस बात का प्रायः सभी दिगम्बर जैन विद्वान् अनुभव करते थे कि विद्वानों की एक ऐसी परिषद् हो, जिसके द्वारा जैन शासन का संरक्षण व प्रचार तथा विद्वानों की सामयिक उन्नति एवं परस्पर संपर्क किया जा सके। सन् १९४४ में कलकत्ता में वीरशासन-महोत्सव के निमित्त से समाज के गणमान्य बहुत से विद्वान् एकत्रित हुए थे। वहाँ उन्होंने भी इस बात का अनुभव किया। तदनुसार पारस्परिक विचार-विनिमय के बाद श्रीमान् पण्डित जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी के माध्यम से वहाँ महोत्सव में उपस्थित सब विद्वानों को एक स्थान पर मिलकर विचार करने की सूचना दी गई। सूचना करने वालों में पं. श्री राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ मथुरा, पं. श्री कैलाशचन्द्रजी शास्त्री वाराणसी, पं. श्री बंशीधर जी व्याकरणाचार्य बीना, पं. श्री दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य और पं. श्री महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य मुख्य थे।

सूचनानुसार नियत समय पर जो विद्वान् जैन भवन में एकत्रित हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं-

१ पं. श्री लाल जी पाटनी, अलीगढ़, २ पं. राजेन्द्र कुमार जी मथुरा, ३ पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री वाराणसी, ४. पं. सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर सिवनी, ५ पं. वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना, ६. पं. महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य वाराणसी, ७. पं. दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य सरसावा, ८ पं. इन्द्रलालजी शास्त्री जयपुर, ९ पं. श्रीलालजी काव्यतीर्थ कलकत्ता, १०. पं. उल्फतरायजी शास्त्री, ११. पं. मक्खनलाल जी शास्त्री अजमेर प्रचारक अधिष्ठाता जैन गुरुकुल मथुरा, १२. पं. रामप्रसाद जी शास्त्री बम्बई, १३. पं. विद्याकुमार जी शास्त्री, अजमेर, १४ प. झम्मनलालजी तर्कतीर्थ कलकत्ता, १५. पं. नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य आरा, १६. पं. शिवजीराम जी पाठक रांची, १७. पं. परमानन्दजी शास्त्री सरसावा, १८. पं. सुव्वैयाजी शास्त्री, १९ पं. ऋषभचन्दजी शास्त्री, २० पं. श्रीनिवासजी शास्त्री और पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री सम्पादक जयधवला उपस्थित थे।

प्रारम्भ में पं. फूलचन्द्र जी ने मङ्गलाचरण किया। तदनन्तर विद्वानों को संगठित होकर अपनी एक संस्था स्थापित करने की प्रेरणा की। पश्चात् पं. रामप्रसाद जी शास्त्री के प्रस्ताव व पं. सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर के समर्थन करने पर पं. श्रीलालजी जैन भवन में आयोजित उस सभा के सभापति चुने गये। पश्चात् पं. जगन्मोहनलालजी, पं. सुमेरुचन्द्रजी, पं. झम्मनलालजी, पं. ऋषभकुमार जी, पं. मक्खनलालजी मथुरा और पं. राजेन्द्रकुमार जी के भाषण हुए।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना की जावे। तदनुसार उसी दिन २-११-१९४४ को दिन के ३ बजे विद्वत्परिषद् की स्थापना की गई। सदस्य बनाने का यह निश्चय हुआ कि विद्वान् या विदुषी कम से कम विशारद-परीक्षा पास या तत्सम योग्यतावाले हों वे उसके सदस्य बन सकते हैं। सदस्यता-शुल्क तीन रुपया वार्षिक रखा गया। विद्वत्परिषद् का उद्देश्य-जैन शासन का संरक्षण, प्रचार और विद्वानों की सामयिक उन्नति-निश्चित किया गया।

परिषद् के दो भाग निश्चित किये गये-एक साधारण सभा और दूसरी प्रबन्धकारिणी। उस समय प्रबन्धकारिणी के ११ सदस्य चुने गये जिनमें ५ पदाधिकारी और शेष सदस्य थे। नामावली इस प्रकार है-

१	पं. श्री जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी	सभापति
२	पं. श्री इन्द्रलालजी शास्त्री, जयपुर	उपसभापति
३.	पं श्री सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर सिवनी	मन्त्री
४.	पं. श्री फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री	संयुक्तमंत्री
५.	पं श्री कैलाशचन्द्र जी शास्त्री	कोषाध्यक्ष
६.	पं श्री राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ	सदस्य
७.	पं. श्री रामप्रसादजी शास्त्री बम्बई	सदस्य
८	पं श्री बंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना	सदस्य
९	पं. श्री दरबारीलाल जी न्यायाचार्य सरसावा	सदस्य
१०	पं. श्री विद्याकुमार जी शास्त्री	सदस्य
*११	पं. श्री महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य वाराणसी	सदस्य

आयोजित सभा की समाप्ति के समय यह निश्चित हुआ कि प्रो. हीरालालजी अमरावती ने जो स्त्रीमुक्ति आदि के अनुकूल प्रचार चालू कर रक्खा है उसका सप्रमाण खण्डन करने के लिए उनसे मौखिक चर्चा की जावे।

तदनुसार दूसरे दिन इस चर्चा का आयोजन किया गया, जिसमें विद्वत्परिषद् को पर्याप्त सफलता मिली।

प्रगति पथ

प्रथम अधिवेशन (कटनी, १९४५)

उल्लिखित कार्यकर्ताओं ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर परिषद् के कार्य को आगे बढ़ाया। परिषद् की स्थापना तथा प्रचार से विद्वान् मात्र को हर्ष हुआ और अल्पकाल में ही अनेक विद्वान् उसके सदस्य हो गये। जैन समाज के प्रसिद्ध आध्यात्मिक योगी श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज के पुण्य विहार से कटनी मे विमानोत्सव होने वाला था। उस समय वहाँ की समाज ने विद्वत्परिषद् का वार्षिक अधिवेशन अपने यहाँ कराने का आमन्त्रण कार्यालय में भेजा, जिसे कार्यकारिणी ने सहर्ष स्वीकृत किया। फलस्वरूप ७, ८, ९ मार्च १९४५ को कटनी में विद्वत्परिषद् का शानदार प्रथम अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीमान् पं. बंशीधर जी शास्त्री, न्यायालंकार, इन्दौर थे। पूज्यवर्णीजी के सान्निध्य में संपन्न इस अधिवेशन में लगभग ५० विद्वानों ने भाग लेकर अपने हार्दिक उत्साह और सहयोग का परिचय दिया था। इस अधिवेशन में स्थायी सदस्य बनकर कितने ही विद्वानों ने लगभग ४०००) चार हजार रुपये एकत्रित कर विद्वत्परिषद् के कार्य को आगे बढ़ाया।

इस अधिवेशन में विद्वत्परिषद् का विधान पास हुआ तथा २१ विद्वानों की प्रबन्धकारिणी समिति गठित की गई। अनेक प्रस्तावों के साथ महत्त्वपूर्ण निम्नांकित प्रस्ताव भी पारित हुआ–

प्रस्ताव नं. ५

जैन संस्कृति के संरक्षण तथा जैनधर्म के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पण करने वाले सुयोग्य विद्वानों को आजीवन सदस्य बनाने के लिए एक जैन वीर-संघ की स्थापना का निश्चय यह परिषद् करती है। इसको कार्यान्वित करने के लिए आरम्भ में एक लाख रुपये की निधि का संग्रह करने का निश्चय करती है।

द्वितीय अधिवेशन (मथुरा, १९४६)

उक्त अधिवेशन में यह भी निश्चित हुआ कि नवीन पीढ़ी के विद्वानों को सुरक्षित, सुसंगठित तथा समाजसेवा के लिए सदा जागरूक बनाये रखने के लिए एक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जावे। तदनुसार जून १९४६ में मथुरा में जैन शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया, जिसका संचालन श्री खुशालचन्द्रजी गोरावाला ने बड़ी संलग्नता के साथ किया था। शिक्षण-शिविर की समाप्ति के समय मथुरा में ही श्री पं जगन्मोहनलाल जी शास्त्री की अध्यक्षता में ९, १० जून १९४६ ई को विद्वत्परिषद् का द्वितीय अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में निम्नाङ्कित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुआ-

प्रस्ताव नं. ४

प्राय: जैनेतर साहित्यिक व ऐतिहासिक लेखक जैनधर्म, जैन तत्त्वज्ञान व जैन इतिहास से परिचित न होने के कारण अपनी पुस्तकों मे एतद्विषयक अनेक भूलें कर जाते हैं, जिनके निराकरण होते रहने की नितान्त आवश्यकता है। विद्वत्परिषद् इसकी महत्ता का अनुभव करती है, इसलिए एक ऐसे विभाग के खोलने की अनुमति देती है जिसके द्वारा जैनधर्म, जैन तत्त्वज्ञान व जैन इतिहास पर होने वाले आक्षेपों का समुचित रीति से निराकरण होता रहे और आवश्यकता होने पर आक्षेप-परिहारों को पुस्तक रूप में भी प्रकाशित करने की प्रेरणा करती है।

इसी अधिवेशन में जैन झण्डे का स्वरूप निश्चय करने के लिए निम्नलिखित विद्वानों की एक समिति गठित की गई थी–

१ श्री पं नाथूलाल जी शास्त्री
२. श्री पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री
३. श्री पं बंशीधरजी व्याकरणाचार्य
४ श्री पं कैलाशचन्द्र जी शास्त्री
५ श्री पं. परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ
६. श्री पं. बलभद्रजी न्यायतीर्थ (संयोजक)
७ श्री पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री

तृतीय अधिवेशन (सोनगढ़, १९४७)

आत्मार्थी श्रीकानजी स्वामी अपने दश हजार के लगभग साथियों के साथ दिगम्बर जैन धर्म में आये और अपने आध्यात्मिक प्रवचनों के द्वारा उन्होंने समाज में एक नवीन उल्लासपूर्ण वातावरण स्थापित किया। सोनगढ़ को उन्होंने अपना स्थायी निवास निश्चित किया। विद्वत्परिषद् की प्रगति से वहाँ के लोग प्रमुदित थे। अत: वहाँ से अधिवेशन का निमन्त्रण प्राप्त हुआ और नवागन्तुक सहधर्मियों के स्वागत की भावना से विद्वत्परिषद् ने उस निमन्त्रण को स्वीकृत कर लिया। फलस्वरूप श्री पं कैलाशचन्द्र जी शास्त्री वाराणसी की अध्यक्षता में ७, ८ , ९ मार्च १९४७ को सोनगढ में विद्वत्परिषद् का तृतीय अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए-

प्रस्ताव नं. १

बहुत काल से विद्वानों के बीच जीवट्ठाण संत परूपणा के ९३वें सूत्र में संजदपद के औचित्य को लेकर चर्चा चल रही है। उस पर बनारस में हुई विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी में भी विचार किया। इधर श्री बालचन्द्र देवचन्द्र जी शहा का श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर दि जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था के मंत्री की हैसियत से एक पत्र आया है जिसके द्वारा उन्होंने इस विषय का निर्णय विद्वत्परिषद् से चाहा है। इस सब बातों को देखते हुए विद्वत्परिषद् का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि आगामी शिक्षण शिविर के समय सागर में दोनों ओर के विद्वानों का एक सम्मेलन बुलाने का आयोजन किया जाय और उस सम्मेलन में हुए ऊहापोह के आधार पर जो निर्णय हो वह सार्वजनिक जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाय।

प्रस्ताव नं. ४

दिगम्बरत्व के विरोध में जैनत्व के नाम पर रचे गये प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य का दिगम्बर विद्वनों द्वारा सम्पादन किया जाना भावी पीढ़ी के लिए अत्यन्त हानिकारक और सांस्कृतिक क्षति का कारण है, अत: यह परिषद् प्रस्ताव करती है कि आगामी काल से इस प्रकार सम्पादन कार्य रोक दिया जाय।

प्रस्ताव नं. ५

प्राचीन जैन साहित्य के उद्धार और सम्पादन के लिए विविध संस्थाएँ और विद्वान् कार्य कर रहे हैं। पर वर्तमान युग की पुकार के अनुसार नये जैन साहित्य का निर्माण किसी भी संस्था की ओर से प्राय: नहीं हो रहा है, अत: विद्वत्परिषद् का यह प्रयत्न होना चाहिये कि वह अपने विभिन्न अधिकारी विद्वानों से जैन दर्शन, जैन सिद्धान्त, जैन ज्योतिष, जैन इतिहास, जैन पुरातत्त्व तथा जैन कला आदि से संबंधित महत्त्वपूर्ण विषयों पर निबन्धात्मक लेख लिखाकर उन्हें ट्रेक्ट के रूप में प्रकाशित करावे और जैनेतरों में फैली हुई भ्रान्तियों को दूर करें।

अधिवेशन के समय श्रीकानजी स्वामी से विद्वानों की विविध विषयों पर चर्चाएँ भी हुईं। अधिवेशन उल्लासमय वातावरण में संपन्न हुआ। एक प्रस्ताव द्वारा श्रीकानजी स्वामी तथा दिगम्बर धर्म में दीक्षित नवागन्तुक भाइयों का स्वागत तथा अभिनन्दन भी किया गया।

सागर में द्वितीय शिक्षण-शिविर और विद्वत्सम्मेलन

मथुरा में संचालित शिक्षण-शिविर की पद्धति को विद्वानों ने अधिक पसन्द किया था, इसलिए जून सन् १९४७ को वर्णीभवन सागर में एक विशाल शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया था। उसमें समाज के उच्चकोटि के अनेक विद्वानों ने सम्मिलित होकर एक माह तक ज्ञानमृत की अनुपम वर्षा की थी। उसी समय सागर में मध्यप्रदेशीय साहित्य सम्मेलन का उत्सव चल रहा था। उसमें भाग लेकर जैन विद्वानों ने जैनधर्म की प्रभावना को बढ़ाया था। पूज्यपाद गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज ने शिविर में पधारकर उसकी कीर्ति को अमर बना दिया।

इसी अवसर पर सोनगढ़ अधिवेशन में पारित प्रस्ताव नं १ को कार्यान्वित करने के लिए एक विशाल विद्वत्सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन के अध्यक्ष श्रीमान् पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज निश्चित किये गये। उनकी अध्यक्षता में १०, ११ और १२ जून १९४७ इन तीन दिनों तक उपस्थित विद्वानों में आगम के आधार पर जोरदार चर्चा चलती रही। श्री पं. कैलाशचन्द्रजी, श्री पं. फूलचन्द्रजी वाराणसी, श्री पं वर्धमानजी शास्त्री सोलापुर और पं. बंशीधर जी व्याकरणाचार्य बीना ने चर्चा में विशेष भाग लिया। शिक्षण-शिविर में उपस्थित समस्त विद्वानों ने सम्मेलन में भाग लेकर अपने आगमज्ञान को वृद्धिंगत किया। सागर की जैन समाज इस चर्चा को बड़ी उत्सुकता से सुनती थी। अन्त में सम्मेलन ने धवला के ९३वें सूत्र में सजदपद के अस्तित्व को स्वीकृत करते हुए उसे उक्त सूत्र से निष्कासित करने में अपनी असहमति प्रकट की।

चतुर्थ अधिवेशन (बरुवासागर, १९४८)

इस बीच पूज्य वर्णीजी महाराज विहार करते हुए बरुवासागर पहुँचे। वहाँ उन्हीं की अध्यक्षता में २३, २४, २५ मार्च १९४८ को चतुर्थ अधिवेशन हुआ। पूज्य वर्णीजी की छत्रछाया में प्रत्येक विद्वान् अत्यधिक संतोष का अनुभव करते हैं। अत: अधिवेशन में विद्वानों की उपस्थिति संतोषजनक थी। श्री बाबू रामस्वरूप जी ने बड़ी तत्परता से अधिवेशन की सब व्यवस्था की थी। अधिवेशन में निम्नांङ्कित दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए-

प्रस्ताव नं. ३

यह विद्वत्परिषद् जैन समाज से एक केन्द्रीय स्कालर्शिपफण्ड खोलने का अनुरोध करती है, जिसके द्वारा जैन विद्यार्थी विदेशों में जाकर हर विषय की उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर सकें, ताकि वे देश के पुनर्निर्माण करने में पूरा योग दे सकें। साथ में उन्हीं विद्यार्थियों द्वारा विद्वत्परिषद् के नियन्त्रण में उन विद्यार्थियों से संपर्क रखकर जैनधर्म का उसी देश की भाषा में प्रचार कर सकें और भारत के भावी संगठन में जैन समाज के स्थान एवं गौरव को बनाये रख सकें। छात्रों को बाहर जाने के पहले एक वर्ष तक जैनधर्म के विशिष्ट विद्वान् के पास शिक्षा लेना आवश्यक होगा।

प्रस्ताव नं. ६

विद्वानों और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध अधिकता से व्यवसाय का रूप धारण करता जा रहा है। परिषद् इसको जैन-संस्कृति के लिये हितकर अनुभव नहीं करती। अत: विद्वानों और समाज दोनों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करती है तथा दोनों से इस बात की आशा करती है कि विद्वान् अपने कार्यों में कर्त्तव्य का पालन और समाज उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की ही पवित्र भावना का ध्यान रखते हुए व्यवसायमूलक रीति को प्रोत्साहन न देंगे। इस भावना को क्रियात्मक रूप देने के लिए विद्वत्परिषद् माध्यम का कार्य करेगी।

पञ्चम अधिवेशन (सोलापुर, १९४९)

श्रीआदिनाथ मन्दिर के शताब्दी-समारोह के समय सोलापुर की समाज ने विद्वत्परिषद् के कार्यालय में अधिवेशन का निमन्त्रण भेजा। महाराष्ट्र प्रान्त में प्रचार की दृष्टि से कार्यकारिणी ने निमन्त्रण स्वीकृत कर लिया। फलस्वरूप जैन समाज के उद्‌भट विद्वान् श्रीमान् बंशीधर जी न्यायालंकार की अध्यक्षता में १५-२-१९४९ को अधिवेशन सम्पन्न हुआ। स्वस्ति श्रीभट्टारक लक्ष्मीसेन जी महाराज मठाधीश कोल्हापुर ने उद्‌घाटन-भाषण किया। तदनन्तर पूज्यवर श्री १०८ पायसागरजी महाराज ने शुभाशीर्वादात्मक भाषण दिया। पश्चात् स्वागताध्यक्ष श्री पं. वर्धमान जी शास्त्री के भाषणोपरान्त अध्यक्ष महोदय का सारगर्भित भाषण हुआ।

इस अधिवेशन में पारित अनेक प्रस्तावों में निम्नांङ्कित प्रस्ताव तात्कालिक समस्या पर विशेष प्रभाव डालता है-

प्रस्ताव नं. ९

'हरिजनमन्दिर-प्रवेश विल जैनमन्दिरों पर लागू न किया जाय' इस भावना की सिद्धि तक परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने अन्न का त्याग कर दिया है, इससे आचार्य महाराज के स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ा है उस पर विद्वत्परिषद् अपनी हार्दिक चिन्ता व्यक्त करती है। साथ ही विद्वत्परिषद् समाज से अनुरोध करती है कि वह इस सम्बन्ध में उचित कार्यवाही करें। साथ ही साथ विद्वत्परिषद् जैन समाज की इच्छा के विरुद्ध इस तरह के विलों को जैन समाज पर जबरन लादने का भी घोर विरोध करती है।

इसी अधिवेशन में विद्वत्परिषद् ने निम्नांङ्कित प्रस्ताव के द्वारा जैन झण्डे का रूप निश्चित किया था।

प्रस्ताव नं. २

वि. प. प्रस्ताव करती है कि जैन झण्डे का रूप निम्न हो। रंग केशरिया, आकार आयत चतुरस्र, प्रतीक स्वस्तिक (लाल रंग से लिखा हुआ)।

षष्ठ अधिवेशन (खुरई, १९५३)

श्रीपार्श्वनाथ जैन गुरुकुल में नवनिर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय खुरई में एक बृहद् आयोजन किया गया था। उसी समय वहाँ की समाज के द्वारा विद्वत्परिषद् को अधिवेशन के लिए आग्रहपूर्ण निमन्त्रण

प्राप्त हुआ था। फलतः श्रीमान् पं. दयाचन्द्रजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, प्राचार्य गणेश दि. जैन संस्कृत विद्यालय, सागर की अध्यक्षता में १०-१२-१९५३ को वहाँ वित्परिषद् का षष्ठ अधिवेशन सम्पन्न हुआ। जनता में अपूर्व उत्साह था। इस अधिवेशन में श्रीमुनि क्षीरसागर जी के द्वारा तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थों में काट-छाँट करने के विरोध में निम्नांङ्कित प्रस्ताव पारित हुआ था-

प्रस्ताव नं. ६

विद्वत्परिषद् को यह देखकर खेद और क्षोभ है कि दि. जैन मुनिपद के धारक श्रीक्षीरसागर जी, श्रीपूज्य कुन्दकुन्दस्वामी, उमास्वामी, समन्तभद्र जैसे प्रमुख जैनाचार्यों की अमूल्य कृतियों को मनमाने ढंग से भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं। भोली समाज उनकी इन भ्रष्ट रचनाओं को छपा-छपा कर वितरण करती है। अतः विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि कोई भी भाई उनकी इस प्रकार की रचनाओं को प्रकाशित और प्रचारित करने में किसी प्रकार का सहयोग न दें तथा मुनि श्रीक्षीरसागर जी से अनुरोध करती है कि वे इस मुनिपद को लाञ्छित करने वाली दूषित प्रवृत्ति से विरत हों।

श्रुतसप्ताह मनाने तथा समस्त विद्वानों का परिचय प्राप्त कर कार्यालय में सुरक्षित रखने का प्रस्ताव भी इसी खुरई अधिवेशन में हुआ था। उसी प्रस्ताव के कार्यान्वयनस्वरूप विद्वत्परिषद् के कार्यालय में लगभग ४०० विद्वानों का परिचय एकत्रित किया गया था।

सप्तम अधिवेशन (द्रोणगिरि, १९५५)

द्रोणगिरि बुन्देलखण्ड प्रान्त का नयनाभिराम सिद्धक्षेत्र है। यहाँ गजरथ-महोत्सव के साथ पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठा थी। प्रान्त की जनता ने भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का अधिवेशन आमन्त्रित किया। अतः श्रीमान् पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री की अध्यक्षता में वहाँ सप्तम अधिवेशन हुआ। साथ ही यहाँ अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, जैनसंघ और विश्व जैन मिशन के अधिवेशन सम्पम्न हुए थे। विविध संस्थाओं के कार्यकर्ता समारोह में उपस्थित थे। यह अधिवेशन २७-२-१९५५ में सम्पन्न हुआ था। इसमें अनेक प्रस्तावों के साथ यह भी एक प्रस्ताव हुआ था कि चन्दे से पहले वाले गजरथ में किसी को सिंघई या सेठ आदि की पदवी न दी जावे।

प्रस्ताव नं. ८

आज तक समाज की प्रचलित परम्परा के अनुसार एक व्यक्ति या एक कुटुम्ब के द्वारा चलाये हुए गजरथ में सिंघई या सेठ की पदवी दी जाती रही है, अतः जो भी रथ अनेक विभिन्न कुटुम्बियों या व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप में चलाये जावें उनमें किसी को पदवी न दी जावे।

इस प्रस्ताव के फलस्वरूप द्रोणगिरि में आयोजित गजरथोत्सव में किसी को पदवी नहीं दी गई थी। प्रस्ताव का उद्देश्य बहुव्ययकारी आयोजनों को बन्द कर शिक्षा के क्षेत्र में जनता का आकर्षण बढ़ाना था।

इसी अधिवेशन में एक बृहत् शिक्षा-सम्मेलन बुलाने का भी निश्चय हुआ था और उसके फलस्वरूप सागर में १६-५-१९५५ से १६-६-५५ तक संचालित होने वाले तृतीय शिक्षण-शिविर के साथ श्रीमान् पं.

वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर की अध्यक्षता में एक विशाल शिक्षा-सम्मेलन हुआ था, जिसमें अनेक संस्थाओं के अधिकारियों ने सम्मिलित होकर शिक्षा के विषय में बहुत ऊहापोह कर नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण किया था। इसी समय श्रीमान् पं. वंशीधर जी इन्दौर को विद्वत्परिषद् की ओर से 'सिद्धान्त-वाचस्पति' की उपाधि, मानपत्र और रजतपत्र भेंटकर सम्मानित किया गया था।

अष्टम अधिवेशन (मढ़िया, जबलपुर १९५८)

जबलपुर मध्यप्रान्त का जन-धन-बल सम्पन्न नगर है। इसी के उपनगर मढ़िया जी में पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा के समय वहाँ की समाज ने विद्वत्परिषद् का अधिवेशन आमन्त्रित किया। फलस्वरूप जैन समाज के उद्‌भट विद्वान् एवं निर्भीक वक्ता श्रीमान् पं जीवन्धरजी न्यायतीर्थ इन्दौर की अध्यक्षता में २५-२-१९५८ को अष्टम अधिवेशन हुआ। अपार जनता की उपस्थिति में विद्वत्परिषद् ने निम्नाङ्कित प्रस्ताव पारित किया-

प्रस्ताव नं. १

वर्तमान में बढ़ती हुई नूतन मन्दिरों और मूर्तियों की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति को भारतवर्षीय दि जैन विद्वत्परिषद् गम्भीर दृष्टि से देखती है क्योंकि एक ओर प्राचीन मन्दिरों और तीर्थों की जीर्णोद्धार की समस्या दिनों-दिन उग्रतर होती जा रही है तथा दूसरी ओर मन्दिरों की मरम्ममत तथा मूर्तियों की पुजा की समुचित व्यवस्था न होने से घोर अविनय हो रही है। अतएव विद्वत्परिषद् इस देवालय तथा इष्टदेव की अविनय की ओर से समाज को सावधान करती हुई निवेदन करती है कि जिन साधर्मियों के भाव मन्दिर अथवा मूर्तिप्रतिष्ठा के हों वे अपने द्रव्य का उपयोग तीर्थों तथा मन्दिरों के जीर्णोद्धार, शास्त्रदान, औषधिदान अथवा ज्ञानदान में करें। वि. प. का कार्यलय भी इस दिशा में जागरूक रहे और प्रत्येक मन्दिर एवं मूर्ति के प्रतिष्ठापक से संपर्क स्थापित करके उन्हें उस दिशा में चलाने का प्रयत्न करे।

इसी अधिवेशन में विद्वानों की बौद्धिक प्रगति के लिए निबन्ध-प्रतियोगिता चालू करने का भी प्रस्ताव हुआ था और उसके फलस्वरूप 'विश्वशान्ति और जैनधर्म' विषय पर विद्वानों के लेख आमन्त्रित किये गये थे। इनमें श्रीमान् डॉ नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य आरा को २००) का प्रथम पुरस्कार और श्रीमान् पं हुकमचन्द्र जी न्यायतीर्थ पड़वार (सागर) को १००) का द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था। श्री नेमिचन्द्रजी का लेख ट्रेक्ट के रूप में प्रकाशित हो चुका है।

नवम अधिवेशन (ललितपुर, १९५९)

श्री क्षेत्रपालजी ललितपुर में नवनिर्मित मानस्तम्भ-प्रतिष्ठा के अवसर पर वहाँ की उत्साही जनता ने विद्वत्परिषद् का अधिवेशन आमन्त्रित किया। फलस्वरूप श्रीमान् पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री प्राचार्य श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी की अध्यक्षता में विद्वत्परिषद् का नवम अधिवेशन १४-२-१९५९ को संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में निम्नाङ्कित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुआ-

प्रस्ताव नं. ३

वर्तमान काल में कतिपय परिग्रहत्यागी व्रती (श्रावक और मुनिराज) अपने व्रतों की मर्यादा की उपेक्षा करके साक्षात् अथवा परम्परया धन अथवा सामग्री संचित करते देखे जाते हैं। कतिपय व्रती अपने नाम की

संस्थाएँ स्थापित करके उनके लिए प्रेरणापूर्वक समाज से चंदा करते हैं और इस धन के विनियोग का अधिकार भी अपने हाथों में रखते हैं। फलत: ऐसे धन के प्रति उनकी ममता स्पष्ट हो जाती है। इन बातों पर विद्वत्परिषद् दु:ख प्रकट करती हुई ऐसे व्रतियों से सविनय अनुरोध करती है कि वे इस सदोष मार्ग को त्यागकर जैनी तपस्या को उज्जवल रखते हुए स्वपरकल्याण करें। साथ ही समाज से भी आग्रह करती हैं कि वह इस प्रकार की वृत्तियों में किसी प्रकार का सहयोग न करे तथा उन्हें इस सदोष मार्ग को छोड़ने की प्रार्थना करे। पत्रकारों से निवेदन है कि वे इस शिथिलाचार के विरोध में जनमत तैयार करें तथा सदोषवृत्ति व्रतियों का प्रचार कदापि न करें।

इसी अधिवेशन में वेदिकाशुद्धि तथा गृहप्रवेश आदि धार्मिक क्रियाओं की प्रामाणिक पुस्तक तैयार कराने का भी प्रस्ताव हुआ और उसके फलस्वरूप श्री पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य सागर ने ''मन्दिरवेदी प्रतिष्ठा और कलशारोहण-विधि'' के नाम की पुस्तक का संकलन किया, जिसका प्रकाशन श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला वाराणसी की ओर से प्रथम व द्वितीय संस्करण के रूप में हो चुका है।

विद्वत्परिषद् का रजिस्ट्रेशन कराने का प्रस्ताव भी इसी अधिवेशन में पास हुआ था और उसके आधार पर मध्यप्रदेश सरकार से इसका रजिस्ट्रेशन किया जा चुका है।

जिनवाणी के प्रकाशन की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिए निम्नांङ्कित प्रस्ताव भी इस अधिवेशन में पारित हुआ था।

प्रस्तान नं. १२

भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् इस ओर समाज का ध्यान आकर्षित करती है कि जिनधर्म की प्रभावना के कार्य जिनमन्दिर-निर्माण, बिम्बप्रतिष्ठा तथा रथयात्रा तक ही सीमित नहीं है किन्तु आज के युद्धग्रस्त विश्व को अहिंसा और अनेकान्त प्रधान जिनवाणी की आवश्यकता है। अत: जिनवाणी के प्रकाशन आदि को प्रभावना में मुख्य स्थान देना आवश्यक है।

शिक्षा-सम्मेलन (सागर)–पूज्य वर्णीजी के सतत् निवास से सागर का वातावरण ऐसा सुखद बन गया है कि वहाँ कोई भी हितकारक आयोजन अनायास सम्पन्न हो जाता है। यही देख वहाँ २४ जून सन् १९६२ को एक विशाल शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन श्रीमान् बाबू लक्ष्मीचन्द्र जी एम.ए., मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें आपने एक प्रबोधक भाषण दिया था तथा श्री पं. पन्नालाल जी काव्यतीर्थ एम.ए. कलकत्ता के साथ पधारकर शिक्षा की एक प्रभावक योजना प्रकट की थी। आपका भाषण अन्यत्र दिया गया है।

दशम अधिवेशन (सिवनी, १९६५)

श्री १००८ बाहुबली स्वामी की बिम्ब प्रतिष्ठा के पुण्य अवसर पर श्रीमान् सेठ वृद्धिचन्द्रजी सिवनी तथा वहाँ की समस्त समाज ने विद्वत्परिषद् का अधिवेशन आमन्त्रित किया। ललितपुर अधिवेशन के बाद लगभग ६ वर्ष का लम्बा अन्तराल व्यतीत होने पर यह अधिवेशन होने जा रहा था, इसलिये विद्वानों के हृदय में इसकी ओर पर्याप्त उत्सुकता थी। फलस्वरूप उत्कृष्ट विचारक एवं सुलेखक श्रीमान् पं. वंशीधर जी

व्याकरणाचार्य बीना की अध्यक्षता में ८, ९ फरवरी १९६५ को भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का अधिवेशन सिवनी के नवनिर्मित बाहुबली-नगर में संपन्न हुआ। यहाँ की जनता में बड़ा उत्साह और विद्वान् मात्र के प्रति सन्मान का अपूर्व भाव देखा गया।

अधिवेशन में निम्नांङ्कित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुआ-

प्रस्ताव नं. ५

वर्तमान विद्वत्समाज के साक्षात् या परम्परा विद्यागुरू गोपालदासजी बरैया का न केवल विद्वत्समाज पर किन्तु समस्त जैन समाज पर उनका महान् उपकार है। आगामी चैत्र सम्वत् २०२३ में उनकी सौवीं जयन्ती आने वाली है, अत: विद्वत्परिषद् उस अवसर पर पूज्य गुरुजी की जन्म-शताब्दी मनाने की समाज से अपील करती है तथा गुरु गोपालदास जन्म-शताब्दी स्मारिका प्रकाशित करने का संकल्प करती है और विद्वानों से उसमें सहयोग का अनुरोध करती हुई उनके सम्पादनार्थ निम्नाङ्कित विद्वानों की उपसमिति नियुक्त करती है।

१. श्री पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ, जयपुर

२. श्री पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, वाराणसी

३. श्री डॉ. नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, आरा

४. श्री डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया, वाराणसी

५. श्री पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री, कटनी

उपर्युक्त प्रस्ताव का समाज में अच्छा आदर हुआ और दिल्ली में ला. राजकृष्ण प्रेमचन्द्रजी दिल्ली द्वारा की गयी पंचकल्यणक-प्रतिष्ठा के अवसर पर श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जी दिल्ली की अध्यक्षता में १७, १८ मई १९६७ को विद्वत्परिषद् की ओर से पूज्यवर श्री गोपालदास जी बरैया की जन्म-शताब्दी मनाई गई तथा **'गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रन्थ'** नामक विशाल स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर ग्रन्थ-विमोचनोत्सव किया गया।

इसी अधिवेशन में अंग्रेजी के विद्वान् होने के साथ ही साथ संस्कृत तथा धर्म के ज्ञाता जैन विद्वानों से संपर्क साधने का प्रस्ताव भी पारित हुआ। तदनुसार अनेक विद्वान् विद्वत्परिषद् के सदस्य बने।

पुरस्कार-योजना को प्रचारित करने के लिए इसी अधिवेशन में निम्नाङ्कित प्रस्ताव पारित हुआ-

प्रस्ताव नं. ११

जैन साहित्य के विविध अंङ्गों पर राष्ट्रभाषा हिन्दी में रचित गद्य और पद्य की मौलिक रचनाओं को प्रतिवर्ष पुरस्कृत करने की योजना कार्यान्वित करके विद्वत्परिषद् के द्वारा ऐसे साहित्य के सृजन को विशिष्ट प्रेरणा और गति दी जावे।

इस प्रस्ताव के कार्यान्वयन के लिए विद्वत्परिषद् ने गुरु गोपालदास बरैया और गणेशप्रसाद वर्णी नामक एक-एक हजार के दो पुरस्कारों की एक वर्ष के अन्तर से व्यवस्था की। इस व्यवस्था की पूर्ति के लिए

भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी की ओर से विद्वत्परिषद् के लिए एक हजार रुपये का प्रतिवर्ष योगदान प्राप्त होता है।

नैमित्तिक अधिवेशन (श्रावस्ती, १९६६)

श्री १००८ तीर्थंकर संभवनाथ पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठा के अवसर पर अतिशयक्षेत्र श्रावस्ती में २३, २४-२-६६को श्रीमान् पं. बंशीधरजी व्याकरणाचार्य की अध्यक्षता में ही विद्वत्परिषद् का नैमित्तिक अधिवेशन हुआ। उत्तरप्रदेश में संपन्न यह अधिवेशन अपने ढंग का एक निराला ही अधिवेशन था। जनता में उत्साह था। अनेक नये-नये कार्यकर्ता विद्वत्परिषद् के संपर्क में आये। इस अधिवेशन में विद्वत्परिषद् ने पिछले अधिवेशन में पारित प्रस्तावों पर कार्यान्वयन की योजनाएं बनाई।

एकादश अधिवेशन (सागर, १९६८)

पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठा के अवसर पर सागर समाज के आग्रहपूर्ण निमन्त्रण को स्वीकृत कर भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् ने सागर में ७, ८ मई १९६८ को अपना एकादश अधिवेशन संपन्न किया। इस अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीमान् डॉ. नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य आरा थे। आपके विद्वतापूर्ण भाषण की नगर में अच्छी चर्चा रही। ११६ विद्वान् इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। बहुत भारी जनसमूह के बीच विद्वत्परिषद् का अधिवेशन आकर्षण का केन्द्र बन गया था। इस अधिवेशन में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण प्रस्तान पारित हुए-

प्रस्ताव नं. ३

(क) श्रीभारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि जैन पुरातत्त्व संस्कृति का परिचायक ही नहीं, अपितु अमूल्य धरोहर है। किन्तु उसकी ओर समाज तथा विद्वानों की उपेक्षा रही है। परिणामत: कितना ही पुरातत्त्व अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका है। और कितने ही स्थानों में संशयित एवं विपर्यासित किया जा रहा है। अत: इस दिशा में अग्रसर होकर विद्वत्परिषद् अपनी पुरातत्वसम्बन्धी निधि के संरक्षण, संवर्धन एवं विकास पर पूर्ण ध्यान देवे।

(ख) उक्त प्रस्ताव से अनुबन्धित विशेष यह है कि आज जैन समाज में विभिन्न अतिशयात्मक एवं पवित्र तीर्थरूप धार्मिक स्थानों का अभी तक काई सचित्र विवरण प्रकाशित नहीं हो सका है, अतएव समय समय पर सामाजिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। इन सबको दृष्टिगत रखते हुए दि. जैन तीर्थों के संरक्षण के लिए यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि पुरातत्त्वसम्बन्धी तीर्थों की विविध सामग्री प्रामाणिक रूप से प्रकाश में लाई जावे।

प्रसन्नता है कि इस दिशा में भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से महत्त्वपूर्ण कार्य चालू किया गया है और भगवान् महावीर स्वामी की २५००वीं निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित किया जाएगा।

प्रस्ताव नं. ५

विद्वत्परिषद् का अधिवेशन संकल्प करता है कि भगवान् महावीर के आगामी २५००वें निर्वाणोत्सव के अवसर पर २५०० पृष्ठ की सांस्कृतिक सामग्री प्रकाशित की जाय। इस कार्य की रूपरेखा निर्धारित करने हेतु निम्नलिखित विद्वानों की उपसमिति गठित की जाय।

१. श्री पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री वाराणसी

२. श्री डॉ. दरबारीलालजी कोठिया

३. श्री पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी

४. श्री डॉ. देवेन्द्रकुमारजी रायपुर

५. श्री डॉ. गोकुलचन्द्रजी वाराणसी

६. श्री पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर

७. श्री पं. परमानन्दजी शास्त्री दिल्ली

८. श्री डॉ. नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य आरा (संयोजक)

९. श्री डॉ. राजारामजी आरा

इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए विद्वत्परिषद् की ओर से एक विशाल ग्रन्थ के प्रकाशन की तैयारी की जा रही है।

प्रस्ताव नं. ७

श्री पं. जुगलकिशोरजी मुख्त्यार की साहित्यसेवाओं के उपलक्ष्य में उनके स्थान पर यथाशीघ्र परिषद् की ओर से उनका अभिनन्दन प्रशस्ति के रूप में किया जाए।

उक्त प्रस्ताव के अनुसार 'श्री पं. जुगलकिशोरजी मुख्त्यार: व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक पुस्तिका प्रकाशित की गई तथा अभिनन्दन पत्र के द्वारा ५ नवम्बर १९६८ को एटा में उनका सम्मान समारोह किया गया।

नैमित्तिक अधिवेशन खतौली (मुजफ्फरनगर)

श्री रतनलाल विमलप्रसादजी खतौली के द्वारा निर्मापित नूतन रथ की शुद्धिविधान के प्रसङ्ग पर श्रीमान् डॉ. नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य आरा की ही अध्यक्षता में भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का नैमित्तिक अधिवेशन हुआ। खतौली के स्वाध्यायी जैनबन्धु विद्वानों के संपर्क से बहुत हर्षित हुए। इस अधिवेशन में निम्नांकित प्रस्ताव के द्वारा पूज्यवर श्री १०८ समन्तभद्र महाराज द्वारा प्रस्तुत 'अहिंसा-संस्कृति-संरक्षक-मण्डल' का समर्थन किया गया।

प्रस्ताव नं. १

अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का यह नैमित्तिक अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि दि. जैन तीर्थों और धर्मायतनों पर वर्तमान आक्रमणों केनिवारणार्थ और प्राचीन भारतीयकला के अद्भुत निदर्शनभूत मन्दिरों और मूर्तियों के क्रमशः जीर्णोद्धार एवं सुरक्षा के लिए अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् समाज का आह्वान करती है और साग्रह निवेदन करती हैकि पूज्य श्री १०८ आचार्य समन्तभद्र महाराज द्वारा प्रस्तुत 'अहिंसा-संस्कृति-संरक्षक-मण्डल' में सभी प्रकार का सहयोग देकर जैनधर्म के भविष्य को सुरक्षित करें।

एक प्रस्ताव के द्वारा जनगणना के समय 'जैन लिखाओ' इस सामायिक आन्दोलन को गति दी गई। श्रीमान् डॉ. नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य आरा को उनके द्वारा लिखित 'आदिपुराण में प्रतिपादित भारत' ग्रन्थ पर उत्तरप्रदेश-सरकार की ओर से ५००) का पुरस्कार मिला, एतदर्थ उनका अभिनन्दन किया गया।

निम्नांङ्कित प्रस्ताव के द्वारा श्रीसुमतिबाई शहा सोलापुर के प्रति उन्हें 'पद्मश्री' उपाधि की प्राप्ति के उपलक्ष्य में सन्मान प्रदर्शित किया गया-

प्रस्ताव नं. ७

अ. भा. दि. जैन. वि. प. का नैमित्तिक अधिवेशन सर्वसम्मति से विदुषीरत्न ब्र. श्रीसुमतिबाईजी शहा न्यायतीर्थ सोलापुर को भारत-सरकार की ओर से 'पद्मश्री' उपाधि की प्राप्ति के उपलक्ष्य में उनका हार्दिक सम्मान करता है। बाईजी ने विविध संस्थाओं के संचालन, विविधविषयक लेखन एवं संपादन कार्यों द्वारा जैन समाज की बहुमुखी सेवाएँ की है। आपने अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महिला परिषद् के द्वारा जैन महिलाओं में भी अपूर्व जागृति की है। आपके इन महान् कार्यों से विद्वत्परिषद् गौरव का अनुभव करती है एवं उक्त उपाधि के हेतु प्रमोद-भावना व्यक्त करती हुई आपके स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य की मङ्गलकामना करती है।

इसी अधिवेशन में श्री डॉ. नेमिचन्द्रजी आरा के द्वारा प्रदर्शित **'तीर्थंकर महावीर'** ग्रन्थ की योजना को स्वीकृत किया गया। खतौली की समाज ने उसके महाग्रन्थ के प्रकाशनार्थ समुचित सहायता प्रदान की।

इसी अधिवेशन में विद्वत्परिषद् ने निम्नाङ्कित प्रस्ताव के द्वारा 'रजतजयन्ती-अधिवेशन' करने का निश्चय किया था।

प्रस्ताव नं. ५

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना सन् १९४४ में हुई थी। तब से लेकर परिषद् को समाज-सेवा एवं धर्मप्रचार करते हुए २६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अपने जीवन के २६ वर्ष सफलता के साथ व्यतीत करना परिषद् के लिए गौरव की बात है। यह नैमित्तिक अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि परिषद् का अग्रिम अधिवेशन रजत-जयन्ती-समारोह के रूप में मनाया जावे।

त्रयोदश अधिवेशन (बीना-बरहा- 1978)

दि. जैन अतिशय क्षेत्र बीना (बारहा) में १ मार्च से लेकर ६ मार्च तक आयोजित पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा और गजरथ महोत्सव के समय श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का त्रयोदश अधिवेशन सानन्द सम्पन्न हुआ। ४ मार्च की रात्रि को ८ बजे श्री पण्डिताचार्य चारुकीर्ति जी स्वामी भट्टारक जैन मठ मूडबिद्री के कर-कमलों से अधिवेशन का उद्घाटन हुआ। श्री डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया के प्रस्ताव और श्री पं. जगन्मोहनलाल जी समर्थन के पश्चात् श्री पं. नाथूलालजी शास्त्री इन्दौर ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया।

श्री पं. हीरालाल जी कौशल दिल्ली ने निवर्तमान अध्यक्ष श्री डॉ. दरबारीलाल जी का मुद्रित भाषण पढ़ा। पश्चात् डॉ. पन्नालाल जी ने कार्य विवरण और २५०३ वीर निर्वाण संवत् का हिसाब सुनाया तथा शुभकामनाओं का वाचन किया। तदनन्तर अध्यक्ष श्री नाथूलाल जी शास्त्री इन्दौर ने अध्यक्षीय मुद्रित भाषण पढ़ा। रात्रि के ११ बजे प्रथम दिन का कार्य समाप्त हुआ।

(१) प्रस्ताव

जैन विद्या के विभिन्न अंगों के उच्च अध्ययन, अनुसंधान कार्यों को दिशा-निर्देश तथा प्रोत्साहन देने के लिए श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् निम्नलिखित कार्यक्रम का आरम्भ करे-

(अ) पूज्य वर्णी जी द्वारा सन् १९४८ में प्रस्तावित एवं वर्तमान में महावीर विद्यानिधि के रूप में स्थापित विद्यानिधि से जैन विद्या के विभिन्न अंगों पर विश्वविद्यालयों में शोध उपाधि के लिए नियमानुसार पंजीकृत अनुसंधानकर्त्ताओं से शोध छात्रवृत्ति या पुस्तकों तथा शोध यात्रा व्यय के लिए अर्थ सहायता हेतु प्रार्थना-पत्र प्राप्त होने पर उनकी समुचित जांच के बाद परिषद् यथाशक्ति कम से कम ५००) से २०००) तक का आर्थिक शोध अनुसंधान (रिसर्च ग्रान्ट) या ३००) से ५००) तक की दो वर्ष के लिए शोध छात्रवृत्ति प्रदान करे।

(ब) जैन विद्या के विभिन्न अंगों के अनुसार अनुसंधान के लिए सुनिश्चित तालिका, विषयों की स्थूल रूपरेखा, और विशिष्ट-संदर्भ और ग्रन्थ सूची सहित हिन्दी-अंग्रेजी में प्रकाशित करें तथा उसे भारतवर्ष एवं विदेश के विश्वविद्यालयों को प्रेषित करें।

(स) संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश के प्राचीन जैन ग्रन्थों का सम्पादन करने के प्रति विद्वानों में रुचि उत्पन्न करने तथा प्रशिक्षण देने के लिए प्रतिवर्ष कम से कम दो सम्पादन-प्रशिक्षण शिविर आयोजित करें।

(ड) अनुसंधान कार्यों को सही दिशा तथा मार्ग दर्शन प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर कम से कम दो अनुसन्धान शिविर आयोजित करें।

(इ) जैन शिक्षा संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों में चल रहे जैन अध्ययन के पाठ्यक्रमों पर विचार करने तथा शिक्षा नीति के निर्धारण के लिए अखिल भारतीय जैन शिक्षा सम्मेलन का आयोजन करें।

प्रस्तावक - डॉ. गोकुलचन्द्र जैन
समर्थक - डॉ. भागचन्द जैन भागेन्दु

(२) प्रस्ताव (ख)

श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् की शोध प्रवृत्तियों से सम्बद्ध कार्यक्रमों के निर्धारण और उनके क्रियान्वयन संचालन के लिए निम्नलिखित विद्वानों की एक उपसमिति गठित की जाय-

(१) डॉ. प्रेम सुमन जैन, अध्यक्ष, जैनलाजी एण्ड प्राकृत विभाग उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

(२) डॉ. भागचन्द्र जैन, अध्यक्ष पाली तथा प्राकृत विभाग नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

(३) डॉ. गोकुलचन्द्र जैन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (संयोजक)

(४) डॉ. कस्तूरचन्द्र जी कासलीवाल, महावीर शोध संस्थान जयपुर

(५) डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन

प्रस्तावक - डॉ. भागचन्द्र जैन भागेन्दु
समर्थक - नेमीचन्द्र जैन, खुरई

(३) प्रस्ताव

दि. जैन तीर्थ क्षेत्रों पर हो रहे अतिक्रमण और आक्रमणों को भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् संकटकाल की स्थिति समझकर समस्त सदस्यों से आग्रह करती है कि वे अपने-अपने अंचल में समाज को इस चिन्तनीय स्थिति की जानकारी देकर इसके निवारण में सक्रिय सहयोग देने की प्रेरणा करें।

प्रस्तावक - कपूरचन्द आयुर्वेदाचार्य सागर
समर्थक - नेमीचन्द्र गोंदवाले शिवपुरी

(४) प्रस्ताव

भारतवर्षीय दि. जैन वि. प. का तेरहवाँ अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि प्रतिष्ठा से सम्बन्धी एक प्रामाणिक एवं साङ्गोपाङ्ग पुस्तक विद्वत्परिषद् की ओर से प्रकाशित हो और यदि संभव हो तो एक प्रतिष्ठा प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जाय जिससे समाज में योग्य प्रतिष्ठाचार्य तैयार होते रहें।

प्रस्तावक - डॉ. कन्छेदीलाल शहडोल
समर्थक - पं. दयाचन्द्र साहित्याचार्य सागर

(५) प्रस्ताव

प्राचीन शैली एवं नवीन शैली के विद्वानों के ज्ञान का सदुपयोग करने हेतु एक मंच पर लाने के लिए परिचर्चा संगोष्ठियों का आयोजन करना विद्वत्परिषद् का उद्देश्य रहा है लेकिन किन्हीं कारणों से उसका अब तक क्रियान्वयन नहीं हो सका है अत: वि. प. का यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि भविष्य में परिषद् की ओर से संगोष्ठियों का आयोजन किया जाय जिससे जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया जा सके और जैन वाङ्मय के विभिन्न अंगों पर शोधात्मक प्रकाश मिल सके। एतदर्थ निम्नलिखित विद्वानों की उपसमिति गठित की जाती है जो विश्वविद्यालीय परम्परा के अनुसार संगोष्ठी एवं परिचर्चाओं का परिषद् के साधनास्वरूप संयोजन करेंगे।

१. डॉ. दरबारीलालजी कोठिया वाराणसी

२. डॉ. हरीन्द्रभूषणजी उज्जैन

३. डॉ. नेमिचन्द्रजी इन्दौर

४. डॉ. कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल जयपुर (संयोजक)

५. डॉ. भागचन्द्र जी 'भागेन्दु' दमोह

प्रस्तावक - डॉ. कस्तूरचंद्र कासलीवाल
समर्थक - डॉ दरबारीलाल कोठिया

(६) **प्रस्ताव**

श्रीयुत पं. श्रीराम जी जैन एम. ए. खण्डवा एक आदर्श श्रावक विद्वान् है। इनके पूरे परिवार की श्रद्धा और आचरण सर्वथा जिनधर्मी है। अत: विद्वत्परिषद् समाज से निवेदन करती है कि उनके परिवार के साथ पूर्व बड़नगर के नेमा परिवार के समान धार्मिक स्थितिकरण कर अपने वात्सल्य का आदर्श उपस्थित करें।

प्रस्तावक - खुशालचन्द्र गोरावाला
समर्थक - नीरज जैन सतना

(७) **प्रस्ताव**

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि जैन समाज की शिक्षण संस्थाओं में कार्य करने वाले जैन विद्वानों को कमसे कम विशारद को ३००) शास्त्री को ४००) और ऊपर के विद्वान् को ५००) मासिक वेतन दिया जावे।

प्रस्तावक - पूर्णचन्द्र जैन एम. ए.
समर्थक - श्रुतसागर जैन न्यायकाव्यतीर्थ

अ. भा. दि. जैन विं. प. का यह अधिवेशन विभिन्न जनपदों में जैन समाज के द्वारा संचालित पाठशालाओ और विद्यालयों में सेवारत जैन विद्यालयों के अत्यल्प एवं हास्यास्पद वेतनमानों पर चिन्ता व्यक्त करता है तथा उनके आर्थिक स्तर को उठाने एवं स्वाभिमान की रक्षा के लिए यह आवश्यक समझता है कि वर्तमान दयनीय दशा के कारणों की जाँच पड़ताल करने के लिए व्यापक सर्वेक्षण किया जाय। इसके लिए निम्नलिखित विद्वानों की समिति नियुक्त की जाती है।

१ पं. नरेन्द्रप्रकाश जी जैन प्राचार्य, फिरोजाबाद (संयोजक)

२. डॉ. भागचन्द्र जी जैन भागेन्दु, दमोह

३. पं. विमलकुमार जी सोंरया एम. ए. मड़ावरा

४. पं. धर्मचन्द्र जी मोदी छतरपुर

५. डॉ नेमिचन्द्र जी संपादक तीर्थंकर, इन्दौर

चतुर्दश अधिवेशन, खजुराहो

२१, २२ जनवरी, १९८१

दिनांक २१-१-८१ को रात्रि के ८.३० से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्-परिषद् का चतुर्दश अधिवेशन शुरू हुआ। श्रीमान् पं. कैलाशचन्द जी शास्त्री वाराणसी, पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी और पं. नाथूलालजी शास्त्री इन्दौर ने निर्विरोध निर्वाचित अध्यक्ष श्री डॉ. पं. पन्नालाल जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनका परिचय दिया। तदनन्तर स्वागताध्यक्ष श्री डॉ. नरेन्द्र कुमार जी 'विद्यार्थी', स्वागताध्यक्ष मेला कमेटी श्री जम्बूकुमार जी कोटा और कार्याध्यक्ष मेला कमेटी श्री दशरथ जी जैन ने मालार्पण द्वारा अध्यक्ष का स्वागत किया।

रात्रि को सिद्धान्ताचार्य प. कैलाशचन्द्र जी के शास्त्र प्रवन के पश्चात् खुला अधिवेशन हुआ। जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुए।

विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि प्रतिष्ठाकार्य विधिवत् सम्पन्न हो इसके लिए आवश्यक है कि एक शिक्षण-शिविर की योजना की जाय। जिसमें प्रतिष्ठाकार्य के कराने वाले अभिलाषी विद्वान् प्रतिष्ठाकार्य का विधिवत् पूर्ण शिक्षण प्राप्त कर सकें। ऐसे विद्वानों को विद्वत् परिषद् प्रमाण पत्र दे।

प्रस्तावक - पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री, कटनी
समर्थक - पं. पूर्णचन्द्र 'सुमन' दुर्ग

अ. भा. दिगम्बर जैन वि. प. यह अनुभव करती है कि हमारे धर्म-निरपेक्ष राज्य में जैन शिक्षण-संस्थाओं में भी जैन संस्कृति का शिक्षण सुकर नहीं है। इस भावी महासंकट से बचने के लिए निर्णय करती है कि बालशिक्षण और किशोरों को अपनी संस्कृति का ज्ञान देने के लिए सरल, सुवाच्य और सस्ती पुस्तकें लिखवा कर प्रकाशित करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की उप समिति नियुक्त की जाय जो तीन माह की अवधि में उक्त प्रकार की पुस्तकों की रूपरेखा तैयार करके प्रतियोगिता पद्धति से पुस्तकें लिखाने के कार्य को सम्पन्न करें।

१. श्री पं. नाथूलाल जी शास्त्री, इन्दौर।
२. श्री पं. प्रकाश 'हितैषी' दिल्ली।
३. श्री डॉ. हरीन्द्रभूषण जी उज्जैन।
४. श्री डॉ. रतनचन्द जी भोपाल।
५. श्री नेमीचन्द जी पटोरिया, बम्बई।
६. श्री डॉ. रमा जैन छतरपुर।
७. श्रीमति प्रो. आशा मलैया, सागर।

८. श्री पं. गुलाबचन्द जी दर्शनाचार्य, जबलपुर।

९. श्री डॉ. भागचन्द जी 'भागेन्दु' दमोह (संयोजक)।

१०. श्री पं. हीरालाल जी 'कौशल' दिल्ली।

११. श्री डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, जयपुर।

प्रस्तावक - डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' दमोह
समर्थक - १. श्री नेमीचन्द जी गोंद वाले, शिवपुरी
२. श्री डॉ. मोतीलाल जी खुरई
३. श्री पं. पन्नालाल जैन एम. ए. कलकत्ता

श्री अखिल भा. व. दि. जैन विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि देश के विभिन्न प्रान्तों में हमारे पर्व व त्यौंहारों की तिथियों में एक रूपता न होने से सरकार द्वारा घोषित सरकारी छुट्टियों एवं त्यौहारों में एकरूपता नहीं रहती। विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाले पंचांगों में भी एक रूपता नहीं पाई जाती। जैन मान्यतानुसार छह घड़ी उदय तिथि मानी जाती है। इसके लिए देश के मध्यवर्ती स्थान का पंचांग मान कर उसी के अनुसार जैनतिथि दर्पण को मान्यता दें तो सारे देश में एक रूपता रहे। अत: देश के मध्य में स्थित उज्जैन से प्रकाशित होने वाले प्रमाणित पंचांगों को आधार मानकर ही व्रत तिथियों को मान्यता दें।

प्रस्तावक - श्री भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, जयपुर
समर्थक - श्री पं. नाथूलाल जैन इन्दौर

उपर्युक्त ३ प्रस्तावों के पारित होने के बाद पुरस्कार वितरण का कार्य सम्पन्न हुआ। पुरस्कार-प्रतियोगिता में श्रीमान् पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री कटनी को उनके द्वारा सम्पादित व लिखित 'अध्यात्म-अमृत कलश' ग्रन्थ पर एक हजार रुपयों का गणेशवर्णी पुरस्कार व प्रशस्ति पत्र समर्पित किया गया। समर्पण के पूर्व श्री पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, वाराणसी और नीरज जैन सतना ने पण्डित जी की कृति का परिचय दिया। पुरस्कार अध्यक्ष जी के द्वारा दिया गया। पश्चात् पं. जगन्मोहनलाल जी ने आभार प्रदर्शन करते हुए पुस्तक की रचना पर प्रकाश डाला। साथ ही यह कहा कि मेरे परिग्रह परिमाण के अनुसार मैं एक हजार रुपये से अधिक नगद द्रव्य अपने पास नहीं रखता, अत: आपका पुरस्कार मैं पं. कैलाशचन्द जी को सौंपता हूँ, वे जहाँ जाने इसका सदुपयोग करें।

द्वितीय पुरस्कार श्री डॉ. रतनचन्द जी एम.ए. प्रोफेसर हमीदिया कालेज भोपाल को, उनके द्वारा लिखित 'मोक्षमार्ग में निश्चय और व्यवहार नाम की उपयोगिता' नामक महानिबंध पर श्री बालचंद्र जी नवापारा के द्वारा प्रदान किया गया। इस पुरस्कार की राशि ११०१) रुपया थी तथा पं. बालचन्द जी की अनुपस्थिति में उनके प्रतिनिधि श्री सिं. जीवेन्द्रकुमार जी सागर के कर-कमलों से दिया गया। पुरस्कार समर्पण के पूर्व अध्यक्ष महोदय ने डॉ. रतनचन्द जी का परिचय दिया। पश्चात् डॉ. रतनचन्द जी ने आभार प्रदर्शित किया।

श्री पं. कैलाशचन्द्र जी ने पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के द्वारा प्रदत्त एक हजार की राशि बाल साहित्य निर्माण प्रतियोगिता के लिए विद्वत्परिषद् को समर्पित कर दी। उपस्थित जनसमुदाय ने हर्ष प्रकट किया। इसी सन्दर्भ में गजरथ महोत्सव के अध्यक्ष श्री डालचन्द जी बीड़ी वाले सागर ने भी तीन वर्ष तक ५००)-५००) का पुरस्कार घोषित किया।

16वाँ अधिवेशन
सतना (म.प्र.)

म. प्र. के सतना नगर में पं. श्री जगन्मोहन लाल जी शास्त्री के साधुवाद समारोह के अवसर पर पं ब्र. माणिकचन्द जयकुमार चंवरे कारंजा की अध्यक्षता में साधारण सभा का अधिवेशन हुआ। जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये।

प्रस्ताव १

यह भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि दि. जैन समाज में कोई भी व्रती, साधु तथा गृहस्थ अपनी श्रद्धानुसार पंथ पूजा पद्धति स्वीकार करने को स्वतंत्र है। उनसे अनुरोध है कि वे फिर भी ऐसा उपदेश न दे, आचरण न करें जिससे स्थानीय मूल अभिप्राय की धार्मिक पद्धतियों में भ्रान्ति उत्पन्न हो।

प्रस्ताव २

अ भा. दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् प्रस्ताव करती है कि न्यायप्रक्रिया उधार मान्यताओं की ओट में पुरातनवतस्कर तथा प्रतिरूपक व्यवसायकर्ता समुचित एवं प्रभावक दंड से बच जाते हैं। अत: भारतीय एवं प्रादेशिक शासन से आग्रह है कि न्यायसंहिता को ऐसा रूप दे जिसके द्वारा उक्त प्रकार के विधिविरोधकों में भय हो और नागरिकों को शुद्ध पदार्थ मिल सके तथा राष्ट्र के उज्जवल अतीत एवं संस्कृति के सबल स्त्रोतों का अपहरण रुकें।

प्रस्तावक - राजेन्द्र कुमार बंसल
अनुमोदक - सत्यधर जी सेठी उज्जैन

प्रस्ताव ३

मध्यप्रदेश पशुपक्षी बलि-प्रतिषेधक अधिनियम (१९४९-२०००) माननीय राष्ट्रपति जी की अभिस्वीकृति फरवरी ७३ में प्राप्त हो चुकी है तथा प्रादेशिक अधिसूचना प्रसारित न होने से अधिनियम प्रभावहीन रहा है। अत: भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् का सतना अधिवेशन मध्यप्रदेश शासन से आग्रह करता है कि शीघ्र ही अधिसूचना प्रकाशित करके निरीह प्राणियों की हिंसा को रोके तथा 'दया जो धरम का मूल है' उस सिद्धान्त को और नागरिकों की भावनाओं का समादर करें।

प्रस्तावक - राजेन्द्र कुमार बंसल
समर्थक - डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

प्रस्ताव ४

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् का सतना अधिवेशन परिषद् के भूतपूर्व अध्यक्षों श्रीमान् विद्वान पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य बीना एवं विद्वद्वर पं. डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के अभिनंदन समारोहों एवं अभिनन्दन ग्रंथ समर्पणों के प्रति हर्ष व्यक्त करता है और स. श्री व्याकरणाचार्यजी और साहित्याचार्य को हार्दिक बधाई प्रेषित करता है।

प्रस्तावक - कमल कुमार जी शास्त्री
समर्थक - पं. गुलाबचंद जी

प्रस्ताव ५

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् की यह सर्वसाधारण सभा, परिषद् के संस्थापक एवं भूतपूर्व अध्यक्ष सिद्धांताचार्य या जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के सम्मान में आयोजित ''साधुवाद-समारोह'' में अपना अधिवेशन करके अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करती है और इस साधुवाद समारोह तथा उन्हें साधुवाद-ग्रंथ समर्पण पर अपना हर्ष व्यक्त करती है तथा श्रद्धेय पण्डित जी के प्रति अपनी हार्दिक अभिवादन करती है।

प्रस्तावक - नीरज जैन
समर्थक - श्रेयांसकुमार जैन

प्रस्ताव ६

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के सक्रिय सदस्य एवं जैन संदेश के संपादक श्री डॉ. कन्छेदीलाल जी की नृशंस हत्या दि. ४.७.८९ को कर दी गयी। विद्वत्परिषद् का यह सतना अधिवेशन इस जघन्य हत्या पर गहरा क्षोभ व्यक्त करती है तथा इसे जैन समाज की अपूरणीय क्षति मानती है।

श्री डॉ. कन्छेदीलाल जी अत्यंत सरलस्वभावी, मृदुभाषी, कर्मठ तथा जैन विद्या के समर्पित कार्यकर्ता थे। उन के दिवंगत आत्म की शांति की कामना करते हुए विद्वत्परिषद् राज्यशासन से अनुरोध करती है कि इस निर्दय हत्याकाण्ड के अपराधियों को पकड़कर दंडित करे ताकि देश के या प्रदेश के बुद्धिजीवियों को पेशेवर या दादागिरी करने वाले असामाजिक व्यक्ति को नष्ट न कर सके।

प्रस्तावित अध्यक्ष द्वारा तथा सर्वसमत्ति से पारित यह प्रस्ताव समस्त सभा में खड़े होकर ९ बार नमोकार मंत्र जाप पूर्वक पारित हुआ।

सत्पुरुषों को पहले चित्त में और बाद में शरीर में बुढ़ापा आता है।
असत्पुरुषों को शरीर में ही बुढ़ापा आता है, चित्त में कभी नहीं।
नयी चीज सिखने की जिसने आशा छोड़ दी वह बूढ़ा है।

- विनोबा

17वाँ अधिवेशन

खुरई (म. प्र.) 1993

अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद् का सत्रहवां अधिवेशन मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध धार्मिक नगर खुरई में देवाधिदेव भगवान् पार्श्वनाथ (बड़े बाबा) की मूर्ति के स्थापना के शताब्दी वर्ष में दिनांक २७.६.९३ को प्रातः 11 बजे विद्वत् परिषद् के उपाध्यक्ष पं. हीरालाल कौशल के सभापतित्व में श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल खुरई में आयोजित हुआ।

निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए–

प्रस्ताव १

वर्तमान काल में मूल आगम ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन के नाम पर ग्रंथकारों की मूल गाथाओं में परिवर्तन। संशोधन किया जा रहा है। जो आगम की प्रामाणिकता, मौलिकता एवं प्राचीनता को नष्ट करता है। विश्वमान्य प्रकाशन संहिता में व्याकरण या अन्य किसी आधार पर मात्रा, अक्षर आदि के भी परिवर्तन को मूल का घाती माना जाता है। इस प्रकार के प्रयासों से ग्रन्थकार द्वारा उपयोग की गयी भाषा की प्राचीनता का लोप होकर भाषा के ऐतिहासिक चिह्न लुप्त होते हैं।

अतएव आगम। आर्षग्रन्थों की मौलिकता बनाए रखने के उद्देश्य से अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् विद्वानों सम्पादकों, प्रकाशकों एवं उनके ज्ञात, अज्ञात सहयोगियों से साग्रह अनुरोध करती है कि वे आचार्यकृत मूल ग्रन्थों में भाव एवं अर्थ भाषा सुधार के नाम पर किसी भी प्रकार का फेरबदल न करें। यदि कोई संशोधन/परिवर्तन आवश्यक समझते हों तो उसे पाद टिप्पण के रूप में ही दर्शावें ताकि आदर्श मौलिक प्रति की गाथायें यथावत बनी रहें और किसी महानुभाव को यह कहने का अवसर न मिले की भगवान महावीर स्वामी के पच्चीसवीं शती के पश्चात् उत्पन्न जागरूकरता के बाद भी मूल आगम में संशोधन किया गया है।

प्रस्तावक - राजेन्द कुमार बंसल, अमलाई
अनुमोदन - खुशालचन्द गोरावाला, फूलचन्द जैन प्रेमी, रंजना बंसल, कस्तूरचंद कासलीवाल

प्रस्ताव २

वर्तमान काल में जैन समाज में कुछ ऐसी प्रवृत्तियां प्रारम्भ हो गई कि जिनमें कलाकृतियों, मूर्तियों और पुराविद् दोषों का जीर्णोद्धार कर पुनः प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से उनके मूलस्वरूप तथा ऐतिहासिक प्राचीनता को नष्ट किया जा रहा है। देवगढ़, सेरोन एवं चंदेरी आदि स्थानों में इसी प्रकार के आगमविरुद्ध कार्य किए गए हैं जिनसे कलाकृतियों में अंकित प्राचीन चिह्नों को नष्ट कर नए चिह्न अंकित किए गए हैं। इस प्रकार के कार्यों में जब साधु तथा त्यागी वर्ग की प्रेरणा एवं सक्रिय सहयोग लक्षित होता है तब आगम विरुद्ध इस प्रकार के कार्यों से हमारी संस्कृति और कला की जो हानि होती है वह ऐसा अक्षम्य अपराध

है जिसे कभी भी क्षमा नहीं कर सकेगा। अत: परिषद् का यह अनुरोध है कि गृहस्थ तथा त्यागीवर्ग इस प्रकार की कलाकृतियों की रक्षा एवं सुरक्षा में पूर्ण सहयोग तथा सजगता प्रदर्शित करे।

प्रस्तावक - खुशालचंद गोरावाला,
अनुमोदन - राजेन्द्र कुमार बंसल, श्रीमती रंजना बंसल, कस्तूर चन्द कासलीवाल

प्रस्ताव-३

सम्प्रति समाज में शोध प्रबन्ध के रूप में पूजन-पाठ तथा पाठमालाओं के रूप में कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें अपनी-अपनी आम्नाय तथा परम्परा को बनाए रखने में समाज को बड़ी कठिनाई का अनुभव हो रहा है। इस प्रकार के प्रयत्न भविष्य में न हो और आगमविरुद्ध जो लिखा जाता है वह जन सामान्य की जानकारी में पूर्ण रूप से प्रकाशित हो। इस कार्य हेतु एक समिति का गठन किया गया और उनसे अनुरोध किया गया कि अपने पूर्ण प्रतिवेदन के साथ यथाशीघ्र समिति सम्पूर्ण जानकारी अपने प्रतिवेदन के साथ विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष के पास भेजने का कष्ट करे ताकि आगे क्रियान्वयन हेतु अग्रसर हो सके। समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगे-

डॉ. फूलचन्द प्रेमी (संयोजक), डॉ. शीतलचन्द जैन (सदस्य), डॉ. राजेन्द्र बंशल (सदस्य)

बुद्धि के सिवा विचार-प्रचार का दूसरा कोई शस्त्र नहीं है, क्योंकि अन्याय को ज्ञान ही मिटा सकता है।

***

बुद्धिमान् अपना विचार बदल देते हैं, मूर्ख कभी नहीं बदलते।

- कहावत

***

बुद्धिमान् के पास थोड़ा सा धन हो तो वह भी बढ़ता रहता है वह दक्षतापूर्वक काम करते हुए संयम के द्वारा सर्वत्र प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेता है।

- कहावत

***

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के देहरा-तिजारा (अलवर) में १ नवम्बर १९९८ को आयोजित

१८वाँ अधिवेशन

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की साधारण सभा की बैठक डॉ. शीतलचन्द जैन, जयपुर की अध्यक्षता में दिनांक 1 नवम्बर, 1998 को दिन में 12.30 बजे श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा, तिजारा, राजस्थान में प्रारम्भ हुई। जिसमें निम्नलिखित विद्वान् सदस्य उपस्थित थे-

1. श्री पं. निहालचन्द जैन, प्राचार्य बीना
2 श्री पं विमलकुमार जैन, जयपुर
3. श्री डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर
4. श्रीमती सिंधुलता जैन, जयपुर
5. श्री डॉ. भागचन्द जैन, भागेन्दु, श्रवणबेलगोला
6. श्री डॉ. फूलचन्द जैन, "प्रेमी", वाराणसी
7 श्री डॉ. नेमीचन्द जैन "प्राचार्य", खुरई
8. श्री पं. विजय कुमार शास्त्री, श्री महावीर जी
9. श्री डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन, बड़ौत
10. श्री डॉ. ताराचन्द जैन, जयपुर
11. श्री सिंघई खुशालचन्द जैन, वाराणसी
12. श्री डॉ रमेशचन्द जैन, बिजनौर
13 श्री डॉ. अशोक कुमार जैन, लाडनू
14. श्री डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, श्रावस्ती
15. श्री डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी
16. श्री डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली
17. श्री पं. महेन्द्र कुमार जैन शास्त्री, मुरैना
18. श्री डॉ. प्रेमचन्द रांवका, जयपुर
19. श्री डॉ. भागचन्द जैन "भास्कर", नागपुर
20. श्री डॉ. श्रीमती मुन्नी पुष्पा जैन, वाराणसी

21. श्री पं. नीरज जैन, सतना
22. श्री डॉ. सुरेश चन्द जैन, वाराणसी
23. श्री डॉ. शीतलचन्द जैन, जयपुर
24. श्री डॉ. कमलेश कुमार जैन, दिल्ली
25. श्री डॉ जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर
26. श्री पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ, जयपुर
27. श्रीमती सुमनलता जैन, जयपुर
28. श्री पं एस. के. जैन, दमोह
29. श्री डॉ. रतनचन्द जैन, भोपाल
30. श्रीमती ज्योति जैन, खतौली
31. श्रीमती अनीता जैन, सतना
32. श्री पं. निर्मल कुमार जैन, सतना
33. श्री डॉ. कस्तूचन्द 'सुमन', श्री महावीर जी
34. श्री ब्र. हेमचन्द जैन 'हेम' (इंजी), भोपाल
35. श्री डॉ. नन्द लाल जैन, रीवा
36. श्री डॉ. क्षमा जैन, रीवा
37 श्री पं. सुमतिचन्द शास्त्री, मुरैना
38. श्री डॉ. रमेशचन्द जैन, उज्जैन
39. श्री डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर
40 श्री डॉ. गंगाराम गर्ग, भरतपुर
41. श्री पं. श्रेयांस कुमार जैन, कीरतपुर (बिजनौर)

सर्वप्रथम डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी के द्वारा प्रस्तुत मंगलाचरण के पश्चात् दिनांक 26.9.93 को सम्पन्न खुरई (म. प्र.) में हुई गत साधारण सभा की बैठक की कार्यवाही कार्यकारी मंत्री डॉ. सुरेशचन्द जैन, वाराणसी द्वारा प्रस्तुत की गई जिसे सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। इसके पश्चात् मंत्री महोदय ने विद्वत्परिषद् की काफी समय से विलम्बित चुनाव, चुनाव प्रक्रिया और निर्वाचन अधिकारी का अचानक बदलना एवं माननीय अध्यक्ष द्वारा अवैधानिक बैठकों आदि गतिविधियों पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसी परिप्रेक्ष्य में साधारण सभा में उपस्थित अनेक सदस्यों ने भी चुनाव प्रक्रिया की विसंगतियों, फर्जी मतदान आदि के अनेक प्रमाण और प्रत्यक्ष अनुभव आदि प्रस्तुत किए। इसके पश्चात् विचार-विमर्श पूर्वक निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किए गए।

प्रस्ताव क्रमांक-1

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की आहूत साधारण सभा की यह बैठक सर्वसम्मति से माननीय अध्यक्ष जी द्वारा दिनांक 25.10.98 को दरियागंज दिल्ली में आहूत कार्यकारिणी की आपात् बैठक को अवैधानिक मानती हुई उस बैठक में लिए गए समस्त निर्णयों को निरस्त करती है।

प्रस्ताव क्रमांक-2

सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि संविधान की धारा 11 में निम्नलिखित संशोधन किया जाता है कि अखिल भारतीय स्तर की समानधर्मी (दिगम्बर जैन) विद्वत् संगठन की कार्यकारिणी का सदस्य होने पर कोई व्यक्ति इस संस्था की कार्यकारिणी का सदस्य नहीं हो सकेगा के स्थान पर संशोधित प्रसताव इस प्रकार हैं-

अखिल भारतीय स्तर की समानधर्मी (दिंगम्बर जैन) विद्वत् संगठन की कार्यकारिणी का सदस्य होने पर कोई व्यक्ति इस संस्था का पदाधिकारी नहीं होगा।

प्रस्ताव क्रमांक-3

आज दिनांक 1.11.98 को प्रात: तिजारा में सम्पन्न कार्यकारिणी की बैठक में लिए गए निर्णयों को साधारण सभा में प्रस्तुत किया गया और बताया गया कि चुनाव अधिकारी श्रीमान पं. कुन्दनलाल जी जैन द्वारा दिनांक 23.10.98 को निर्गत पत्र के सन्दर्भ में उपाध्यक्ष डॉ. शीतलचन्द जैन, जयपुर द्वारा दी गई जानकारी एवं कार्यकारी मंत्री द्वारा निर्गत पत्र दिनांक 13.10.98 के आलोक में विचार-विमर्श किया साधारण सभा की आहूत बैठक की सूचना मिल जाने के बावजूद भी पूर्व बैठकों (दिनांक 29.9.98 एवं 1.10.98) द्वारा रोकी गई मतगणना को अवैधनिक रूप से सम्पन्ना करा करके अध्यक्ष की घोषणा कर देना परिषद् की गरिमा और संविधान के सर्वथा प्रतिकूल कार्य है। सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि अत: चुनाव प्रक्रिया असंवैधानिक और अवैध होने के कारण यह साधारण सभा चुनाव अधिकारी द्वारा लिये गये निर्णयों को निरस्त करती है तथा कार्यकारी मंत्री डॉ. सुरेशचन्द जी जैन की प्रशंसा करती है कि इन्होंने इन सब असंवैधानिक गतिविधियों को रोकने हेतु 'संस्था की सत्ता साधारण सभा में निहित' सर्वाधिकार के परिप्रेक्ष्य में तिजारा में साधारण सभा की यह बैठक आहूत की और परिषद् के संविधान के अनुसार चुनाव प्रक्रिया संचालन करने हेतु सभी सदस्यों का आह्वान किया।

उक्त प्रस्ताव के अनुसार साधारण सभा ने विचार-विमर्श के पश्चात् चुनाव प्रक्रिया प्रारम्भ की और सर्वसम्मति से जैन साहित्य मनीषी डॉ. रमेशचन्द जी जैन, बिजनौर का अध्यक्ष पद पर चयन किया गया।

अध्यक्ष पद पर डॉ. रमेशचन्द जी जैन के पदासीन होने पर इन्हीं की अध्यक्षता में शेष पदाधिकारियों और कार्यकारिणी परिषद् का चयन किया गया जो इस प्रकार है-

संरक्षक सदस्य–स्वस्ति श्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी, श्रवणबेलगोला

डॉ. दरबारीलाल कोठिया, बीना

संहितासूरि पं. नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर

डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, जबलपुर

डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला, वाराणसी

प्रो. उदयचन्द जैन, वाराणसी

अध्यक्ष	–	डॉ. रमेशचन्द्र जैन, दि. जैन मन्दिर के पास-बिजनौर-(उ. प्र.)
उपाध्यक्ष	–	डॉ. सुरेश चन्द्र जैन, वाराणसी (उ. प्र.)
मंत्री	–	डॉ. शीतलचन्द जैन, श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-302003 (राज.)
संयुक्त मंत्री	–	डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' अनेकान्त भवन, बी-23/45 पी-6, शारदानगर कालोनी, नवाबगंज मण्डी, वाराणसी-221010 (उ. प्र.)
कोषाध्यक्ष	–	श्री अमरचन्द जैन, उदासीन आश्रम, कुण्डलपुर दमोह, (म प्र.)
उपमंत्री	–	डॉ. नेमीचन्द्र जैन, प्राचार्य दि. जैन गुरूकुल, खुरई (म. प्र.)
प्रकाशन मंत्री	–	डॉ. कमलेश कुमार जैन, बी-249, निर्वाण भवन, लेन नं. 14, रवीन्द्रपुरी वाराणसी-5
कार्यकारिणी सदस्य	–	डॉ. सुदर्शनलाल जैन (वाराणसी), डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर), डॉ. कपूर चन्द जैन (खतौली), डॉ. नन्दलाल जैन (रीवां) ब्र. हेमचन्द जैन (भोपाल), डॉ. भाग चन्द (भास्कर) (नागपुर), डॉ. लालचन्द जैन (वैशाली), डॉ. विजय कुमार जैन (लखनऊ) पं. गुलाबचन्द 'पुष्प' (टीकमगढ़), पं. पदमचन्द जैन (दिल्ली), डॉ. प्रेमचन्द रॉवका (जयपुर), डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन (बडौत) पं. अरुणकुमार शास्त्री (ब्यावर), डॉ. सुरेन्द्र भारती (बुरहानपुर)

साधारण सभा में उपस्थित सभी सदस्यों ने सौहार्दपूर्ण वातावरण में परिषद् के इस सर्वसम्मत गरिमापूर्ण निर्वाचन पर सभी ने प्रसन्नता व्यक्त की एवं पारित प्रस्तावों को रात्रि के खुले अधिवेशन में प्रस्तुत करने हेतु अनुमत किया। साथ ही परिषद् के सभी माननीय पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी के सदस्यों को उनकी बहुमूल्य सेवाओं के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

दिनांक 1.11.98 रात्रि को 7.30 बजे परिषद् का खुला अधिवेशन डॉ. रमेशचन्द जी जैन की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण डॉ. अशोक कुमार जी जैन लाडनूं द्वारा सम्पन्न हुआ। अध्यक्ष द्वारा गठित परिषद् की कार्यकारिणी घोषणा के पश्चात् समस्त पदाधिकारियों और कार्यकारिणी के सदस्यों ने परम पूज्य उपाध्याय १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज को श्रीफल चढ़ाकर शुभाशीष ग्रहण किया।

नवनिर्वाचित माननीय अध्यक्ष, मंत्री एवं अन्य पदाधिकारियों का अनेक स्थानों की समाज और विभिन्न संस्थाओं द्वारा अभिनन्दन किया गया। साथ ही उपस्थित वरिष्ठ विद्वानों ने परिषद् की गरिमा बढ़ाने और समाज, साहित्य और संस्कृति के समुन्नयन हेतु निष्ठापूर्वक कार्य करके परिषद् की प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु उपायों पर विचार व्यक्त किये तथा माननीय अध्यक्ष डॉ. रमेश चन्द जी जैन के उद्‌बोधन के पूर्व अग्रांकित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किए गये।

अधिवेशन के अन्त में निवर्तमान मंत्री डॉ. सुरेश चन्द जैन ने समस्त आगत विद्वान जनों का आभार मानते हुए अधिवेशन की कार्यवाही सम्पन्न करायी और अधिवेशन के समस्त कार्य निर्विघ्न एवं सानन्द सम्पन्न हुए इसलिए प्रत्येक समागत विद्वान् ने प्रसन्नता का अनुभव किया।

प्रस्ताव-1

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की यह साधारण सभा यह प्रस्ताव पारित करती है कि अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना हुए पच्चीस वर्ष से अधिक हो चुके हैं। अत: यथाशीघ्र इसकी स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मनाया जाये। इसकी रूपरेखा तैयार करने के लिए उप समिति गठित की जाती हैं।

1. डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर
2. डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी', वाराणसी
3. डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी
4. अध्यक्ष, मंत्री–

प्रस्तावक - प्राचार्य डॉ. नेमीचन्द जैन, खुरई
अनुमोदक - डॉ. कस्तूरचन्द जैन सुमन, श्रीमहावीर जी

प्रस्ताव-2

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की यह साधरण सभा यह प्रस्ताव पारित करती है कि देश के ह्रासोन्मुख हो रही शैक्षणिक संस्थाओं की सम्पूर्ण स्थिति का आंकलन कर उनके समुन्नयन एवं विकास के लिए यह विद्वत्परिषद् समुचित कदम उठाये। एतदर्थ ऐसी संस्थाओं की स्थिति का आंकलन करने के लिए निम्नलिखित समिति गठित की जाती है।

1. डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली
2. डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन, बड़ौत

3. डॉ. नेमीचन्द जैन, खुरई
4. अध्यक्ष, मंत्री

प्रस्तावक - डॉ. फूलचन्द जैन, वाराणसी
अनुमोदक - डॉ. सुरेशचन्द जैन, वाराणसी

प्रस्ताव-3

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की यह साधारण सभा यह प्रस्ताव पारित करती है कि जैन समाज में शिक्षित बेरोजगारों के लिए के लिए यथायोग्य रोजगार उपलब्ध कराने के लिए जैन संस्थाओं और जैन समाचार पत्रों से सूचनाएँ उपलब्ध कर उन्हें समुचित रोजगार उपलब्ध कराने में सक्रिय योगदान करें। एतदर्थ कार्य हेतु निम्न समिति गठित की जाती है-

1. डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर (संयोजक)
2. डॉ. सुरेश चन्द जैन, वाराणसी, सदस्य
3. पं. महेन्द्र कुमार जैन, मुरैना, सदस्य

प्रस्तावक - डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन, वडौत
अनुमोदक - पं. विमल कुमार जैन, जयपुर

प्रस्ताव-4

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के संविधान की अनेक धाराओं एवं उपधाराओं की स्पष्ट व्याख्या न होने के कारण अनेक प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हुई हैं। यह साधारण सभा यह प्रस्ताव पारित करती है कि संविधान में संशोधन, परिवर्धन एवं परिवर्तन के निमित्त एक ''संविधान संशोधन समिति'' का गठन किया जाता है जिसके संयोजक एवं सदस्य निम्न होंगे-

1. डॉ सुपार्श्व कुमार जैन, बड़ौत (संयोजक)
2. डॉ. जय कुमार जैन, मुजफ्फरनगर, सदस्य
3. डॉ. सुरेश चन्द जैन, वाराणसी सदस्य

प्रस्तावक - डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली
अनुमोदक - डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, श्रावस्ती

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

१९वाँ अधिवेशन एवं स्वर्ण जयन्ती समारोह

दिनांक : 23 एवं 24 जून 1999, स्थान : श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का उन्नीसवाँ अधिवेशन एवं स्वर्ण जयन्ती का द्विदिवसीय समारोह दिनांक 23 एवं 24 जून, 1999 को श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र संघी जी मंदिर, सांगानेर जयपुर (राजस्थान) में परमपूज्य 108 मुनिश्री सुधासागर जी क्षुल्लकद्वय 105 श्री गम्भीरसागर जी एवं धैर्यसागर जी के पावन सानिध्य में आयोजित भूगर्भ स्थित यक्षरक्षित जिन बिम्बों के अमृतसिद्धि दर्शन, महामस्तकाभिषेक एवं चौबीसी वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव के शुभावसर पर शताधिक विद्वानों एवं देश के कोने-कोने से पधारे श्रावक-श्राविकाओं की अपार जनमेदिनी की उपस्थिति में अभूतपूर्व सफलता के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। इस दशक में यह पहला अवसर है जबकि विद्वत्परिषद् के किसी समारोह में इतने अधिक सम्मानीय विद्वत्गण एक साथ सोत्साह सम्मिलित होकर इस द्विदिवसीय कार्यक्रम में अपना हार्दिक योगदान देकर परिषद् के इस अधिवेशन और स्वर्ण जयन्ती समारोह को पूर्ण सफल बनाकर गौर्वान्वित किया। इसमें निम्नलिखित विद्वान् इस द्विदिवसीय समारोह में सम्मिलित हुए-

1. श्री पं. गुलाबचन्द जी आदित्य, भोपाल, 2. श्री पं. गुलाबचन्द जी जैन 'पुष्प', टीकमगढ़, 3. श्री पं भागचन्द जी जैन, 'घुवारा', 4. श्री पं. मांगीलाल जी जैन, कूंड़, 'उदयपुर', 5. श्री पं. उत्तमचन्द जी जैन, ललितपुर, 6 श्री डॉ. अजित जी जैन, बीना, 7. श्री पं. अरुण कुमार जी जैन, ब्यावर, 8. श्री डॉ. सुरेन्द्र भारतीजी, बुरहानपुर, 9. श्री पं. फूलचन्द योगीराज जी, छतरपुर, 10. श्री पं. कोमलचन्द जी शास्त्री, अजमेर, 11. श्री डॉ श्रेयांस कुमार जी जैन, बड़ौत, 12. श्री डॉ. कपूरचन्द जी जैन, खतौली, 13. श्रीमती डॉ. ज्योति जी जैन, खतौली, 14. श्री डॉ. हरिश्चन्द जी शास्त्री मुरैना, 15. श्री पं. महेन्द्र कुमार जी जैन, मुरैना, 16. श्री पं. पूर्णचन्द जी जैन, दुर्ग, 17. श्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी जैन, बड़ामलहरा, 18. श्री पं. कैलाशचन्द जी मलैया, फागी, 19. श्री पं. रमेशचन्द जी जैन, मड़ावरा, 20. श्री डॉ. कमलेश कुमार जी जैन, वाराणसी, 21. श्री पं. अनूपचन्द जी जैन वकील, फिरोजाबाद, 22. श्री डॉ. फूलचन्द जी 'प्रेमी', वाराणसी, 23. श्री पं. बाबूलाल जी जैन, ऊन पावागढ़, 24. श्री डॉ. सुरेश चन्द जी जैन, वाराणसी, 25. श्रीमती आशा जी जैन, वाराणसी, 26 श्री डॉ. महेन्द्र कुमार जी जैन, वाराणसी, 27. श्री डॉ. जयकुमार जी जैन, मुजफ्फरनगर, 28. श्री डॉ. विजय कुमार जी जैन, लखनऊ, 29. श्री पं. कोमलचन्द जी शास्त्री, बांसवाड़ा, 30. श्रीमती डॉ. राका जैन, पन्ना, 31. श्रीमती मणिकान्ता जी जैन, वाराणसी, 32. श्रीमती सुषमा जी जैन, वाराणसी, 33. श्री डॉ. सुपार्श्वकुमार जी जैन, बड़ौत, 34. श्रीमती डॉ. उर्मिला जी जैन, बड़ौत, 35. श्री डॉ. प्रेमचन्द जी जैन, नजीबाबाद, 36. श्री डॉ. नरेन्द्र कुमार जी जैन, श्रावस्ती, 37. श्री डॉ. नेमीचन्द जी जैन, खुरई, 38. श्री पं. माणिकचन्द जी जैन निर्मल, बांसा तारखेड़ा, 39. श्री डॉ. लालचन्द जी जैन, वैशाली, 40. श्री डॉ. जैनमती जी जैन, वैशाली, 41. श्री पं. धर्मचन्द जी जैन, ग्वालियर, 42. श्री पं. विनोद कुमार जी जैन, सांवला, 43. श्री पं. शिखरचन्द

जी जैन, सागर, 44. श्री पं. दयाचन्द जी साहित्याचार्य, सागर, 45. श्री डॉ. धर्मचन्द जी जैन, कुरूक्षेत्र, 46. श्री पं. पी.सी. जैन, नीमच, 47. श्री पं. सुदेश जी जैन कोठिया, खुरई, 48. श्री पं. रतनचन्द जी जैन, रहली, 49. श्री डॉ. अशोक कुमार जी जैन, लाडनूं, 50. श्री प्रो. हीरालाल जी पाण्डेय शास्त्री, भोपाल, 51. श्रीमती डॉ. सूरजमुखीजी, मुजफ्फरगनर, 52. श्री पं. शीतलप्रसाद जी जैन मित्तल, मुजफ्फरनगर, 53. श्री पं. निहालचन्द जी जैन, बीना, 54. श्री डॉ. रतनचन्द जी जैन, भोपाल, 55. श्री पं. खुशालचन्द जी जैन, राजाखेड़ा, 56. श्री पं. मोतीलाल जी जैन, बकस्वाहा, 57. श्री डॉ. बारेलाल जी जैन, रीवा, 58. श्री डॉ. सन्तोषकुमार जी जैन, सादूमल, 59. श्री पं. मुन्नालाल जी जैन, गोविन्दगढ़, 60. श्री पं. जयन्त कुमार जी जैन, सीकर, 61. श्री पं. सन्तोष कुमार जी जैन, सीकर, 62. श्री डॉ. शेखरचन्द जी जैन, अहमदाबाद, 63. श्री विनोद ए. शाह जी, अहमदाबाद, 64. श्री विनोद कुमार जी जैन, रजवास, 65. श्री पं. सनत कुमार जी जैन, रजवास, 66. श्री पं. लालचन्द जी जैन, गंजबासौदा, 67. श्री पं. बालमुकुन्द जी शास्त्री, मुरैना, 68. श्री पं. मुन्नालाल जी जैन, गंजबासौदा, 69. श्री पं. जयकुमार जी जैन शास्त्री, दुर्ग, 70. श्री पं. जयकुमार जी निशान्त, टीकमगढ़, 71. श्री पं. शिवचरण जी जैन, मैनपुरी, 72. श्री डॉ. सुशीलचन्द जी जैन, कुरावली, 73. श्री पं. डॉ. मुकेश कुमार जी जैन, जबलपुर, 74. श्री पं. शान्ति कुमार जी जैन, द्रोणगिरी, 75. श्रीमती प्रसन्न जी जैन, मुजफ्फरनगर, 76. श्री पं. संजय कुमार जी जैन, मुरैना, 77. श्री पं. खेमचन्द जी शास्त्री, सागर, 78. श्री पं शीतल चन्द जी जैन, सागर, 79. श्रीमती मीना जी जैन, लुहारिया, 80. श्रीमती सरिता जी जैन, मुरैना, 81. श्री पं इन्दरसेन जी जैन, सहारनपुर, 82. श्री पं. रमेश चन्द जी जैन, सहारनपुर, 83. श्री पं. जीवनलालजी सिद्धान्तशास्त्री, ललितपुर, 84. श्री पं. निर्मल कुमार जी शास्त्री, निवाई, 85. श्रीमती चमेली देवी जी जैन, भोपाल, 86. श्री डॉ. वृषभ प्रसाद जी जैन, लखनऊ, 87. श्री प्रेमचन्द जैन जी दिवाकर, डीमापुर, 88. श्री पं. फतेहसागर जी प्रतिष्ठाचार्य, उदयपुर, 89. श्री पं. अजित कुमार जी जैन शास्त्री, दिल्ली, 90. श्रीमती मीना जी जैन, लुहारिया, 91. श्री पं. श्रेयांस कुमार जी जैन, कीरतपुर, 92. श्री पं. सुनील कुमार जी जैन, निवाई, 93. श्री पं. नेमीचन्द जी जैन, नौगांव, 94. श्री पं. महेन्द्र कुमार जी जैन, दिल्ली, 95. श्री पं. लाड़लीप्रसाद जी जैन, सवाईमाधोपुर, 96. श्री वैद्य प्रभूदयाल जी कासलीवाल, जयपुर, 97. श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ, जयपुर, 98. श्री डॉ. प्रेमचन्द जी रांवका, जयपुर, 99. श्री डॉ. शीतलचन्द जी जैन, जयपुर, 100. श्री डॉ. सनत कुमार जी जैन, जयपुर, 101. श्री बुद्धिप्रकाश जी भास्कर, जयपुर, 102. डॉ. पी. सी. जैन जी, जयपुर, 103. श्री पं. विमल कुमार जी शास्त्री, जयपुर, 104 श्री पं. ज्ञानचन्द जी बिल्टीवाला, जयपुर, 105. श्री पं. विमल कुमार जैन, जयपुर, 106. श्री पं. निर्मल कुमार जी गोदिका, जयपुर, 107. श्री डॉ. ताराचन्द जी बक्शी, 108. श्री पं. महावीर प्रसाद जी गदिया, जयपुर, 109. श्री पं. विजय कुमार जी शास्त्री, जयपुर, 110. श्री पं. अरविन्द कुमार जी शास्त्री, जयपुर, 111. श्री पं. मुकेश जी शास्त्री, जयपुर, 112. श्री पं. ज्योति बाबू जी जैन, जयपुर, 113. श्री पं. प्रद्युम्न कुमार जी शास्त्री, जयपुर, 114. श्रीमती शारदा जी जैन, जयपुर, 115. श्रीमती कामिनी जी जैन, जयपुर, 116. श्रीमती माधुरी जी जैन, जयपुर, 117. श्रीमती सिन्धुलता जी जैन, जयपुर, 118. श्रीमती कोकिला जी सेठी, जयपुर, 119. श्री प्रो. जे. डी. जी. जैन, जयपुर, 120. श्री पं. निर्मल जी संघी, जयपुर, 121. श्री पं. हुकुमचन्द जी जैन, पन्ना, 122. श्री पं. अनूपचन्द जी जैन, इन्दौर, 123. श्री डॉ. अभय प्रकाश जी जैन, ग्वालियर, 124. श्री डॉ. के. के. जैन, बीना, 125. श्री सुभाष चन्द जी जैन, ग्वालियर, 126. श्री अमृतलाल जी जैन, दमोह, 127. श्रीमती प्रभावती जी जैन, सागर, 128. श्री पं. अमरचन्द जी जैन, शाहपुर (सागर), 129. डॉ.

अनुपम जैन, इन्दौर, 130. श्री गुलाबचन्द जी जैन, टीकमगढ़, 131. श्रीमती डॉ. सरोज जी जैन, बीना, 132. श्री पं. श्रवण कुमार जी जैन, सागर, 133. श्रीमती सरला जी जैन, मुरैना, 134. श्री पं. निर्मल जी जैन, सतना, 135. श्री पं. धर्मचन्द जी जैन, ललितपुर, 136. श्री डॉ. रमेशचन्द जी जैन, बिजनौर, 137. श्री पं. दयाचन्द जी जैन, सतना, 138. श्री पं. धर्मचन्द जी शास्त्री, उज्जैन, 139. श्री डॉ. सुशील कुमार जी जैन, मैनपुरी, 140. श्री डॉ. शोभालाल जी जैन, जयपुर, 141. श्री पं. पवन कुमार जी दीवान, जयपुर, 142. श्री पं. राजकुमार जी जैन, जयपुर, 143. श्रीमती सुमनलता जी जैन, जयपुर, 144. श्री पं. रमेश चन्द जी जैन, 145. श्री पं. शीलचन्द जी जैन, विराटनगर, 146. श्री पं. अरविन्दकुमार जी जैन, सुजानगढ़, 147. श्री पं. रज्जूलाल जी जैन, जोबनेर, 148. श्री पं. रमेश चन्द जी जैन, जोबनेर, 149. श्री पं. विजय कुमार जी शास्त्री, किशनगढ़, 150. श्री डॉ. राजेन्द्र कुमार जी जैन, जैसलमेर, 151. डॉ. शिखरचन्द जैन, हटा, 152. सिं० खुशालचन्द जैन, वाराणसी, 153. श्रीमती शशि जैन, लंका, वाराणसी,

इस द्विदिवसीय समारोह का विवरण इस प्रकार है-

१. कार्यकारिणी की बैठक

सर्वप्रथम 23/06/99 को मध्याह्न 12 बजे से विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक प्रारम्भ हुई, जिसमें 19वें अधिवेशन तथा स्वर्ण जयन्ती समारोह के द्विदिवसीय कार्यक्रमों विविध प्रस्तावों की रूपरेखा पर विचार-विमर्श हुआ। साथ ही स्वर्ण जयन्ती के आगामी कार्यक्रमों के संचालन हेतु विद्वत परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ फूलचन्द जैन 'प्रेमी' के संयोजकत्व में एक संयोजन समिति का गठन, स्वर्ण जयन्ती वर्ष की समयावधि छह माह अधिक अर्थात् मई 2000 तक बढ़ाने एवं डॉ. सुरेन्द्र भारती को परिषद् की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार हेतु प्रवक्ता मनोनीत करने के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

२. उद्‍घाटन समारोह

23 जून, 1999 के अपराह्न 2 बजे से संघी जी मंदिर के विशाल प्रांगण में अपार जनसमुदाय के समक्ष स्वर्ण जयन्ती समारोह एवं 19वें अधिवेशन के उद्‍घाटन सत्र का शुभारम्भ परमपूज्य 108 मुनिश्री सुधासागर जी महाराज एवं पूज्य क्षुल्लकद्वय के पावन सान्निध्य, अ. भा. दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्रीमान् साहू रमेश चन्द जी जैन, दिल्ली के विशिष्ट आतिथ्य एवं परिषद् के अध्यक्ष विद्वद्वर्य डॉ. रमेशचन्द जी जैन की अध्यक्षता में डॉ. कमलेश कुमार जैन के मंगलाचरण के साथ हुआ। इसके बाद ज्ञानदीप प्रज्वलन का कार्य मुख्य अतिथि श्री भंवरलाल जी सरावगी, श्री धर्मचन्द जी पहाड़िया एवं मंगल कलश की स्थापना विधि साहू रमेशचन्द जी द्वारा सम्पन्न की गयी। कार्यक्रम का संचालन परिषद् के मंत्री डॉ. शीतलचन्द्र जी कर रहे थे।

विशिष्ट अतिथि माननीय साहू रमेशचन्द जी जैन ने इस पावन अवसर और पावन सानिध्य में इस विद्वतपरिषद् के स्वर्ण जयन्ती समारोह के आयोजन को अभूतपूर्व बतलाते हुए इसकी सफलता की कामना की और विद्वानों की गौरवशाली परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा कि अब तक यदि समाज में धर्म-कर्म और संस्कार जीवित हैं, तो इसमें विद्वानों का बहुत बड़ा योगदान है। आपने भारत के सम्पूर्ण जैन तीर्थों के संरक्षण एवं प्रगति में सहयोग हेतु सभी का आग्रह किया।

श्री दि. जैन श्रमण संस्थान के अधिष्ठाता श्रीमान् रतनलाल जी बैनाड़ा ने विद्वानों के योगदान, पूज्य वर्णीजी द्वारा स्थापित विद्या संस्थानों की स्थितियों पर चिन्ता व्यक्त करते हुए नवोदित श्रमण संस्कृति संस्थान का परिचय समाज के लिए आशा की किरण के रूप में प्रस्तुत किया।

प्रारम्भ में मंत्री डॉ. शीतलचन्द्र जी जैन ने तिजारा में सम्पन्न पिछले अठारहवें अधिवेशन की कार्यवाही प्रस्तुत की जिसे सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। साथ ही दिल्ली में गठित समानान्तर अन्य विद्वत् परिषद् द्वारा अपनायी गयी असंवैधानिक प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण सुनाया। सभी विद्वानों ने विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों एवं अनेक सुझावों से युक्त, अपने वक्तव्यों द्वारा इसी विद्वत् परिषद् को मूल परिषद् मानते हुए एक स्वर से इसे पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

साथ ही परिषद् की पूर्व परम्परानुसार इसका अनेकान्त स्वरूप कायम रखने और इसके उद्देश्यों रीति-नीति तथा संविधान में आस्था रखने वाले सभी विद्वानों को इसके द्वार खुले रखने और इन्हीं के तहत एकता हेतु प्रयासों के सुझाव दिये।

इस सत्र में डॉ. सुरेशचन्द जैन, पं. गुलाबचन्द जी आदित्य, पं. दयाचंद जी साहित्याचार्य, डॉ. सनतकुमार जैन, पं प्रेमचन्द दिवाकर डीमापुर, डॉ. महेन्द्र कुमार मनुज, पं. सुभाष चन्द जैन ग्वालियर प्रो. डॉ. धर्मचन्द्र जैन कुरूक्षेत्र, पं. श्रेयांसकुमार जी किरतपुर, पं. गुलाबचन्द जी पुष्प प्रतिष्ठाचार्य, पं. लालचन्द जी गंजबासौदा, पं. नेमिचन्द जैन, पं. मुन्नालाल शास्त्री गंजबासौदा, श्रीमान् अनूपचंद जी एडवोकेट फिरोजाबाद आदि अनेक उपस्थित विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये। विचार विमर्श के बाद 24 जून, 1999 के अपराह्न आयोज्य समापन समारोह के अवसर पर प्रस्तुत करने हेतु सदस्यों द्वारा दिये गये छह प्रस्ताव डॉ. फूलचंद प्रेमी ने पढ़कर सुनाये, जो कि सभी की सम्मति से स्वीकृत किये गये। अन्त में अध्यक्षीय वक्तव्य और डॉ. फूलचन्द 'प्रेमी' जी द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ इस अधिवेशन के द्वितीय सत्र का समापन हुआ।

३. सम्मान एवं समापन सत्र

दि. 24.06.99 को अपराह्न 2 बजे संघी जी मंदिर के विशाल प्रांगण में परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी एवं क्षुल्लकद्वय के पावन सान्निध्य एवं धर्मचंद जी पहाड़िया के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ रमेशचन्द जी जैन की अध्यक्षता में तृतीय समापन सत्र का शुभारम्भ भोपाल के प्रसिद्ध कवि श्री विमल भण्डारी की ओजस्वी कवित से हुआ। कुमारी अनुप्रिया ने मधुरवाणी में महावीराष्टक प्रस्तुत किया। आरम्भ में कवि चन्द्रसेन जी भोपाल, श्री माणिकचन्द जी बासंतारखेड़ा, पं. श्री निर्मल जैन, सतना आदि कवियों ने उपस्थित विशाल जनसमुदाय को धर्म, संस्कृति, आचार और विद्वत्परिषद् के संबंध में स्वरचित कविताओं के माध्यम से प्रभावित किया।

तत्पश्चात्, विद्वतपरिषद् की ओर से निम्नलिखित छह प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये, जिसका उपस्थित सभी विद्वानों ने एवं जन समुदाय ने तालियों की ध्वनि के साथ उनका समर्थन किया।

श्रमण संस्कृति संरक्षण वर्ष की घोषण सम्बन्धी प्रस्ताव क्रमांक 1 जब प्रस्तुत किया गया तो अनेक विद्वानों ने खड़े होकर श्रावकाचार के प्रमुख ग्रन्थों की अपने नगरों तथा अन्यान्य स्थानों पर स्वर्ण जयन्ती वर्ष

के अन्तर्गत वाचना करने और शिक्षण-शिविर लगाने का वचन दिया। इसमें प्रमुख्य हैं- डॉ. श्रेयांस कुमार जी ने बड़ौत में, डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'-वाराणसी में, पं. कोमल चन्द शास्त्री, लोहारिया में, डॉ. हरिश्चन्द जैन मुरैना में, पं. जीवनलाल जी शास्त्री अटा मंदिर ललितपुर में, पं. प्रेम चन्द दिवाकर डीमापुर में, पं. बाबूलाल जी 'फणीश' ने पावागिर ऊन में, श्री के. के. जैन ने बीना में, डॉ. सूरजमुखी जैन ने मुजफ्फरनगर में पं. धर्मदास जैन ने नई बस्ती ललितपुर में, पं. श्री सुरेन्द्र कुमार जैन ने बड़ा मलहरा में, निर्मला संघी ने बापूनगर जयपुर में, पं. अजित कुमार जैन शास्त्री ने शांति मुहल्ला, दिल्ली में, श्री मुकेश कुमार विनोद कुमार, निर्मल कुमार जी जैन ने बड़े दीवान जी के मंदिर जयपुर में अन्य अनेक विद्वानों ने श्रावकाचार ग्रन्थों की वाचना कराने एवं शिक्षण शिविर के आयोजन हेतु अपने लिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किये। श्रावकाचार के जिन सात ग्रन्थों की वाचना का प्रस्ताव रखा गया वे हैं-रयणसार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, वसुनन्दिश्रावकाचार, उपासकाध्ययन पुरुषार्थसिद्धयुपाय, सागरधर्मामृत, अमितगति श्रावकाचार।

४. सर्वसम्मत स्वीकृत प्रस्ताव

प्रस्ताव १

अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह साधारण सभा सर्वसम्मति से निर्णय करती है कि परिषद् के स्वर्ण जयन्ती वर्ष के अन्तर्गत वर्ष भर अर्थात जून १९९९ से मई २००० तक श्रमण संस्कृति संरक्षण वर्ष मनाये, जिसमें श्रावकाचार के प्रमुख ग्रन्थ रत्नकरण्डश्रावकाचार, वसुनन्दि, श्रवकाचार, पुरूषार्थ सिद्धयुपाय, उपासकाध्ययन और सागारधर्मामृत आदि ग्रन्थों की वाचना तथा शिक्षण शिविरों का वर्ष भर आयोजन परिषद् के माध्यम से किया जाए।

प्रस्तावक - डॉ. सुरेशचन्द जैन
अनुमोदक - डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

प्रस्ताव २

अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह साधारण सभा सर्व सम्मत प्रस्ताव करती है कि देश में अनेक मंदिरों के तथा निजी शास्त्र भण्डारों में हजारों की संख्या में हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ असुरक्षित स्थिति में हैं, जिससे जिनवाणी को विराधना तो होती ही है, साथ ही उनके नष्ट होने का भी खतरा निरन्तर बना रहता है। अतः परिषद् इन शास्त्रभण्डारों के प्रबन्धकों, पंचों आदि से यह अपील करती है कि ऐसे शास्त्रों को प्रामाणिक संस्थानों अथवा अन्य प्रकाशन, संरक्षण करने वाले संगठनों को सौंप देवें।

प्रस्तावक - डॉ. नेमिचन्द जैन
अनुमोदक - डॉ. कमलेश कुमार जैन

प्रस्ताव ३

अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् के तत्वावधान में स्वर्ण जयन्ती वर्ष के अन्तर्गत परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि

श्री दि. जैन मंदिर भेलूपुर, वाराणसी में डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' के संयोजकत्व में सम्पन्न आचार्य कुन्दकुन्द रचित अष्टपाहुड ग्रन्थ की वाचना (दि. 10 मई 1999 से 18 जून, 1999 श्रुत पंचमी पर्व तक) की सफलता पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह साधारण सभा परम पूज्य आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज, दि. जैन समाज वाराणसी, संयोजक डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' एवं सदस्य डॉ. महेन्द्र कुमार 'मनुज' के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती है।

प्रस्तावक - डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' (बुरहानपुर)
अनुमोदक - डॉ. सन्तोष कुमार जैन (सीकर)

प्रस्ताव ४

अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह साधारण सभा सर्व सम्मत प्रस्ताव करती है कि परिषद् के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में दि. जैन परम्परा सम्मत श्रमण संस्कृति के अनुरूप कम से कम पचास ग्रन्थों का प्रकाशन किया जाए।

प्रस्तावक - प्राचार्य निहाल चन्द जैन
अनुमोदक - सुशील जैन मैनपुरी

प्रस्ताव ५

अ भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह साधारण सभा सर्व सम्मत प्रस्ताव करती है कि परिषद् की अपनी गतिविधियों और रचनात्मक कार्यो के लिए जैन धर्म-दर्शन संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में योगदान हेतु एक पत्रिका का प्रकाशन किया जाए।

प्रस्तावक - डॉ. शेखर चन्द जैन
अनुमोदक - डॉ. विजयकुमार जैन

धन्यवाद प्रस्ताव-६

अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह साधारण सभा परिषद् के स्वर्ण जयन्ती समारोह एवं साधारण सभा के अधिवेशन के सफल आयोजन हेतु परम पूज्य आध्यात्मिक संत मुनि पुंगव श्री सुधासागर जी महाराज, पूज्य क्षु. श्री गम्भीर सागर जी महाराज, एवं पूज्य क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य एवं यज्ञरक्षित जिनबिम्ब के अमृतसिद्धि-दर्शन एवं महामस्तकाभिषेक प्रसंग को सौभाग्य मानती हुई पूज्य मुनिश्री के चरणों में शत-शत नमोऽस्तु निवेदित करती है।

स्वर्ण जयंती समारोह में समागत विद्वानों की सुन्दर आवास, भोजन एवं परिवहन व्यवस्था श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी कमेटी, श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान के अधिष्ठाता, उपाधिष्ठाता, निर्देशक, शिक्षक एवं छात्रों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती है।

प्रस्तावक - डॉ. रमेशचन्द जैन
अनुमोदक - उपस्थित सभी विद्वत्‌गण

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

श्री दि. जैन सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर में

दिनांक : 22-23 फरवरी, 2001 को आयोजित 20वाँ अधिवेशन

कुण्डलपुर (दमोह) म. प्र. - दिनांक 23 फरवरी को बड़े बाबा के महामस्काभिषेक एवं जिन बिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के मध्य, देश के शीर्षस्थ विद्वानों की प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का 20वाँ खुला अधिवेशन अपार जन-समूह के मध्य परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष अनेकान्त मनीषी डॉ. रमेशचन्द जैन, डी. लिट. (बिजनौर) की अध्यक्षता में 83 विद्वानों की सहभागिता के साथ देश के शीर्षस्थ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं 179 मुनि. आर्यिका, ऐलक-क्षुल्लक आदि साधुओं के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। परिषद् के राष्ट्रीय मंत्री डॉ. शीतल चन्द जैन (प्राचार्य), जयपुर ने प्रगति आख्या प्रस्तुत करते हुए बताया कि "विद्वत् परिषद् के विद्वानों के कार्यों से परिषद एवं समाज की शोभा बढ़ी है।" हम सब पूज्य वर्णी जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता अनुभव करते हुए पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी, मुनि श्री सुधासागर जी, उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के आशीर्वाद से निरन्तर सक्रिय रहकर धर्म, साहित्य एवं समाज की सेवा करेंगे। इस अवसर पर अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए डॉ. रमेश चन्द जैन (बिजनौर) ने कहा कि "जैन समाज संख्या में कम किन्तु विशाल हृदय वाला है। विद्वानों ने प्रशासनिक उथल-पुथल के मध्य भी मूल प्राच्य-प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में विपुल साहित्य रचकर भारतीय वाङमय की महान् सेवा की है। वर्तमान विद्वत्परिषद् के सदस्य विद्वान् सक्रिय रह कर श्रुतलेखन एवं देव-शास्त्र-गुरु की सेवा एवं संरक्षण कर रहे हैं।" महाधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्तावा पास किये गये-

प्रस्ताव क्र. 1 - कुण्डलपुर में भव्य मन्दिर निर्माण का समर्थन

सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर में पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से क्षेत्र कमेटी के सत्प्रयास में जो भव्य मन्दिर का निर्माण किया जा रहा है, उसका अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् पूर्ण समर्थन करती है। तथाकथित लोगों द्वारा जो भ्रामक प्रचार किया जा रहा है परिषद् उस प्रवृत्ति को अनुचित मानती है।

प्रस्तावक - डॉ. रमेश चन्द जैन (बिजनौर)
समर्थक - पं. नेमिचन्द जैन (प्राचार्य), खुरई
प्रस्ताव क्र. 2 - दुष्प्रचार की निन्दा

समाज के कुछ पूर्वाग्रही एवं विदेशी व्यक्तियों की साजिश से इंडिया टूडे (13 दिस. 2000) एवं राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तर के कुछ दैनिक समाचार पत्रों ने श्रमण संस्कृति विरोधी, क्षेत्रों के जीर्णोद्धार आदि के सम्बन्ध में तथ्य से परे आलेख प्रकाशित किये, जिनमें महान आचार्य एवं मुनिराजों पर भी अनर्गल बातें प्रकाशित की। अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् की यह साधारण सभा उक्त षडयन्त्र पूर्ण साजिश की घोर निन्दा

करती है एवं वस्तु स्थिति का सही मार्गदर्शन देकर उन्हें खेद प्रकट करने के लिए बाध्य करे ऐसी समाज से अपील करती है। प्रतिवाद प्रकाशन हेतु डॉ. शेखर चन्द जैन (सम्पादक-तीर्थंकर वाणी) अहमदाबाद एवं डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' (प्रधान सम्पादक पार्श्व ज्योति) को अधिकृत किया जाये।

प्रस्तावक	-	डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बडौत
समर्थक	-	प्राचार्य निहालचन्द जैन बीना
प्रस्ताव क्र. 3	-	अहिंसा एवं शाकाहार वर्ष

अ. भा. दि.जैन विद्वत् परिषद 2600 वाँ भगवान महावीर जन्म कल्याणक महोत्सव के विषय में गठित राष्ट्रीय समिति से अनुरोध करती है कि दि. 6 अप्रैल, 2001 से एक वर्ष का काल अहिंसा एवं शाकाहार वर्ष के रूप में घोषित किया जाये तथा ऐसा वातावरण निर्मित किया जाये जिससे मांस निर्यात पर पूरी तरह से रोक लग सके।

प्रस्तावक	-	डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन
समर्थक	-	डॉ. सुरेशचन्द जैन (दिल्ली)
प्रस्ताव क्र. 4	-	पुरस्कृत विद्वानों का अभिनन्दन

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद की यह साधारण सभा अपने अधिवेशन के माध्यम से विगत् में डॉ. राजाराम जैन आरा (सहस्त्राब्दि पुरस्कार) डॉ. रमेश चन्द बिजनौर (आचार्य ज्ञानसागर पुरस्कार एवं श्री चम्पालाल सॉड पुरस्कार) पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी (आर्यिका ज्ञानमती पुरस्कार) पं. निहालचन्द जैन, प्राचार्य, बीना (मुनि श्री गुप्तिसागर पुरस्कार), डॉ. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद (श्रुत संबर्धन पुरस्कार), डॉ. जयकुमार जैन, मुज्जफरनगर (श्रुत संवर्धन पुरस्कार), डॉ. अशोक कुमार जैन, लाडनूं (वर्णी वागदेवी पुरस्कार) एवं डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' बुरहानपुर (वागभारती पुरस्कार) के सम्मानित/पुरस्कृत होने पर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव करते हुए सभी विद्वानों का अभिनन्दन करती है। इन विद्वानों के सम्मान से सम्पूर्ण विद्वत्जगत गौरवान्वित हुआ है।

इसी कडी में भारत सरकार द्वारा विदुषी ब्र. कमलाबाई (श्री महावीर जी) को दिये गये स्त्रीशक्ति पुरस्कार पर विद्वत्परिषद् परम हर्षित होकर ब्र. कमलाबाई जी का अभिनन्दन करती है। पुरस्कृत सभी महानुभाव दीर्घायु हो, साहित्य एवं समाज की सेवा करते रहें, ऐसी मंगल कामना है।

प्रस्तावक	-	डॉ. प्रेमचन्द रांवका, जयपुर
समर्थक	-	डॉ. विमल कुमार जैन, जयपुर
प्रस्ताव क्र. 5	-	धन्यवाद प्रस्ताव

श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर पर इस युग के सातिशय प्रभावक परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के 179 बालब्रह्मचारी मुनि-आर्यिका आदि ऐतिहासिक अभूतपूर्व विशालसंघ के सान्निध्य एवं लाखों लाख श्रावक-श्राविकाओं की विशाल उपस्थिति में आयोजित श्री 1008 बड़े बाबा महामस्तकाभिषेक पर महोत्सव समिति ने परिषद् के साधारण अधिवेशन को आमन्त्रित किया तथा उसके लिए ब्र. पं. अमरचन्द जी जैन

एवं पं. मूलचन्द जी लुहाडिया ने विशेष प्रयास किया तथा सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान करायी। इसके लिए श्री सिद्धक्षेत्र कमेटी एवं महामस्ताकभिषेक महोत्सव समिति के प्रति अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् आभार व्यक्त करती है।

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद के सभी उपस्थित सदस्य

सभी समागत विद्वानों को हाथ उठाकर आशीर्वाद दते हुए प. पू. आचार्य श्री विद्यासागर महाराज ने कहा कि स्थायी साहित्य का प्रकाशन एवं जन जागरण तथा धर्मप्रभावना हेतु विद्वानों को कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। धर्म के प्रचार हेतु तदनुरूप कार्य प्रारम्भ करें। बच्चों में संस्कार डालें। धार्मिक वातावरण के निर्माण हेतु धन एवं विज्ञान का सही उपयोग करें। अधिवेशन गरिमामय वातावरण में सम्पन्न हुआ।

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के महाधिवेशन कुण्डलपुर में समागत विद्वत् सूची

1. रमेशचन्द जैन (बिजनौर) अध्यक्ष, 2. डॉ. सुरेशचन्द जैन (दिल्ली) उपाध्यक्ष, 3. डॉ. शीतल चन्द जैन (जयपुर) मंत्री, 4. डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी (वाराणसी) संयुक्तमुत्री, 5. पं. श्री अमरचन्द जैन (कुण्डलपुर) कोषाध्यक्ष, 6. डॉ. नेमीचन्द जैन (खुरई) उपमंत्री, 7. डॉ. नन्दलाल जैन (रीवा), 8. डॉ. प्रेमचन्द जैन रांवका (जयपुर), 9. डॉ. सुरेन्द्र भारती (बुरहानपुर), 10. डॉ. अजित कुमार जैन (बीना), 11. पं. उत्तमचन्द राकेश (ललितपुर), 12. पं. कमल कुमार शास्त्री (टीकमगढ़) 13. पं. कोमलचन्द शास्त्री (फागी), 14. पं. कन्हैयालाल जैन (कटनी), 15. पं. खेमचन्द जैन (जबलपुर), 16. पं. जयकुमार जैन (दुर्ग), 17. पं. धर्मदास जैन (ललितपुर), 18. पं. निर्मल कुमार जैन (जयपुर), 19. पं. नेमीचन्द जैन (नौगांव), 20. पं. नेमचन्द जैन (जबलपुर), 21. पं. बाबूलाल जैन (पावागिरि ऊन), 22. श्रीमती प्रभवती जैन (सागर), 23. पं. पवन कुमार जैन दीवान (मुरैना), 24. डॉ. बारेलाल जैन (रीवा), 25. पं. महेन्द्र कुमार जैन (मुरैना), 26. पं. माणिकचन्द जैन (बांसा), 27. पं. मोतीलाल विजय जैन (कटनी), 28. पं. मुकेश कुमार जैन (जयपुर), 29. डॉ. मुकेश कुमार जैन (जबलपुर), 30. पं. मोतीलाल जैन (बक्सावाहा), 31. पं. यशवन्त कुमार शास्त्री (दमोह), 32. रतन चन्द जैन (रहली), 33. पं. रमेश कुमार जैन (विराटनगर), 34. पं. लालचन्द जैन राकेश (गंजबासौदा), 35. पं. विजय कुमार जैन (नरायना), 36. पं. विनोद कुमार जैन (सांवला), 37. डॉ. विमल कुमार जैन (लाडनूं), 38. पं. विमल कुमार जैन (जयपुर), 39. पं. विजय कुमार जैन (किशनगढ़), 40. पं. शीलचन्द जैन (विराटनगर), 41. पं. शिखरचन्द जैन (सागर), 42. डॉ. श्रेयांस कुमार जैन (बडौत), 43. डॉ. शेखरचन्द जैन (अहमदाबाद), 44. पं. श्रवण कुमार जैन (बण्डा), 45. डॉ. शोभा लाल जैन (जयपुर), 46. श्रीमती सुभद्रा जैन (टीकमगढ़), 47. सुमतिचन्द शास्त्री (मुरैना), 48. श्रीमती सुमनलता जैन (सागर), 49. डॉ. सुरेशचन्द जैन (लखनादौन), 50. पं. सुरेन्द कुमार जैन (बडामलहरा), 51. पं. संतोष कुमार जैन (सादूमल), 52. पं. सुनील कुमार जैन (निवाई), 53. श्रीमती सरिता जैन (मुरैना), 54. श्रीमती सरला देवी जैन शास्त्री (मुरैना), 55. पं. विजय कुमार जैन "भारतीय" (कटनी), 56. पं. हेमचन्द जैन (रेवाड़ी), 57. ब्र. संजय जैन (मुरैना), 58. डॉ. कस्तूरचन्द सुमन श्री महावीर जी, 59. श्रीमती मणिकान्ता जैन (वाराणसी), 60. डॉ. श्रीमती सरोज जैन (बीना), 61. प्रो. के. के. जैन (बीना), 62. पं. निहालचन्द जैन (बीना), 63. श्रीमती क्षमा जैन (रीवा), 64. पं. रविकान्त जैन (अजमेर), 65. पं. हुकुमचन्द जैन (पन्ना), 66. डॉ. रतनचन्द

जैन (भोपाल), 67. योगाचार्य फूलचन्द जैन (छतरपुर), 68. डॉ. ऋषभ कुमार जैन (नवापारा), 69. खुशालचन्द जैन (वाराणसी), 70. श्रीमती मुन्नी पुष्पा जैन (वाराणसी), 71. पं. दयाचन्द जैन (सतना), 72. पं. अजित कुमार जैन (दिल्ली), 73. प्रो. हीरालाल पाण्डे (भोपाल), 74. श्रीमती चन्द्रा पाँडे (भोपाल), 75. श्रीमती चमेली देवी (भोपाल), 76. पं. अमृतलाल शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य (दमोह), 77. पं. अमरचन्द शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य (शाहपुर), 78. पं. गजेन्द्र कुमार जैन (मडावरा), 79. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, 80. पं. शिवचरण लाल जैन (मैनपुरी), 81. पं. शान्ति कुमार शास्त्री-द्रोणगिरि, 82. श्री पं. कपूरचन्द्र घुवारा, 83. हरिश्चन्द जैन मुरेना।

सदस्य संख्या

विद्वत्परिषद् के स्थायी सदस्यों की संख्या ४१८ है और अस्थायी सदस्य एक भी नहीं हैं। इन सदस्यों में दूरवर्ती दक्षिण-भारत के भी अनेक सदस्य सम्मिलित हैं। कार्यकारिणी-समिति में सब प्रान्तीय विद्वानों का समावेश है।

विद्वत्परिषद् की इच्छा रही है कि जैन समाज के समस्त विद्वान् एक संगठन से संबद्ध रहे। यह संभव है कि किसी-किसी विषय पर विद्वानों में विचार-वैषम्य हो, पर उसके रहते हुए भी विद्वान् एक संगठन में रह सकते हैं। विचार-वैषम्य अल्पविषयों में रहता है और विचारसाम्य बहुत विषयों में होता है। अत: विचार-वैषम्य की बातों को कुछ समय के लिए गौणकर विद्वान् लोग विचार-साम्य की बातों में प्रगति करें तो समाज तथा विद्वान् दोनों के हित की बात हो सकती है। इसी सदभिप्राय से विद्वत्परिषद् की ओर से सदा ऐसा प्रयत्न होता रहा है कि विद्वान् एकसूत्र में संगठित रहें। यह संगठन का युग है, व्यक्ति की आवाज नगण्य हो सकती है पर समूह की आवाज को नगण्य करने की क्षमता किसी में नहीं है। मुझे यह प्रकट करते हुए हर्ष होता है कि विद्वानों ने विद्वत्परिषद् की इस भावना को परखा है और उसके फलस्वरूप उसके सदस्यों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। मैं आशा रखता हूँ कि जो विद्वान् अब तक विद्वत्परिषद् के सदस्य नहीं है वे इस संगठन में आवें। विद्वत्परिषद् से प्रत्येक सदस्य का सम्मान सुरक्षित है तथा विद्वत्परिषद् में प्रत्येक विद्वान् के सहयोग की सदा आकांक्षा रखती है। विद्वत्परिषद् सहयोगी संस्थाओं का भी सदा आदर करती है।

प्रकाशन विभाग

विद्वत्परिषद् की प्रमुख गतिविधियों में ग्रन्थ प्रकाशन की योजना भी सम्मिलित है। गुरुणां गुरु पं. गोपालदास वरैया का स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशक का गौरव इस संस्था को प्राप्त है।

सागर में श्रुत सप्ताह के अन्तर्गत परिषद् के विद्वानों के प्रवचन हुए, जिनका श्रुत सप्ताह नवनीत कृति के रुप में प्रकाशन हुआ। पं. जुगलकिशोर मुख्त्यार व्यक्तित्व और कृतित्व एक लघु पुस्तिका भी प्रकाशित की गयी।

भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण दिवस समारोह के पावन पर्व में डॉ. नेमीचन्द जैन ज्योतिषाचार्य द्वारा लिखित ''तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'' का चार भागों में प्रकाशन हुआ, जिसकी समाज

व विद्वानों ने अत्यधिक प्रशंसा की। उक्त ग्रन्थ की उपादेयता एवं समाज की अत्यधिक मांग को ध्यान में रखते हुए परम पूज्य उपाध्याय ज्ञान सागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थ माला पो. बुढ़ाना (मुजफ्फरनगर) से इस ग्रन्थ का पुन: प्रकाशन किया गया।

समाज में देव, शास्त्र और गुरु के सच्चे स्वरूप का प्रतिपादन अपेक्षित मानते हुए विद्वत्परिषद् ने पुस्तक प्रकाशन का प्रस्ताव रखा। तदनुसार डॉ. सुदर्शनलाल जैन "देव शास्त्र और गुरु" शीर्षक से कृति की रचना की और विद्वत्परिषद् ने उक्त कृति का प्रकाशन किया। अध्येताओं ने उक्त कृति का स्वाध्याय कर सराहना की।

भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर "बीसवीं शताब्दी की दिगम्बर जैन विद्वत्परम्परा का अवदान" विषय पर ग्रन्थ प्रकाशन की योजना है इसी प्रकार आगे भी विद्वत्परिषद् द्वारा आवश्यकतानुरुप धार्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन यथा समय होता रहेगा।

पुरस्कार-योजना

समाज में सत्साहित्य के निर्माण में वृद्धि हो तथा लेखक के लिए उचित सम्मान मिले। इस भावना से प्रेरित होकर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने पुरस्कार-योजना को प्रचारित किया है। इसका अपना विधान है तथा वर्तमान में इसकी समिति भी है।

विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है। **- वेदन्यास**

* * *

अपूर्व: कोऽपि कोषोऽयं विद्यते तव भारति।
दानेन वृद्धिमायाति संचयेन विनश्यति॥

- अज्ञात

* * *

विद्या स्वर्ग है, परन्तु भूमि की मिट्टी और मलिनता से लथपथ, जब तक प्रयोग की भट्टी में उसे तपाया न जाय उस पर कान्ति और आभा नहीं आती, और जब तक कान्ति न आये तब तक संसार में उसका उचित मूल्य नहीं लगता।

- अज्ञात

खण्ड द्वितीय

विद्वान् एवं विद्वत्परिषद्

विद्वानों के उपकारी पं. गणेशप्रसाद वर्णी

डॉ. पण्डित पन्नालाल जैन साहित्याचार्य*

यदि संसार समुद्र है तो उसमें रत्न अवश्य होना चाहिये। पूज्य पंडित गणेश प्रसाद जी वर्णी जैन संसार के अनुपम रत्न थे। आपने 'मड़ावरा' ग्राम में जन्म लेकर समस्त बुन्देलखण्ड प्रान्त को गौरवान्वित किया है। आप यद्यपि असाटी वैश्य कुल में उत्पन्न हुए थे तथापि पूर्वभव के संस्कार के जैन धर्म के मर्मज्ञ प्रतिपालक थे।

आपका जीवन चरित्र असाधारण घटनाओं में भरा हुआ है। आपने अपनी निरन्तर साधना से जैन समाज में जो अनुपम व्यक्त्वि प्राप्त किया था। वह उल्लेख करने योग्य है। परन्तु इस छोटे लेख में लिखकर मैं उसका महत्व नहीं गिराना चाहता। राष्ट्रीय जागृति में यदि महामना लोकमान्य तिलक के बाद महात्मा गाँधी का उल्लेख होता है तो जैन समाज में शिक्षा प्रचार की जागृति में सर्वश्री गुरु गोपालदास जी के बाद श्रद्धेय वर्णी गणेशप्रसाद जी न्यायाचार्य का नामोल्लेख होना चाहिये। स्वर्गीय तिलक जी के दृष्टिकोणों को जिस प्रकार महात्मा गाँधी ने सीमा से उन्मुक्त कर सर्वाङ्गीण जागृति का बीड़ा उठाया था उसी प्रकार पूज्य वर्णी जी ने भी बरैया जी के सीमित दृष्टिकोणों से आगे बढ़कर धर्म, न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि सभी विषयों की उच्च शिक्षा का सुन्दर प्रचार किया था।

सुनते हैं कि आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व बुन्देलखण्ड में जैन शास्त्रों के साधारण जानकार भी नहीं थे। तत्वार्थसूत्र, सहस्रनाम और संस्कृत की देव-शास्त्र-गुरु पूजा का मात्र पाठ कर देने वाले महान पंडित कहलाते थे। धार्मिक आचार विचार में भी लोगो में शिथिलता आ गई थी, परंतु आज पूज्य वर्णी जी के सतत प्रयत्न और सच्ची लगन से बुन्देलखण्ड भारत वर्ष के कोने-कोने में अपने विद्वान भेज रहा हैं। आज यदि जैन समाज में कुछ विषयों के आचार्य हैं तो वे बुन्देलखण्ड के हैं, शास्त्र के लब्ध प्रतिष्ठित और सर्वमान्य विद्वान हैं तो बुन्देलखण्ड के हैं, भारतवर्ष की समस्त जैन सस्थाओं में यदि कर्मठ अध्यापक हैं तो प्राय: 80 प्रतिशत बुन्देलखण्ड के हैं और जैन पाठशालाओं तथा विद्यालयों में यदि सुयोग्य विद्यार्थी हैं तो उनमें बहुभाग बुन्देलखण्ड का है। आचार-विचार में भी आज बुन्देलखण्ड का साधारण से साधारण गृहस्थ अन्य प्रान्तों के विशेषज्ञ पंडितों की अपेक्षा कुछ विशेषता रखता है। यदि अन्य प्रांत के शास्त्री विद्वान बाजार का सोडावाटर शौक से पी सकते हैं तो बुन्देलखण्ड का साधारण अनपढ़ जैन गृहस्थ अगालित जल से दातौन भी नहीं कर सकता। मैं यह नहीं कहता कि इसके अपवाद नहीं है, अपवाद हैं अवश्य, परंतु बहुत कम। बुन्देलखण्ड के विद्वान सीधे, साहित्यिक और कलहप्रिय काण्डों से प्राय: दूर रहने वाले होते हैं।

कुछ लोग भले ही कहते हैं कि बुन्देलखण्ड दरिद्र प्रान्त है इसलिए वहाँ के लोग नि:शुल्क मिलने वाली संस्कृत शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और फिर आजीविका के लिए देश छोड़कर जहाँ-तहाँ बिखर जाते

*सागर

हैं। बात ठीक भी जचती है, परंतु इसमें मुझे रोष नहीं होता बल्कि संतोष होता है और वह इस बात का कि इस प्रान्त के लोग धार्मिक क्षेत्र में अपनी प्रगति कर रहे हैं। दरिद्रता के अभिशाप से पीड़ित होकर इन्होंने कोई ऐसा मार्ग नहीं अपनाया है। जो इन्हें तथा इनके पूर्वजों को कलंकित करने वाला हो और जैन धर्म की प्रगति में बाधक हो।

अब हमारे विज्ञ पाठक जानना चाहेंगे कि बुन्देलखण्ड की इस धार्मिक प्रगति का प्रमुख कारण कौन है? सोते हुए बुन्देलखण्ड प्रांत को जगाकर उसके कानों में जागृति का मन्त्र फूँकने वाला कौन है? बुन्देलखण्ड के गृहस्थोचित आचार-विचार को अक्षुण्ण रखने वाला कौन है? और उसे दुनिया में चकाचौंध पैदा कर देने वाली पाश्चात्य सभ्यता (!) से अपरिचित रखने वाला कौन है? जहाँ तक मेरा अनुभव है मैं कह सकता हूँ कि इन सबका सर्वमान्य उत्तर है-प्रातः स्मरणीय पूज्य पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी।

इन्होंने अपनी धर्ममाता स्वर्गीय चिंरोजाबाई जी की उदारवृत्ति तथा पुत्रवत् वात्सल्यपूर्ण भावना से बनारस, खुर्जा, मथुरा, गदिया आदि स्थानों में जाकर बड़ी कठिनाइयों में विद्याभ्यास किया था। आज के विद्यार्थियों को उदार जैन समाज ने धर्म शिक्षा के सुयोग्य साधन सुलभ कर दिये हैं। आज के विद्यार्थियों को रहने के लिए सुन्दर और स्वच्छ भवन प्राप्त हैं। उत्तम भोजन मिलता है और अच्छे-अच्छे आचार्य अध्यापक उन्हें पढ़ाने के लिए उनके घर आते हैं, आते ही नहीं प्रेरणा भी करते हैं कि तुम मेरे पास पढ़ो। परंतु एक वक्त वह था कि जब पूज्य वर्णी जी जैसे महान व्यक्तियों को पुस्तक बगल में दाबकर मीलों दूर अजैन अध्यापकों के पास जाना पड़ता था, उनकी सुश्रूषा करनी पड़ती थी, किन्तु वे धार्मिक विद्वेष के कारण पुस्तक डैस्क पर से दूर फेंक देते थे। पूज्य वर्णी जी ने ऐसी ही विकट परिस्थिति से गजर कर विद्याध्ययन किया था। उन्होंने दानवीर सेठ माणिकचन्द्र जी बम्बई आदि के सहयोग से बनारस जैसे हिन्दू धर्म के केन्द्र स्थान में स्याद्वाद विद्यालय की स्थापना कराई थी।

प्रकृति ने आपके वचनों में मोहनी शक्ति दी थी, विद्या की कमी नहीं थी। अपने युग के आप सर्वप्रथम षट्खण्डोत्तीर्ण जैन न्यायाचार्य थे। यदि आप विद्याध्ययन के बाद चाहते तो समाज के किसी विद्यालय के प्रधान बनकर लक्षाधीश हो सकते थे। परन्तु आपके हृदय में तो अपने प्रान्त और धर्म के उत्थान की प्रबल भावना जमी हुई थी जिससे आपने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ममत्व छोड़कर अपना जीवन परोपकार में लगा दिया।

सन् 1909 में आपने सागर का सत्तर्क सुधा. विद्यालय खुलवाया था जो आज मध्यप्रदेश का गौरव कहलाता है और जिसने बुन्देलखण्ड की जागृति में अपूर्व हाथ बँटाया है। द्रोणगिरि, रेशन्दीगिरि, अहार, पपौरा आदि अनेक स्थानों पर पाठशालाएँ स्थापित कराकर आपने जैन धर्म और जैन साहित्य के प्रचार में पर्याप्त योगदान किया था। मात्र साहित्यनिर्माण, पुस्तक का संशोधन, सम्पादन, लेखन, मुद्रण आदि ही साहित्य सेवा नहीं है, बल्कि इस कार्य के योग्य साहित्यिक पुरुष पैदा कर देना भी साहित्य सेवा है और उससे कहीं बढ़कर।

आपके हृदय में दया कूट-कूटकर भरी थी। मैं अपने से वयोवृद्ध पुरुषों के द्वारा उनकी दयालुता के अनेक प्रकरण सुनता आया हूँ और कुछ तो मैंने स्वयं देखे हैं। लेख का कलेवर बढ़ता जा रहा है, परंतु

एक महान पुरुष के विषय में कुछ लिखे बिना भी नहीं रहा जाता। लगभग 10 बजे दिन का वक्त था, पूज्य वर्णी जी दुपट्टा ओढ़कर मोराजी से भोजन के लिए कटरा आने के लिए तैयार थे, तभी एक गरीब जैनी भाई उनके पास पहुँचते हैं। उनके पास पहनने को कपड़ा नहीं था, मात्र धोती पहने हुए थे। पूज्य वर्णी जी ने उन्हें देखते ही अपना दुपट्टा उतारकर उन्हें उड़ा दिया ओर आप धोती को ही कन्धे पर डालकर कटरा चले गए।

शीत ऋतु का समय था, वर्णी जी के पास ही हम लोग बैठकर पाठ याद कर रहे थे कि इतने में कहीं से एक सज्जन आते हैं। उनके पास रुई भरी हुई रजाई नहीं थी। वर्णी जी अपने बिस्तर का गद्दा निकाल कर उन्हें दे देते हैं। उस दिन से उन्होंने फिर गद्दे पर सोना ही छोड़ दिया। आज बुन्देलखण्ड के पंडितों में शायद ही ऐसा कोई हो जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वर्णी जी का आभारी न हो। उन्होंने मेरे साथ तो महान उपकार किया है। किसी भी छात्र को परखना और उसे आगे बढ़ाना तो आपका स्वभाव ही था।

बहुत पहले की बात है। मैं व्याकरण की प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण ही हुआ था कि कविता लिखने का शौक उत्पन्न हुआ। मुझे एक प्रार्थना-पत्र लिखना था। मैंने संस्कृत के 6-7 पद्य लिखकर पूज्य वर्णी जी को दिये। आप सोच सकते हैं कि उस समय मेरी रचना कैसी रही होगी? अभी 3-4 वर्ष की बात है कि मुझे अपने पुराने कागजों में उन श्लोकों की एक कापी मिल गई तो मुझे अपनी मूर्खता पर भारी तरस आया और मैंने उसे बाहर फेंक दिया। परंतु वर्णी जी ने इन श्लोकों पर कुछ भी नुक्ताचीनी न कर मुझे पाँच रुपये नगद दिये । मेरा उत्साह बढ़ गया। मैं उनका ही महान उपकार मानता हूँ जो आज कुछ कविता करना सीख गया हूँ। मैंने अपने श्रीपालचरित (संस्कृत गद्य काव्य) और रत्नत्रयी में उनका क्रमशः इस प्रकार स्मरण किया है-

'यस्यानुकम्पामृतपानतृप्ता बुधा न हीच्छन्ति सुधा समूहम्।
भूयात्प्रमोदाय बुधाधिपानां गुणाम्बुराशिः स गुरुर्गणेशः॥

येषां कृपाकोमलवृष्टिपातैः सुपुष्पिताभून्मम सूक्तिवल्ली।
तान् प्रार्थये वर्णिगणेशपादान् फलोदयं तत्र नतेन मूर्ध्ना॥'

मैं अन्य विद्वानों का अपवाद नहीं कर रहा हूँ, परंतु यह अवश्य कह रहा हूँ कि पूज्य वर्णी जी अपने वक्तव्य में किसी की शानी नहीं रखते थे। जहाँ अन्य वक्ताओं के चटपटे चुटकले और जोशीले शेर क्षणिक हास्य या जोश उत्पन्न कर विस्मृत हो जाते हैं, वहाँ पूज्य वर्णी जी की अनुपम भाषण शैली और अनोखे शास्त्र प्रवचन का प्रभाव श्रोताओं के अन्तस्तल पर पड़े बिना नहीं रहता था। जिसने एक बार भी आपका शास्त्र प्रवचन या भाषण सुना होगा वह सदा के लिए आपका आभारी हो गया होगा। एक घटना मेरी आँखों देखी है। अतिशय क्षेत्र बीना-बाराहाजी में परवारसभा का वार्षिक अधिवेशन हो रहा है। स्वर्गीय पंचमलाल जी तहसीलदार जबलपुर वाले अध्यक्ष थे। पूज्य वर्णीजी जी का सारगर्भित भाषण प्रारम्भ होते ही जोरों से जलवृष्टि होने लगती है। पंडाल के नीचे पानी बहने लगता है, पर क्या बात, जो एक बच्चा भी अपनी जगह छोड़कर उठा हो। यात्रियों के डेरे-डंगल खराब हो रहे थे, परंतु सब लोग उनसे निस्पृह हो वर्णी जी के भाषण सुनने में लगे हुए थे। श्रोताओं को हँसा देना या रुला देना तो आपके बाँये हाथ का खेल था।

मुझे भी अनेक जैन-अजैन विद्वानों के भाषण सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, परंतु वर्णीजी के समान सारगर्भित और अंतरात्मा पर स्थाई असर करने वाला भाषण मैंने आज तक नहीं सुना।

आप अध्यात्म विषय का निरंतर मनन करते रहते थे। जब भी हम देखते थे समयसार आपके हाथ में मिलता था। समयसार मूल और अमृतचन्द्राचार्य कृत उसकी टीका तो आपको प्राय: अक्षरश: कण्ठ हो गई थी। आप विद्यार्थियों की तरह 4 बजे रात को उठकर याद किया करते थे। आप इस वृद्धावस्था के समय ज्ञानार्जन में इतना अधिक परिश्रम क्यों करते हैं? ऐसा पूछने पर आप यही उत्तर देते थे कि भैया! ज्ञान ही ऐसी वस्तु है जो परभव में साथ जाती है। तीर्थंकर को किसी गुरु के पास पट्टी लेकर नहीं पढ़ना पड़ता इसका मुख्य कारण उनके पूर्वभव का ज्ञानार्जन और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ही है। आज लोग धन को हितकारी समझते हैं और उसे जर्जर काय होकर भी कमाते जाते हैं। मैं ज्ञान को हितकारी मानता हूँ और उसे प्राप्त करने में जब तक शक्ति है प्रयत्न करता हूँ। परभव में न जाने ऐसी निर्द्वन्द्व अवस्था मिलेगी या नहीं। आपका धन आपके साथ नहीं जावेगा और मेरा ज्ञान मेरे साथ जावेगा।

आप सुयोग्य लेखक और टीकाकार थे। आपने श्लोकवार्तिक की एक प्रामाणिक हिंदी टीका लिखी थी। उसके कुछ पत्र मेरे देखने में भी आए हैं, परंतु वह पूर्ण हुई या अपूर्ण रही, इसका पता नहीं। आप शांतिप्रिय आत्माभिरामी विद्वान थे। अखबारी लेखनकला को शांतिभंग का एक कारण मानते थे, इसलिए उससे बचते रहे हैं। अनिवार्य आंतरिक प्रेरणा पाकर ही जब कभी आप लिखते थे। पत्र लिखने में तो आप सर्वथा बेजोड़ थे। आप अपने सहधर्मी और स्नेही सज्जनों को जो पत्र लिखते थे उनमें 'अत्र कुशलं तत्रास्तु', 'या बहुत समय से चिट्ठी नहीं दी, सो देना' यही नहीं रहता था, किंतु शांतिलाभ की बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध रहती थी। आपके पत्र जो भी पढ़ता था वह क्षण भर के लिए अपने आपको भूल जाता था। आनंद में विभोर हो जाता था। यही कारण है कि जबलपुर, सागर और कलकत्ता समाज की ओर से आपके पत्रों की प्रतिलिपियाँ 4 भागों में प्रकाशित हो चुकी है।

इस 20वीं शताब्दी में आपने सब मिलाकर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्वत्समाज एवं साहित्य की जितनी सेवा की है वह चिरस्मरणीय रहेगी।

अधिक अनुभव, अधिक विपत्ति सहना और अधिक अध्ययन, यही विद्वत्ता के तीन स्तम्भ हैं।

* * *

विद्वत्ता अच्छे दिनों में आभूषण है, विपत्ती में सहायक व बुढ़ापे में संचित सामग्री है।

- अरस्तू

जैन श्रमण संस्कृति और आचार्य विद्यासागर

डा. शीतलचन्द जैन*

संस्कृति शब्द से हम सभी चिरपरिचित हैं। किसी राष्ट्र या समाज की संस्कृति का निर्माण अचानक न होकर उस राष्ट्र या समाज के निवासियों के जीवन की शताब्दियों की उपलब्धियों का परिणाम होता है। किसी देश या समाज की संस्कृति उसकी सम्पूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती है। यह किसी व्यक्ति विशेष के पुरुषार्थ का फल नहीं, अपितु असंख्य व्यक्तियों के भगीरथ प्रयत्न का परिणाम होती है। मनुष्य विभिन्न स्थानों पर रहते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण, प्रथाओं, व्यवस्थाओं, संस्थाओं, धर्म, दर्शन, लिपि-भाषा तथा कलाओं का विकास करके अपनी संस्कृति का निर्माण करते हैं।

वस्तुत: किसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के उदात्त संस्कारों के पुंज का नाम उस समाज, जाति और राष्ट्र की संस्कृति है। किसी राष्ट्र की शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकास संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति में जो संस्कृति जितना योगदान करेगी वह संस्कृति उतनी ही उत्कृष्ट कहलायेगी।

जब संस्कृति व्यक्ति तक सीमित रहती है, तब वह उसके व्यक्तित्व को मूल्यवान् बनाती है और जब वह सामाजिक जीवन में समाविष्ट हो जाती है तो वह सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना को विकसित करती है। इन्हीं विकसित तत्त्वों में साहित्य, कला, धर्म और दर्शन होते हैं। संस्कृति का समानान्तर एक शब्द सभ्यता भी हैं। प्राय: लोग संस्कृति एवं सभ्यता को एक ही मान लेते हैं। किन्तु इन दोनो शब्दों में मौलिक अन्तर है। वस्तुत: यदि सूक्ष्मरीति से विचार करें तो संस्कृति अभ्यन्तर है और सभ्यता बाह्य है। संस्कृति आध्यात्मिक एवं मानसिक अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है और सभ्यता मानव की भौतिक विचारधारा की सूचक है।

संस्कृति, शब्द की निष्पत्ति सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से होती है। इस प्रकार संस्कार, संस्कृत और संस्कृति तीनों शब्दों का मूल एक ही है तथा उसका अर्थ है शुद्ध करना, परिष्कृत करना, मनुष्य की अच्छाईयों को निर्देशित करना, व्यक्त्वि को सभ्य दिशा प्रदान करना इत्यादि। इस प्रकार संस्कृति मनुष्य की साधना की सर्वोत्तम परिणति एवं मानव व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है।

इसी प्रकार ''श्रम'' (श्रमु तपसि खेदे च) धातु से ल्यु प्रत्यय होकर ''श्रमण'' शब्द का निर्माण होता है। श्राम्यतीति श्रमण: तपस्यतीत्यर्थ: अर्थात् जो तप करता है वह श्रमण है। आचार्य रविषेण ने तप को ही श्रम कहा है।

परित्यज्य नृपो राज्यं श्रमणो जायते महान्।
तपसा प्राप्य सम्बन्धं तपो हि श्रम उच्यते॥

पद्मचरित/6/22

*जयपुर

अर्थात् राजा लोग राज्य का परित्याग कर तथा तप से सम्बन्ध जोड़कर "श्रमण" बन जाते थे, क्योंकि तप ही श्रम कहा जाता है। श्रम धातु के तप और खेद अर्थ को ध्यान में रखकर "अभिधान राजेन्द्र" शब्दकोष में श्रमणशब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की गई है- "श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति वा श्रमण:, श्राम्यति संसारविषयेषु खिन्नो भवति तपस्यति वा स श्रमण:" अर्थात् जो पाँच इन्द्रियों तथा मन को शान्त रखते हैं अथवा संसार के विषयों में जो उदासीन होते हैं या तप करते हैं वे श्रमण हैं।

भारतीय संस्कृति में श्रमणत्व इतना व्यापक है कि प्राय: समस्त प्राचीन भारतीय भाषाओं में यह शब्द उपलब्ध है। जैसे-

प्राकृत	-	समण	मागधी	-	शमण
पाली	-	समण	संस्कृत	-	श्रमण
अपभ्रंश	-	सवणु	कन्नड	-	श्रवण
तमिल	-	समण	हिन्दी	-	सवन
यूनानियों द्वारा			चीनियों द्वारा		
प्रयुक्त	-	सरमनाई	प्रयुक्त	-	श्रमणेर

श्रमण शब्द की व्युत्पत्ति, पर्यायवाची शब्द एवं श्रमण व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि श्रमण शब्द का प्रयोग नग्न दिगम्बर जैन साधु के लिए ही किया गया है।

श्रमण संस्कृति का प्रवाह अनादिकाल से चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। इस युग की श्रमण संस्कृति के उद्घाटक आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव थे एवं अल्पावधि इस संस्कृति की शृंखला में प्रेरक और समर्थक अन्य 23 तीर्थंकर रहे जिनमें अन्तिम तीर्थंकर महावीर को इस श्रमण संस्कृति का वर्तमान काल के प्रभावक के रूप में स्मरण किया जाता है।

इन दिगम्बर जैनाचार्यों की ज्ञान की प्रतिअगाध श्रद्धा एवं अभिरुचि ने श्रमण संस्कृति के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। ईसा की प्रथम शताब्दी में होने वाले आचार्य कुन्दकुन्द से लेकर 12 शताब्दी तक ऐसे सैकड़ों आचार्य हुए, जिन्होंने श्रमण संस्कृति की जबरदस्त प्रभावना की।

सन् 1927-28 के आस-पास उत्तरी भारत में दक्षिण भारत से आचार्य शान्तिसागर जी का ससंघ प्रवेश हुआ तो दिगम्बर जैन समाज में एक नयी हलचल मच गई। वस्तुत: आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने श्रमण संस्कृति को फिर से जीवनदान दिया। उत्तर भारत के सैकड़ों नगरों-ग्रामों में विहार करके दिगम्बर जैन समाज में नई स्फूर्ति पैदा कर दी फिर अनेक मुनिसंघ तैयार होने लगे और उनके पट्टशिष्य होने का सौभाग्य आचार्य वीरसागर जी को मिला फिर आचार्य शिवसागर जी ने श्रमण संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए अपने जीवन में 48 साधुओं को दीक्षा दी। तत्पश्चात् आपके प्रथम शिष्य संस्कृत भाषा में 4-4 महाकाव्यों के रचना की परम्परा को जीवित रखने वलो जैनाचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। उन्होंने 50 वर्ष तक संस्कृत वाङ्मय की अनवरत सेवा कर श्रमण संस्कृति का महनीय उपकार किया है।

बीसवीं शताब्दी में श्रमण संस्कृति में गत 50 वर्षों से दिगम्बर श्रमण संस्कृति के पोषक अनेक आचार्य हुए, परन्तु जैन श्रमण संस्कृति के लिए चर्या में आचार्य कुन्दकुन्द, निर्भीकता में समन्तभद्र, लेखन में अकलङ्क जैसा अचार्य चाहिये था वैसा आचार्य खोजकर इस शताब्दी के महान् कवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने दिया। पूज्य आचार्य विद्यासागर जी के रूप में। वस्तुत: समस्त जैन जगत् में "चौथे काल के महाराज" के विशेषण से विख्यात आचार्य विद्यासागर जी महाराज दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति के प्रतीक हैं। यदि हम इस प्रकार कहें कि श्रमण पवित्रता के प्रतीक हैं। श्रमण वह पवित्र स्वच्छ दर्पण है कि जिनको देखकर अपने मुख की अपवित्रता दिखती है और उसको दूर करने की प्रेरणा मिलती है।

आचार्य विद्यासागर जी महाराज श्रमण संस्कृति के एक स्वच्छ, निष्कलंक, निर्दोष, आदर्शरूप दर्पण हैं, जिस दर्पण में मलिन श्रावक अपनी मलिनता को देखकर आचार्यश्री की आदर्श चर्या को समझकर वह अपनी मलिनता को दूर करने का प्रयास करता है।

आज के इस कृत्रिम विश्व में जब स्वार्थ द्वेष, वैमनस्य और छलछिद्र का ताण्डव नृत्य हो रहा है। हिंसा की दुन्दुभि बज रही है, सिद्धान्त और आदर्श शशशृंग हो रहे हैं।

ऐसे अवसर पर, श्रमण संस्कृति का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। श्रमण संस्कृति एवं उनके उन्नायक आचार्य ही ऐसे पीड़ित संसार को मार्गदर्शन कर उबार सकते हैं।

महान् तपस्वी दिगम्बर श्रमणाचार्यों की सुदीर्घ परम्परा के वर्तमान ध्वजावाहक अनेकान्तवादी ऋजुप्राज्ञमुनि आचार्य विद्यासागर जी आगमानुकूल ऐतिहासिक क्रान्तिकारी चर्या का पालन कर रहे हैं। इसलिये मुनि संस्था के लिए आदर्श एवं प्रेरणास्रोत बन गये। इसी आदर्श रूप अनुकरणीय चर्या के कारण ज्ञान इतिहास की प्रथम घटना है कि आपकी प्रेरणा से आपके ही परिवार के सात सदस्य संयमधारण करके मुनि-आर्यिका बनकर श्रमण संस्कृति को गौरवान्वित कर रहे हैं।

20वीं शताब्दी के मुनिसंघों में यह प्रथम मुनिसंघ के रूप में जाना जाता है।

मुनिचर्या के निर्दोष पालन के तीर्थक्षेत्रों पर चातुर्मास करने की परम्परा को दृढ़ किया। इसके फलस्वरूप जीर्ण-शीर्ण क्षेत्रों का नवीनीकरण हुआ और यह परम्परा अन्य मुनिराजों के लिए प्रेरणास्रोत बनी। द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के पर्यावरण निरन्तर दूषित हो रहा है। अत: समस्या के निराकरण एवं आत्मसाधना में अत्यन्त उपयोगी नवीन क्षेत्रों का उद्‌भव भी आचार्यश्री के प्रेरणा से हो रहा है। जो आज के युग की नवीनतम मांग है।

मानव स्वभाव करुणा रूप है अत: आचार्यश्री ने क्षेत्रों पर गौशालायें बनाने के लिए प्रेरणा देकर पशुधन बचाने का महत्त्वपूर्ण कदम है।

"शरीरमाद्यं खेलु धर्मसाधनम्" को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री ने भाग्योदय तीर्थ की स्थापना हेतु प्रेरणा देकर स्थितिकरण अंग के प्रतिभावना व्यक्त की तथा परोपकार होने से राष्ट्रीय भावना भी व्यक्त होती है।

आप ऐसे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने धर्माचरण और अध्यात्म के प्रचार-प्रसार के साथ सामाजिक एवं राष्ट्रहित में चिन्तन दिया है। परिणामत: प्रशासनिक प्रशिक्षण केन्द्र जबलपुर में स्थापित हुए:

एकान्त द्रव्यानुयोगवादियों की लहर में लोग करुणानुयोग के स्वाध्याय से विरत हो रहे थे। ऐसे समय में आपने आगम वाचना प्रारंभ कर एकान्तवादियों के जाल से निकालकर चारों अनुयोगों की स्वाध्याय परम्परा को दृढ़ किया।

एकान्तवाद में फंसे लोगों को अपने आध्यात्मिक प्रवचनों के द्वारा मार्गदर्शन दिया। जो लोग मिथ्यात्व को भूत बताकर कषायों को निष्प्रभावी बता रहे थे। उनका निरन्तर कर आगमानुकूल मिथ्यात्व को बन्ध के क्षेत्र में अकिंञ्चितकर बतलाकर मिथ्यात्व का भूत भगाया और कषायों के शमन का उपाय बताया। उपादान-निमित्त निश्चय-व्यवहार की सन्धि का यथार्थ निरूपण कर अध्यात्म का सही मार्ग भी बताया।

शुद्धोपयोग की प्राप्ति कपड़े पहिने में भी हो सकती ऐसे तथाकथित विद्वानों को भी संस्कारित कर मोक्षमार्ग का पथ प्रदर्शन किया।

कुछ मुनिसंघों में संयम के उपकरण पिच्छी-कमण्डलु को तंत्र-मंत्र की झाड़ा-फूंकी में उपयोग बहुत मात्रा में होने लगा था और शासन देवी-देवताओं की पूजन भी प्रचुर मात्रा में होने लगी थी। साथ में पिच्छियों की बोलियाँ और केशलोंच से प्राप्त अशुचि बालो की बोलियाँ लगवाना आम बात हो गई थी। ये सब कार्य मिथ्यात्व के पोषण एवं धर्म प्रभावना को कम करने वाले थे। अत: आचार्यश्री ने इन मिथ्यात्व परम्पराओं को समाप्त कर मुनियों को मिथ्यात्व पथ के भटकने से बचाया।

आचार्य श्री ने स्वाध्याय के क्रम को व्यवस्थित रूप से स्थापित किया यही कारण है कि उनके शिष्यों में परम्परा है कि पहले ग्रन्थ की वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय फिर धर्मोपदेश की बात आती है। फिर इसके बाद साहित्य सर्जन का कार्य प्रारम्भ होता है। आपके द्वारा हिन्दी-संस्कृत भाषा में जो भी साहित्य सर्जन का कार्य किया है, वह बहुमूल्य है जिसका मूल्यांकन विभिन्न विद्वानों द्वारा किया जा रहा है। ज्ञात साहित्य से स्पष्ट है कि अभी तक 18 शोधार्थी आचार्यश्री के साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों से उपाधि प्राप्त कर चुके/कर हैं। आपने साहित्य रचना में इतने उच्च मानदण्ड एवं कवित्व शक्ति का परिचय दिया है कि अभी कुछ मुनिगणों/आचार्यों ने आचार्य विद्यासागर जी के उच्च मानदण्डों को प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु उन तक नहीं पहुँच सके। यथार्थ में देखा जाय तो आचार्यश्री का एक-एक वाक्य और उसका एक-एक शब्द उनकी अनन्य प्रतिभा का परिचायक है। आपके साहित्य में बौद्धिक चिन्तन सर्वतोभावेन देदीप्यमान हो रहा है। अत: 20-21वीं शताब्दी के इतिहास में आचार्य विद्यासागर जी का समय युगान्तकारी सिद्ध होगा।

पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने आगमवाचना प्रारम्भ की। उस वाचना में अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के मूर्धन्य मनीषी विद्वान् पं. जगन्मोहन शास्त्री, पं. कैलाशचन्द शास्त्री, पं. दरबारी लाल कोठिया, पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य बीना, पं. पन्नालाल साहित्याचार्य आदि उद्‌भट् विद्वानों की उपस्थिति वि. परिषद् को गौरवान्वित करती थी। श्री दि. जैन. सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर में अभी 23 फरवरी 2001 को पूज्य आचार्य श्री एवं 179 मुनि, आर्यिका, ऐलक-क्षुल्लक आदि साधुओं के सान्निध्य में अखिल भा. दि. जैन वि. परिषद् का अधिवेशन भी हुआ जिसमे आचार्य श्री का विद्वानों को मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। ऐसे पूज्य आचार्य श्री के प्रति स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह पर शत शत नमन्।

विद्वानों के उन्नायक : उपाध्याय ज्ञानसागर जी

डॉ. शोभालाल जैन*

जिनवाणी आराधक, आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा के प्रज्ञाश्रमण प्रकाशमान नक्षत्र राष्ट्रीय सन्त उपाध्याय ज्ञानसागर जी का व्यक्तित्व और कृतृत्व बहुत व्यापक और विशाल है। आपका साधनामय जीवन प्राणीमात्र के लिए सदैव समर्पित है। आपका व्यक्तित्व सागर-सा-गम्भीर और हिमालय-सा उतंग है। आपने आगम ग्रन्थों का, साहित्य एवं भाषा का, और न्याय विद्या का गहन अध्ययन किया है। आचार्य श्री विद्यासागर जी के पावन सान्निध्य में तत्त्वज्ञान का भी परायण किया। अत: आप एक मनीषी विद्वान् है। विद्वत् समाज के महान उन्नायक बने हुए हैं।

उपाध्याय श्री स्वयं एक अलिखित खुली किताब हैं। आपके व्यक्तित्व को किसी भी भाषा या लिपि में सीमित नहीं किया जा सकता है। यदि सीमित किया जा रहा है तो वह एक झलक मात्र है, जिसे यह चर्मचक्षु देख रहे हैं, अल्पबुद्धि समझ रही है। भक्तामरस्तोत्र में आदिनाथ की स्तुति करते हुए श्रीमानतुंगाचार्य कहते हैं कि--

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्-भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारु कलिका निकरैक हेतु॥ 6॥

बसन्त में आम्र-मंजरी को देखकर काली कोयल मौन नहीं रह सकती है, यह उसकी विवशता है। वैसे आपके दर्शन कर भक्तिवश मैं अल्पबुद्धि लघुभाषा में आपके विषय में कुछ कहने का दुस्साहस कर रहा हूँ। यह मेरी विवशता जो मुझे हास्य का पात्र बनायेगी।

''होनहार विरवान के होत चीकने पात'' इस उक्ति के अनुसार जब बालक उमेश का जन्म हुआ तो दैवज्ञों (ज्योतिषाचार्यों) ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक असाधारण है। यह भविष्य में बड़ा योगी बनाकर संसार का कल्याण करेगा।

भैया उमेश जी जब बड़े हुए तो माता-पिता ने विद्यालय भेजना प्रारंभ किया। अध्ययन प्रारंभ हो गया। दुनिया को पढ़ाने वाला स्वयं पढ़ रहा है, दुनिया को सिखाने वाला स्वयं सीख रहा है। समय की यही मर्यादा है। उम्र बढ़ती गयी, समझ एवं बुद्धि का विकास हुआ, धार्मिकता उछाल लेने लगी। जब कही किसी मुनिराज अथवा साधु के दर्शन करते तो देखते ही रहते, आँखें हटती ही नहीं, बड़ी मुश्किल में स्वस्थ (सावधान) होते। मुनिराजों के दर्शनों का ऐसा रंग चढ़ा कि मुरैना से सोनागिरि, सोनागिरि से मुरैना यह उनके स्वभाव में आ गया, पता हीं नहीं चलता कि सोनागिरि में मिलेंगे या मुरैना में। पिच्छी और कमण्डलु को देखकर उन्हें ऐसा लगता कि मानो वे कोई निधि के ही दर्शन कर रहे हैं।

*श्री दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर-3

तीक्ष्णबुद्धि के थे, जो पढ़ाया जाता उसे पढ़ते ही याद कर लेते थे। फिर भी अध्ययन का ऐसा लगाव था कि कुछ भी त्याग करने को तैयार थे। यथार्थज्ञान देने वाला गुरु प्राप्त होता है, और यदि उसके बदले शीश भी देना पड़े तो भी सस्ता है। ''शीश दिये यदि गुरु मिले तो भी सस्ता जान'' ऐसा दृढ श्रृद्धान था। विद्या की खोज में घूमते रहते ''जाकी जैसी भवितव्यता वैसी मिले सहाय'' के अनुसार वीर (अजमेर) राजस्थान में आचार्य विद्यासागर जी के दर्शन हुए। आचार्य श्री से चर्चाएं हुई आप अपनी भावना व्यक्त की, कि मैं उच्च अध्ययन करना चाहता हूँ। आचार्य श्री का आदेश था कि पहले वाहन का त्याग करो, बस में चलने वाले का मन स्थिर नहीं रह पाता। आपने आचार्य श्री के समक्ष ही जीवन पर्यन्त वाहन का त्याग कर दिया। ''जैसा दाता वैसा भिखारी'' ऐसे योग दुर्लभ ही बनते हैं।

भैया उमेश के कानों में बहुत दिनों से तकलीफ हो रही थी इसलिए गुरू आज्ञा से ग्वालियर अस्पताल में दिखाने गये, जब वहां का दर्दनाक दृश्य देखा; तो जीवन का खेल समझ में आ गया। क्षणभंगुरता का भान हुआ, और वैराग्य की भावना प्रबल हुई। ग्वालियर से सोनागिरि आ गये। वहां पर ससंघ विराजमान आचार्य सुमति सागर से क्षुल्लक दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की। अक्सर देखा गया कि धर्मक्षेत्र में अधिक परेशानियां आती हैं या कहिए कि अधिक परीक्षाएं देने पड़ती हैं। वह परीक्षाएं ब्र. उमेश जी ने दी और वे सफल भी हुए। आचार्य श्री ने दीक्षार्थी के अनुरोध को स्वीकार करते हुए 5 नवम्बर, 1976 को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की, नाम दिया क्षुल्लक गुणसागरजी महाराज। सभा मण्डप क्षुल्लक गुणसागर की जय-जयकारों से गूंज उठा सभी एक टक से उन्हें निहार रहे थे कि राग से विराग (वैराग्य) कितना दर्शनीय है। क्षुल्लक गुणसागर जी का मनोबल सदैव मजबूत रहा। इनके कार्यक्रमों को कभी कोई असफल नहीं कर सका। अनेक समस्याएं आयी लेकिन आपको मार्ग से डिगा नहीं सकीं। इन परेशानियों का अपूर्व उत्साह के साथ मुकाबला किया। क्षुल्लक दीक्षा के बाद आत्म-साधना के चरण में अधिक समय देने लगे।

आपको ज्ञानार्जन की अतिललक थी। इसलिये आपने क्षुल्लक अवस्था में इतना अध्ययन किया कि साधारण व्यक्ति अपने जीवन भर में इतना अध्ययन नहीं कर सकता। आपका अध्ययन पुस्तकीय नहीं था, और न परीक्षा प्रधानी बल्कि कंठ के नीचे उतारा, जीवन में चरितार्थ किया। यह अध्ययन उच्च कोटि के विषय विशेषज्ञों द्वारा कराया गया था। व्याकरण, साहित्य, न्याय सभी विषयों में आप पारंगत हुए। प्रसंगानुसार बात याद आ गयी कि भगवान महावीर स्वामी ने दिगम्बरी दीक्षा के बाद 12 वर्ष तक ध्यान किया और मौन रहे। इसके बाद केवलज्ञान हुआ। आप भी क्षुल्लक अवस्था में 12 वर्ष तक सतत् अध्ययन में तल्लीन रहे। न्यायदीपिकां, आप्त-मीमांसा, स्याद्वाद मंजरी, प्रमेयकमलमार्तण्ड आप्त-परीक्षा अष्टसहस्त्री आदि न्यायशास्त्र के उच्चकोटि के ग्रंथों का मनोयोगपूर्वक विशिष्ट अध्ययन किया।

आपकी विशेषरुचि के कारण ही मार्च 1987 में ललितपुर में आपकी प्रेरणा से जैन न्याय विद्या-वाचना हुई।

क्षुल्लक गुणसागर जी स्वभाव से ही निर्भीक थे। आत्म-साधना के बाद तो काल को भी अपना दोस्त मानने लगे। ऐसी ही कुछ घटनाएं हैं:-

क्षुल्लक जी खन्दारजी क्षेत्र (चन्देरी के पास) में प्रवास कर रहे थे। वहां श्रावकगण आते रहते थे। एक दिन माली मुन्नालाल लालटेन जलाकर वापिस लौट रहा था कि उसे शेर दिखाई दिया। वह घबड़ा कर

आपके पास आया। शेर की दहाड़ सुनकर सारे वन्य जीव भयभीत थे। खन्दारजी के पास एक डेढ़ किलोमीटर कटी घाटी है उसमें से एक लकड़हारा गुजर रहा था वह भी शेर की दहाड़ सुनकर दौड़ा-दौड़ा आया, बड़ा व्याकुल था, भय से कांप रहा था। आपने उसे सान्त्वना दी कि घबड़ाओ नहीं कुछ भी नहीं होगा। कहां है शेर? यहां शेर नहीं आ सकता है।

सागर की घटना है। तीव्र गर्मी का प्रकोप था। क्षुल्लक गुणसागर महाराज खुले कक्ष में सामयिक कर रहे थे कि अचानक एक छिपकली आकर आपकी जंघा पर बैठ गयी, आप पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन हो गये कुछ भी नहीं हुआ।

मुंगावली चतुर्मास की घटना है कि नगर से दो किलोमीटर दूर एक बाग है, उसमें एक छोटी-सी गुजरी (गढ़ी) थी। वहां जाकर आप ध्यान लगाते थे। एक दिन अचानक पतला सर्प लम्बे समय तक आपके कंधे पर डली चादर से छेड़छाड़ करता रहा लेकिन आपको उससे कोई क्षति नहीं पहुंची। इस घटना के बाद भी आप वहां जाकर ध्यान लगाते थे।

आचार्य विद्यासागर का वात्सल्य भी आपके ऊपर बहुत रहा। एक प्रवचन सभा में आचार्यश्री ससंघ विराजमान थे। प्रवचन हेतु आचार्य श्री के समक्ष माइक लगाया गया। लेकिन आचार्य श्री ने आदेश दिया कि प्रथम प्रवचन क्षुल्लक गुणसागर जी का होगा। बाद मैं प्रवचन करूंगा। आचार्य श्री के आदेश से माइक क्षुल्लक जी के सामने लगाया गया। इस प्रकार आचार्यश्री के सान्निध्य में यह प्रथम प्रवचन था, जो बहुत ही प्रभावक रहा।

आचार्यश्री के संघ के साथ क्षुल्लक जी का वर्षायोग भी थूवौन जी में हुआ। स्वाध्याय, साधना सब कुछ ठीक चल रहा था। आचार्य श्री मूलाचारप्रदीप का स्वाध्याय कराते थे। बीच-बीच में क्षुल्लक गुणसागर जी को संकेत करते रहते थे, कि कब तक कटोरा में लेकर आहार करोगे? क्षुल्लक अवस्था में बहुत समय हो गया है, अब तो मुनि दीक्षा होनी चाहिये।

आप क्षुल्लक अवस्था में गुणों के सागर थे। बाद में ये गुण ज्ञान सागर के रूप में परिवर्तित हो गये। अर्थात् 31 मार्च, 1988 को आपने मासोपवासी आचार्य श्री सुमति सागर से दिगम्बरी दीक्षा ले ली और आपको नाम मिला मुनि ज्ञानसागर जी।

दीक्षाएं तो बहुत होती हैं, हो रही है, और होंगी। पर सही दीक्षा वही है जो दीक्षा लेने वाले का तो भला करे ही, साथ में सम्पर्क में आने वाले जीवों का भी भला करें। सन् 1989 में आचार्य सुमति सागर ने आपको 30-1-89 को उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया।

आप में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है सरलता, ऋजुता, निष्कपटता आधुनिक युग मे ऐसे महान् गुरु मिलना कठिन है। आचार, विचार और ज्ञान मे श्रेष्ठ होते हुए भी आपमें अहंकार की परछायी भी नहीं है।

आप में एक विशेषता यह भी है कि यदि यह आभास हो जाए कि अमुक व्यक्ति कुछ जानकार है, विद्वान है और वह समाज के लिए, समाज के उत्थान के लिए किसी न किसी रूप में कुछ दे सकता है, उपाध्यायश्री उसे कुछ न कुछ करने की प्रेरणा देते रहते हैं, जिससे धर्म का प्रचार हो, वे सहजभाव में

विद्वान से पूछ लेते हैं कि समाज को देने के लिए कोई कार्यक्रम है। वे निरन्तर विद्वानों को प्रेरित करते रहते हैं।

आपकी दृष्टि चतुर्मुखी है और चेतना अन्तर्मुखी। आपकी भावना रहती है कि समाज, साहित्य, धर्म और संस्कृति का सर्वांगीण विकास हो। आपकी प्रेरणा से संचालित संस्थाएं इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। जैसे प्राच्य श्रमण भारती मुजफ्फरनगर जो अप्रकाशित, अनुपलब्ध ग्रंथों के प्रकाशन का कार्य सम्हाले हुए हैं।

अब तक इस संस्था से अनेक दुर्लभ एवं महनीय ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है जो निम्न प्रकार है:-

1. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (चारों भाग)
2. त्रिलोयपण्णति (तीनों भाग)
3. डा॰ महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य स्मृतिग्रंथ
4. प्र॰ आ. शान्तिसागर (छाणी) स्मृतिग्रंथ
5. आराधना कथा प्रबन्ध
6. महावीर रास
7. कुन्द कुन्द भारती
8. रत्नकरण्ड श्रावकाचार
9. मेरी जीवनगाथा (दूसरा भाग)
10. जैनधर्म
11. जैनशासन
12. प्रमेय कमल मार्तण्ड परिशीलन
13. न्यायकुमुदचन्द्र परिशीलन
14. षट्खण्डागम की शास्त्रीय भूमिका
15. धर्मफल सिद्धान्त
16. मानवता की धुरी
17. मध्यकालीन जैन सटक नाटक
18. षड्खगंऽम लेखन-कथा
19. मुक्ति पथ की ओर
20. भा.वाङ्.मय में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य
21. सराक क्षेत्र
22. सराक सर्वेक्षण
23. सराकोत्थान प्रेरणा के स्वर
24. सराक ज्ञानाञ्जलि
25. सराक प्रगति की राह पर
26. स्मारिका सराक विद्वत्संगोष्ठी दिल्ली
27. स्मारिका आ.कुन्द कुन्द राष्ट्रीय संगोष्ठी
28. स्मारिका आचार्य समन्तभद्र संगोष्ठी मेरठ
29. जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी सहारनपुर
30. जैन न्याय को आ.अकलंक देव का अवदान
31. तीर्थंकर पार्श्वनाथ (संगोष्ठी)
32. क्षुल्लक वर्धमान सागर जीवन परिचय
33. आ.शान्तिसागर (छाणी) जीवन परिचय
34. भव्य कल्याणक
35. खबरों के बीच
36. आशा के सुर जीवन का संगीत
37. उगता सूरज
38. जिन खोजा तिन पाइयां
39. ज्वलंत प्रश्न शीतल समाधान
40. प्रवचन पढ़ो तनाव भगाओ
41. शाकाहार एक जीवन पद्धति
42. शाकाहार एवं विश्व शान्ति

43. विश्व शान्ति एवम् अहिंसा प्रशिक्षण
44. शाकाहार विजय
45. शाकाहार या मांसाहार : फैसला आप
46. मादक पदार्थ व धूम्रपान
47. गर्भपात उचित या अनुचित :
48. धूम्रपान जहर ही जहर
49. शाकाहार सर्वोत्तम आहार
50. Vegetarian Nutrition
51. ज्योर्तिधरा
52. समाज निर्माण में महिलाओं का योगदान
53. भगवान राम
54. नानी-नानी कहो कहानी
55. बैठो-बैठो सुनो कहानी
56. सफर की हमसफर
57. जग जा मेरे लाल
58. डुबकी लगाओं मोती पाओ
59. बुराई की विदाई
60. लुढ़कन रपटन कम्पन का साथी
61. मन की आवाज
62. अभिवंदना पुष्प
63. अभय की साधना
64. डा. हीरालाल जैन व्यक्ति और कृत्तित्व
65. यह है जैन सिद्धान्त
66. पुरस्कार समारोह
67. स्मर्णिका
68. ज्ञानसागर की कहानी चित्रों की जुबानी
69. पारिवारिक शांति और अनेकांत
70. ज्ञानायनी

पत्र-पत्रिकाएँ :- 1. सराक-सोपान (हिन्दी मासिक); 2. ज्ञान-दर्पण (हिन्दी मासिक)

जिनवाणी को जन-जन तक पहुंचाने का उपाध्याय श्री का प्रयास स्तुत्य एवं वन्दनीय है।

विद्वानों को संरक्षण और प्रोत्साहन देने के लिए श्रुतसंवर्धन संस्थान, मेरठ कार्यरत है। इसके माध्यम से तिजारा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय चार विद्वानों को 31-31 हजार रुपये की राशि भेंट कर सम्मानित किया गया।

भगवान महावीर, भगवान पार्श्वनाथ जी की जीवन स्थली विहार प्रान्त रहा है। वहाँ के मूल निवासी मात्र ढ़ाई हजार वर्ष के अन्तराल में नेतृत्व के अभाव में श्रावक से सराक बन गये। वे आज भी पार्श्वनाथ को अपना आराध्य (ईश्वर) मानते हैं। बहुत अन्तराल के बाद उपाध्याय ज्ञानसागर जी की दूरदृष्टि उन पर पड़ी। उन्होंने अपनी साधना, त्याग, तपस्या के बदले यही चाहा कि सराक बन्धु पुन: भगवान महावीर, भगवान् पार्श्वनाथ के वैभव को समझें और जीवन में उसे उतारें। उन्होंने गांव-गांव की डगर-डगर पर चलकर सराक जाति को पुन: श्रावक बनाया। वहाँ गोष्ठियाँ, विराट सराक सम्मेलनों का आयोजन हुआ। आपकी प्रेरणा से जैन समाज के नेताओं ने आर्थिक, सामाजिक सहायता दी। उन्हें रोजगार, उद्योग, व्यापार, तकनीकी शिक्षा में निपुण करने का वीणा उठाया। आज वे सराक बन्धु हर क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं और करेंगे। ये तो उपाध्यायश्री के शुभाशीर्वाद का ही सुफल है।

शाकाहार प्रचार की आपने खूब प्रेरणा दी और आपके सान्निध्य में अनेक शाकाहार सम्मेलन, शाकाहार रैलियां, शाकाहार गोष्ठियां हुई। शाकाहार पर अनेक प्रदर्शनियां भी लगायी गयी।

राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठियों में स्वर्गस्थ मूर्धन्य विद्वानों पर संगोष्ठियाँ तो आपके सान्निध्य में इतनी हुई कि किसी तपस्वी के सान्निध्य में होने वाली सबसे अधिक संगोष्ठिया है। जिनमें प्रमुख है-

1. अम्बिकापुर (म. प्र.) में जैन विद्या के मनीषी विद्वान डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य व्यक्तित्व एवं कृतित्व
2. दिल्ली में कुतुबमिनार संगोष्ठी
3. आचार्य कुन्दकुन्द संगोष्ठी
4. आचार्य समन्तभद्र संगोष्ठी
5. जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी
6. जैन न्याय को आचार्य अकलंकदेव का अवदान
7. सराक विद्वतसंगोष्ठी
8. तीर्थंकर पार्श्वनाथ संगोष्ठी
9. तिजारा (राजस्थान) में युगवीर पं. जुगुल किशोर मुख्तार : व्यक्तित्व कृत्तित्व
10. अजमेर (राज.) षटखण्डागम ग्रन्थों के सम्पादक/अनुवादक डॉ. हीरालाल जैन व्यक्तित्त्व एवं कृत्तित्व विषय पर आधारित।
11. अजमेर में मथुरा का जैन सांस्कृतिक पुरा-वैभव
12. सूर्यनगर, गाजियाबाद में-आदिनाथ, नेमीनाथ उपाध्याय व्यक्तित्त्व एवं कृत्तित्व विषय पर।

इसके अतिरिक्त जैन विद्या के मनीषी विद्वानों पर राष्ट्रीय वि. संगोष्ठिया प्रस्तावित हैं जो समयानुसार होगी।

परमपूज्य उपाध्यायश्री का आत्मीय वात्सल्य एवं आशीर्वाद विद्वत्समाज को सदा प्राप्त रहता है। विद्वानों की प्रति आपका सहज अनुराग है। वरिष्ठ एवं कनिष्ठ सभी विद्वानों के सिर पर आपके वात्सल्य की छाया समानरूपेण बनी रहती है। आपकी प्रेरणा और आशीर्वाद से श्रुत संवर्द्धन संस्थान मेरठ से प्रत्येक वर्ष पाँच विद्वानों को सम्मानित करने का निर्णय लिया है। अधिकाधिक विद्वानों को सम्मान मिल सके इसके लिए निम्न पुरस्कार प्रारंभ किये गये हैं-

1. आचार्य श्री शान्तिसागर (छाणी) स्मृति पुरस्कार।
2. आचार्य सूर्य सागर स्मृति पुरस्कार।
3. आचार्य विमल सागर (भिण्ड वाले) स्मृति पुरस्कार।
4. आचार्य सुमति सागर स्मृति पुरस्कार।

5. मुनि वर्द्धमान सागर स्मृति पुरस्कार।

6. परम पूज्य उपाध्याय श्री की पावन प्रेरणा से बंगाल/बिहार सराक क्षेत्र में उत्कृष्ट सामाजिक कार्य करने तथा सराकोत्थान हेतु जन जागृति उत्पन्न करने के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु **सराक पुरस्कार** की स्थापना की गई।

7. उपाध्याय श्री के द्वारा जैन संस्कृति के संरक्षण में दिये जा रहे अप्रतिमा योगदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु श्रुत संवर्धन संस्थान, मेरठ ने **उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** की स्थापना की। इस पुरस्कार के अंतर्गत जैन साहित्य, संस्कृति अथवा सभाग के संरक्षण/विकास में उत्कृष्ट योगदान देने वाले विशिष्ट व्यक्ति/संस्था को 1,00,000 रु. की नगद राशि, प्रशस्ति एवं स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया जायेगा।

उपाध्याय श्री ने प्रत्येक क्षेत्र में एक अग्रणीय कार्य किया जैसे अखिल भारतीय माध्यमिक प्रतिमा सम्मान। मेरठ में वुद्धिजीवियों के लिए अखिल भारतवर्षीय डाक्टर कॉम्पलैक्स की स्थापना।

भगवान महावीर के 2600वीं जन्म जयन्ती वर्ष समारोह में प्रथमवार 26 जैन विद्या के धुरीण विद्वानों को आपकी प्रेरणा से एवं आप के सान्निध्य में सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया है।

उपाध्याय श्री के मन में विद्वानों की स्थिति सुधारने और उनका स्तर ऊँचा करने के लिए जो चिन्ता और लगन है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

विद्वानों की शीर्षस्थ संस्था अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् का स्वर्ण जयंती वर्ष समापन समारोह का आयोजन भी आपके आशीर्वाद से 15 से 17 जून 2001 को सम्पन्न होने जा रहा है जिसमें भारतवर्ष के प्राय: समस्त विद्वान् उपस्थित हो रहे हैं।

उपाध्याय श्री का व्यक्तित्व और कृतित्व ही विशाल है जहाँ हर क्षेत्र के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व्यक्ति आपके चरणों में आते हैं और मंगल आशीर्वाद पाते हैं।

विद्वानों के शिल्पी - मुनिश्री सुधासागर जी महाराज

प्राचार्य निहालचंद जैन

परम पूज्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज इस युग के संत शिल्पी आचार्य हैं जिनकी मंद-मंद मुस्कान में जीवन सौरभ की अपरिमेय गंध विलसती है। जिनके चरण-वीतराग-चारित्र की ओर अनथके अनवरत बढ़ रहे हैं। इस संत ने अपने पीछे, एक महान शिष्य परम्परा का स्वर्ण इतिहास रच डाला है। पूज्य मुनिश्री योगसागर व समयसागर जैसे कर्मों का बंधन काटने के लिए घर का घर परवाना हो गया। पू. मुनि क्षमासागर- एक संवेदनशील दार्शनिक दार्शनिक संत पू. मुनि सरलसागर- आगम के गहरे गोताखोर आदि हैं। शिष्य परम्परा के इन नामों के साथ एक स्वनामधन्य पूज्य मुनि सुधासागरजी म. हैं जिनकी देह में कामदेव और विदेह में आत्मदेव की संधि मित्रता है।

गौरवर्ण, समानुपातिक देहयष्टि, नयनाभिरागी तेजस्वी मुखमण्डल, गाम्भीर्य मुस्कान बिखेरती पारदर्शी आँखें, दमकता उन्नत ललाट एक सम्पूर्ण साधुत्व को सहेजे एक अमृतमय व्यक्तित्व।

ईसुर वारा-बीना सागर रेल्वे लाइन का एक छोटा रेल्वे स्टेशन आज पू. सुधासागर जी के नाम से जुड़कर वंदनीय हो गया है। बुन्देलखण्ड की माटी ने न केवल विद्वानों को सृजा है, वरन संतों की महान परम्परा को भी अक्षुण्ण बनाये रखा है। ईसुर वारा : एक अतिशय क्षेत्र भी है जिसने पू. सुधासागरजी को जन्म देकर इसे वंदनीय दर्शनीय बना दिया। स्टेशन के आते ही यात्रियों को 'सुधासागरजी' का नाम मुखरित हो जाता है।

21 अगस्त 1958 मोक्षसप्तमी को जन्मा बालक जयकुमार - श्रीमती शांतिदेवी को कोख को धन्य कर गया। पिता श्री रूपचंद जैन ने क्या यह सोचा होगा कि 'जय' की शिला पर बैठकर एक दिन मेरा बेटा, विश्रुत मनोज्ञ मुनि बनेगा। हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म. प्र.) से बी. काम. की लौकिक शिक्षा आपके परिचय अक्षत का एक कण है। लेकिन इसी शिक्षा ने साधना व संयम की आलौकिक-शिक्षा के लिए एक-पृष्ठ भूमि दी, वह भला कैसे अकिंचित्कर हो सकती है।

जब पू. आचार्य 108 श्री विद्यासागर म. सिद्धक्षेत्र नैनागिरी में अपूर्वज्ञान का मंगल प्रसाद, अभीष्ट-जनों को मुक्त हस्त से बाँट रहे थे, 10 जून, 1980 की वह काल-लब्धि आत्म-चितेरे-जयकुमार के लिए, आत्म उपलब्धि का प्रथम सोपान बन गई। उस दिन ब्र. जयकुमार ने उत्कृष्ट श्रावक का क्षुल्लक व्रत को अंगीकार कर श्री 105 क्षु. परमसागर के रूप में संस्कारित हुए 'विद्यासागर' के सागर तट पर आपने अवगाहन करते हुए अपनी क्षुल्लक साधना को परिष्कृत किया और शीघ्र ही सागर में 15 अप्रैल 82 की ऐलक दीक्षा ग्रहण की।

आचार्य विद्यासागर की यश सुरभि दिगदिगांत में व्याप्त हो चुकी थी। पूरा संघ सम्मेदशिखरजी की यात्रा पर बिहार प्रान्त की ओर अभिमुख हुआ था। ईसरी (रेल्वे स्टेशन-पार्श्वनाथ) सम्मेदाचल यात्रा का प्रथम

पड़ाव है जिसका नाम आते ही पू. सन्त गणेशवर्णी की पुण्यस्मृति बरवस आ जाती है, जहां वर्णी जी की समाधि स्थली है। इसी पवित्र स्थली पर ऐ., परमसागर जी ने, देह के वसन ही नहीं वरन वासना के वसन उतारकर ''दिगम्बर मुनि दीक्षा'' अपने गुरु पू. आचार्य विद्यासागर जी ने प्राप्त की ओर महाव्रत की संयम साधना में संकल्पित हुए। 25 सित. 83 का दीक्षा दिवस आपके जीवन रूपान्तरण का 'अमृत दिवस' (सुधा-दिवस) बन गया। गुरुवर्य ने दीक्षित मुनिश्री को नए नाम से संस्कारित कर श्री 108 मुनिश्री सुधासागर म. सम्बोधित किया- जैसे 'सुधा' नाम धन्य हो गया है, इस संत से जुड़कर।

मुनि दीक्षा, वीतरागी आत्मसाधना के लिए एक प्रबल निमित्त है, निमित्त को कौन झुठला सकता है? निमित्त उपादान की अभिव्यक्ति बनता है। निमित्त आकाश देता है। उपादान को पैर पसारने के लिए संत बनना केवल इसी जन्म की साधना नहीं होती, इसके पीछे कई जन्मों की साधना होती है। वह अतीत की साधना, वर्तमान के संस्कार बनते हैं, उन संस्कारों को प्राण देता है-दीक्षा मंत्र। 'गुरु' के सम्बल के बिना उपादान भी निरुपाय बना रहता है। 'गुरु-अनुकम्पा' में जीवन की सिद्धियां विराजती है। गुरु के वरदहस्त ने ''सुधासागर'' के हाथों में सुधा का घट थमा दिया।

यह महान् संत-हिन्दी/संस्कृत/प्राकृत-अपभ्रंश और अंग्रेजी भाषाओं की पीठ पर चढ़कर वैदुष्य की बहुआयामी दिशाओं में द्रुतगति से बढ़ने लगा। वे आगम व अध्यात्म के साथ-दर्शन/इतिहास/न्याय/सिद्धान्त/व्याकरण/मनोविज्ञान/ओर योग विद्याओं में पारगंत होने लगे। ज्ञान क्षमोयपशम की प्रबलता-स्वाध्याय से कहीं अधिक जीवन की तप साधना ओर ध्यान योग से कहीं ज्यादा प्राप्त होती है। मुनिश्री 'ब्रह्मचर्य' की अखण्ड साधना के आलोक में गहन गूढ़ शास्त्रों में डूबकर आध्यात्मक के मोती चुनने लगे।

तीर्थ-जैन संस्कृति के शिलालेख हैं। बुन्देलखण्ड के जैनतीर्थों का बिखरा हुआ पुरातात्विक वैभव जीर्णोद्धार के लिए अभीप्सित है। मुनि सुधासागर जी के नाम पुरातत्व की सम्पदा से युक्त ''देवगढ़'' के जीर्णोद्धार के साथ जुड़ गया है।

यद्यपि मुनि-किसी का कर्ता नहीं होता, न होन चाहिए परन्तु श्रावकों की भावना को साकार करने में, आशीर्वाद देने में कृपण भी नहीं बनता। साधु परिग्रह से रहित होता है-परन्तु समाज से जुड़ा रहता है समाज के कल्याण की भावना में उनकी साधना का एक पल्लू जुडा होता है। मुनिश्री ने श्रावकों के धार्मिक महोत्सवों को अपनी साधना के मंगल-अर्घ्य द्वारा सफलता के हिमालय तक अवश्य पहुंचाया।

'गजरथ महोत्सवों' में नये कीर्तिमान स्थापित करने में आपका व्यक्तित्व अद्भुत रहा। मेरा अनुभव है 1989 बीना में होने वाले पंचकल्याणक महोत्सव में मुनिश्री का दिशा-निर्देशन आपके बहुआयामी व्यक्तित्व का एक हिस्सा था।

शब्द या भाषा में बड़ी शक्ति होती है। संतों का मुख कमल के समान तथा वाणी-''कमल सौरभ'' के समान होती है। लेकिन प्रभावक वाणी का वरदान-सबको प्राप्त नहीं होता। आगम व आध्यात्म से जनमानस को आंदोलित कर देना, वाणी का वैशिष्ट्य होता है। मुनिश्री में अभिव्यक्ति की विशिष्ट कला है। वाणी में इसकी सिद्धि है। चाहे शीर्ष राजनेता हो या शीर्ष प्रशासनिक-अधिकारी चाहे संत-समागम हो या विद्वानों की संगोष्ठी, अपनी वाणी माधुर्य से सभी को प्रभावित किये बिना नहीं रहते प्रतीकों/बिम्ब-विधानों/सटीक-ठदाहरणों

में आगमानुसार प्रतिपाद्य वस्तु को प्रस्तुत करने की कला मुनिश्री में विद्यमान है। अपने जीवन के अनुभवों को प्रवचन के साथ जोड़कर उसमें प्राण फूंकना आपकी तात्कालिक तीक्ष्ण-बुद्धि का कौशल है।

दार्शनिक होना बड़ी बात है। संत होना उससे भी बड़ी बात है, लेकिन दार्शनिक संत होना बहुत बड़ी बात है। मुनिश्री सुधासागर एक दार्शनिक संत है मौलिक चिंतन आपकी थाती है।

'आध्यात्मिक पनघट', 'अध: सोपान', 'जीवन एक चुनौती', 'सल्लेखना' आदि आपके चिन्तनशीन प्रवचनों के संकलन हैं। 'प्रवचन' वह चिरन्तन धारा है, जिससे अन्तस् विशुद्ध बनता है। साहित्य सृजन में ये कृतियां मुनिश्री के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

''मुनिश्री का मुखरित मौन''-काव्य कृति ने काव्य विद्या को छुआ है। साधना की अतल गहराईयों में पेठकर जो शब्द जन्म लेते हैं वे शब्दातीत-अनुभव को वेदी पर विराजमान होकर काव्य रूप में स्पन्दित होते हैं। अन्तर्यात्रा के लिए प्रेरित ऐसे अनुभवजन्य शब्द-मुनिश्री की कलम की नोंक से सिरजे हैं वे हैं ''विरागभावना'', ''मां मुझे मत मारो'', ''सीप के मोती'', ''अमृत-भारती'' आदि। ये सभी कृतियां मुनि श्री के साहित्यिक प्रतिभा के उज्जवल-पृष्ठ हैं।

मुनि श्री की साधना का एक दूसरा पहलू "राजस्थान' की 'आगम यात्रा' के पुनीत-प्रसंग पर प्रगट हुआ है। आगरा से जयपुर महावीरजी की ओर गमन करते हुए अपने गुरुवर्य आ. विद्यासागरजी के गुरु पं. पू. आचार्य ज्ञानसागरजी, स्मृति पटल पर उतर गये। उनके विस्मृत होते संस्कृत-काव्य ग्रन्थों एवं अन्य हिन्दी ग्रन्थों (जिनकी संख्या लगभग 22 है) के पुनर्प्रकाशन के लिए तथा उन महाकाव्यों में अभिप्रेत आगम रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए विविध साहित्यिक पक्षों के परिप्रेक्ष्य में न केवल, स्वयं स्वाध्याय करने का मन बनाया वरन देश के विशिष्ट जैन विद्वानों, संस्कृत-साहित्य विदों के साथ बैठकर विचार-विमर्श किया।

तत्सम्बन्धी विद्वत् संगोष्ठियों में शोध लेखों का वाचन समीक्षात्मक अध्ययन के द्वारा आचार्य ज्ञानसागर के अथाह ज्ञान से सम्पूरित साहित्य का पुनरावलोकन किया।

लौकिकता में जैसे नाती-बब्बा से पिता की अपेक्षा ज्यादा लगाव रखता है। इस संतपुरुष ने अध्यात्म के दादा--आचार्य ज्ञानसागर को इस प्रकार सच्ची श्रद्धाञ्जली अर्पित की। साँगानेर के प्राचीन अतिशयपूर्ण मंदिरों के तल गृहों से चैत्यालय (जो यक्ष रक्षित हैं) को बाहर दर्शन हेतु लाकर अपनी चमत्कारिक योग साधना का प्रभाव दिखाया। यह घटना मई 94 की है।

मुनिश्री सुधासागर जी एक संवेदनशील संत-पुरुष हैं। करुणा की निर्झरणी-आपके अन्तस में सतत प्रवाहमान रहती है। मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक आप में असहाय व अपंगों के प्रति एक सहज कारुणिक समवेदना है। विद्वानों एवं गुणी जनों के प्रति वात्सल्य भाव-आपकी एक सहजता है। आप में बालक की निश्छलता युवा की संकल्प कर्मठता और ज्ञान की प्रौढ़ता विद्यमान हैं।

आपके आध्यामिक प्रवचन श्रावकों/जन मानस के अन्तराल में सीधे प्रवेश कर चेतना को झंकृत करने वाले होते हैं वाणी में मिसरी या मीठापन एक विशिष्ट सम्पोषता लिए होती है। शिक्षण-शिविरों के माध्यम

से धार्मिक चेतना का संचार करना आपके वैदुष्य का ही प्रभाव हैं। आपके मंगल-प्रवचन "जीवन-अनुभूति" से अनुस्यूत रहे हैं।

जब आप मुस्कान भरी मुद्रा उठाते हैं तो लगता है आपका रोम-रोम हँस रहा है। क्रोध तरसता है आपके पास आने को , माया सकुचाई हुई दूर खड़ी रहती है। आप ऐसे धर्म की पुकार के लिए खड़े हैं जो विद्रूप हिंसा की बाढ़ को रोक सके और समाज के वैमनस्य, तनाव तथा असंतुलन को मिटाकर सूखते वात्सल्य को, प्रेम की सलिल धारा में रुपान्तरित कर सके। इस दिशा में मुनिश्री का संकल्प अटूट है। पूज्य मुनिवर का विद्वानों के प्रति असीम स्नेह होने के कारण प्रतिवर्ष संगोष्ठियों का आयोजन प्राय: होता रहता है। विद्वानों की शीर्षस्थ संस्था अ. भा. दि. जैन विद्त्परिषद् का ऐतिहासिक स्वर्ण जयन्ती वर्ष का उद्घाटन समारोह पूज्य मुनिश्री की प्रेरणा से सांगानेर में अविस्मरणीय रहा है। पूज्य मुनिवर के चरणों में इस अकिंचन लेखक का शत-शत प्रणाम निवेदित है।

'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'

जिसको बुद्धि है, वही बलवान् है।

अधर्म धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धि: सा पार्थ तामसी।

– श्री कृष्ण (गीता) १८-३२

* * *

बुद्धि की शुद्धि के लिए भगवान् की भक्ति से बढ़ कर कोई भी साधन आज तक अनुभव में नहीं आया।

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।

तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च॥

– वेदव्यास (महाभारत)

विद्वानों की परम्परा का संरक्षण आवश्यक

सिद्धान्ताचार्य स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री*

जैसे हिन्दूसमाज में एक ब्राह्मण वर्ण है जो उस समाज के धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में सहायक होने के साथ हिन्दू-संस्कृति के समस्त अंगों का संरक्षण करता है वैसा कोई वर्ग जैन समाज में पृथक् कभी नहीं रहा। इसके अनेक कारण है। सबसे प्रमुख कारण यह है कि जैनधर्म का मुनिमार्ग सदा इस कार्य को करता आया है। एक तरह से श्रावकों के धर्मसाधन में मुनिजनों का बहुत सहयोग रहा है। वे धर्म की धुर को धारण किये हुए थे। स्वकल्याण के साथ परकल्याण भी करते थे। पठन-पाठन, स्वाध्याय, धर्मप्रचार उनके जीवन के अंग थे। वे विद्वान् वक्ता और ग्रन्थकार होते थे। उन्होंने श्रावक-सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना करके उन्हे प्रबुद्ध किया है। इसके साथ ही पुराने समय के श्रावक भी शास्त्रज्ञ होते थे। प्रत्येक जिनमंदिर में शास्त्र सभा की प्रवृत्ति थी। लोगों को अवकाश रहता था और वे उसका सदुपयोग चर्चा-वार्ता में करते थे।

धीरे-धीरे मुनिमार्ग में तो कमी हुई ही, मुनिपरम्परा में भी ज्ञान की हीनता होने से श्रावकों में भी ज्ञान की कमी हुई। यह तो जयपुर, आगरा आदि में कुछ विद्वान् श्रावक हुए, जिन्होंने संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों को अपने समय की ढूँढारी भाषा में अनूदित करके संस्कृत-प्राकृत से अनभिज्ञ जनता के लिए स्वाध्याय का मार्ग सुगम किया। अन्यथा साधारण जनता उससे अनभिज्ञ ही रह जाती और इस तरह धर्म की बड़ी हानि होती। ज्ञान की कमी के कारण ही श्रावकवर्ग में ही नहीं, त्यागी वर्ग में भी ज्ञान के प्रति आदर का अभाव हो गया। और क्रियाकाण्डमूलक बाह्य आचार को ही मोक्ष का मार्ग माने जाना लगा। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि सात तत्त्वों के सम्यक् परिज्ञान के बिना सम्यक्दर्शन नहीं हो सकता और सम्यग्दर्शन के बिना सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता। आज तो जैन शास्त्रोक्त आचार को ही सम्यक्चारित्र माना जाता है, भले ही वह सम्यक्ज्ञान और सम्यक्दर्शन से विहीन हो। आज कोई यह कहने को तैयार नहीं है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बिना पाला जाने वाला चारित्र भी मिथ्याचारित्र है। यह सब ज्ञान की कमी का ही दुष्परिणाम है।

ज्ञान की इस कमी को ही लक्ष्य में रखकर इस बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ ज्ञान-प्रेमी विद्यारसिक श्रेष्ठिजनों का और विद्वानों का ध्यान इस ओर गया और समाज में महाविद्यालयों, विद्यालयों, पाठशालाओं और छात्रावासों की स्थापना करके संस्कृत-विद्या के अध्यापन की प्रणाली को प्रवर्तित किया और गुरुवर्य पं. गोपालदास जी तथा परमपूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी ने विद्यादान देकर तथा विद्याध्ययन के साधन सुलभ कराके जैन समाज में शास्त्रज्ञ विद्वानों की परम्परा का सूत्रपात कया। उसके फलस्वरूप प्रारम्भ के कुछ दशकों में समाज में शास्त्रज्ञ विद्वानों की अच्छी उपज हुई और उनकी एक शास्त्रिपरिषद् भी स्थापित हुई। किन्तु धीरे-धीरे उसके कार्य में शिथिलता आती गई और वह समाप्त प्राय हो गई। प्राय: प्रारम्भ के दो-तीन दशकों में उत्पन्न हुए पुराने विद्वानों की ही वह सभा रही।

---

*वाराणसी

स्व. गुरुवर्य गोपालदासजी की तीसरी आदि पीढ़ियों में भी विद्वानों की उपज में अच्छी, प्रगति हुई। प्रारम्भ में उत्पन्न होने वाले विद्वान् प्राय: आगरा के आस-पास के निवासी थे, क्योंकि सबसे प्रथम महाविद्यालय मथुरा में ही स्थापित हुआ था। उसके पश्चात् बनारस, मुरैना, सागर और इन्दौर में भी विद्यालय स्थापित होने से बुन्देलखण्ड से अधिक परिमाण में विद्वान् उत्पन्न हुए और इस तरह पाँचवें दशक के मध्य तक नवीन विद्वानों की भी अच्छी संख्या उत्पन्न हो गई॥

सन् १९४४ में जब कलकत्ता में भगवान महावीर का २५००वां शासन-महोत्सव बनाया गया तब वहाँ प्राचीन और नवीन विद्वानों का अच्छा जमाव था। उसी समय कलकत्ता के जैन भवन में भा. दि. जैन वित्परिषद् की स्थापना हुई थी। उसमें कलकत्ता में उपस्थित सभी विद्वान् सम्मिलित हुए थे। उसमें वे विद्वान् भी थे जो एक समय शास्त्रिपरिषद् के कर्ता-धर्ता रहे थे। सभी प्रकार के विद्वानों का वह एक ऐतिहासिक सम्मेलन था, जिसमें पुराने विद्वानों ने नवीन विद्वानों के साथ सहयोग किया था और नवीन विद्वानों ने पुराने विद्वानों को सम्मान दिया था। वह विद्वानों की बढ़ती हुई शक्ति और सहयोग का द्योतक था।

उसके बाद भारतवर्ष स्वतंत्र हुआ। स्वतन्त्रता के साथ देश में नई लहर आई। इस लहर ने छोटे-बड़े सभी को प्रभावित किया। आशा थी कि स्वतन्त्र भारत में हिन्दी राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करेगी, और भारतीयता का प्राबल्य होगा। किन्तु बात उल्टी हुई। अंग्रेजी राज्य के समय से भी बहुत अधिक अंग्रेजी भाषा और अंग्रजियत का प्रचार स्वतंत्र भारत में हुआ। साथ ही महँगाई ने सुरसा के मुँह की तरह मुँह फैलाना शुरू किया। अत: सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी का भी पंडित बनना आवश्यक हो गया। उधर समाज में पण्डितों के वेतन का मान बढ़ा तो, किन्तु महँगाई के अनुपात से नहीं बढ़ा। फिर सामाजिक संस्थाओं की नौकरी में जिस सहनशीलता की आवश्यकता होती है, स्वतंत्र भारत के नागरिक जैन विद्वानों में भी स्वतंत्रता का भाव जाग्रत होने से वह नहीं रही। स्थित यह हुई कि अब संस्कृत-विद्यालयों में भी कोई शुद्ध संस्कृत पढ़ने को तैयार नहीं है। अत: अब संस्कृत के आचार्य और अंग्रेजी एम. ए. पास करके उत्पन्न हुए विद्वान् समाज में बहुतायत से पाये जाते हैं और वे पी-एच.डी. करके विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में ऊँचे-ऊँचे वेतन पर कार्य करते हैं। इस तरह से जैन समाज में विद्वानों की कमी नहीं हुई है और न विद्वत्ता में कमी हुई है, किन्तु उनका रास्ता बदल गया है। जहाँ पहले के विद्वान् समाज के आश्रित जीवन व्यतीत करते थे और समाज में रहकर सेवाकार्य करते थे वह बात समाप्त प्राय: है। उसके साथ ही जैनसिद्धान्त और जैनदर्शन की मर्मज्ञता में भी कमी हो गई है। आज के ये उच्च विद्वान् न तो शास्त्रसभाओं में शास्त्रचर्चा करने में सक्षम है और न शास्त्रीय चर्चाओं में उन्हें रस है। यदि कहें कि उन्हें जैन समाज में भी रस नहीं है तो कोई आश्चर्य नहीं है। फिर भी उनकी परम्परा संरक्षणीय है। उसे बन्द कर देने से तो हानि-ही-हानि है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि जैन विद्यालयों में अध्ययन करके तैयार होने वाले ये एम. ए. और आचार्य विद्वान् प्राय: ऐसे देहातों और घरानों से सम्बद्ध होते हैं कि यदि उन्हें इन जैन विद्यालयों का आश्रय न मिलता तो वे शायद ही इस उच्च विद्या के पात्र बनते। उनका जीवन किस ओर जाता, यह भी कहना कठिन है। यह समाज का ही सहयोग है जिसे पाकर उनका जीवन बना है। इस तरह समाज जो विद्यादान करती है उससे समाज के गिरे हुए अंगों को उठने में बल मिलता है और उससे समाज को भी बल मिलता है।

जैन समाज व्यापारी समाज है। धनिक व्यापारियों के लड़के तो संस्कृत विद्या पढ़ेंगे ही क्यों? यह विद्या तो वे ही पढ़ते हैं जिनके पास पढ़ने के साधन नहीं होते। यदि ये साधन बन्द कर दिये जायें तो गंवई गांव में रहने वाले साधारण जनों के बच्चे विद्या से वंचित रहकर अपना तो अनिष्ट करेंगे ही, समाज को भी उससे हानि होगी। उसमें विद्वानों का अभाव हो जायेगा। फिर जो ये आज उभयभाषाविज्ञ विद्वान् पैदा होते हैं इन्हीं में से कोई-कोई ऐसे भी निकले है, और निकलते हैं जिनसे जैनसमाज का मस्तक ऊँचा होता है।

आज भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् इस प्रकार के सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त करके उन्हें जैन समाज और जैनधर्म की सेवा में आकृष्ट करने का ही प्रयत्न करती है। वह विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले विभिन्न विचार के जैन विद्वानों का एक ऐसा गुलदस्ता है जिसमें विविध रंग और गन्ध के फूल एकत्र होकर समाज की शोभा बढ़ाते हैं और अपनी सुवास से उसे सुवासित करते है। समस्त दि. जैन समाज के समस्त विद्वानों का यह संगठन सदा सबकी अभ्यर्थना करता आया है। जिन्हें वह नहीं रुचता उन्हें भी वह अपनाये हैं। यही उसकी गरिमा है। उसकी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हमारी समाज से यही अपील है कि वह विद्वानों की इस परम्परा को सदा संरक्षण प्रदान करता रहे। यह संरक्षण समाज का ही संरक्षण है।

विद्या मनुष्य का अधिक रूप है और छिपा हुआ गुप्त धन है, विद्या से भोग सुख और यश प्राप्त होता है। विद्या गुरुओं की गुरु है। विदेश में विद्या भाई के समान है। विद्या परम देवता है; राजाओं में विद्या ही पूजी जात है, धन नहीं। विद्या से हीन मनुष्य पशु है।

- भर्तृहरि

विद्वान, विद्वत्परिषद् और पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री

कुछ संस्मरण

ब्र. अमरचंद्र जैन, कुंडलपुर

मेरे पूज्य पिताजी पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री ने बड़े बाबा की छत्र-छाया में पूज्य आचार्य १०८ श्री विद्यासागर जी और उनके संघ के सान्निध्य में छह वर्ष पूर्व कुंडलपुर क्षेत्र पर समाधि प्राप्त की थी। उनके जीवन की अनेक स्मृतियां उनके द्वारा सामाजिक, धार्मिक व राष्ट्र के संबंध में समय-समय पर कही गई बातों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिससे आज की नई पीढ़ी उस धारा एवं भाषा को समझ सके।

विद्वत् परिषद की स्थापना:-

सन् 1943-44 की बात है। उस समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ता था। मैं उन दिनों पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री के साथ कलकत्ता आया था। वहां वीर शासन जयन्ती के जनक स्व. बाबू छोटेलाल जी ने इस उत्सव का सारा संयोजन किया था। सर सेठ हुकुमचंद जी इस उत्सव के प्रथम अध्यक्ष थे और साहू शांतिप्रसाद जी स्वगताध्यक्ष थे। यह उत्सव बहुत समारोह पूर्वक किया गया था। इसमें विद्वानों की गिरती हुई स्थिति एवं साख के मद्देनजर विद्वानों को समाज में यथोचित स्थान, सम्मान तथा प्रमाणिकता एवं उनके आर्थिक सुधार हेतु प्रयास करने का प्रस्ताव पारित किया गया। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् की स्थापना की गई। पं. जगन्मोहन लाल जी का इसके निर्माण में प्रमुख हाथ था। इसका प्रथम अधिवेशन कटनी में पूज्य वर्णी जी के सान्निध्य में एवं पं. जगन्मोहन लाल जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस माध्यम से विद्वानों ने प्रतिष्ठा पाई। वर्णी जी के दिशा-निर्देश बड़े प्रेरक सिद्ध हुए।

इससे समाज में विद्वानों की संख्या में वृद्धि हुई नया सामाजिक वातावरण बना एवं नए साहित्य एवं प्राचीन साहित्य के भाषानुवाद का कार्य प्रारंभ हुआ। परिषद् के माध्यम से विद्वानों ने समाज में धार्मिकता का प्रवेश कराया और सामाजिक धार्मिक समस्याओं पर दिशा-निर्देश भी दिए। इसके माध्यम से विद्वानों की स्थिति सुधरी एवं उनके बच्चे लौकिक शिक्षा के साथ धार्मिक संस्कारों में संपन्न हुए।

जब यह पीढ़ी बदली तब समस्याएं किंचिंत जटिल हुई। नई पीढ़ी ने लौकिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया और आजीविका के नए क्षेत्र जन्में। समाज में विद्वानों की संख्या बढ़ी एवं वे समाज को नई परिस्थितियों में नेतृत्व देने लगे।

सभा का अनुशासन

वीर शासन जयंती उत्सव की एक बैठक बेलगछिया जैन मंदिर के प्रांगण में चल चल रही थी उसमें बुंदेलखंड के एक विद्वान को बोलने का अवसर दिया गया। भाषण के बीच में साहू शांतिप्रसाद जी ने उन्हें टोका "जल्दी समाप्त करें।"

*म. प्र.

मेरे पिताजी को उनका यह कथन सहन नहीं हुआ वे तुरंत खड़े हुए और साहू जी से बोले "आप बैठ जावें" सभापति की अनुमति के बिना यह टोका-टाकी जन सभा के अनुशासन के अनुरूप नहीं है और साहू जी तब बैठ गए।

सभा विसर्जन के बाद साहू जी ने स्व. बाबू छोटे लाल जी से पूछा "ये विद्वान कौन थे?" बाबू जी ने उनका परिचय दिया और कहा, "इनसे मत उलझना। वे जो कहते हैं वह करते भी हैं।"

मेरे पिताजी की साहू जी से यह पहली मुलाकात थी।

शास्त्र श्रवण की पात्रता

श्री साहू जी पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री से बहुत प्रभावित थे। वे अनेकों बार पर्यूषण पर्व पर उनके यहां कलकत्ता जाते थे व पारिवारिक प्रवचन करते थे।

एक बार की बात है कि पर्यूषण प्रवचन का संभवत: दूसरा या तीसरा दिन था। प्रवचन के दौरान अनेक बार उनके टेलीफोन आते थे, वे उठकर चले जाते व फिर आकर बैठ जाते थे। तीसरे दिन जब ऐसा हुआ पिताजी ने शास्त्र वाचन बंद कर दिया व कहा "जब आपको सुनने का समय व अभिलाषा हो उस समय वाचन करूँगा। यह जिनवाणी का अपमान है। आपमें सुनने की पात्रता नहीं है।" साहू जी ने सुना व तत्काल उनके समझ में आ गया। उस दिन साहू जी ने अपने टेलीफोन ऑपरेटर से कहा कि मुझे 10 बजे तक या जब तक मैं पण्डित जी के साथ चर्चा में व्यस्त रहूँ कोई फोन न करना।

श्वेताम्बर-दिगम्बर एक प्रस्ताव :

बात वीर शासन जयंती उत्सव के समय की है। कलकत्ता में यह प्रस्ताव रखा गया कि दिगम्बर एवं श्वेताम्बर समाज को एक होना चाहिए। सभी धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव एक साथ मनाना चाहिए। इस संबंध में अनेक प्रस्ताव आए जिन पर सहमति न हो सकी। इस पर पंडित जी ने कहा, "पर्यूषण पर्व की समाप्ति पर पंचमी को श्वेताम्बर समाज क्षमावाणी मनाता है और दिगम्बरों का प्रथम दिन भी पंचमी का क्षमाधर्म का दिन है तो क्यों न हम दोनों संप्रदाय एक ही दिन क्षमावाणी मनाकर आपस में सहयोग बढ़ावें।"

यह प्रस्ताव मान्य तो हुआ पर चला नहीं।

विद्वानो की स्थिति में परिवर्तन :

आज से 55 वर्ष पूर्व समाज में विद्वानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। फलत: पंडितों की दूसरी पीढ़ी ने कॉलेजों की पढ़ाई चालू की वे संस्कृत महाविद्यालयों की सुविधा का लाभ उठाने लगे। इन 30-35 वर्षो में जैन विद्वानों की एक नई पीढ़ी तैयार हो गई है जो विश्वविद्यालयीन अध्ययन के साथ-साथ धर्म शास्त्रों की अध्येता भी हैं। उसे अपनी आजीविका के नए अवसर मिले एवं जहां भी विद्वान् गया स्थानीय समाज ने उसे सम्मान दिया।

अब तीसरी पीढ़ी आ रही है। राष्ट्र के चरित्र में तीव्रता से गिरावट आ रही है। हमारा समाज भी इससे अछूता नहीं है। दूसरी पीढ़ी में समाज में शास्त्रीय अध्ययन, मनन व चिंतन की स्थिति किंचित कमजोर

होने लगी। आर्थिक सम्पन्नता से माता-पिताओं ने भी सीधे ही अपने बच्चों को नए शिक्षा संस्थाओं में भेजना शुरू किया जहां वर्ष में केवल 120-130 दिन पढ़ाई होती है। उच्च शिक्षा की सुविधा के कारण लोग पी-एच.डी. भी होने लगे वर्तमान में पी-एच.डी. उपाधिधारी अनेक विभागों में सेवाकार्य करते मिल जावेंगे। यह तीसरी पीढ़ी धर्मशास्त्रों की अल्पअध्येता है लेकिन यह कला या विज्ञान महाविद्यालयों में अध्यापन करते हैं तथा सरकारी सेवाओं में भी कार्यरत हैं।

अभी कुछ वर्षों से साधु-साध्वियों की संख्या एवं पद विस्तार वृद्धि के कारण कुछ धार्मिक चेतना आई है। इनके आचरण से प्रभावित श्रावकों ने जगह-जगह जैन धर्म विषयक सामान्य एवं तुलनात्मक दृष्टि से अपना आगमोक्त एवं वैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में प्राय: दूसरी पीढ़ी के विद्वान सम्मिलित होते हैं कुछ तीसरी के भी। यह कुछ मुनिराजों की सोच का परिणाम है कि उन्हें समाज की गिरती मौलिक स्थिति, हिंसा का तांडव, धर्माचरण विमुखता तथा अन्य समस्याओं ने आंदोलित किया। आज पाप करना जितना सरल है उतना कभी नहीं था। टी.वी. आदि माध्यमों से जो मानसिक धरातल का अध: पतन हो रहा है उसे रोकने की आवश्यकता है।

आज और कल की संगोष्ठियों में भाग लेने वाले प्राय: पी-एच.डी. लोग ही हों या इन संगोष्ठियों में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मतों का विवेचन या समन्वय भी होगा। अनेक विद्वान विभिन्न मान्यताओं का विश्लेषण कर यथार्थ का चित्रण भी करेंगे। पर क्या वे धार्मिक संगोष्ठियां समाज के धार्मिक चित्र को और नयी पीढ़ी की मौलिकत: उन्नत करने में सफल होंगी? पूज्य पिताजी ने कहा था ''सामाजिक क्षेत्र में काम करने से यश नहीं मिलता समाज के बीच में इंजन का ''ड्राइवर'' न बनकर ''गार्ड'' बनकर रहना होगा आज की नई पीढ़ी को यह वाक्य स्मरण में रखकर ही समाज को दिशा देनी होगी।''

सुखार्थी को विद्या कहाँ, विद्यार्थी को सुख कहाँ? सुख को चाहे तो विद्या छोड़ दे, विद्या को चाहे तो सुख त्याग दे।

- अज्ञात

जैन साहित्य और समाज के उत्थान में विद्वत्परिषद् का योगदान

डॉ. नेमिचन्द्र प्राचार्य*

विद्वत्परिषद् विविध विचार वाले विद्वानों का एक संगठन है। सभी विद्वानों द्वारा मान्य बातें ही मंच पर रखी जाती है। विद्वत्परिषद् के नीतिगत सिद्धान्त एक होने के कारण विविध भाषा, विविध प्रान्त एवं विविध संस्थाओं से जुड़े रहकर भी सभी एक हैं।

विद्वत्परिषद् का दायित्व–समाज के बीच विद्वान् का स्थान गरिमा पूर्ण हैं। विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह समाज को आत्महित के मार्ग पर लगाये रखे। समाज के विवादों को दूर करने में सहयोग करें। स्वयं के चारित्र को उन्नत बनाये रखकर समाज के सभी वर्गों में अच्छे संस्कार डाले। समाज को ऐसा साहित्य दे जिसे पढ़कर व्यक्ति-व्यक्ति की प्रगति हो।

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद उनकी परम्परा के समृद्ध आचार्यों ने प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में साहित्य की रचना कर प्राचीन एवं अर्वाचीन समाज व्यवस्था से अवगत कराया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दि में समाज की बोलचाल की भाषा प्रान्त भेद के कारण कन्नड़, तमिल, तेलगु, मराठी, राजस्थान ढूंढारीभाषा के साथ-साथ हिन्दी रही। प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ आधुनिक भाषा में उपलब्ध नहीं थे अत: समाज के श्रेष्ठ विद्वानों ने उनकी टीकायें लिखकर सर्व जन सुलभ बनाया। वचनिकायें लिखकर समाज का महान उपकार किया है। उनमें स्वनाम धन्य पंडित टोडरमल जी, पं. सदासुखदास जी, पं. जयचंद जी छाबड़ा, कविवर बनारसीदास जी, भैया भगवती प्रसाद आदि विद्वान् प्रमुख रहे। उनके परिश्रम के फलस्वरूप जैन समाज में वचनिकाओं के माध्यम से स्वाध्याय की प्रवृत्ति चली। करुणानुयोग के गो. जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय टीकाओं के बल पर ही सुलभ हो सका।

जैन समाज के सामने एक ऐसा भी समय आया था जब विद्वानों का मिल पाना, तत्वार्थ सूत्र भक्ताम्बर आदि का पाठ सुन पाना कठिन था। ऐसे समय में जैनेतर असाटी समाज में जन्म लेकर जैन दर्शन एवं न्याय सिद्धान्त का अध्ययन कर पं. गणेश प्रसाद जी वर्णी ने जैन विद्वान तैयार करने के लिए वाराणसी में स्याद्वाद संस्कृत महाविद्यालय, सागर में श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, मुरैना में गोपाल दि. जैन सिद्धान्त विद्यालय, बीना, कटनी, साढूमल, बरूआसागर आदि स्थानों पर विद्यालयों की स्थापना करवाई। गाँव-गाँव घूमकर पाठशालायें खुलवाई जिनमें विद्यालयों से अध्ययन कर निकले हुए विद्वानों ने जैन समाज के बच्चों एवं वृद्धों में नई जागृति पैदा करने का कार्य किया।

साहित्य रचना एवं हिन्दी भाषा में खोजपूर्ण भूमिकायें लिखकर तथा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों की टीकायें लिखने का सर्वश्रेष्ठ कार्य उक्त विद्यालयों से निकले विद्वानों का ही है। उनमें निम्नलिखित विद्वानों के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। पं. भूरामल जी शास्त्री (आचार्य ज्ञान सागर जी) पं. माणिक

*खुरई

चंद जी कौन्देय न्यायाचार्य, फिरोजाबाद, पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. वंशीधर जी, पं. देवकीनन्दन जी शास्त्री, पं. जीवन्धर जी, पं. फूलचंद जी सिद्धान्त शास्त्री, पं. महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य, पं. कैलाशचंद जी शास्त्री, पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री, पं. दयाचंद जी सिद्धान्तशास्त्री, पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य, पं. बालमुकुन्द जी शास्त्री, पं. हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्री, पं. बालचंद्र जी सिद्धान्तशास्त्री, डॉ. पं. दरबारी लाल जी कोठिया, डॉ. पं. पन्ना लाल जी साहित्याचार्य, डॉ. पं. नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य आरा, डॉ. पं. हरीन्द्र भूषण जी, डॉ. राजाराम जी आरा, पं. उदय चंद जी सर्वदर्शनाचार्य, डॉ. कस्तूर चंद जी कासलीवाल, पं. अमृतलाल जी दर्शनाचार्य, पं. डॉ. हुकमचंद जी भारिल्ल, डॉ. पं. देवेन्द्र कुमार जी शास्त्री, पं. गोपीलाल जी अमर, डॉ. पं. रमेश चंद जी बिजनौर, डॉ. खुशालचंद जी गोरावाला, डॉ. गोकुल चंद जी वाराणसी, डॉ. भागचंद जी भास्कर आदि। इसके अतिरिक्त डॉ. हीरालाल जी, डॉ. एन. एन. उपाध्ये आदि विद्वानों ने उक्त श्रेष्ठ विद्वनों के सहयोग से षट्खण्डागम, कषाय पाहुड, महाबन्ध तिलोय पण्णति, आदि दुरूह्य ग्रन्थों की टीकायें हिन्दी भाषा में कर एवं करवा कर जैन साहित्य को सर्वजन सुलभ बनाया है। जैन समाज को विश्व की जैनेतर समाज के सामने सीना तान कर जीने का अवसर प्रदान किया है।

उक्त विद्वानों के साथ स्वाध्याय करके पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार तथा पं. रतनचंद जी मुख्तार ने भी समाज को लेखन एवं स्वाध्याय की दिशा-निर्देशित की है।

एक समय ऐसा भी था जब आर्य समाज के विद्वान् जैन विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते थे तब पं. राजेन्द्र कुमार जी मथुरा, पं. अजित कुमार जी मुल्तान, पं. मंगलसेन जी अम्बाला आदि विद्वनों ने आर्य समाज को शास्त्रार्थ में पछाड़ा तथा जैनधर्म एवं जैनसमाज का मस्तक उन्नत किया।

जैन समाज ने जैन विद्यालयों की स्थापना में जितना द्रव्य लगाया उसका हजार गुणा कार्य उन विद्यालयों से निकले हुए विद्वानों ने किया है।

इस प्रकार विद्वत्परिषद् के श्रेष्ठ विद्वानों ने जैन साहित्य, समाज एवं धर्म प्रचार के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है। वर्तमान में भी विद्वान् साहित्य, समाज एवं धर्म के प्रचार-प्रसार में जुटे हुए हैं।

विचारकों को जो चीज आज स्पष्ट दीखती है दुनिया उस पर कल अमल करती है। **- विनोबा**

***

विचारक दृष्टिमान् होते हैं। **- विनोबा**

मध्यवर्ती विद्वानों की एक 'जागरुक संस्था दि. जैन विद्वत् परिषद्'

सुमतिचन्द्र शास्त्री

किसी जमाने में पुराने उत्कृष्ट विद्वानों ने एक शास्त्री परिषद् की स्थापना की जिसके प्रमुख थे पूज्य पण्डित मक्खनलाल जी शास्त्री, पण्डित इन्द्रलाल जी शास्त्री, पं. खूबचन्द्र जी शास्त्री, पं. लालाराम जी शास्त्री, न्यायाचार्य पण्डित माणिक चन्द्र जी शास्त्री, पं. गोरेलाल जी शास्त्री, पं. श्रीलाल जी पाटनी अलीगढ़ आदि यह परिषद् अपना एक मुख पत्र जैन सिद्धान्त के नाम से भी निकालती थी।

इस परिषद् को आगे बढ़ाने में पिछले कई दशकों से स्व. पं. लाल बहादुर शास्त्री और श्री पं. बाबूलाल जी जमादार ने बहुत प्रयास किया और इसी तरह, पं. सागरमलजी विदिशा और डॉक्टर श्रयांस कुमार जी बड़ौत ने इसको काफी गति दी।

आजकल शास्त्री परिषद् को अच्छी ऊँचाईयों के साथ उसके अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश और मंत्री श्री डॉ. जयकुमार जी सफलता के साथ प्रयासरत हैं।

पिछले समय काफी वर्षों पूर्व अखिल भारतीय दि. जैन विद्वत परिषद् का गठन हुआ और इसने भी बड़े-बड़े उल्लेखनीय कार्य किए कलकत्ते में इसका बड़ा ही गौरवशाली अधिवेशन हुआ जिसमें गुरुणां गुरु श्री गोपालदास बरैया की जन्म जयंती बड़े समारोह के साथ मनायी गयी क्योंकि कलकत्ते में ही गुरु जी का बंगाली विद्वानों के बीच बहुत ही प्रभावशाली भाषण संस्कृत में हुआ और उन्हें एक विशिष्ट उपाधि से विभूषित किया गया।

विद्वत् परिषद् ने श्री गोपालदास बरैया, अभिनंदन ग्रंथ बड़े ही खोजबीन और परिश्रम के साथ बड़े आकार में प्रकाशित किया यह ग्रन्थ एक ऐतिहासिक रूप से चिरस्मरणीय रहेगा और आगे आने वाले विद्वानों को प्रेरणा स्रोत्र बनता रहेगा।

परिषद् के पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी के बहुत से संस्मरण प्रवचन आत्मकथा आदि भी प्रकाशित किए और भी अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन समय-समय पर परिषद् करती रही।

विद्वत् परिषद् में प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् बराबर सम्मिलित होते रहे तथाकथित सुधारवादी विद्वानों का इसमें बोलबाला रहा और उस समय शास्त्री परिषद् तथा विद्वत्परिषद् मिलकर काम करती रही। उस परिषद् के अध्यक्ष पं. भंवरलाल जी शास्त्री, जयपुर भी रहे और परिषद्.भली-भाँति चलती रही।

किन्तु परिषद् के सतना अधिवेशन में काफी गतिरोध पैदा हो गया गतिरोध को समाप्त करने में प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी और श्री नीरज जी आदि का विशेष योगदान रहा। वहां उपस्थित महाराष्ट्र के श्री पं. विशीकर अध्यक्ष चुने गए किन्तु इसके बाद परिषद् पिछड़ गयी।

किन्तु हर्ष है कि अभी सीकर से परिषद् का पुनर्गठन हुआ उसमें परिषद् की बागडोर दो युवा विद्वानों के हाथ में आ गयी। सर्व श्री मनीषी विद्वान डॉ. रमेश चन्द्र जी बिजनौर और अनेक विधाओं में मिश्रार्वत एवं नेतृत्व के धनी श्री डॉक्टर शीतल चन्द्र जैन 'प्राचार्य दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर' के क्रमशः अध्यक्ष और मंत्री बनने के बाद आज विद्वत् परिषद् बहुत ही प्रभावशील है और कार्य कुशलता के साथ दोनों विद्वान इसे अच्छी सक्रीयता प्रदान कर रहे हैं।

अभी-अभी कुण्डलपुर के महाकुंभ समारोह के अवसर पर संत शिरोमणी परमपूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज के विशाल संघ के सानिध्य में एक लाख जनता के बीच परिषद् के खुले अधिवेशन में अध्यक्ष और मंत्री के विवेचन बड़े ही सटीक हुए ओर जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

बड़े हर्ष की बात है अब बड़ा गांव में (खेकड़ा) परिषद् का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अधिवेशन होने जा रहा है। परिषद् की स्वर्ण जयंती महोत्सव के रूप में हमें पूरी आशा है कि परिषद् का एक स्वर्ण जयंती महोत्सव बड़ी सफलता के साथ दिगम्बर जैन समाज को एक अच्छी प्रेरणा देने वाला सिद्ध होगा।

हमारा भी इस शुभ अवसर पर परिषद् को एक सुझाव है कि दिगम्बर जैन समाज में चल रहे अलग-अलग तरह के विवादों को जैसे सोनगढ़, विभक्त पंतों के झगड़े और नियतिवाद, एकान्तवाद, भट्टारक प्रथा, वास्तु विज्ञान सम्बन्धी विवाद आदि को हल करने के लिए परिषद् एक विभिन्न विषयों के विद्वानों की समिति अवश्य गठित करे ताकि उसमें समाधान करके निर्णय लिए जाए फलस्वरूप समूची जैन समाज भ्रामक चर्चाओं से दूर होकर पूरी सद्भावना के साथ अपने धर्म का निर्वाद रूप से पालन कर सके और देवशास्त्र और गुरू के चरणों में पूरी श्रद्धा रखते हुए आत्मकल्याण में सदैव अग्रसर रहे और ये सैद्धान्तिक झगड़े जो परिवारों में फैलते जा रहे हैं और अब एक नया सम्प्रदाय करीब-करीब बन ही चुका है वह खतरा दूर हो जाए।

हमें अत्यन्त दुःख है कि अब एक नई परिषद् का गठन और हो चुका है। किसी भी तरह से राष्ट्रसंत आचार्य विद्यानन्द जी महाराज का आशीर्वाद भी उसने प्राप्त कर लिया है। हम चाहते हैं कि यह नई परिषद् और उसके कर्ता-धर्ता एकान्तवादी विद्वान सभी दि. जैन मुनिराजों के शरण में आवे ताकि ये परिषद् का विभाजन समाप्त हो जाए और दोनों परिषद् मिलकर एक होकर समाज में एकता स्थापित करने में सफल हो सके।

इस समय जैन समाज में विधि विधानों, पंचकल्याणक मेलों और गजरथों के नाम पर भारी अपव्यय हो रहा है और पैसा, बैण्डबाजे, बिजली वाले, पाण्डाल वाले तथा ऐसे अनेक गैर शाकाहारी अजैनों के हाथ में जा रहा है। जैन शिक्षा और जैन विद्वान बहुत ही पिछड़ रहे है। संस्कृत विद्यालयों का बुरा हाल है। इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। विद्वानों का सम्मान न के बराबर है और समाज की बागडोर श्रीमंतों अथवा प्रखरवक्ता साधुओं के हाथ में है जो सभी कुरीतियों और अपव्यय के विरोध में कोई तर्क प्रेरणा नहीं देते हैं। इस और भी परिषद् को आन्दोलन चलाना चाहिए।

अन्त में मैं बड़े गांव में होने वाले स्वर्ण जयंती महोत्सव की पूरी-पूरी सफलता चाहता हूँ।

***

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के प्रमुख विद्वानों की साहित्य सेवा

डॉ. रमेशचन्द जैन*

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना दिनांक २-११-१९४४ को दिन के ३ बजे कलकत्ता के जैन भवन में हुई थी। तब से इस परिषद् के विद्वान् निरन्तर साहित्य साधना में रत रहे हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री - पण्डित जगन्मोहनलाल शास्त्री विद्वत्परिषद् के आद्य सभापति थे। उन्होंने इस संस्था के संरक्षण और संवर्द्धन में महान् योग दिया। वे व्रती श्रावक थे। जैनशिक्षण संस्था में वे अनेकों वर्ष प्रधानाचार्य रहे। उनके अध्ययन, अध्यापन और लेखन में मौलिकता थी। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जो इस प्रकार हैं- १. *अध्यात्म अमृत कलश* २. *श्रावक धर्म प्रदीप टीका* ३. प्रवचन सारोद्धार भाषा टीका ४. आत्मप्रबोध (कुमार कवि) : हिन्दी अनुवाद एवं मिथ्यात्व अकिञ्चित्कर एक अनुशीलन। उनके लिखे १६५ लेखों की विषयवार सूची प्राप्त होती है।

सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री - पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री १९४७ में सोनगढ़ अधिवेशन तथा १९५९ में ललितपुर अधिवेशन में विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष रहे। उनकी बहुमुखी सरस्वती ने प्रवचन, भाषण लेखन, सम्पादन और अध्यापन सभी क्षेत्रों में एकाधिकार प्राप्त किया। उनकी लेखनी राष्ट्रीय सामाजिक और धार्मिक सभी विषयों पर समान रुप से प्रवाहित रही। उन्होंने पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य के साथ न्यायकुमुदचन्द्र की भूमिका लिखी। धवल ग्रन्थों के अनुवाद और सम्पादन में वे पण्डित फूलचन्द्र सिद्धान्त शस्त्री के सहयोगी रहे। उनकी *अन्य कृतियाँ हैं-१. भगवान् ऋषभदेव* २. *सोमदेव कृत उपाध्यान की विस्तृत प्रस्तावना तथा हिन्दी* अनुवाद ३. जैन न्याय - भाग 1 तथा 2, ४. जैन साहित्य का इतिहास-पूर्वपीठिका ५. जैन साहित्य का इतिहास भाग एक तथा दो, ६. जैन धर्म ७. कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह ८. धर्मामृत-सागार और अनगार (टीका) ९. गोम्मटसार (सम्पादन) १०. नमस्कार मन्त्र ११. समीचीन जैन धर्म १२ तत्त्वार्थसूत्र (टीका) १३. भगवान महावीर अचेलक धर्म टीका आदि दक्षिण भारत में जैनधर्म, प्रमाण नय निक्षेप, भगवती आराधना टीका, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा उन्होंने दीर्घकाल तक जैन सन्देश का सम्पादन किया और सैंकड़ों लेख प्रकाशित कराए जो आज भी समाज के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

पं. सुमेरूचन्द्र दिवाकर - दिवाकर जी ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जैन समाज और साहित्य की निरन्तर सेवा की। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं की इस प्रकार जानकारी प्राप्त होती है - १. जैनशासन २. महाबन्ध (सम्पादन) ३. चारित्रचक्रवर्ती ४. आध्यात्मिक ज्योति ५. तीर्थंकर ६. कषाय पाहुडसुत्त (लघु टीका) ७. महाबन्ध मूल प्राकृत-सम्पादन ८. अध्यात्मवाद की मर्यादा ९. तात्त्विक चिन्तन १०. विश्वतीर्थ

*जैनमन्दिर के पास बिजनौर उ. प्र.

श्रवणबेलगोला ११. निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर १२. नन्दीश्वर दर्शन १३. दिगम्बरत्व पर एक दृष्टि १४. सैद्धन्तिक चर्चा १५. इष्टोपदेश (सम्पादन) १६. समाधिशतक (सम्पादन १७. जिनसहस्रनाम (सम्पादन) १८. Religion and heace १९. Glimpses of Jainism २०. The anliguity of Jainim २१. The doctrine of Ahimsa २२. महावीर जीवनदर्शन। पण्डित जी ने भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना के समय मन्त्री पद को भी सुशोभित किया।

पण्डित फूलचन्द्र सिद्धान्ताचार्य - आपने विद्वत् परिषद् की स्थापना के समय संयुक्त मन्त्री पद को सँभाला बाद में एक बार अध्यक्ष पद को गौरवान्वित किया। पण्डित जी बीसवीं शताब्दी के विद्वानों में अग्रगण्य रहे और जीवन भर सहित्य साधाना की। जिस आगमिक सम्पादन और अनुवाद के कार्य को अनेक विद्वान् भी मिलकर पूरा नहीं कर सकते थे, उसे अकेले आपने सम्पन्न किया। फलत: विद्वत्संसार में आप आगमज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हैं और इसी रूप में आपने अमरकीर्ति प्राप्त की है। उनकी मौलिक रचनायें हैं - १. जैनधर्म और वर्णव्यवस्था २. विश्वशान्ति और अपरिग्रहवाद ३. जैन तत्त्वमीमांसा ४. वर्णजाति और धर्म। उन्होंने प्रमेरत्नमाला, आलाप पद्धति, धवला, जयधवला तथा महाबन्ध, समयसार कलश, सप्ततिक प्रकरण, तत्त्वार्थसूत्र, पञ्चाध्यायी, ज्ञानपीठ पूजाञ्जति, कानजीस्वामी अभिनन्दन-ग्रन्थ, सम्यग्ज्ञान दीपिका, लब्धिसार क्षपणासार, आत्मानुशासन आदि अनेक ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद वगैरह किया। वे जैन साहित्य, संस्कृति और सिद्धान्त के मर्मज्ञ, सरलस्वभावी, अत्यन्त विनम्र मूर्ति तथा इस युग के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे।

पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य - पण्डित वंशीधर जी एक आगमनिष्ठ विद्वान थे। अपने दैनिक व्यवहार में वे सच्चाई और ईमानदारी का प्रयोग करते थे। उनकी वाणी सुलझी हुई होती थी। वे रूढिवादिता से दूर थे। दिगम्बरत्व के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा थी। उनके द्वारा अनेक ग्रन्थरत्नों का प्रणयन हुआ, जो इस प्रकार हैं - १. जैन तत्त्वमीमांसा की मीमांसा २. भाग्य एवं पुरुषाथ एक नया अनुचिन्तन ३. जयपुर खानिया तत्त्वचर्चा और उसकी समीक्षा ४. जैनदर्शन में कार्यकारण भाव एवं कारक व्यवस्था ५. जैनदर्शन में निश्चय और व्यवहार ६. पर्यायें क्रमबद्ध भी होती हैं और अक्रमबद्ध भी। पण्डित जी द्वारा अनेक विषयों पर लेख लिखे गए, जिनमें से अनेकों का प्रकाशन उनके अभिनन्दन ग्रन्थ में हुआ है।

न्यायाचार्य पं. महेन्द्रकुमार जैन - पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य बीसवीं शताब्दी के जैन न्याय के धुरीण विद्वान् थे। वे कठोर परिश्रमी, दृढ़ संकल्पी और लगनशील विद्वान् थे। उनकी प्रतिभा उनकी निम्नलिखित रचनाओं के सम्पादन में अच्छी तरह व्यक्त हुई- १. न्यायकुमुद चन्द्र २. अकलंक ग्रन्थत्रय ३. प्रमाणमीमांसा ४. प्रमेयकमलमार्त्तण्ड ५. तत्त्वार्थवृत्ति ६. न्यायविनिश्चयविवरण ७. तत्त्वार्थविर्तिक ८. सिद्धिविनिश्चय टीका एवं ९. षड्दर्शन समुच्चय। जैनदर्शन उनकी स्वतन्त्र मौलिक कृति है। इसके अतिरिक्त जैन न्यायदर्शन तथा इतिहास पर कई योजनापूर्ण निबन्ध, कहानियाँ और कवितायें भी लिखीं।

पं. बाबूलाल जमादार - पं. बाबूलाल जमादार एक ओजस्वी वक्ता और धर्मनिष्ठ, कर्मठ समाज सेवी थे। उन्होंने अपने द्वारा लिखित अनेक ट्रेक्ट प्रकाशित कराए, जिनका विवरण इस प्रकार है- १. प्रतिज्ञा नाटक २. माँ की ममता ३. आचार्य नमिसागर चरित्र ४. हस्तिनापुर गौरव ५. कर्त्तव्यशील युवक ६. समाज दर्पण ७. ते गुरु मेरे उर बसो ८. आर्यिका ९. उत्थान-पतन १०. लेखा-जोखा ११. जैनियों ने कभी माँग नहीं की १२. जैन जनगणना सूची भाग -१,२,३ १३. सराक बन्धुओं के बीच १४. सराक हृदय १५. जैन संस्कृति

के विस्तृत प्रतीक १६. प्राच्य जैन सराक शोध कार्य १७. श्रावकदर्शन या सराक दर्शन १८. श्री सम्मेदशिखर गौरव १९. खण्डगिरी, उदयगिरी गौरव।

पं. नेमीचन्द्र ज्योतिषाचार्य - ज्योतिषाचार्य जी भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के उन्नायकों में एक थे और इसके प्रत्येक अधिवेशन में सम्मिलित होना इनके लिए अनविार्य था। इनका विद्वतापूर्ण अभिभाषण इसके प्रत्येक उत्सव की शोभा था। इसकी कार्य समिति के ये सर्वदा सदस्य रहे। सन. १९६८ में सागर में आप विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। विद्वत्परिषद् के नैमित्तिक अधिवेशनों खतौली, श्रावस्ती आदि में पुनः अध्यक्ष चुने गए। आपके द्वारा अनेक रचनायें प्रणीत हुई, जो इस प्रकार हैं - 1. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन खण्ड १,२, 2. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, 3. पुराने घाट नई सीढ़ियाँ, 4. संस्कृत साहित्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, 5. महाकवि भास, 6. संस्कृत गीतिकाव्यानुचिन्तनम्, 7. हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलचोनात्मक परिशीलन, 8. पं. गोपालदास बरैया:संक्षिप्त जीवन झाँकी, 9. वाङ्मयाचार्य पं. जुगलकिशोर मुख्तार युगवीर: कृतित्व और व्यक्तित्व, 10. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (भाग १-४), 11. विश्वशान्ति और जैनधर्म, भाग्यफल, 12. भारतीय ज्योतिष, 13. मुहूर्त दर्पण, 14. भद्रबाहुसंहिता (अनुवाद) 15. व्रततिथि निर्णय (सम्पादन), 16. केवलज्ञान प्रश्न चूडामणि (सम्पा.), 17. लोकाविजययन्त्र (सम्पा.), 18. रत्नाकरशतक (सम्पा.), 19. अलंकार चिन्तामणि (सम्पा.), 20. पाइय पञ्ज संगहो (सम्पा.), 21. गुरू गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ, 22. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, 23. हेमशब्दानुशासन : एक अध्ययन, 24. अभिनव प्राकृत व्याकरण, 25. चन्द्र संस्कृत व्याकरण, 26. स्नातक संस्कृत व्याकरण, 27. संस्कृत अनुवाद रचना प्रबोध, 28. रघुवंश द्वि-सर्ग (अनुवाद), 29. कुमार सम्भव पञ्चम सर्ग (अनु.)।

पं. अमृतलाल जैन दर्शनाचार्य - पं. अमृतलालजैन जैन दर्शनाचार्य संस्कृत साहित्य के मनीषी विद्वान् हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से सेवा निवृत्त होकर उन्होंने जैनविश्वभारती, लाडनूँ (राजस्थान) में अनेक वर्षों तक संस्कृत साहित्य का अध्यापन कार्य किया है। उन्होंने भक्तामरस्त्रोत द्रव्यसंग्रह तत्त्वार्थसिद्धि आदि चन्द्रप्रभचरितम्की हिन्दी टीका लिखकर जैन समाज का उपकार किया है।

डॉ. दरबारीलाल कोठिया - पं. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य के बाद जैन न्याय के विशिष्ट अध्येताओं में न्यायाचार्य डॉ. दरबारीलाल कोठिया का नाम लिया जाता है। उन्होंने न्यायदीपिका तथा आप्तपरीक्षा की हिन्दी टीका की, जैन पुराण का महत्त्वपूर्ण सम्पादन किया और अष्टसहस्त्री का प्रमाणिक संस्करण प्रकाशित कराया। प्रमाण-परीक्षा, स्याद्वादसिद्धि, प्रमाणप्रमेयकलिका, अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड, शासनचतुस्त्रिंशिका, श्रीपुर पार्श्वनाथ आदि ग्रन्थों का उन्होंने हिन्दी अनुवाद किया तथा जैन प्रमाणशास्त्र परिशीलन तथा जैन तर्क शास्त्र में अनुमान विचार नामक ग्रन्थ लिखे।

डॉ. पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य - पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य देश के उन ख्यातिप्राप्त विद्वानों में से एक थे, जिनकी लेखनी लगभग ५० वर्ष तक अनवरत चलती रही। उन्होंने लगभग ५० ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद किया। कुछ ग्रन्थ संस्कृत में मौलिक रूप से लिखे। वे श्री गणेश दिगम्बर जैन सं. महाविद्यालय सागर तथा जबलपुर की मढ़िया जी के छात्रों को निरन्तर साहित्य तथा धर्मशास्त्र का अध्यापन कराते रहे। उनकी प्रमुख रचनायें निम्नलिखित हैं - आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, जीवन्धर चम्पू,

गद्यचिन्तामणि, धर्मशर्माभ्युदय, पुरुदेव चम्पू, स्तुति विद्या धन्यकुमार चरित अध्यात्मामृततरंगिणी, पञ्चस्तोत्र संग्रह, स्वयंभू स्तोत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, विक्रान्तकौरव, तत्त्वार्थसार, मोक्षशास्त्र, अष्टपाहुड, सुभाषितावली आदि ग्रन्थों की हिन्दी टीका तथा रोहिणी व्रतोद्यान, त्रैलोक्यतिलकव्रतोद्यापन, रविव्रतव्रतोद्यापन, सहस्रनामन्वित, वृषभजिनेन्द्र पूजा चौबीसी पुराण सम्यक्त्व चिन्तामणि आदि मौलिक ग्रन्थ लिखे। मन्दिरवेदीप्रतिष्ठा और कलशारोहणविधि, समयसार प्रवचन तथा मेरी जीवन गाथा भाग-१ तथा २ का सम्पादन भी आपके द्वारा हुआ। आपको महाकवि हरिचन्द्र एक अनुशीलन ग्रन्थ पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त हुई।

पं. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य - पं. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य जैन एवं बौद्धदर्शन के निष्णात् विद्वान् होने के साथ-साथ समग्र भारतीय दर्शन के अच्छे अध्येता हैं। उन्होंने अनेकान्त और स्याद्वाद, आप्तमीमांसा तत्त्वदीपिका, तत्त्वार्थवृत्ति का हिन्दीसार, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड परिशीलन, न्यायकुमुदचन्द्र परिशीलन एवं स्वयंभूस्तोत्र टीका आदि ग्रन्थों की रचना की। वे न्यायाशास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं।

प्रो. डॉ. राजकुमार साहित्याचार्य - आपने दि. जैन विद्यालय पपौरा, दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत तथा आगरा कॉलेज, आगरा में संस्कृत का अध्यापन करते हुए जैन साहित्य की महनीय सेवा की। मदनपराजय, पशमरतिप्रकरण, वृहत्कथाकोष, पार्श्वाभ्युदय आदि ग्रन्थों की आपने हिन्दी टीका की।

पं. बालचन्द्रशास्त्री - बुन्देलखण्ड की भूमि सोंरई में जन्में पण्डित बालचन्द्र शास्त्री सरल प्रकृति के साहित्य मनीषी थे। वे जिनवाणी के मूक सेवक थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थों के सम्पादन अनुवाद का कार्य सम्पन्न किया। १९४० से अब तक शि. ल. जैन साहित्योद्धारक फण्ड कार्यालय, अमरावती द्वारा प्रकाशित षट्खण्डागम के ६-१६ भाग तक ११ जिल्दों का अनुवाद व सहसम्पादन, तिलोयपण्णत्ती भाग १, २ (अनुवाद), जम्बूदीपपण्णत्तिसंगहो (अनुवाद), पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका (अनुवाद), आत्मानुशासन (सम्पादन), लोकविभाग (सम्पादन), पुण्यास्रव कथाकोश, सुभाषितरत्नसन्दोह, ज्ञानार्णव तथा धर्मपरीक्षा एवं ध्यान शतक व सवयपण्णत्ती का अनुवाद आदि आपका प्रमुख साहित्यिक कार्य है। आपने जैनलक्षणावली भाग-१ से ३ तक का सम्पादन कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। विद्वत् परिषद् की ओर से आपका लोकविभाग ग्रन्थ पुरस्कृत हुआ था।

पं. खुशालचन्द्र गोरावाला - मड़ावरा, जिला-ललितपुर में जन्में श्री-पं. खुशालचन्द्र गोरावाला ने विभिन्न पदों पर रहकर स्याद्वाद महाविद्यालय की दीर्घकालिक सेवा की। वे भा. दि. जैन संघ के मंत्री भी रहे। उन्होंने वराङ्गचरित तथा द्विसन्धान महाकाव्य का हिन्दी अनुवाद कर साहित्यसेवा में भी अपना अर्ध्य समर्पण किया।

डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल - विद्यावारिधि डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल उन विद्वानों में सर्वोपरि थे, जिन्होंने राजस्थानी जैन साहित्य पर बहुत कार्य किया। उन्होंने लगभग ५० ग्रन्थों का लेखन तथा सम्पादन किया। इन ग्रन्थों में राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की सूची (भाग १-५), प्रशस्ति संग्रह, बनारसीविलास, चम्पाशतक, हिन्दी पद संग्रह, प्रद्युम्नचरित, जिनदत्तचरित, महाकवि दौलतराम व्यक्तित्व और कृतित्व, राजस्थान के जैन सन्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, Jain Grantha Bhanadars in Rajasthan तथा अनेक हिन्दी कवियों की रचनाओं का संकलन कर उन्हें प्रकाशित कराया।

श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' – श्री सुधेश जी एक सफल कवि थे। उनकी रचनायें सरस, सुबोध तथा शिक्षाप्रद हैं। उन्होंने निम्नलिखित रचनाओं का प्रणयन किया – १. परमज्योति महावीर; २. भामाशाह; ३. करुणा के फूल; ४. आर्यिका; ५. पुण्यतीर्थ पपौरा; ६. शहीद गाथा; ७. विराग; ८. वीरायण; ९. जैनकला तीर्थ खजुराहो; १०. मुंडसाल; ११. मनुज प्रकृति से शाकाहारी।

पं. परमानन्द जैन शास्त्री – अपने शोध कार्यों के लिए विख्यात, पं. परमानन्द शास्त्री जी ने लगभग 32 साल वीर सेवा मन्दिर, सरसावा एवं देहली से सम्बद्ध रहकर साहित्यसेवा में अपना जीवन लगा दिया। उन्होंने अनेकान्त में लगभग २२५ शोध निबन्ध लिखे। मोक्षमार्ग प्रकाशक, चिद्विलास, अनुभव प्रकाश, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह प्रथम, द्वितीय भाग जैन तीर्थ यात्रा संग्रह, पुरातन जैन वाक्य सूची, एकीभावस्तोत्र, समाधितन्त्र तथा इष्टोपदेश, नेमिनाथपुराण अर्थप्रकाशिका आदि ग्रन्थों के सम्पादन अथवा लेखन में आपकी विद्वत्ता का दिग्दर्शन होता है। उनकी शैली में प्राचीन और अर्वाचीनता का समन्वय पाया जाता है।

डॉ. राजाराम जैन – डॉ. राजाराम जैन का जन्म मालथौन, जिला-सागर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा पपौरा में ग्रहण कर स्याद्वाद् महाविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में आपने स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण की। बाद में मगध जनपद को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर वे प्राचीन अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन में जुट गए। आपने रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन नामक महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध लिखा। इसके अतिरिक्त रदधू ग्रन्थावलि-भाग १, २, वडढमाणचरिउ, पज्जुण्णचरिउ आदि अनेक ग्रन्थों का सम्पादन करते हुए आप कुन्दकुन्द भारती दिल्ली के निर्देशक पद को सुशोभित कर रहे हैं।

डॉ. देवेन्द्रकुमारजैन साहित्याचार्य - शरीर से कृश, वाणी से सरल और अहर्निश स्वाध्याय में लगे हुए डॉ देवेन्द्रकुमार जैन अपभ्रंश भाषा के गिने-चुने विद्वानों में एक माने जाते हैं। आपने भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य, अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य की शोधप्रवृत्तियाँ, भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रुपरेखा आदि मौलिक कृतियाँ लिखीं। रयणसार, सम्मईसुत्तं आदि ग्रन्थों का सम्पादन कर आप अपभ्रंश कोश का सम्पादन कार्य कर रहे हैं। मध्यप्रदेश के शासकीय महाविद्यालय से सेवानिवृत्त होकर वर्तमान में आप भारतीय ज्ञानपीठ से सम्बद्ध हैं।

पं. इन्द्रलाल शास्त्री विद्यालंकार – आपका जन्म सन् १८९७ में जयपुर में हुआ था। आपने विपरीत परिस्थितियों के बीच शिक्षा ग्रहण की। विद्वत् परिषद् की स्थापना के समय आप उसके उपसभापति बनाए गए। आप निरन्तर साहित्य सेवा में संलग्न रहे। आपकी प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ हैं- धर्मसोपान, अहिंसातत्त्व विवेकमंजूषा, दिगम्बर जैन साधु की चर्या, जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र धर्म है, जैन मन्दिर और हरिजन श्रयोमार्ग, वर्ण विज्ञान, जैनधर्म और जाति, तत्त्वालोक, आत्मवैभव, महावीर देशना, पुण्यधर्म मीमांसा, भावलिङ्गी एवं द्रव्यलिङ्गी मुनि का स्वरूप, साम्यवाद से मोर्चा, भारतीय संस्कृति का मूलरूप, पशुवध सबसे बड़ा द्रोह, मन्दिरप्रवेश मीमांसा, रात्रिभोजन त्याग, शान्तिपीयूष धारा, भक्तिकुसुम संचय। आपने पञ्चस्तोत्र, आत्मानुशान एवं स्वयंभूस्तोत्र का अनुवाद किया तथा भँवरीलाल बाकलीवाल स्मारिका का सम्पादन किया।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त शताधिक ऐसे अन्य विद्वान् भी हुए, जिन्होंने अपनी बहुमूल्य रचनायें लिखकर जिनवाणी माता के अक्षय भण्डार को सुशोभित किया। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के विद्वान् मूलरूप में सृजनधर्मी, विद्यारसिक और समाजसेवी थे, ऐसा उनके कार्यों से द्योतित होता है। इन विद्वानों के कार्यों पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। स्थानाभाव के कारण यहीं विराम लेता हूँ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में जैन विद्वान्

डॉ. ज्योति जैन*

मानव संस्कृति के समुन्नयन में जिन महापुरुषों का महनीय योगदान रहा है, उसमें तीर्थंकर ऋषभदेव अग्रगण्य हैं। ऋषभदेव ने (असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, वाणिज्य) छह कार्यों का उपदेश देकर मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा दी। यहीं से मानव समाज में राज्य, समाज, धर्म, अर्थ परिवार आदि संस्थाओं का विधिवत वैधानिक विकास मानना चाहिये।

'अहिंसक युद्ध' परस्पर विरोधी बात लगती है। पर इतिहास में एक ऐसा भी युद्ध हुआ जो पूर्णत: अहिंसक था। ऋषभदेव वैराग्य धारण कर जब वन चले गये तब उनके दो पुत्रों भरत और बाहुबली के बीच राज्य विस्तार की सीमा को लेकर युद्ध की तैयारियां होने लगीं। दोनों पक्षों के मंत्रियों ने परस्पर विचार किया कि, क्यों न दोनों भाई आपस में लड़कर हार-जीत का निर्णय कर लें, व्यर्थ में सेना क्यों मारी जाये। मंत्रियों का प्रस्ताव मान दोनों में मल्ल, जल और दृष्टि युद्ध हुए जिनमें बाहुबली विजयी हुए, पर उन्होंने जीतकर भी सन्यास ले लिया। महात्मा गांधी द्वारा अहिंसा के बल पर स्वराज्य प्राप्ति करना एक अहिंसक युद्ध ही तो था।

भारतवर्ष में आज जो गणतन्त्र परम्परा है वह अत्यन्त प्राचीन है। अनेक शक्तिशाली जैन सम्राट रहे हैं। अनेक राजाओं के मंत्री दीवान, भण्डारी, सामंत, सरदार आदि भी जैन रहे थे। मेवाड़ के दुर्गपाल आशाशाह और देशाद्धारक भामशाह के अवदान को कैसे विस्मृत किया जा सकता है।

1857 की क्रान्ति अपनेआप में अद्‌भुत थी 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भी अनेक जैन वीर शहीदों ने अपना बलिदान देकर आजादी का मार्ग प्रशस्त किया था। महात्मा गांधी ने जिस अहिंसा के बल पर देश को आजादी दिलाई उसकी प्रेरणा उन्हें अपने वैष्णव और जैन संस्कारों से मिली थी। प्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान् श्रीमद् राजचन्द से गांधी जी बहुत प्रभावित थे। दक्षिण अफ्रीका से उन्होंने अपनी 33 शंकायें राजचन्द्र को भेजीं उनके जो उत्तर दिये गये उनसे गांधी जी की सत्य और अहिंसा में और भी दृढ़ आस्था हो गयी थी।

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलने में जैनियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। जहां अनेक वीर पुरुषों ने अपना बलिदान देकर आजादी का मार्ग प्रशस्त किया वहीं अनेक वीरों ने जेल की दारुण यातनायें सहीं। अनेक माताओं की गोदें उजड़ गयीं तो अनेक बहिनों के सिन्दूर पुछ गये। ऐसे लोगों के अवदान को भी कम करके नहीं आंका जाना चाहिए जिन्होंने बाहर से इस आंदोलन को समर्थन दिया, जेल गये व्यक्तियों के परिवारों का भरण-पोषण की व्यवस्था की। जैन समाज ने जितना आर्थिक सहयोग इस आन्दोलन को दिया शायद ही किसी ने दिया हो।

खतौली

जैन समाज का विद्वत् वर्ग भी स्वतंत्रता आन्दोलन में पीछे नहीं रहा। अनेक विद्वानों की इस आंदोलन में न केवल पढ़ाई छूटी बल्कि उन्हें जेल की यातनायें भी भोगनी पड़ीं। कहाँ जैन दर्शन की पढ़ाई और कहां आजादी की बम-गोली की लड़ाई। विद्वत् वर्ग कहां पीछे रहने वाला था। ये वीर मातृभूमि की पुकार सुनकर अपने कर्त्तव्यों पर डटे रहे और स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाते रहे। आइये हम उन जैन विद्वानों को जानें जिन्होंने आजादी की लड़ाई में जेल की दारुण यातनायें सहीं। यद्यपि ये सभी विद्वान् बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे पर यहां पर केवल उनका राजनैतिक और सीमित अर्थों में साहित्यक परिचय ही दिया जा रहा है। धन्य हैं मां जिनवाणी के ये सपूत! जिन्होंने अपनी मातृभूमि को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराया!

श्री अर्जुनलाल सेठी - क्रांतिकारी, देशभक्त, सुधारवादी, समाजसेवी, अध्यापक, लेखक, कवि, पत्रकार, वक्ता, बहुभाषाविद्, जैन धर्म, गीता और इस्लाम के उद्‌भट विद्वान श्री अर्जुनलाल सेठी का जन्म जयपुर (राजस्थान) में हुआ। 1907 में सेठी जी ने जयपुर में जैन विद्यालय की स्थापना की। कहने को तो यह विद्यालय था पर वास्तव में यह क्रांतिकारियों की टकसाल थी। अमरशहीद मोतीचंद, क्रांतिकारी मणिकचंद, जयचंद, देवचंद (आचार्य समन्तभद्र), जोरावर सिंह आदि इसी विद्यालय के छात्र थे। स्वतंत्र राष्ट्र के उपासक जैन-अजैन सभी इसमें अध्ययन कर रहे थे।

1905 से 1912 तक के सभी क्रांतिकारी आंदोलनों में सेठी ने भाग लिया था। आरा मंदिर के महन्त की हत्या में आप प्रमुख अभियुक्त थे। उत्तर भारत का सबसे बड़ा कांड जो 'दिल्ली षडयन्त्र' के नाम से जाना जाता है और जिसमें भारत क वाइसराय लार्ड हार्डिग पर बम फेंका गया था, के मुख्य सूत्रधारों में आपका नाम था।

1914 में सेठी जी को जयपुर में नजरबन्द कर दिया गया, जब उनकी नजरबन्दी से सारे भारत मे तहलका मचा तो उन्हें मद्रास प्रेसीडेन्सी के बैलूर जेल में भेज दिया गया जहां पर जिन-दर्शन न होने पर वे 70 दिन तक निराहार रहे। जेल से छूटने के पश्चात् उन्होंने अजमेर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और यहीं से क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया। 1921 में 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' के दौरान अजमेर में हिन्दु-मुस्लिम एकताका अद्‌भुत उदाहरण आपने प्रस्तुत किया। एक बार प्रसिद्ध क्रांतिकारी चंद्रशेखर को अजमेर में सेठी जी ने ही छिपाया था। 5 जुलाई, 1934 को स्वयं महात्मा गांधी अजमेर में सेठी जी के घर गये थे। 1937 में खण्डवा (म.प्र.) में हुई जैन परिषद् के सम्मेलन में आप सम्मिलित हुए थे। इस सन्दर्भ में 'जैन मित्र' (1938 ई. वैशाख वदी 13) लिखता है... आपका भाषण बहुत तात्त्विक एवं मर्मभेदी होता था...'। 1939 में खरे नैरीमन के साथ कांग्रेस कमाण्ड के विरुद्ध मोर्चा लेने का साहस सेठी जी ने ही किया था। सेठी जी जितने क्रांतिकारी थे उससे कहीं अधिक धार्मिक और दार्शनिक भी थे। उन्होंने जैन धर्म पर अनेक लेख एवं पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'महेन्द्रकुमार नाटक', 'मदनपराजय नाटक', 'पारस यज्ञ पूजा' आदि अति प्रसिद्ध रही हैं। अनेक स्तोत्रों आदि की भी रचनायें उन्होंने की थीं। वे अपने अंतिम समय तक धर्म एवं राष्ट्र हित की साधना करते रहे। सेठी जी के जीवन से संबंधित जो भी सामग्री प्राप्त हुई है उनमें श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय द्वारा लिखित 'जैन जागरण के अग्रदूत' प्रमुख है। गोयलीय जी ने संस्मरणात्मक शैली में जो लिखा है वह सेठी जी के व्यक्तित्व से संबंधित घटनाओं की प्रामाणिक सामग्री है इसमें उनके जीवन से संबंधित विविध पहलुओं से जुड़े अनेक संस्मरण हैं।

जीवन के अंतिम समय में राजनैतिक और आर्थिक घात-प्रतिघातों से सेठी जी इतने क्षत-विक्षत हो चुके थे कि उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया था। जब उन्हें कहीं आश्रय नहीं मिला तो 30 रुपये मासिक पर अजमेर में मुस्लिम बच्चों को पढ़ाने पर मजबूर हो गये। अपने ही लोगों के द्वारा तिरस्कार का उनके हृदय पर ऐसा आघात लगा कि उन्होंने घर आना-जाना भी बन्द कर दिया। सेठी जी मातृभूमि के सच्चे सपूत थे। जिनकी लगन, तपस्या, त्याग और बलिदान से आज हम स्वतंत्र हैं।

श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय - जैन समाज में जागृति का शंखनाद करने वाले वीर अनेकान्त जैसे प्रगतिवादी पत्रों के सम्पादक गोयलीय का जन्म बादशाहपुर (हरियाणा) में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा चौरासी (मथुरा) में हुई। कारोबार के सिलसिले में आप दिल्ली आ गये। सुबह-शाम सामयिक, स्वाध्याय, जिनदर्शन आपके नियम थे। वाणी में ओज, शैली में गंभीरता और निरालापन यही व्यक्तित्व था वाणी के जादूगर गोयलीय जी का।

दिल्ली के चांदनी चौक में विशाल जनसभा में भाषण देने के बाद आपको गिरफ्तार कर लिया गया और 3 साल 'सी' क्लास कैद की सजा सुनाई गयी। जेल समय का उपयोग आपने अध्ययन, मनन में किया। कारावास के अनुभवों को अपनी कहानी की किताबों 'गहरे पानी पैठ' 'जिन खोजा तिन पाइयां' 'कुछ मोती कुछ सीप' और 'लो कहानी सुनो' के द्वारा व्यक्त किया है।

गोयलीयजी हिन्दी, उर्दु, अरबी, फारसी, संस्कृत अंग्रेजी आदि के उद्‌भट विद्वान थे। नाटक, कविता, कहानी, निबन्ध आदि सभी विद्याओं में उनकी अप्रतिहत गति थी। इतिहास और पुरातत्व के वे खोजी विद्वान थे। गोयलीय जी लगभग पन्द्रह वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ के अवैतनिक मंत्री रहे। उन्होंने ज्ञानपीठ की प्रसद्धि पत्रिका 'ज्ञानोदय' का सम्पादन किया। वे वीर और अनेकान्त पत्रों के भी संपादक रहे। आपका जीवन एक ऐसे तपस्वी और साधक का जीवन रहा जिसने जीवन में आये झंझावातों को चुपचाप सहा और आपत्तियों का विषपान करते हुए भी साहित्यामृत प्रदान किया। राष्ट्र एवं समाज ने गोयलीय को सम्मानित कर अनेक पुरस्कार प्रदान किये।

पं. अमृतलाल शास्त्री - जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान पं. अमृतलाल शास्त्री का जन्म 7 जुलाई, 1919 को बमराना जिला झांसी (उ. प्र.) में हुआ। आपने ललितपुर, साढूमल, बरुआ सागर आदि स्थानों से शिक्षा ग्रहण की और उच्च शिक्षा के लिए स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी पहुंचे। स्याद्वाद महाविद्यालय 1942 में क्रातिकारियों का गढ़ था, विद्यालय के लगभग सभी छात्र आजादी के आन्दोलन में शामिल हो गये थे अधिकांश छात्रों को जेल की दारुण यातनायें सहनी पड़ी थीं। शास्त्री जी ने अपने एक पत्र में लिखा है कि 'सन् 1942 के राष्ट्रीय आंदोलन में स्याद्वाद महाविद्यालय के सभी छोटे-बड़े छात्रों ने सक्रिय भाग लिया था। सभी को भिन्न-भिन्न काम सौंपें गये... इक्कीस दिन तक हम तीनों (शास्त्री जी, श्री घनश्याम, श्री गुलाब चन्द) हवालात में बन्द रहे...'

इस शताब्दी के जैन संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट विद्वान पं. जी ने 'द्रव्य संग्रह', 'चन्द्रप्रभ चरित' 'तत्त्वार्थसिद्धि' जैसे दुरूह ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया है। अनेक अनुसंधान परक शोध लेख आपके प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में समाज ने आपकी साहित्यक सेवाओं के लिए पुरस्कृत किया है।

श्री अक्षय कुमार जैन - देश के उत्कृष्ट हिन्दी पत्र 'नवभारत टाइम्स' के संपादक श्री अक्षय कुमार जैन का जन्म विजयगढ़ (अलीगढ़-उ. प्र.) में हुआ था। आप प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार के रूप में उभरे और पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया, अनेक रचनायें लिखीं और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया। पत्रकारिता का प्रारंभ सन् 1939 से 'सैनिक' दैनिक से आरम्भ किया। अनेक अखबारों एवं संगठनों से आप जुड़े रहे। 1940 से 46 तक अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के मुख पत्र 'वीर' का सम्पादन आपने किया। सन् 1942 के देशव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन में आपने भाग लिया और जेल यात्रा की।

कविवर कल्याणकुमार 'शशि' - आशुकवि के रूप में भारत भर में विख्यात रहे 'शशिजी' का जन्म रामपुर (उ. प्र.) में हुआ। कवित्व शक्ति आपको नैसर्गिक देन के रूप में मिली। कविता आपके लिए कल्पना लोक की वस्तु नहीं बल्कि इसी धरती से जन्म लेने वाली सौरभमय चेतना थी। हजारों नौजवनों की तरह 'शशिजी भी आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। 1930 में एक अंग्रेज एस.पी. के ऊपर बम फेंकनें के अपराध में शशि जी को 1 वर्ष रावलपिण्डी और कश्मीर जेल में रहना पड़ा और कड़ी यातनायें सहनी पड़ीं।'

'जैन मित्र, प्रदीप, जैन महिलादर्श, जैन आदर्शचरित माला आदि अनेक पत्रों के संपादन से शशि जी अनेक वर्षो तक जुड़े रहे। उनकी रचना 'हृदय की आग' अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गयी। कलम, मेरी आराधना, मुर्दा, अजायबघर, देवगढ़ दर्शन जैन समाज दर्पण, कविताकुंज, पांखुरिया आदि लगभग 22 जैन, जैनेत्तर पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित हुई।

शशिजी को राष्ट्र एवं समाज ने समय-समय पर सम्मानित किया। अनेक उपाधियां आपको मिली। 50 से भी अधिक अभिनन्दन आपके हुए। शशि जी गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और जीवन भर सत्य, अहिंसा, न्याय, जीवदया और स्वाभिमान के प्रति सजग रहे।

प्रो. खुशालचन्द जी गोरावाला - स्वतंत्रता आंदोलन के समय महात्मा गांधी से प्रभावित रहे 'गोरावाला जी' का जन्म मडावरा (जिला ललितपुर, उ.प्र.) में हुआ। 1930 में खुशालचन्द जी सत्याग्रही स्वयं सेवक बने 1932 में विलिगंडन शाही के दमन के समय वाराणसी के टाऊनहाल में एल. ओवेन द्वारा किये गये गोलीकांड के समय आपको मृत समझ लिया गया क्योंकि पास ही खड़े योगीश्वर प्रसाद को गोली लगी थी। 1941-42 के स्वतंत्रता आंदोलन में आपकी जेलयात्रा के संबंध में जैन सन्देश राष्ट्रीय अंक (जनवरी-1947) लिखता है.... 28 वर्ष का यह युवक सन् 41 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में तूफान की तरह प्रसिद्धि में आया और आते ही प्रांतीय नेताओं की अगली पंक्ति में जा पहुंचा...' पुलिस की आंखों में बराबर धूल झौंकते हुये भी आप जुलाई 41 में पकड़े गये, दो माह नजरबन्द रखकर चार माह की सजा सुनाई गई। सन् 42 के आंदोलन में भी आप गिरफ्तार कर लिये गये। जेल यात्रा के दौरान आपने 'वरांग चरित' ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद किया। आपका विचार था कि हिन्दी का नाम हिन्दी न होकर भारती होना चाहिये।

अपने मौलिक विचारों के कारण गोरावाला जी हमेशा चर्चा में रहे। स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थिति से गोरावाला जी बहुत चिंतित रहा करते थे। 'जैन सन्देश' का अनेक वर्षों तक सम्पादन करने वाले गोरावालाजी भा. दि. जैन संघ मथुरा, अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् श्री गणेश वर्णी जैन ग्रन्थमाला, सन्मति जैन निकेतन नरिया वाराणसी आदि अनेक संस्थाओं से सदैव जुड़े रहे। जैन समाज और साहित्यकी जो सेवा गोरावालाजी ने की वह हमेशा गौरव से स्मरण की जायेगी।

श्री गुलाबचन्द वैद्य - राष्ट्रीय प्रेम की पवित्र भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़े श्री गुलाबचन्द जैन ढ़ाना-जिला सागर (म.प्र.) के निवासी हैं।

1941-42 के दौरान जब देशव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था उस समय प्रभातफेरियां, झंडा वंदन सभायें, चरखा कातना आदि के कार्यक्रम भी चलते रहते थे एक दिन सभा में भाषण देते हुए आपको अन्य साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। 6 माह का कारावास और 50 रुपये अर्थदंड हुआ। देशवासियों की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने के लिए आपने अनेक वीर रस की कवितायें लिखीं।

साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार जैन - श्री जैनेन्द्र कुमार का जन्म 1905 में कौडियागंज (अलीगढ़ उ. प्र.) में हुआ। आपकी शिक्षा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा में हुई। असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लेते, देश सेवा की दिशा में बढ़ते जैनेन्द्र कुमार आंदोलन के दौरान जेल गये और कारागृह के कठिन कष्टों को झेलने के बाद आजीविका के अभाव में आर्थिक समस्याओं से संघर्ष करते रहे।

जैनेन्द्र जी का दर्शन-चिंतन अपने ढंग का अनूठा था, गांधी दर्शन को उन्होंने अपनी मौलिक दृष्टि से परखा और जीवन में प्रयोग किया। उनकी साहित्यिक समाज सेवा आर्थिक संकट में भी विमुख नहीं हुई। जैनेन्द्र जी ने अनेक कहानी उपन्यास एवं निबंध लिखे। उनके उपन्यास 'त्याग-पत्र' का तो अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। हिन्दी साहित्य जगत में जिनेन्द्र जी का विशिष्ट स्थान है।

श्री जुगमंदिरदास जैन - आपका जन्म 1912 में एटा (उ. प्र.) में हुआ 1930 के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने हेतु दिल्ली आये। वहाँ से पुन: बंगाल गये। 1934 के षडयंत्र में आपको गिरफ्तार कर लिया गया। विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों में आपने सक्रिय भूमिका निभायी। मनोहारी व्यक्तित्व, सौम्य मुखमुद्रा वाले जुगमंदिर दास जी विद्वानों के अनुरागी थे।

पं. परमेष्ठीदास - जैन समाज के सुविख्यात विद्वान, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत, जैन पत्रकारिता को आधुनिकता का स्पर्श देने वाले पं. परमेष्ठी दास का जन्म महरौनी, जिला-ललितपुर (उ. प.) में हुआ। पं. जी ने ललितपुर, साढूमल, मुरैना, जबलपुर, और इन्दौर के जैन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की। आपने अनेक ग्रन्थों का पाठ संशोधन, संपादन किया। अनेक मौलिक पुस्तकें लिखी आर सैकड़ों मित्र बनाये, अनेक व्यक्तियों को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। पंडित जी का विवाह श्रीमती कमला देवी के साथ हुआ जो सही अर्थों में पंडित जी की सहभागिनी बनीं। जब पं. जी जेल गये तो कमला देवी भी उनके साथ जेल गयीं। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में आप सूरत में गिरफ्तार कर लिये गये श्रीमती कमला देवी को भी गिरफ्तार किया गया जेल में आपके साथ आपका तीन वर्षीय पुत्र भी गया पर फिर उसे आपके मित्र श्री सकेरचन्द सरैया अपने साथ ले गये।

हिन्दी भाषा का प्रचार कार्य महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यों में से एक महत्वपूर्ण कार्य था। इस कार्य में पं. जी पूरी तन्मयता से लगे रहे। जेल में लगभग 500 साथियों को राष्ट्रभाषा की शिक्षा देते थे, जेल में ही परीक्षा ली और राष्ट्रभाषा प्रचार समीति वर्धा को ओर से प्रमाणपत्र दिलवाये।

जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में पं. जी का नाम अग्रगण्य है। वे अनेक वर्षों तक 'जैन-मित्र' के सम्पादन से जुड़े रहे। प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार के साथ आपने 'लोक जीवन' मासिक पत्र का सम्पादन किया।

1932 से आप जैन परिषद के मुख पत्र 'वीर' से जुड़ गये अनेक सामाजिक बुराईयों को वीर पत्र के माध्यम से सामने लाये। पं. जी गांधीवादी थे अतः उनका यह पत्र उनके राष्ट्रीय विचारों का वाहक बन गया था और राष्ट्रीय समाचारों, निर्णयों और घटनाओं को प्रमुखता से प्रकाशित करता था। लेकिन मूलतः वीर जैन पत्र ही था। अनेक पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित श्रद्धेय पं. जी को 'समाज-रत्न' की उपाधि से अलंकृत किया गया था।

पं. फूलचन्द सिद्धांताचार्य - अनेक सामाजिक, राजनैतिक आंदोलनों के जनक, जैन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान पं. फूलचन्द सिद्धांताचार्य का जन्म 11 अप्रेल 1901 ई. को ग्राम-सिलावन, जिला-ललितपुर (उ. प्र.) में हुआ। कठिन परिस्थितियों में जीवन की विषमता को झेलते हुए पूज्य पंडित जी ने जैन दर्शन रूपी आत्मज्ञान की जिन ऊँचाईयों को प्राप्त किया उसका अन्य उदाहरण दुर्लभ है। पंडित जी ने खजुरिया, इन्दौर, सादूमल, मुरैना आदि के जैन विद्यालयों में शिक्षा पाई। दस्सा पूजा अधिकार, हरिजन मंदिर प्रवेश, गजरथ महोत्सवों में धर्म के नाम पर किये जा रहे अपव्यय का विरोध आदि उनके सामाजिक आंदोलन थे।

पंडित जी का राजनैतिक जीवन 1920 से शुरु हुआ जब वे सादूमल के विद्यार्थी थे वहां वे ग्रामीणों को एकत्र कर भाषण देने लगे, अंग्रेज अफसरों की ओर से विद्यालय बन्द कराने की नौबत आ गयी। अतः आपने मुठ्ठी फण्ड की स्थापना की और अनाज इकठ्ठा कर उसे गरीबों में वितरित करते रहने का कार्य प्रारम्भ किया 1928 के आस-पास आप बनारस से बीना आ गये और कांग्रेस के आंदोलनों में सक्रिय सहयोग देने लगे, आपने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया और इसे सफल बनाने के लिये आपने मंदिर जी में देशी वस्त्र रखवा दिये जो भी विदेशी साड़ी पहिन कर आये यहां उतारकर देशी वस्त्र (खादी) पहनें। आप बीना, सागर शोलापुर तथा अमरावती कांग्रेस के पदाधिकारी रहे। सन् 1941 में आपको 1 माह की कैद तथा 100 रू. का जुर्माना किया गया। आजादी के पश्चात आप राजनैतिक जीवन छोड़ पूर्ण रूप से साहित्यक आध्यात्मिक साधना में लग गये।

पंडित जी की प्रसिद्ध और क्रांतिकारी रचना 'वर्ण जाति और धर्म' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई है। आपने अपने जीवन में अनेक संस्थाओं की स्थापना की जिनमें प्रमुख है - सन्मति जैन निकेतन नरिया, वाराणसी श्री गणेश वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी। संस्थापक सदस्य श्री गणेश वर्णी दि. जैन इण्टर कॉलिज, ललितपुर। श्री गणेश दि. जैन शोध संस्थान वाराणसी आदि। आपने शास्त्रिसिन्धु (सोलापुर) और 'ज्ञानोदय' (वाराणसी) पत्रिकाओं का सम्पादन किया एवं जैन तत्वमीमांसा, जैन तत्वसमीक्षा का समाधान, परवार जाति का इतिहास आदि अनेक ग्रन्थ रत्न समाज को दिये। पं. जी के व्यक्तित्व और सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्र में उनके अवदान से अभिभूत और उपकृत जैन समाज ने 1925 में एक विशाल अभिनंदन ग्रन्थ भेट कर सम्मानित किया।

पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य - स्वाधीनता संग्राम में अविस्मरणीय योगदान देने वाले पंडित वंशीधर जी का जन्म सोरंई-ललितपुर (उ. प्र.) में हुआ। मातृभूमि की मुक्ति की पुकार सुन पं. जी अपनी युवावस्था में ही स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े चाहे 1931 का असहयोग आंदोलन हो या 1937 के असेम्बली चुनाव 1941 का व्यक्तिगत सत्याग्रह हो या 1942 का 'भारत छोड़ो आंदोलन' वंशीधर जी ने तन-मन-धन से इन स्वतंत्रता आंदोलनों में अपनी सक्रिय भूमिका निभायी। नगर कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से लेकर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी

की सदस्यता तक उन्हें जब जहां जो काम सौंपा गया उसे उन्होंने एक गरिमापूर्ण ढंग से निभाया 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में पं. जी की भूमिका इतनी स्पष्ट रही कि अपने ही साथियों के बीच उदाहरण बन गये। इस आंदोलन में 10 माह के कारावास की सजा सागर, नागपुर जेलों में व्यतीत की। बंदी जीवन हो या अमरावती जेल में सही गयी दुर्दम यातनायें, पंडित जी का अपराजेय व्यक्तित्व कहीं तनिक भी नहीं झुका। जेल की इन यात्राओं ने उन्हें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नये पाठ पढ़ाये, छुआछूत और दहेज जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जूझने का साहस और संकल्प प्रदान किया।

पूज्य पंडित जी की जैन साहित्य, समाज सेवा अनुकरणीय है। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के इतिहास में पं. वंशीधर की अध्यक्षता का काल गरिमा के साथ अंकित है। गुरु गोपालदास वरैया का शताब्दी समारोह उसी बीच आयोजित हुआ और उसकी सफलता में पं. जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला के मंत्री के नाते उन्होंने संस्था को निरंतर आगे बढ़ाने का प्रयास किया। पंडित जी की मौलिक कृतियां उनके गहन चिन्तन को प्रकट करती हैं। जैन समाज मं निश्चय और व्यवहार उनकी बहुचर्चित कृति है पं. जी की अन्य पुस्तकें हैं - 'जैन दर्शन में कार्यकारण भाव और कारक व्यवस्थ', 'पर्यायें क्रमवृद्ध भी होती है और अक्रमबद्ध भी', 'भाग्य और पुरूषार्थ एक नया , आदि। 1990 में आपकी विशिष्ट सेवाओं का अभिनन्दन करने हेतु सागर (म. प्र.) में एक वृहत अभिनंदन भेंट कर आपको सम्मानित किया गया था।

श्री बाबूलाल डेरिया - विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले बाबूलाल जी का जनम 3 मार्च 1907 को बाबई ग्राम, जिला-होशंगाबाद (म. प्र.)में हुआ। राजनीति के साथ-साथ धार्मिक क्षेत्र में भी सक्रिय डेरिया जी को हरिजन उद्धार आंदोलन में भाग लेने के कारण 3 बार जेल यात्रायें करनी पड़ीं। जेल से लौटने के पश्चात् आप बहुत कमजोर हो गये थे फिर भी आपने गांव-गांव घूमकर जनता को आजादी के लिये जगाया, जब आप दूसरी बार जेल गये तब आपकी माताजी का देहान्त हो गया तभी आपने जेल में एक कविता 'बेटों को कारावास-मां का स्वर्गवास' का प्रकाशन कराया था। होशंगावाद जिले में खादी प्रचार, शराब बन्दी 1932 में एक वर्ष की सजा व 200 रुपये जुर्माना तथा 1941 में 3 माह की सजा आपको हुई थी। 1942 में भी आपने जेल यात्रा की। अ. भा. दि. जैन परिषद को सफल बनाने में आपका पूरा सहयोग रहा।

श्री महेन्द्र कुमार मानव - मध्यप्रदेश के प्रख्यात राजनेता, कुशल पत्रकार, सजग साहित्यकार, सहृदय समाज सेवी, और राष्ट्रीय आंदोलन के कर्मठ सिपहसालार श्री महेन्द्र कुमार मानव का जन्म छतरपुर में फाल्गुन शुक्ल 13 संवत 1977 को हुआ। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में मानव जी ने हिस्सा लिया और 10 माह होशंगाबाद व जबलपुर जेलों में बंद रहे। देश की स्वाधीनता के बाद आप छतरपुर नगर पालिका के सदस्य और विन्ध्य प्रदेश के पहिले शिक्षा और बाद में वित्त एवं समाज सेवा मंत्री बने उन दिनों आप पूरे भारत में सबसे छोटी उम्र के मंत्री थे। जैन समाज के कार्यक्रमों में भी आप समय-समय पर भाग लेते रहे हैं। विशेषत: जैन विद्वानों की संस्थाओं से आप जुड़े रहे हैं विद्वत्सम्मेलनों में आप हिस्सा लेते रहे हैं। हाल ही में आपके अभिनंदन ग्रन्थ का प्रथम खण्ड THE GLORY THAT WAS BUNDELKHAND के नाम से प्रकाशित हुआ है जो लगभग 650 पृष्ठ का है।

'बाबू जी' रतनलाल जैन - उ. प्र. विधान सभा के सदस्य रहे बाबू जी उपनाम से विख्यात श्री रतनलाल जैन का जन्म 20 अगस्त 1892 को अफजलगढ़ जिला-बिजनौर (उ. प्र.) में हुआ। आपने एल. एल. बी. परीक्षा पास कर पहले नगीना फिर मुरादाबाद में वकालात प्रारंभ की किन्तु इस कार्य को उन्होंने धर्म और नैतिकता के विरुद्ध पाया 'गांधी' जी के आह्वान पर अपनी वकालत छोड़ राष्ट्र और समाज सेवा में लग गये। 'बाबू जी' ने कांग्रेस के असहयोग आंदोलन के अन्तर्गत चार बार जेल यात्रायें कीं। स्वतंत्रता संबंधी सभी आंदोलनों में आपकी भूमिका अग्रगण्य रही हैं। बिजनौर जनपद सत्याग्रह आंदोलन के तो वे प्राण थे। आप 1937 से 1940 तक उ. प्र. विधान परषिद के सदस्य तथा 1952 से 1957 तक विधान सभा के सदस्य रहे।

'बाबू जी' बड़े अध्ययन प्रिय थे। कारागृह के एकान्त जीवन का सदुपायोग उन्होंने जैन दर्शन के अध्ययन में किया। उनके द्वारा लिखे गये 'आत्म रहस्य' तथा 'जैन धर्म' ग्रन्थ उनके गहन अध्ययन के परिचायक हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंधों आदि के द्वारा समाज का मार्गदर्शन किया।

'बाबू जी' सामाजिक कुरीतियों के घोर विरोधी थे। जैन जातियों में अन्तर्जातीय विवाह करने मरण भोज बन्द करने, मध्यप्रदेश में गजरथों की बाहुल्यता को अनुपयोगी ठहराने, विधवा विवाह का समर्थन करने, दस्साओं के पूजा संबधी अधिकार आदि प्रकरणों पर अपने विचार रखे। समय-समय पर अनेक सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं ने आपका सार्वजनिक सम्मान कर गौरव का अनुभव किया।

डॉ. राजमल कासलीवाल - नेताजी सुभाषचन्द बोस के निजी चिकित्सक रहे तथा देश में चिकित्सा के उत्कृष्ट पुरस्कार 'बी. सी. राय एवार्ड' से सम्मानित डॉ. कासलीवाल का जन्म 20 नवम्बर 1908 को जयपुर में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध में आपको मलाया भेजा गया जहां 'नेता जी' से आपकी भेंट हुई। आप आजाद हिन्द फौज में 1945 तक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के निदेशक पद पर रहे और भारत की आजादी के लिये अनवरत प्रयत्न करते रहे। चिकित्सा शास्त्र से संबंधित आपकी अनेक पुस्तकें एवं लेख प्रकाशित हुये हैं।

श्री रामस्वरूप भारतीय - 'भरतीय' उपनाम से विख्यात, राष्ट्रभक्ति और पत्रकारिता को ही अपने जीवन का ध्येय बनाने वाले रामस्वरूप जी जारखी, जिला-आगरा (उ. प्र.0 के निवासी थे। आपका जन्म एक जमींदार परिवार में हुआ था। बचपन से ही राष्ट्रीय भावनायें आपके अन्दर कूट-कूटकर भरी थीं। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी में आपकी समान योग्यता थी। आप कवि-लेखक के साथ-साथ पत्रकारिता से भी जुड़े रहे। 1942 के आंदोलन में सहयोग देने की शंका के कारण आपको गिरफ्तार कर दो माह सेंट्रल जेल आगरा में नजरबंद रखा गया था। आप वेसवां किला (अलीगढ़) के वर्षों मैंनेजर रहे थे।

पं. राजकुमार शास्त्री - सन् 1916 में कांग्रेस के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेते समय घुडसवार पुलिस द्वारा प्रताड़ित किये गये पं. राजकुमार शास्त्री का जन्म सकरौली-जिला-एटा (उ. प्र.) में हुआ। आपने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस से धर्मशास्त्री, साहित्यतीर्थ एवं आयुर्वेदाचार्य की परीक्षायें उत्तीर्ण की थी। 1921 के परीक्षा बहिष्कार आंदोलन में आपको बेतों से पीटा गया और एक दिन की जेल की सजा हुई। आपकी

धार्मिक एवं सामाजिक सेवायें अनवरत रहीं। अनेक वेदी प्रतिष्ठायें आपके द्वारा संपन्न हुईं। सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं में आपके धार्मिक एवं सामाजिक सुधार संबंधी अनेक लेख प्रकाशित हुये हैं।

पं. लोकमणि जैन - बहुमुखी प्रतिभा के धनी, जैनदर्शन के विद्वान और समाज सुधारक पं. लोकमणी जैन का जन्म हिनौतिया (म. प्र.) में 1890 में हुआ। स्याद्वाद महाविद्यालय से आपने मध्यमा, शास्त्री आयुर्वेदरत्न और वैद्यविशारद की उपाधियां प्राप्त कीं। आप 1921 से स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हो गये थे। 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में आपने भाग लिया तथा 4 माह का कारावास भोगा सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में आपकी नेतृत्वशील भूमिका के कारण दो वर्ष का कारावस हुआ, जो आपने जबलपुर जेल में काटा। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जैनधर्म विषयक पंडित जी के लेख प्रकाशित होते रहे हैं। जैन समाज की कुरीतियों पर भी आपने साहिसपूर्ण ढंग से कठोर प्रहार किया। कुछ समय तक आपने जैन गजट में सम्पादन का कार्य भी किया। पंडित जी अपनी स्पष्टवादिता के लिये प्रसिद्ध रहे हैं।

श्री शीतल प्रसाद जैन - क्रांतिकारियों का गढ़ रहे श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के स्नातक श्री शीतल प्रसाद का जन्म ग्राम बडागांव, जिला मेरठ (उ. प्र.) में 5 अगस्त 1918 को हुआ। आपने एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी) एल. एल. बी. आदि परीक्षायें पास कीं। आपने बताया- 'बनारस जाते ही मैं स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय हो गया था, हमने छात्रावास में ही वीर सैनिक संघ (V.S.S) की स्थापना की थी, जिसमें छात्रों को सैनिक वर्दी में सैनिक शिक्षक की व्यवस्था की। विभिन्न सार्वजनिक समारोहों में भी हम सेवा कार्य करते थे। 1942 के आंदोलन में संघ के सदस्यों ने खुलकर भूमिगत रहते हुए कार्य किया। छात्रावास में लीथो प्रेस तैयार करके, उसमें हजारों की संख्या में कान्तिकारी पैम्पलेट छापे गये, जिनमें विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने का आह्वान किया गया था। आठ-दस छात्रों की टोलियां प्रातः निकल पड़ती और देर रात लौटतीं। डाकखानों, रेलवे स्टेशनों, विद्युत, कार्यालयों आदि को ठप्प करने के साहसिक कार्य हमने किये। अनेक अवसरों पर मरने से बाल-बाल बचे। 24 अगस्त 1942 को सारनाथ मेले में जाते हुए सी. आई. डी. के अधिकारियों ने गिरफ्तार कर मैदागिन टाउन हाल में जज के सामने प्रस्तुत किया। मेरे पास जो पैम्पलेट थे उनके आधार पर दो साल का कठोर कारावास तथा 50 रु. जुर्माना की सजा दी गयी।'

पं. शीलचन्द जैन - पं. शीलचन्द का जन्म उ. प्र.. में बडौत के निकट विजवाडा में 15 अक्टूबर 1915 को हुआ। 1939 से ही आप राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने लगे। कांग्रेस का साथ देते हुए नमक सत्याग्रह और भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया और जेल यात्रा की रहन-सहन में सादगी और निर्भीक विचारों से संपन्न पं. शीलचंद जी हमेशा समाज एवं मानव कल्याण में लगे रहे। उन्होंने समाज में महिलाओं को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने की पहल की। गंभीर चिंतक, ओजस्वी वक्ता, जिनवाणी विशेषज्ञ, शास्त्रों के मर्मज्ञ, अहिंसा पुजारी, निर्भीकता आदि आपके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषतायें थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में 'वीर' का सम्पादन, विश्वमित्र का सहसंपादन तथा 'कुन्दनशील' के संस्थापक संरक्षक आप रहे थे।

डा. हरीन्द्र भूषण जैन - साहित्य की सर्वोच्च उपाधि महामहोपाध्याय से अलंकृत सरल हृदय, सुयोग्य शिक्षक, कर्मठ, समाज सुधारक, आजादी के दीवाने डा. हरीन्द्र भूषण का जन्म 16 अगस्त 1921 को नरयावली जिला-सागर (म. प्र.) में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर आप स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी आये। यह

विद्यालय उन दिनो क्रान्तिकारियों का गढ़ था। विद्यालय के लगभग सभी छात्र क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न थे। 1939 से ही आप राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय हो गये, बम बनाना आदि भी सीख लिया था 1942 के आंदोलन में आपने सक्रिय भूमिका निभायी। प्रशासन ने आपको गिरफ्तार कर लिया, मुकदमा चला और 3 माह आप बनारस जेल में रहे। जेल से रिहा होने के बाद आप एक बम षडयंत्र में सम्मलित हो गये इस षडयंत्र का पता चल गया और आपको बनारस छोड़कर भूमिगत होना पड़ा। अनेक पुस्तकों के रचयिता डॉ. जैन के लगभग 60 शोध निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये, आप अनेक वर्षों तक विद्वत परिषद के मंत्री रहे थे।

श्री हुकुमचन्द बुखारया 'तन्मय' - 'जैन राष्ट्रकवि' श्री हुकमचंद बुखारया का जन्म 24 जनवरी 1921 को ललिपुर (उ. प्र.) में हुआ। 19-20 वर्ष की अवस्था से ही आपने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था। द्वितीय महायुद्ध के आस-पास राष्ट्रव्यापी आंदोलन में आप पूर्ण रूप से प्रयत्नशील हुये फलत: राष्ट्रीय भावना के आवेग ने आपको कवि बना दिया। 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह के अर्न्तगत 6 माह की सख्त सजा पायी थी। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में एक वर्ष की कठोर जेल और 199 रु. जुर्माने की सजा भी आपने पायी। जेल के अन्दर आपकी संवेदना विद्रोह कर बैठी और 'आहुति', 'पविस्तान' और 'मेरे बापू' जैसी कृतियों का जन्म हुआ जिसमें आपकी ही नहीं वरन् राष्ट्र की वेदना परिलक्षित हुई। 'मरण मुक्ति का द्वार' आपकी आध्यात्मिक रचनाओं का संकलन है। देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनायें प्रकाशित हुई हैं। स्पष्टवादिता आपके व्यक्तित्व के प्रमुख विशेषता थी। ललितपुर में आपको नगरिक अभिनंदन के अवसर पर 'सरस्वती भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया था।

इसी तरह और भी अनेक जैन विद्वान है जिन्होंने देश की आजादी में अपनी भूमिका निभायी। आज आवश्यकता है कि जैन विद्वान धर्म के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास में भी समुचित योगदान देवे।

जय हिन्द-जय जिनेन्द्र

विद्वत्ता युवकों को संयमी बना देती है। यह बुढ़ापे का आराम है, निर्धनता में धन का काम देती है और धनवानों के लिए आभूषण का काम करती है।

- सिसरो

जीवन संजीविनी विद्या : जैनत्व संरक्षण

प्रो. हीरालाल पांडे ''हीरक''
एम. ए. शास्त्री, साहित्याचार्य*

भारत की प्राचीन शिक्षा ''गुरुकुल प्रणाली'' पर आधारित थी। उस में गुरु शिष्य का संबंध अतीव निकट का था। बच्चे-बच्चियों का मनोविज्ञान पर आधारित शिक्षण था। इसलिए भारती की शिक्षा में जीवन के मूल्यों का नैतिक आधार था। इसीलिये अंग्रेजों ने अपने स्वार्थवश शिक्षा की ''भारतीय शिक्षा प्रणाली'' को नष्ट कर अपनी नूतन शिक्षा पद्धति ''आँग्ल शिक्षा पद्धति'' के आश्रय से भारत में पल्लवित की।

''आँग्ल शिक्षा पद्धति'' के जन्मदाता लार्ड मेकाले थे जो भावनाओं से हृदय के काले थे और परिणाम भी देश के अहितकर थे।

देश की आजादी के पचास वर्षों के बाद भी आँग्लों द्वारा प्रदत्त शिक्षा पद्धति ज्यों की त्यों विष बेल की भाँति पनपती जा रही है। अतएव देश का शिक्षित वर्ग विष बेल जैसी शिक्षा पद्धति से राम के छोटे भाई लक्ष्मण की नाईं बेहोश और मदमस्त हो जीवन के उद्देश्यों की छाया से वंचित होती जा रहा है। युवा वर्ग को यह छाया भयंकर अजगर के समान निगलती जा रही है। भारत का युवा वर्ग जीव+न के अनुसार बेहोश हो जड़ होता जा रहा है। जीवन में ''वन''-पानी नहीं रहा। पानी चला गया तो जीवन निर्मूल्य कचरा बन गया। इस कचरे को जलाने का काम वही कर सकता है जिसमें रामभक्त हनुमान के समान अतुल बल हो।

संजीविनी बूटी से लक्ष्मण की बेहोशी के समान युवावर्ग की बेहोशी की संजीविनी विद्या दे जीवन का दान कर सके। अतएव कहा जा सकता है कि आज की विद्या-शिक्षा जीवन को जिलाने की शिक्षा नहीं है।

आज सब भूले-भले से बेहोश हो बच्चों को अंग्रेजो की जीवन को निर्जीव बनाने वाली शिक्षा को अपना अज्ञान राह की ओर उसके परिणामों से बेखबर हो अज्ञान उन्माद और बेकारी राक्षसी की दासता के चुंगल में फँसकर बेमौत मौत के अंधे कुएं में गिरते जा रहे हैं। बेंकारी आवारापन को जन्म देती है जिसके दुष्परिणाम समाज और राष्ट्र को भोगना पड़ते हैं।

भारतीय संस्कृति में जन्मी ''शिक्षा पद्धति'' धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को पालने या आचरण-व्यवहार में प्रयोग करने में समर्थ बनाती है। जीवन की संपन्नता और समृद्धि देने में सक्षम थी। अत: भारतीय शिक्षा पद्धति सार्वकालिक थी। उसे नष्ट करने का श्रेय आँग्ल शिक्षा के भारत में प्रचलित करने वालों को दिया जाना चाहिये। अत: शिक्षा में काले-काले राक्षस भारत के लिए स्वत: सिद्ध हैं।

*''लखेरापुरा'', भोपाल

स्वतंत्र भारत में शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन चार पुरुषार्थों से संपन्न बनाने अत्यंत आवश्यक हो गया है। ''या विद्या सा विमुक्तये'' इस लक्ष्य की पूर्ति सांसारिक श्रेष्ठ मुक्ति और पारलौकिक श्रेष्ठ मुक्ति की आराधना में है या चारों पुरुषार्थों की सफलता में निहित है।

अतएव आचार्य विद्यासागर जी मूक माटी में कहते हैं -

''पुरुष यानी आत्मा परमात्मा है
''अर्थ'' यानी प्राप्तव्य प्रयोजन है
आत्मा को छोड़कर
सब पदार्थों को विस्मृत करना ही
सही पुरुषार्थ है।''

भारतीय शिक्षा किसी भी क्षेत्र में असफलता के दर्शन नहीं कराती। क्योंकि उस का लक्ष्य चारों पुरुषार्थो की सफलता है। भारतीय शिक्षा में भारत राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता को स्थान है और कोई पुरुषार्थ पंगु या निकम्मा नहीं रहता। अत: बेकारी या आवारापन नहीं पनपता।

स्वतंत्र भारत राष्ट्र में स्वतंत्र देश की शिक्षा पद्धति को प्रश्रय देना आवश्यक है। गुरुकुल पद्धति के गुणों को अपनाने की आवश्यकता समाज और राष्ट्र को वर्तमान के संदर्भ में अनिवार्य हो गई है। सरकार को ऐसी उदार नैतिकता को जन्म देना होगा जो सरकारी संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चे और बच्चियों के पूर्णतया हित में हों। शिक्षा की व्यवस्था भी ऐसी हो कि कोई पढ़ने के बाद बेकार या आवारा नहीं बने।

शिक्षा शास्त्री शिक्षा प्रदान करने मे मनोविज्ञान को प्रथम स्थान देते हैं। बच्चों और बच्चियों को युवा और युवतियों तथा वृद्ध-वृद्धाओं को मनोविश्लेषण के आधार पर शिक्षा या विद्या पाने की राह सुलभ रहे तो राष्ट्र और समाज की उन्नति सर्वांगीण होगी। इस से उनकी योग्यता के विकास में बाधा नहीं होगी। साथ में सरकार और समाज की आवश्यकता की पूर्ति में बाधा नहीं होगी।

गुरुकुल प्रणाली में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा शिक्षाकाल तक अनिवार्य थी और तदनुसार धार्मिक संस्कार किया जाता था परन्तु आज इसके नकार दिया गया है। संस्कार विहीन होने के कारण दुष्परिणाम, बलात्कार, असफल परिणाम, आत्महत्या तलाक और एड्स जैसी भयंकर बीमारियों के रूप में देखे जा रहे हैं। रेगिंग की प्रथा चल पड़ी है जिस में छात्र-छात्रायें समान भागीदार बन अपने भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। अत: वर्तमान में बचपन से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा तक ब्रह्मचर्य संस्कार की उपयोगिता बढ़ गई है।

शिक्षा व्यवस्था में चारों पुरुषार्थों के समन्वय करने की आवश्यकता है। सामाजिक शिक्षा संस्थाओं में पूर्वोक्त संस्कार आसानी से पल्लवित हो कल्पवृक्ष का रूप ले सकते हैं। धर्म पुरुषार्थ अर्थ-धन कमाने का पोषक है और शेष तीनों पुरुषार्थों पर नियंत्रण रखता है। धर्म नियंत्रित अर्थ और काम मोक्ष की ओर ले जायेंगे। इनका पालक दरिद्री नहीं होगा। प्रत्येक पुरुषार्थ के पोषण के लिए नैतिक गुण अपनायेगा। कभी कदाचार पर पैर नहीं बढ़ायेगा।

इसी प्रकार छात्रावासों की सुव्यवस्था करनी होगी। जैन सामाजिक संस्थायें भी ब्रह्मचर्य संस्कार को प्रश्रय दे निजी स्कूल, कॉलेज और छात्रावासों में भी उसे पल्लवित कर सकती हैं। जैनों के गृहस्थ और मुनि दो आश्रम हैं। उनके अपने आचार हैं। उनका पालन शिक्षा संस्थाओं में आवश्यक है। अत: जैन गृहस्थ आचार्यों के कहे अनुसार अपने कर्त्तव्यपथ के पीछे-पीछे या ऊपर जा सकते हैं। परन्तु यह कथा हमारी विचारणीय और संग्रहणीय बन गई है।

मनोवैज्ञानिक शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र इच्छा शक्ति और वातावरण को उपादेय मानते हैं। अत: बच्चों के हित में उनका परीक्षण और प्रयोग अनिवार्य है। आज बच्चे धर्म पुरुषार्थ से विमुख होते जा रहे हैं। अत: जैन समाज भी जैनत्व की रक्षा के लिए एवं तदनुसार आचार को जीवन में पल्लवित होने की आवश्यकता के लिए चिन्तित है।

बच्चों का मन कोरा कागज और कोरी स्लेट होता है। उन पर माँ, बाप और परिवार के सदस्यों का प्रभाव अंकित होता है। अत: बच्चों को ऐसी शिक्षा संस्थायें और छात्रावास देने होंगे। उन्हें समझाना होगा और व्यावहारिक ज्ञान से एवं आचरण से होगा वह धर्म बोध जो हितकर है। अधर्म कभी हितकर नहीं हो सकता यह ज्ञान भी उन्हें देना होगा। आचार्य कुन्द-कुन्द ने अपने अष्टपाहुडों में इस प्रकार के ज्ञान की वकालत अनेक स्थानों पर की है। उन ने गृहस्थाश्रम और मुनि-आश्रम या सन्यास आश्रम को आज से हजारों वर्ष पहिले आगाह कर दिया था। शास्त्र प्रवन के पूर्व मंगलाचरण के अंत में कहा जाता है-

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगल कुन्दकुन्दाद्यौ, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इससे आचार्य कुन्द-कुन्द द्वारा प्रदत्त ज्ञान-शिक्षा की महत्ता स्वत: सिद्ध हो जाती है।

आचार्य कुन्द-कुन्द ने "शील पाहुड" की दूसरी गाथा में कहा है-

**सीलस्य य णाणस्य य णत्थिविरोहो बुधेहिंणिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥2॥**

"ज्ञानी शील और ज्ञान में विरोध नहीं बनाते हैं। शील के बिना सांसारिक विषय भाग ज्ञान को नष्ट कर देते हैं।"

निर्मल चारित्रमय-शीलमय ज्ञान के बिना धर्म पुरातन पापों को और नवीन पापों को धो नहीं सकता। इसी बात को "शील पाहुड" की चौथा में कहा गया है।

**ताव ण जाण दि णाणं विसयवलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्म॥ ४॥**

"विषयों के आधीन जीव ज्ञान को नहीं पाता और विषयों से मात्र विरक्त जीव प्राचीन कर्मों को नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि इस के लिए ज्ञान अनिवार्य है।"

आचार्य कुन्दकुन्द ''शील पाहुड'' की अन्तिम चालीसवीं गाथा में कहते हैं-

अरहंते सुहमत्ती सम्मत्तं दंसणेण सु विसुद्धं।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं मेणियं॥४०॥

''अर्हंत में सच्ची भली भक्ति, सच्चे विश्वासमय सम्यक्त्व और सांसारिक भोगों से विरक्ति रूप शील-चारित्र को ज्ञान कहा है। इस से विपरीत हो अज्ञान कहा जावेगा।''

आचार्य कुन्दकुन्द की यह ज्ञान की परिभाषा सार्वजनीन है और चारों पुरुषार्थों की साधिका है।

आज के युग में ऐसे ही ज्ञान की सार्थकता है जो सांसारिक और पारमार्थिक जीवन को सुखी बनाता है और धर्म-मुक्ति को देता है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्ष मार्ग कहा है। विना सम्यक् ज्ञान के सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र नहीं होता अत: विद्या-ज्ञान का लक्ष्य जो सांसारिक और पारमार्थिक मुक्ति है वह कैसे प्राप्त होगी। वेद तक यह कहते हैं-''या विद्या सा विमुक्तये''

आचार्य कुन्दकुन्द ''बोध पाहुड'' की बाईसवीं गाथा में कहते हैं-

णाणं पुरिसस्सहवदिलहदि सुपुरिसोवि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदिलक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्य॥२२॥

''पुरुष के ज्ञान होता है। पुरुष विनयवान हो तो श्रेष्ठ पुरुष बन कर ज्ञान को पाता है। ज्ञान से लक्ष्य को पाता है जो लक्ष्य केवल मोक्ष का मार्ग है।''

चार पुरुषार्थों में अन्तिम पुरुषार्थ धर्म का लक्ष्य होता है। शेष तीन पुरुषार्थ धर्म पुरुषार्थ के लिए समर्पित रहते हैं।

इस की पुष्टि आचार्य कुन्द-कुन्द ने ''बोध पाहुड'' की चौबीसवीं गाथा में 'देव' की परिभाषा देकर की है-

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेह णाणं च।
सो देइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा॥२४॥

''सच्चा देव वह है जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कारण भूत ज्ञान को देता है। जिसके पास चारों पुरुषार्थों की सत्ता है वही देव सच्चा ज्ञान और सच्ची मुक्ति दे सकता है।''

आचार्य कुन्द कुन्द ने सच्चे ज्ञान को सच्चा शील-चारित्र माना है। ज्ञान का चारित्र के साथ विरोध नहीं है। क्योंकि सच्चा ज्ञान बिना चारित्र के रह नहीं सकता। अन्यथा धर्म पुरुषार्थ की सत्ता खतरे में पड़ जावेगी।

जैन गृहस्थों को उन के छह कर्त्तव्य कर्म बतायें हैं। उनका पालन अर्थकारी विद्या से जोड़कर कराना होगा। जैन गृहस्थ के निम्न छह कर्म हैं -

(१) देवपूजा (२) गुरु की सेवा या उपासना (३) स्वाध्याय (४) संयम (५) तप (६) दान।

छटवाँ कर्म दान इस कर्त्तव्य की ओर भी ध्यान दिलाता है कि उसे अर्थोपार्जन का भी ध्यान रखना है। ये छहों सापेक्ष हैं और अहिंसा धर्म के साधक हैं।

जैन संस्थाओं और छात्रावासों में बच्चों को छहों कर्मों के जीवन में पालन के लिए नींव तैयार करनी होगी।

चाणक्य ने कहा है कि-

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

"धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में से जिस व्यक्ति के जीवन में एक भी पुरुषार्थ नहीं है, उसका जन्म बकरी के गले में स्तन के समान व्यर्थ है।"

इस से स्पष्ट है कि चारों पुरुषार्थ सापेक्ष हैं और एक पुरुषार्थ के सही प्रयोग होने पर चारों पुरुषार्थों का पालन होने लगेगा।

जैन शिक्षा-शास्त्रियों, सद जैन गृहस्थों समाज तथा मुनिवर्ग को जैनत्व की रक्षा के लिए उपरोक्त निवेदन पर ध्यान देना होगा।

इत्यलम्

सुखार्थी को विद्या कहाँ, विद्यार्थी को सुख कहाँ? सुख को चाहे तो विद्या छोड़ दे, विद्या को चाहे तो सुख त्याग दे।

- अज्ञात

जैन पंडित परम्परा : एक परिदृश्य

नंदलाल जैन*

महावीर के अनुयायियों की वर्तमान दोनों ही परंपरायें भद्रबाहु प्रथम (३७६-३०० ई. पू.) को आदरपूर्वक मानती हैं। संभवत: इनके बाद ही श्वेतांबर-दिगम्बर परम्पराओं ने विकसित होना प्रारम्भ किया। श्वेताम्बर परम्परा में साधुओं को ही संघ और समाज का आध्यात्मिक नेतृत्त्व मिला जो अब तक चल रहा है। प्रारम्भ में, दिगम्बर परम्परा में भी पुष्पदन्त-भूतबलि, गुणधर, उमास्वाति, पूज्यपाद, अंकलंक, विद्यानन्द, वादिराज, धर्मभूषण (यति), नेमचन्द्र चक्रवर्ती आदि ने विभिन्न युगों में धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नेतृत्व प्रदान किया। ये सभी साधु, यति या आचार्य थे। उत्तरवर्ती समय में सर्वप्रथम दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्र (९८०-१०६५ ई.) को आचार्य और पंडित शब्द से अभिहित पाया जाता है एवं आशाधर (११८०-१२५० ई.) को तो स्पष्टत: ही पंडित कहा गया है, भाग्य से, दोनों विद्वानों का कार्यक्षेत्र धारानगरी ही रहा है, अत: धारा को दिगम्बर परम्परा की पंडित प्रथा को पुष्पित करने का श्रेय दिया जावे, तो यह अनुचित नहीं होगा। इससे यह प्रतीत होता है कि आचार्य तो साधुवेशी ही होते थे। पंडित प्राय: गृहस्थ होते थे। सम्भवत: प्रभाचन्द गृहस्थावस्था में ही अपनी विद्वत्ता में ख्यात हो चुके थे, बाद में वे आचार्य बने होंगे।

यह सम्भव है कि जैनों में पंडित परम्परा की प्रेरणा वैदिक संस्कृति से मिली हो जहाँ प्रारम्भ से ही गृहस्थ पंडित और ऋषि साहित्यिक एवं धार्मिक जागरण तथा अनुष्ठानों के लिए मान्य रहे हैं। धार्मिक कट्टरता के मध्ययुग में अपनी सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए "सर्वमेव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधि:। यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, यत्र न व्रतदूषणं।" का सिद्धान्त अपनाते हुए जैनों ने अनेक बाह्य कर्मकांडों को भी भी अपनाया। इसके अन्तर्गत देवपूजन, विधान, प्रतिष्ठा, संस्कार, कथावाचन, मन्त्र-तंत्र प्रयोग, तीर्थकरातिरिक्त देवपूजन आदि की क्रियाओं ने जैनधर्म में प्रतिष्ठा पाई। इनमें से अनेक मान्यताओं पर बीसवीं सदी में आदर्श सैद्धान्तिक ऊहापोह हो रहे हैं। फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि ये तत्व अब जैन धार्मिक एवं सामाजिक संस्कृति के अंग बन गये हैं। इनकी मनोवैज्ञानिक व्यावहारिकता को सैद्धान्तिक तर्कों से विचलित शायद ही किया जा सके। उपरोक्त कार्य साधुजन तोकर नहीं सकते थे, अत: साधु और गृहस्थों के मध्यवर्ती उच्च आचार-बिवचार वाली भट्टारक और पंडित परम्परायें जैनों में स्वयमेव विकसित हुई। इनमें प्रारम्भ में साधु ही भट्टारक बने, पर बाद में अविवाहित रहने वाले आचारवानों को भट्टारकत्व मिला। इन्होंने और इनके शिष्य-प्रशिष्यों ने अपने समय में धर्म-संरक्षण एवं क्रियाकांडों का नेतृत्व किया। राज्य अनुशंसा भी पाई। इन्होंने मठ बनाये और उसमें रहने लगे। परिग्रह और अधिकार के कारण इनके आचारो में परिवर्तन हुआ, जिससे साधु-संस्था की प्रतिष्ठा भी गिरी। आशाधर तो अपने युग में इन्हें 'म्लेच्छ के समान' कहने से नहीं चूके। फिर भी, यह संस्था दक्षिण भारत में आज भी प्रतिष्ठित है। इसके विपर्यास में, पंडित गृहस्थ के रूप में रहकर भी धार्मिक एवं सामाजिक नेतृत्व करते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से यह परम्परा निर्माण एवं पोषण का युग माना जा सकता है। भट्टारक और पंडित-

*गर्ल्स कॉलेज, रीवा, म. प्र.

दोनों ही इस कोटि से समान हैं। सातवीं-आठवीं सदी के धनंजय संभवत: सबसे पहले गृहस्थ थे जिन्होंने इस क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की। भट्टारकों के जो शिष्य इस प्रकार के कार्य करते थे, वे 'पांडे' कहलाते थे। पंचाध्यायीकार राजमल पांडे, पं. बनारसीदास के गुरु सम पं. रूपचन्द पांडे तथा हेमचन्द पांडे आदि सोलहवीं सदी के उदाहरण हैं। भट्टारक परम्परा के क्षीण होने पर पांडे नाम महत्त्वहीन हो गया और पंडितों के हाथ ही धर्मरुचि को जगाये रखने का काम रहा। इस बीच अनेक कवियों (सोमदेव ९०८-९७० ई., पुष्पदंत, हस्तिमल्ल (११६१-८१ ई.), हरिश्चन्द्र, धनपाल, तेजपाल, रइधू (१५-१६वीं सदी), श्रीधर (११००-८३ ई.) आदि ने अपने काव्यात्मक उपाख्यानों द्वारा धर्मचक्र को जीवन्तता प्रदान की।

ऐसा प्रतीत होता है कि १३-१५वीं सदी में भट्टारक परम्परा के प्रभाव के कारण पंडित परम्परा आशाधर के उत्तरवर्ती दो सौ पचास वर्षों में पंडित नामरूपेण ही रही। फिर भी, यह विषय शोधनीय है। पर पिछले पाँच सौ वर्षों में पंडितों की अनेक कोटियों ने दिगम्बर परम्परा की अनेक रूपों में सेवा की है। इसके पूर्ववर्ती वर्षों में लौकिक विधियों के समावेश से धर्म का अध्यात्म तत्व आवृतप्राय हो गया था। पंडितों की प्रथम पंक्ति ने इस तत्व को पुन: प्रतिष्ठित कर पाँच सौ वर्षों की जड़ता को दूर करने का प्रयास किया। इस बहादुर पंक्ति का दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ओर से साहित्यिक एवं सैद्धान्तिक विरोध हुआ। इसके फलस्वरूप लगभग १६१८-२० में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय राजस्थान के सांगानेर में दिगम्बरों के दो पंथ-पेरापन्थ और बीसपन्थ हो गये। उस समय प्रचलित पंथ बीसपंथ और सैद्धान्तिक पंथ तेरापन्थ कहलाया। वर्तमान पंडित वर्ग इन दोनों को पोषित करता है।

परम्परापोषी पंडितों के विवरण के अतिरिक्त जैन इतिहासज्ञों द्वारा पंडित परम्परा पर कोई विशेष कार्य नहीं किया गया है। इससे इस सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाओं का भी अभाव है। सतीशकुमार ने अपने व्यापक उद्देश्य के अनुरूप लेखक व वैज्ञानिकों की कोटि में अनेक पंडितों का विवरण दिया है। फिर भी, जैन विद्वानों से सम्बन्धित सूचनाओं की दृष्टि से शास्त्रि परिषद् का प्रकाशन अधिक उपयोगी है। इसमें अनेक अपूर्णतायें हैं, पिछले एक युग में अनेक नूतनतायें भी जुड़ी है, फलत: उक्त संस्था को इसके परिवर्धित संस्करण की दिशा में सक्रिय रूप से विचार करना चाहिये। वस्तुत: ऐतिहासिक दृष्टि से, पंडित परम्परा को तीन युगों में वर्गीकृत किया जा सकता है; (1) स्वान्त:सुखाय सर्जना एवं उपदेशना युग (2) प्रचार-प्रसार, अनुसंधान एवं सामाजिक प्रेरणा का युग और (3) शिक्षा अनुष्ठान एवं साहित्य सर्जना का युग।

सारणी १ से स्पष्ट है कि प्रथम युग (१५००-१८००) के विद्वानों में तीन व्यवसायी, चार राजसेवी तथा चार अनिर्दिष्ट व्यवसायी रहे हैं। कहा जाता है कि इनमें द्यानतरायजी की स्थिति सबसे कमजोर रही है। फिर भी, ये सभी धर्म के सिद्धान्तों का जीवन एवं समाजव्यापी महत्व समझते थे। अपनी इस विचारधारा का लाभ उन्होंने समाज को देने का प्रयत्न किया। सम्भवत: जयपुरवासी पं. दौलत राम (१६८२-१७७२) ने जैनों के व्यक्तिगत जीवन में त्रेपन क्रियाओं को प्रतिष्ठित किया। जो आज भी जैनों के आचार-विचार के अंग बनी हुई हैं। इस प्रकार भक्तिवाद, क्रियाकांड एवं तत्कालीन भाषा में जिनवाणी के प्रस्तुतीकरण के कार्य के लिए प्रथम युग को श्रेय दिया जाना चाहिये। इस युग में आगरा, जयपुर एवं बिहार पंडितों के प्रमुख केन्द्र रहे हैं : यह भी स्पष्ट है कि इस युग में पंडितों की आजीविका समाजनिर्भर नहीं थी। वे स्वान्त:सुखाय एवं परोपकार हेतु ही धार्मिक चर्चायें एवं साहित्य सृजन करते थे। ऐसे लोगों की संख्या कम ही होती है। तीन-सौ वर्षों में केवल ग्यारह महत्वपूर्ण नाम हमें मिले हैं।

द्वितीय युग के विद्वानों में प्रथम की अपेक्षा काफी विविधता पाई जाती है। इनमें आधे से अधिक मान्य पंडितों ने जैनधर्म को स्वयमेव अध्ययन किया। ये आजीविका हेतु समाज पर आश्रित भी नहीं रहे। इन्होंने धर्म और समाज में जागरूकता लाने की स्वान्तःसुखाय प्रवृत्ति को कार्यरूप दिया। इनका कार्य समाज में धार्मिक शिक्षा एवं सिद्धान्तों का प्रचार प्रमुख रहा है। वेरिस्टर चम्पतराय, जे.एल. जैनी और ब्र. शीतल प्रसाद जी तो विदेशों में भी धर्म-प्रचारार्थ गये, अंग्रेजी में जैनधर्म विषयक साहित्य-सृजन एवं अनुवाद कार्य किया। वर्णीजी और वरैयाजी बीसवीं सदी में जैन शिक्षा प्रसार के आदिपुरुष माने जा सकते हैं। इस सदी में आठवें दशक का वरेण्य जैन विद्वत् समाज इनके द्वारा स्थापित संस्थाओं की ही देन है। श्री प्रेमी जी और मुख्तार सा. ने अपनी अध्ययनशीलता से जैन-विद्याओं में अनुसंधान तथा प्रकाशन का क्षेत्र विकसित किया। वस्तुतः इन्होंने शिक्षण का कार्य तो नहीं किया, पर शिक्षक तैयार करने की भूमिका बनाई। इन्होंने जैनधर्म के प्रचार और गहन अध्ययन को दिशाएँ दी। सामान्य परिभाषा में, इनमें से अनेकों को पण्डित नहीं कहा जाता, पर उन्होंने पंडितों के समान ही कार्य किये हैं। ये अपने युग की आदर्श मूर्तियाँ हैं।

सारणी १. विभिन्न युगों में पंडित परम्परा

(1) प्रथम युग : स्वान्तः सुखाय साहित्य सर्जक एवं उपदेशक (१५००-१८००)

१.	राजमल पांडे	१५४५-१६२३	आगरा	पंचाध्यायी, लाटी संहितादि
२.	पं. रूपचंद पांडे	१५५०-१६३७	-	बनारसीदास के गुरुसम
३.	पं. बनारसीदास	१५८६-१६४३	जौनपुर	अर्थकथानक, नाटक समयसार
४.	पं. द्यानतराय	१६७६-१७२६	आगरा	स्तुति, स्वयंभू-पार्श्वनाथ स्तोत्र
५.	पं. दौलतराम	१६३२-१७७२	जयपुर	त्रेपन क्रियाकोश, भाषाकार
६.	पं. भूधरदास	१६९३-१७४९	आगरा	विनती, स्तुतिकार
७.	पं. टोडरमल	१७१४-१७६६	जयपुर	मोक्षमार्ग प्रकाशक, भाषाकार
८.	पं. जयचंद छाबड़ा	१७३८-१८०२	जयपुर	भाषा टीकाकार
९.	पं. वृन्दावन	१७९१- ?	बिहार	भाषा टीकाकार
१०.	पं. सदासुखदास	१७९५-१८७०	जयपुर	भाषा टीकाकार
११.	पं. दौलतराम	१७९८-१८६६	हाथरस	छह ढाला

सारणी २. द्वितीय युग : प्रचार-प्रसार, अनुसन्धान एवं सामाजिक प्रेरणायुग (१८००-१९००)

१.	बैरिस्टर चंपतराय	१८६७-१९७२	दिल्ली	की आव नोलेज आदि, प्रचार
२.	पं. गोपालदास वरैया	१६६७-१९१७	आगरा	जैन सि. प्रवेशिका, शिक्षण
३.	पं. गणेशप्रसाद वर्णी	१८७४-१९३१	हसेरा	जीवनगाथा, शिक्षा-प्रचार
४.	पं. जुगल किशोर मुख्तार	१८७७-१९६८	सरसावा	वीरसेवा मंदिर, अनेकांत

५.	ब्र. शीतल प्रसाद	१८७९-१९४२	लखनऊ	समाज-सुधारक, प्रचारक
६.	बैरिस्टर जे. एल. जैनी	१८८१-१९२७	सहारनपुर	अंग्रेजी में अनुवादक प्रचारक
७.	पं. नाथूराम प्रेमी	१८८१-१९६०	देवरी	ऐतिहासिक शोध, प्रकाशक
८.	भुजबली शास्त्री	१८८७-१९८०	कर्नाटक	शोधक, उपदेशक
९.	पं. वंशीधर न्यायालंकार	१८९०-१९७२	महरौनी	शिक्षक, उपदेशक
१०.	पं. देवकी नंदन शास्त्री	१८९२-१९६२	बुन्देलखंड	अनुवादक, व्याख्याता
११.	पं. मक्खनलाल शास्त्री	१८९५-१९८०	आगरा	शिक्षक, उपदेशक, परंपरापोषी
१२.	पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ	१८९९-१९६९	जयपुर	विद्वान्, शिक्षा प्रसारक

सारणी ३. शिक्षा, साहित्य सर्जना (१९०१)

१.	पं. कस्तूरचन्द्र शास्त्री	१९००-१९६६	रायसेन	सराकोद्धारक, उपदेशक
२.	बाबू कामता प्रसाद जैन	१९०१-१९६४	अलीगढ़	जैन धर्म-प्रचार, लेखन
३.	पं. फूलचन्द्र शास्त्री	१९०१-१९९४	ललितपुर	विद्वान्, लेखक व्याख्याकार
४.	पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री	१९०१-	शहडोल	शिक्षक, उपदेशक, व्रती
५.	पं. कैलाशचंद्र शास्त्री	१९०३-१९८७	नहटौर	शिक्षक, लेखक, अनुवादक
६.	पं. हीरालाल शास्त्री	१९०४-१९८३	सादूमल	विद्वान्, शोधक
७.	पं. सुमेरुचंद्र शास्त्री	१९०५-	सिवनी	षट्खंडागम उद्धारक, लेखक
८.	पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य	१९०५-१९९५	सोंरई	न्यायाचार्य, व्यापारी विद्वान्
९.	बालचंद सिद्धान्तशास्त्री	१९०५-१९८८	सोंरई	शोधक
१०.	पं. परमेष्ठीदास	१९०८-१९८१	महरौनी	पत्रकार, समाजसेवी
११.	पं. परमानंद शास्त्री	१९०८-१९८०	पन्ना	विद्वान्, शोधक
१२.	डॉ. जगदीशचंद्र जैन	१९०९-	बंबई	शोधक, शिक्षक, लेखक
१३.	डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	१९११-१९५९	खुरई	न्यायाचार्य, शिक्षक, लेखक
१४.	डॉ. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	१९११-२००१	सागर	धर्म-साहित्य के उद्गाता
१५.	पं. इन्द्रचन्द्र शास्त्री	१९१२-१९८६	हिसार	लेखक, शिक्षक
१६.	डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन	१९१२-१९८८	मेरठ	शोधक, विद्वान्
१७.	डॉ. दरबारीलाल कोठिया	१९१३-२०००	सोंरई	न्यायाचार्य, लेखक
१८.	पं. हीरालाल कौशल	१९१४-१९९७	ललितपुर	शिक्षक, अनुष्ठानक
१९.	डॉ. नेमीचंद शास्त्री	१९१५-१९७४	राजस्थान	शिक्षक, शोधक, लेखक

२०.	डॉ. लालबहादुर शास्त्री	१९१६-	आगरा	परंपरापोषी विद्वान्
२१.	पं. बलभद्र जैन	१९१६-	आगरा	संपादन, लेखक
२२.	श्री पं. खुशालचंद्र गोरावाला	१९२७-१९९८	गोरा	समाजसेवी सेनानी
२३.	डॉ. गुलाबचंद्र चौधरी	१९१७-१९८६	सिलोंडी	प्रशासक, लेखक, शोधक
२४.	डॉ. कस्तूरचंद्र कासलीवाल	१९२०-१९९८	जयपुर	इतिहास-शोधक
२५.	क्षु. जिनेन्द्र वर्णी	१९२१-१९९५	पानीपत	जैनेन्द्रसिद्धान्तकोष
२६.	डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन	१९२१-१९८९	नरयावली	शिक्षक, साहित्यसेवी
२७.	श्री बालचंद्र जैन	१९२३-१९९५	गोरखपुरा	पुरातत्वविद्
२८.	श्री लक्ष्मीचंद्र जैन	१९२६-	सागर	जैन गणितज्ञ
२९.	डॉ. कन्छेदीलाल जैन	१९२९-१९८९	पथरिया	शिक्षक, समाजसेवी
३०.	डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर	१९३५-	कारंजा	शिक्षक, शोधक

इस युग की अन्तिम पाँच विभूतियाँ बीसवीं सदी की दिगम्बर पण्डित परम्परा की स्थापक है। इन्होंने न केवल बनारस, जयपुर या अन्य स्थानों की संस्थाओं में अध्ययन-अध्यापन ही किया, अपितु अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं का निर्माण एवं सञ्चालन भी किया। इनकी आजीविका का प्रमुख स्रोत भी समाज-सेवा ही रहा। बीसवीं सदी के विश्रुत जैन विद्या मनीषी इनकी शिष्य-परम्परा में ही आते हैं। इन्होंने अनेक प्रकार की सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रतिष्ठित करने में अपना अमूल्य योगदान किया है। ये उत्तम व्याख्याकार एवं भाषा टीकाकार भी रहे हैं। इनमें से कुछ विभूतियों ने पूर्ववर्ती स्वान्त:सुखाय की पण्डित परिभाषा से संक्रमण किया और आजीविका-सुखाय की परिभाषा को मूर्तरूप दिया। इससे इनकी स्वयं की प्रतिष्ठा में चार चाँद तो अवश्य लगे, पर इनका परिवार और पारिवारिक जीवन किन परिस्थितियों में रहा, यह अनुभव की ही बात है। इनके केवल एक पण्डित के पुत्र ने ही सामाजिक संस्थाओं में आजीविका ग्रहण की। अन्य की सन्तानों ने अधिक उपयोगी एव आधुनिक क्षेत्र को आजीविका हेतु चुना।

बीसवीं सदी आते-जाते पण्डितों का कार्य-क्षेत्र काफी बढ़ गया। अनेक सामाजिक एवं शिक्षण-संस्थाओं, क्षेत्रों तथा अन्य प्रवृत्तियों को चलाने के लिए पण्डितों की आवश्यकता अनुभव की गई। जैनों पर नास्तिकता के प्रहार भी, अनेक ओर से, इस सदी के पूर्वार्ध में हुए। यह समय था जब पण्डितों को अपनी विद्वत्ता एवं चतुरता का प्रदर्शन करना पड़ा एवं जैनों के जैनत्व की सुरक्षा एवं प्रभावना करनी पड़ी। शास्त्रार्थ संघ का निर्माण इन विद्वानों ने ही किया था जो बाद में दि. जैन संघ में परिणत होकर आज भी एक जीवन्त संस्थान के रूप में काम कर रहा है। पण्डितों की इस महती धर्म सेवा का ही यह फल है कि आज जैन विद्याओं और उनके इतिहास की ओर देश-विदेशों में पर्याप्त अनुसंधान किये जाने लगे हैं।

तीसरे युग में पण्डित पीढ़ी के कार्यों में बड़ी व्यापकता आई। सामान्य पण्डित का सारा समय समाज में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने, स्वाध्याय या शास्त्र-सभा करने, धार्मिक अनुष्ठान या सामाजिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करने, साहित्य के भाषान्तर एवं सृजन करने एवं आवश्यकता पड़ने पर धर्म की सैद्धान्तिक एवं

व्यावहारिक सुरक्षा एवं प्रभावना करने में लग जाता है। इसी से समाज की सामाजिकता तथा एकरूपता बनी हुई है। इन सभी कार्यों के लिए समाज ने पण्डितों की सेवायें ग्रहण कीं (कभी-कभी उन्होंने स्वयं भी दीं, पर ऐसे प्रकरण अपवाद हैं।) परन्तु समाज ने उनको समुचित आजीविका-साधनों के विषय में ध्यान से नहीं सोचा। पदमचन्द्र शास्त्री के अनुसार पण्डित मासालची के समान बने रहे जो स्वलाभ न लेकर दूसरों को लाभान्तिव करने में अपना और आश्रितों को पूरा जीवन बेबसी और भटकन में गुजार देते हैं। अपने कार्यों का सुफल उन्हें सामाजिक भर्त्सना के रूप में मिलता है। सामान्तवादी मनोवृत्ति के अनुरूप उन्हें बाहरी प्रतिष्ठा के बावजूद आन्तरिक वितृष्ण का ही शिकार होना पड़ता है। इसी कारण यह परम्परा जैसे ही बीसवीं सदी के व्यापक परिवेश में विकसित हुई, वैसे ही एक पीढ़ी में रूपान्तरित हो गई। इस स्थिति का अनुभव सभी को होने लगा है। फिर भी, इसके सुधार की ओर ध्यान देने का समाज के नेताओं को अवसर ही कहाँ है?

बीसवीं सदी या तीसरे युग की पण्डित पीढ़ी के जैन विद्वानों को स्पष्टत: तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ष में काशी, मोरेना, सागर या जयपुर आदि से पढ़े हुए शास्त्रीय विद्वान् आते हैं। ये आज अपने जीवन के सातवें-आठवें दशक में चल रहे हैं। इनमें अधिकांश आगम-पोषी हैं। ये बीसवीं सदी की समस्याओं का उत्तर शास्त्रीय मर्यादाओं में देते हैं। इसकी शास्त्रज्ञता, भाषान्तरण-क्षमता एवं व्याख्यानशैली अनूठी हैं। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत सामाजिक संस्थायें हो रही हैं। आजकल यह वर्गा दो कोटियों में विभाजित दिखता है। पश्चात्य विधि शिक्षण में निष्णात लोग उन्हें वह मान्यता नहीं देना चाहते जो समाज उन्हें देती रही है। इस स्थिति को देखकर इस वर्ग के अनेक पण्डित उत्परिवर्तित होकर आगे आये। इन्होंने प्रारम्भ में सामाजिक आवजीविका ग्रहण की। बाद में युगानुरूप योग्यतायें प्राप्त कर समाजेतर क्षेत्र ग्रहण किया। इससे इनका समाज में जो स्थान था, वह तो रहा ही, अन्य विद्वत् समाज में भी इनकी प्रतिष्ठा बढ़ी। वे आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त स्वालम्बी भी बने।

इस सदी के चौथे-पाँचवें दशक में मूर्ति छात्रवृत्ति के समान योजनाओं से एक नयी पण्डित पीढ़ी का निर्माण हुआ। ये पण्डित न केवल जैन विद्याओं के ही ज्ञाता थे, अपितु इन्होंने पश्चाताप शिक्षा का भी अवसर पाया। इससे अनेक जैनविद्याविज्ञ के साथ व्यवसाय-विद्याओं में भी निष्णात बने। आज अनेक विश्वविद्यालयों, जैन महाविद्यालयों या संस्कृत प्राकृत संस्थानों में यही पीढ़ी सामने है। यही पीढ़ी तकनीकी क्षेत्र में बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में अपना यश कमा रह है। यह पीढ़ी अपनी गुरु-प्रगुरु परम्परा की तुलना में समाजेतर स्रोतोंसे अपनी आजीविका ग्रहण किये हुए हैं और अपने पूर्ववर्ती वरिष्ठों से सम्पन्न बनती जा रही है। इस पीढ़ी को जहाँ जैन-जैनेतर विद्वत्-समाज में अच्छा स्थान प्राप्त हो रहा है, वहीं जैन समाज में, सामान्यत:, उसकी वह मान्यता नहीं है जो शास्त्रीय पण्डितों की आज भी है। इससे इस पीढ़ी में कुछ विशिष्ट मानसिकता के दर्शन होते हैं जो समाज के प्रति उपेक्षावृत्ति के द्योतक हैं। इस वर्ग में पुराने समय की स्वान्त:सुखाय सामाजिक रुचि की वृत्ति के भी अर्थ-सुखाय के रूप में परिणत होने से अध्यात्मसाधक दिगम्बर समाज की स्थिति एक निर्वात अवस्था में पहुँचती जा रही है। आचार्यों ने कहा है, ''आदहिदं कादब्वं''। आखिर पण्डित या विद्वान की भी तो आत्मा है। इन्होंने अपने गुरुओं के उदाहरण देखकर समाज का मर्म समझा है और तदनुरूप वृत्ति अपनाना अपना कर्त्तव्य माना है।

इस द्वितीय वर्ग में वर्तमान और भविष्य के प्रति शंकित होकर जैन संस्थओं में पुनः एकपक्षीय शिक्षानीति बनी। इसके युगानुरूप न होने से दो परिणाम हुए:

(1) संस्थाओं में उच्चतर अध्ययन हेतु विद्यार्थी आना कम हो गया।

(2) अधिकांश विद्यार्थी पाश्चात्य पद्धति पर आधारित उपाधियों या उनके समकक्ष शिक्षण के प्रति आकृष्ट हुए। उन्हें इसी दिशा में आजीविका के अच्छे स्रोत प्रतीत हुए।

फलतः आज स्थिति यह है कि प्राच्य पद्धति की जैन शिक्षा प्रायः समाप्त दिख रही है और शुद्ध नयी कोटि के आधुनिक विद्वान् जन्म ले रहे हैं। इन्हें पण्डित मानने को समाज तैयार नहीं दिखता। ये जैनेतर क्षेत्रों में ही अपनी आजीविका के प्रति आशावान् है। यह वर्ग वर्तमान पीढ़ी के तीसरे रूप का प्रतिनिधि है। इसमें भी सामाजिकता तथा धर्म के प्रति माध्यस्थ भाव है। इस वर्ग की संख्या क्रमशः वर्धमान है।

आधुनिक पण्डित वर्ग की ये तीनों ही कोटियाँ पूर्ववर्ती कोटि से भिन्न स्तर पर चल रही है। प्रथम वर्ष के अधिकांश पण्डित सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं और विशिष्ट श्रीमन्तों से सहचरित होकर जीवन-क्षेत्र में रहे। इनकी ज्ञानगरिमा और बाह्य चरित्र की धाक समाज पर रही। इन्होंने अधिकांश संस्थाओं की स्थापना में मील के पत्थर बनकर भाषान्तरित धार्मिक साहित्य का प्रकाशन कराया। इस पीढ़ी ने जैन विद्याओं में सम्बन्धित धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परम्परा पर विद्वतापूर्ण गवेषणायें की। इससे जैनेतरों में भी जैन विद्याओं के प्रति अनुसन्धनात्मक दृष्टिकोण से अनुराग उत्पन्न हुआ। इस वर्ग के पण्डितों ने नई पीढ़ी को जन्म तो अवश्य दिया, पर उसे प्रेरणा या मार्गदर्शन नहीं दिया। इससे इनके शिष्य वर्ग ने जो, जैसी दिशा मिली, ग्रहण की।

इस वर्ग की उत्परिवर्तित पीढ़ी ने प्रत्यक्षतः तो नहीं, परोक्षतः अपने शिष्य-प्रशिष्यों को नई दिशा ग्रहण करने की प्रेरणा दी। फलतः मूलभूत आधार के बावजूद भी वे समाज पर अनाश्रित आजीविका क्षेत्रों की ओर मुड़े। उन्होंने यह भी प्रयत्न किया कि या तो वे स्वयं अपनी सामाजिक/साहित्यिक संस्था बनायें या ऐसी संस्थाओं में अपना स्थान पाये जहाँ उनके भौतिक लक्ष्य सफल हो सकें।

प्रथम वर्ग की पीढ़ी की ९१ प्रतिशत सन्तति ने पण्डित व्यवसाय नहीं अपनाया। यह तथ्य भी शिष्य-प्रशिष्यों को अचरजकारी होते हुए भी उनके मनोमन्थन का कारण बना। सम्भवतः इसी तथ्य ने उन्हें सामाजिक आजीविका के प्रति उपेक्षित बनाया। फिर भी नये वर्ग ने जैन धर्म और संस्कृति का नाम आगे बढ़ाया है। अपने अनुसन्धानों द्वारा उन्होंने जैन विद्याओं के अनेक ऐसे पक्षों पर प्रकाश डाला है जो इसके पूर्व अनुद्घाटित थे। उन्होंने अपने पाश्चात्य पद्धतिगत एवं तुलनात्मक अध्ययनों द्वारा विश्व में जैन विद्याओं को गौरव दिया है। आज यही पीढ़ी विश्व के अनेक भागों में होने वाले राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में जैन विद्याओं के प्रचार-प्रसार के अवसर पा रही है। इसके योगदान को नगण्य नहीं माना जा सकता।

इस युग के उपरोक्त तीनों वर्गों के पण्डित सामान्यतः धर्म-शास्त्रज्ञ एवं मुख्यतः विद्याव्यसनी रहे हैं। इन्होंने कार्मिक एवं सामाजिक क्रियाओं के प्रवर्तन का नेतृत्व नहीं किया। यह नेतृत्व भी सामाजिकता के लिए आवश्यक है। समाज में सदैव प्रतिष्ठापाठ, उद्यापन, विधान, पञ्चकल्याणक आदि प्रवृत्तियाँ चलती रहती है।

इसका सञ्चालन कौन करे? पहले यह कार्य भट्टारक पन्थ में दीक्षित लोग करते थे। इसके अभाव में पण्डितों का एक माध्यम वर्ग भी बीसवीं सदी में उदित हुआ। इस वर्ग में विद्याव्यसनी कम, क्रियाकांडज्ञानी अधिक हैं। यह क्षेत्र अब आर्थिक दृष्टि से भी आकर्षक बन गया है। इस वर्ग की संख्या भी अब बढ़ने लगी है। जयपुर एवं शास्त्रिपरिषद् के शिविर भी इस क्षेत्र के लिए प्रशिक्षण देने लगे हैं। इस तरह ज्ञानकांडी पण्डितों की परम्परा की तुलना में क्रियाकांडज्ञों की संख्या कुछ बढ़ रही है। इस शुभ लक्षण नहीं माना जा सकता। इससे समाज में अनेक प्रकार के ऐसे वातावरण पनपने लगे हैं जो धार्मिक और नैतिक सिद्धान्तों से विचलित होने की ओर अग्रसर करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि साधु और पण्डित परम्परा ने जैन संस्कृति एवं साहित्य के संरक्षण, प्रवर्तन एवं संवर्धन का काम किया है। इस समय ये परम्परायें शास्त्रीय मान्यताओं के अनुरूप वातावरण एवं क्षमताओं की क्षीणता से अपना अस्तित्व शक्तिशाली रूप में प्रकट करने में जटिलता का अनुभव कर हरी है। दिगम्बर परम्परा के पूज्य साधु और आचार्य आचार-प्रवर तो होते हैं, पर इनमें विचार और अध्ययन-मननशीलता विरल है। पडितों की स्थिति भी ऊपर बताई जा चुकी है। यह सचमुच ही सक्रिय एवं गहन चिन्तन का प्रश्न है कि ऐसी स्थिति में हम जैन संस्कृति की गरिमा को कैसे अभिवर्धित कर सकेंगे? इसी प्रश्न का समाधान खोजने लगभग आठ वर्ष पूर्व दिल्ली में 'जैन पंडित परम्परा: भूत, वर्तमान और भविष्य' पर एक गोष्ठी आयोजित की गई थी। उसमें विद्वान् वक्ताओं से पंडितों के भविष्य पर कुछ करणीय सुझावों की आशा थी पर मुझे लगता है कि डॉ. दयानन्द भार्गव का निम्न कथन वस्तुस्थिति को स्पष्ट करता है :

''पण्डित भाव साधु एवं भावयज्ञ का प्रतीक है। इस प्रतीक के भूतकाल की चर्चा सभी वक्ताओं ने की है, पर भविष्य की किसी ने चर्चा ही नहीं की। क्या यह परम्परा भविष्य में नष्ट होने वाली है? पण्डित को ज्ञान-आचार वृद्ध होना चाहिए और समाज को उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहिए।''

आज समाज-आश्रित या समाज अनाश्रित विद्वान् को भविष्य की चिन्ता ही नहीं दिखती, सम्भवत: उसे वर्तमान ही अधिक महत्वपूर्ण दिखता है। दूरदर्शीपन का युग समाप्त हो गया लगता है। इस परम्परा के क्षीण होते जाने का अनुभव सभी कर रहे हैं। इसका मूल कारण यह हैं कि लक्ष्मीवन्दन के इस युग में सरस्वती पुत्रों को, समाज भौतिक तथा मानसिक दृष्टि से समुचित पोषण नहीं प्रदान करता। इसकी दशा 'जैन सन्देश' के ३० जुलाई ८७ के अंक के एक समाचार के अनुमान की जा सकती है जहाँ एक पण्डित को पिछले ४० वर्षो से ७३=०० रुपये मासिक वेतन दिया जा रहा है। विद्वत् परिषद् के ३००=०० रु. मासिक के न्यूनतम वेतन के प्रस्ताव की सामाजिक मान्यता का यह एक अच्छा उदाहरण है। वर्णी स्मृति ग्रन्थ १९७४ में शास्त्री ने पण्डित परम्परा की क्षीणता के पाँच कारण बताये हैं। समाज आश्रित जहुसंख्यक पण्डितों की यही नियति रहीं है। इसके निम्न परिणाम सामने आते रहे :

(१) अधिकांश अच्छे विद्वानों का पारिवारिक जीवन कष्टमय रहा।

(२) अधिकांश अच्छे विद्वानों ने अपनी आजीविका हेतु द्वितीयक स्रोत के रूप में विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक संस्थाओं को भी अपनी सेवाएँ देने की प्रक्रिया अपनाई।

(३) एक समय ऐसा आया कि ये द्वितीयक स्रोत व्यक्तिनिष्ठ हो गये। इनमें नये लोगों का प्रवेश असम्भव-सा लगने लगा।

(४) पण्डित ने देखा कि समाज के कर्णधार मुख्यत: धनपति से ही होते हैं। उन्होंने अनुभव किया कि उनकी रुचि के अनुरूप कथनों एवं प्रवृत्तियों से ही जीविका चालू रखी जा सकती है। परिवर्तन या नवीनतम के प्रति अरुचि का भी उन्हें आभास मिला। इसी के अनुरूप उन्होंने व्यवहार करना प्रारम्भ किया। वे स्थितिस्थापकता के पोषक एवं बौद्धिक जड़ता के अनुयायी बन गये।

(५) पण्डित ने पराश्रितता को तो अपनी नियति माना पर उन्होंने अपनी सन्तति को इस स्थिति से उभारने का दृढ़ अन्त:संकल्प लिया। इसके फलस्वरूप पण्डितों की सन्ततियों के १७ प्रतिशत ने व्यवसायों की पैतृकता को भारतीय परम्परा को अस्वीकार किया। यह स्थिति पण्डित पीढ़ी के ह्रास का प्रमुख कारण है। इस अधिक नास्तिक एवं भौतिक बनी।

(६) अपने कुण्ठा एवं अभावग्रस्त जीवन के अभिशाप के कष्टों के अनुभव से पण्डित जनों ने किसी को भी इस क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित नहीं किया। वे इस प्रक्रिया में धर्म-अधर्म द्रव्य के समान उदासीन बने रहे। इसके अनेक फल हुए :

(अ) किसी भी पण्डित का कोई योग्य उत्तराधिकारी न बन सका।

(ब) इस कारण पण्डितों का अपने-अपने क्षेत्रों में एकाधिपत्य तो हुआ पर भविष्य अन्धकारमय हो गया। इस स्थिति में नई पीढ़ी मध्यस्थ हो गई।

(स) समुचित प्रेरणा के अभाव में नई पीढ़ी ने आजीविका के अधिक उपयोगी क्षेत्र चुनने की स्वतंत्रता ली।

(७) विद्यमान पीढ़ी द्वारा प्रेरणा के अभाव एवं वर्तमान परिवेश में समाज के समुचित जीविका की प्रत्याशा के अभाव की आशंका से समाज द्वारा स्थापित सागर, काशी, बीना आदि की संस्थाओं की हरियाली सूखने लगी। इस समय या तो वे भग्नावशेष हो रही है या दिशा बदल रही है।

(८) इस परिणामों के अपवाद में भी कुछ लोग पाये जाते हैं। इनकी सेवायें भी सामान्य पण्डितों की अपेक्षा अधिक स्थायी कोटि की मानी जाती है।

इन परिणामों के परिप्रेक्ष्य में यदि हम धार्मिकता एवं सामाजिकता की ज्योति प्रज्वलित रखकर जीवन को प्रगत बनाता है, तो हमें पण्डित परम्परा की सुरक्षा एवं संवर्धन की बात सोचनी होगी। हमें उपरोक्त परिणामों का विश्लेषण कर ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करनी होगी जो इस परम्परा की क्षीण होने के कारणों का निराकरण कर सके।

यह प्रसन्नता की बात है कि इस ओर कुछ संस्थाओं का ध्यान गया है। वे नियमित संस्थाओं एवं अल्पकालिक शिविरों के माध्यम से बीसवीं मदी के आठवें दशक के उत्तरार्ध की पण्डित पीढ़ी तैयार कर रही है। उन्हें आर्थिक स्वालम्बन का आश्वासन भी दिया जा रहा है। इस पीढ़ी के अगणित पण्डित आपको भाद्रपद मास में तथा अन्य अवसरों पर भारत के कोने-काने में धर्म-ध्वज फहराते मिलेंगे। समाज में अनेक क्षेत्रों में इस पीढ़ी के प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया जा रहा है। अनेकान्त सिद्धान्त के मानने वाले ही घोर एकान्तवाद का आश्रय लेकर मतभेदों की तीव्रता पर उतरते दिखते हैं। वैसे पण्डितों में मतभेद कोई नई बात

नहीं। इसका प्रभाव समाज को विकृत न करे, यह महत्वपूर्ण है। समाचार-पत्रों की सूचनाओं से पता चलता है कि इस समय प्रमुख दो मतों के पोषक पण्डितों का अनुपात ९१५:२३५ है। इससे समाज में विकृति के लक्षण प्रकट होते दिखते हैं। विद्वानों का उत्तर है कि वे विकृति की शिक्षा नहीं देते, शास्त्रीय मार्ग का उपदेश देते हैं। पर यदि समयसार के पारायण से टीकमगढ़, ललितपुर, करेली, उज्जैन, हस्तिनापुर और अन्यत्र सिर-फुटौबल होती है, तो इसका परोक्ष मूल तो खोजना ही चाहिये। ऐसे मार्ग को सन्मार्ग में परिणत करने का उपाय क्या है? यह वर्तमान पण्डित परम्परा के सामने जटिल प्रश्न है। नयी पीढ़ी को आर्थिक स्वावलम्बन के साथ ऐसे प्रश्नों का समाधान भी खोजना होगा। यदि नई एवं भावी पीढ़ी 'आदहिदं कादव्वं' के उपदेश से प्रसूत आत्मकेन्द्रण की वृत्ति से दिगम्बर पन्थ को मुक्त कर कुछ उदारता दे सके, तो समाज पर उसका अनन्त उपकार होगा।

दान द्वारा कृपणता पर विजय प्राप्त करो। शान्ति द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करो। श्रद्धा से अश्रद्धा पर विजय प्राप्त करो। सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करो। यही सन्मार्ग है। यही स्वर्ग है। स्वर्ग की ओर जाओ। प्रकाश की ओर जाओ।

- सामवेद

* * *

सच्चा विद्यार्थी वही है जिसको विद्योपार्जन की सच्ची भूख लगी हो, जो विद्याप्राप्ति की कठिनाईयों को देखकर आनन्दित होता है, जो विद्या को केन्द्र बनाकर सब बातें को भूल जाता है।

- अज्ञात

अनूठी संस्था विद्वत्परिषद्

मोतीलाल "विजय"*

दिगम्बर जैन समाज की उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम में एक सूत्रता बन्धुत्व, वैचारिक समरसता, आदान-प्रदान का निरन्तर नैकट्य बनाए रखने में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत परिषद् का अपूर्व योगदान रहा है। वैसे 54 वर्ष किसी भी संगठन में बहुत महत्त्व रखते हैं। इनसे जुड़े अनेक व्यक्तित्व तो उस संगठन विशेष से जुड़कर उसका पर्याय से हो जाते हैं। बात लगभग तीस वर्ष पुरानी है। एक विशुद्ध पारिवारिक यात्रा के निमित्त वाराणसी जाना हुआ। संयोग से उन दिनों परमआदरणीय डॉ. दरबारी लाल जी कोठिया विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर थे और बाद में संभवत: परिषद् के अध्यक्ष भी। मैंने पाया अतिथि परायण श्रद्धेय कोठिया जी तथा श्रीमति चमेली कोठिया जी सामान्य व्यक्ति, छात्र साथी कनिष्ठ प्रोफेसर आदि से विनयतापूर्वक बात करते थे। वर्णी ग्रंथमाला, विद्वत्परिषद् महासमिति, महासभा, शास्त्रीपरिषद् जैसी संस्थाओं में विद्वानों का जुड़ाव कुछ अर्थ भी रखता है। लम्बी अवधि तक डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य "बसन्त" (सागर तथा वर्तमान मैं वर्णी गुरुकुल जबलपुर) ने भी अपनी सेवाएँ देकर विद्वत परिषद् को सर्वथा समृद्ध बनाया है।

आज जितने भी विद्वान सारे भारतवर्ष में प्रतिष्ठा, प्रभावना, प्रवचन, विद्यालयों में प्राचार्य आचार्य महाविद्यालयों में प्रोफेसर आदि दीख पड़ते हैं वे सब विद्वत्परिषद् की ही देन है। विदुषी महिलाएँ भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं है।

एक बात मैं बहुत स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ अखिल भारतीय इन संगठनों में सामान्य सदस्य तो क्रिया कलापों में रूचि लेकर अपने को गौरवान्वित करता है। किन्तु कतिपय तत्व सामान्य अथवा तालमेल के साथ चलती ऐसी संस्थाओं में तिकड़म बाजी से बाज नहीं आते। बस यहीं से पदलोलुपता क्षुद्रस्वार्थ प्रवेश कर जाते हैं और अच्छी भली संस्था पतन की ओर चलने को बाध्य हो जाती हैं। यदि मैं कहूँ लगभग दो दशकों से परिषद् में यह प्रक्रिया धीमी गति से प्रवेश पाती हुई मजबूती की ओर अग्रसर हो चली थी किन्तु कुछ समन्वय वादी बुद्धिजीवियों ने अपने व्यक्तित्व के चलते कुप्रवृत्तियों को पनपने का अवसर नहीं दिया और जैसे-तैसे संगठन चलता रहा। फिर भी विघ्नसंतोषी सर्वत्र सहज ही सुलभ रहते हैं हो जाते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों के बीच 1 नवम्बर 1998 को दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र तिजारा देहरा (अलवर) राजस्थान में साधारण सभा के अधिवेशन में सर्व सम्मत चयन प्रक्रिया द्वारा एक गतिशील कार्यकारिणी डॉ. रमेश चन्द्र जी बिजनौर की अध्यक्षता में गठित की गई। निश्चय ही इस कार्यकारिणी में क्षेत्रीय संतुलन रखते हुए पारदर्शी दृष्टिकोण रखा गया है। एक अपेक्षा यह भी है कि सामान्य किन्तु वर्षों से जुड़े कुछ क्रियाशील कर्मठ एवं सक्रिय भागीदारी वाले सदस्यों को भी अवसर दिया जाने चाहिए।

*कटनी म प्र.

यूँ प्राय: धारणा यह बन चली है कि महाविद्यालयीन प्रोफेसर ही विद्वत्परिषद् कहलाते हैं। यह भ्रम समाप्त करना होगा अन्यथा "नई बोतल में पुरानी शराब" वाली कहावत चरितार्थ होती रही तो पुराने चेहरे कब तक किसी संगठन में प्राण फूकते रहेंगे। इस वास्तविकता को हमें स्वीकारना होगा क्योंकि सत्य कड़वा होता है।

आज भी विद्वत्परिषद् एक प्रभावी संस्था है जिसमें अनुभवी विद्वान, समर्पित सुझबुझ के धनी सरल सदस्य तथा समरसता के प्रतीक साधुमना व्यक्ति संस्था के गौरव को बनाए हुए हैं। किसी का कथन सचमुच उपयुक्त ही है "गुण न हिरानों गुण ग्राहक हिरानो है।"

ऐसे में सबको जोड़कर रखने वाले कलामर्मज्ञ यदि पारखी दृष्टि से आयोजन करते हैं तो वातावरण सुखमय बना रहता है।

मुझे विश्वास है वर्तमान प्रबन्ध समिति उपयुक्त कतिपय सुझावों को लेकर चली चलती है तो "स्वर्ण जयन्ती" की सार्थकता सुनिश्चित है।

निष्कर्षत: अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् समस्त दिगम्बर जैनों की आज भी अनूठी संस्था मानी जाती है। विद्वानों की अस्मिता, जैन संस्कृति। धर्म दर्शन, साहित्य कला, विज्ञान का समन्वयात्मक संतुलन बनाए रखना विश्व के मानचित्र में जैनों के महत्त्व को स्थायी व प्रभवी स्थान दिलाना परिषद् की प्राथमिकता बनी रहनी चाहिए इस अपेक्षा के साथ विराम लेता हूँ।

विद्वानों के अभिमत

(1) **रवीन्द्र कुमार जैन, 13 शक्ति नगर, मद्रास**

किसी तरह दिल्ली तो पहुँच गया था, परन्तु वहाँ का सब कुछ जिस दृष्टिकोण की छाया थी वह मुझे जँचा नहीं। पानी मे आग लगी है कैसे बुझेगी. ....।

(2) **पदम चंदशास्त्री, वीर सेवा मन्दिर**

भारिल्ल की गोदी में बैठे विद्रोही विद्वानों से सावधानी की जरूरत है कि कहीं . . .. ।

(3) **जमुना प्रसाद जैन शास्त्री, कटनी म.प्र.**

..विद्वत परिषद् का एक हाथ एक तरफ-एक हाथ एक तरफ वितरण हो गया ये दशा तो हम लोग सतना साधुवाद समारोह में हुए चमत्कार में ही समझ गये थे कि अब विद्वत् परिषद् कहानजी के खेमे में चली जायेगी सो हुआ भी खैर जिसे जो भाया सो किया.........।

(4) **प्रेमचंद जैन, नजीवावाद**

.... .डॉ. रमेश चंद जैन एवं आपके नेतृत्व में विद्वत परिषद् मुनियों एवं समाज का सही मार्गदर्शन कर पायेगी। और पं. कैलाश चंद शास्त्री वाली पंडितत्रयी का स्मरण करा देगी। गत विगत वर्षो का समय विकाऊ पण्डितों ने धोखे में निकाल दिया . ...।

(5) **तारा चंद प्रेमी, झिरका**

क्या विद्वत परिपद् को इस विखराव से रोका नहीं जा सकता संस्थापक वर्णीजी जैसे दिवंगत भव्य आत्माओं के यही उद्देश्य थे यदि हो सके तो विशालता से पक्ष पर विचार कीजिएगा। विद्वान तो हमेशा जोड़ते हैं यह तोड़ने का लक्ष्य क्यों और कैसे हुआ।

(6) **हेम चंद जैन, भोपाल म.प्र.**

......अब अ भा. वि परिषद् दो भागों में विभक्त हो गयी है दोनों में प्रतिस्पर्धा गुणात्मक होगी ....।

(7) **डॉ. अशोक कुमार जैन जैन वि. भारती लाडनू (राज.)**

आज विद्वानों की अस्मिस्ता पर जगह-जगह प्रश्न चिन्ह लग रहे हैं। ऐसी स्थिति में आर्ष परम्परा के संरक्षण हेतु हम रचनात्मक कार्यक्रम तय कर के एक सुव्यवस्थित रूपरेखा बनानी चाहिए।

(8) लक्ष्मण प्रसाद जैन, मड़ावरा (उ.प्र.)

परिषद् का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव सफलता आयोजित पूर्वक कर के आपने परिषद् को मिथ्या एकान्तवादियों की गोद में जाने से बचा लिया। अत: साधुवाद।

(9) बाबूलाल जैन मधुर, बीना (म.प्र)

अ. भा. वि. परिषद् के विभाजन को अन्तरंग से विषाद वर्त रहा हूँ अभी भी आशा है कि इस समारोह में एक हो जावें। अति प्रसन्नता होगी।

(10) ब्र. सुमतिबाई शाह, सोलापुर (महाराष्ट्र)

श्रमण संस्कृति के संरक्षण एवं सम्वर्धन का यह आपका कार्य स्तुत्य एवं सराहनीय है।

(11) दुलीचंद जी, बीना (म.प्र.)

समय-समय पर इस प्रकार के आयोजन होते रहें और आर्षपरम्परा को मानने वाले विद्वान एक मत होकर इस विद्वत परिषद् की गरिमा को बनाये रखें .... ।

(12) डॉ. दरबारी लाल कोठिया वीना

आपका पत्र मिला विद्वत परिषद् स्वर्ण जयन्ती समारोह का आमंत्रण पढ़कर प्रसन्ता हुई आप विद्वत परिषद् को गरिमामय बनाने में सक्षम हैं परिषद् एकान्त पक्षीय न बन जाय ऐसा प्रयास आप सभी विद्वान मिलकर के करें। समारोह के सफल आयोजन के लिए शुभकामनाएँ हैं।

(13) डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, जबलपुर (म.प्र.)

आपका आग्रह पूर्ण पत्र मिला। परिषद् की स्वर्ण जयन्ती समारोह पूज्य मुनिवर सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में मनाया जा रहा है। यह जानकर प्रसन्नता हुई मैं अस्वस्थता के कारण मेरा आना सम्भव नहीं है। समारोह की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

(14) नंदलाल जैन

समाज में विद्वानों की स्थिति को सुधारने एवं धार्मिक व सामाजिक समम्याओं के शास्त्रीय एवं आधुनिक समाधान से मार्गदर्शन देने हेतु कलकत्ता में स्थापित विद्वत.परिषद आपने स्वर्ण जयन्ती वर्ष का आयोजन कर रही है। इसने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं और अपने युवा में यथास्थितिवाद का समर्थन करते हुए भी कुछ प्रगतिशीलता के लक्षण भी दिखाये हैं। आज की विषम परिस्थितियों में, जब हम जैनधर्म को विश्वस्तर पर संप्रसारित करना चाहिते हैं, परिषद् के ऊपर महान् उत्तरदायित्व है।

उसे साधुओं के शिथिलाचार, विभिन्न जैन संप्रदायों में वर्धमान विचार-अनुदारता, जैनों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव संबंधी आचार-विचार धारणा के प्रति उदासीनता एवं प्राचीन शास्त्रों की, वैज्ञानिक युग में भी अधिमन्यता आदि ऐसी समस्यायें हैं जिन पर विद्वत्-परिषद् को समीचीन मार्गदर्शक बनना होगा। यही कार्य परिषद की जीवंतता स्थिर रख सकेगा।
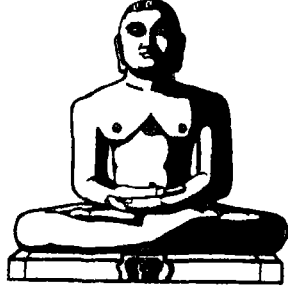
खण्ड तृतीय

अतीत का परिदृश्य

सिद्धान्तवाचस्पति वंशीधर न्यायालंकार इन्दौर

(कटनी-१९४५ प्रथम, और सोलापुर-१९४५ पंचम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय उद्‌बोधन

कटनी अधिवेशन का अध्यक्ष विद्वानों ने श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज को निश्चित किया था, परन्तु आपने सभा में उपस्थित होकर स्वागतमाला श्रीमान् पं. वंशीधरजी इन्दौर के कण्ठ में अर्पित कराई और उनकी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा। फलस्वरूप यह अधिवेशन श्री पं. वंशीधरजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। पूज्य वर्णीजी प्रत्येक कार्य में उपस्थित रहते थे। अध्यक्षीय भाषण करते हुए श्रीमान् पं. वंशीधरजी ने कहा-

सर्वप्रथम मैं पूज्य वर्णीजी की सत्कृपा से गदगद् हूँ। वे न जाने किसे, किससे, क्या बना देते हैं। लोक में पारसपत्थर की चर्चा आती है कि वह लोहे को सोना बना देता है। यहाँ हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि पूज्य वर्णीजी महाराज ने न जाने मुझ जैसे कितने व्यक्तियों को लोहे से सोना बना दिया है। आपकी आज्ञा का पालन कर मैं मञ्च पर बैठ अवश्य गया हूँ पर यह अधिवेशन है उन्हीं की अध्यक्षता में।

भाषण जारी रखते हुए आपने विद्वानों की वर्तमान दशा का चित्रण किया तथा उन्हें संगठित होकर कार्य करने के लिए संबोधित किया। उन्होंने कहा कि विद्वान समाज के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ के समान है। जिस प्रकार प्रकाश-स्तम्भ को देखकर मार्ग-भ्रान्त वायुयान अपनी दिशा को अच्छी तरह पकड़ लेता है। उसी प्रकार विद्वान का आश्रय पाकर पथ-भ्रान्त समाज अपने मार्ग को अच्छी तरह पकड़ लेती है। इस स्थिति में विद्वान को अपना आचरण इतना उज्जवल रखना चाहिये, जिससे समाज का कोई भी व्यक्ति पथ-भ्रान्त न हो सके।

जैन वाङ्मय को स्वयं समझकर उसे जनता तक पहुँचाना तथा उसका हार्द प्रकट करना यही सच्ची प्रभावना है। समन्तभद्रस्वामी ने अज्ञाननिवृत्ति को ही प्रभावना का लक्षण बतलाया है-

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना॥

अर्थात् जैसे बने वैसे अज्ञान-तिमिर के प्रसार को दूरकर जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना प्रभावना अङ्ग है। प्रभावना के अन्य लक्षण तो देशकाल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। पर यह लक्षण कभी परिवर्तित नहीं होता।

मैं सामने बैठे हुए पं. महेन्द्र कुमार जी, पं. कैलाशचन्द्र जी, पं. जगन्मोहनलाल जी, पं. दयाचन्द्र जी, पं. पन्नालाल जी, पं. राजेन्द्रकुमार जी आदि अनेक विद्वानों को जब देखता हूँ तब मुझे प्रसन्नता होती

है और लगता है कि ये विद्वान् समाज को बड़े सौभाग्य से प्राप्त हुए हैं। इनके रहते समाज का भविष्य उज्जवल ही प्रतीत होता है।

:: २ ::

सोलापुर अधिवेशन में आपने 'भूयादगाध: स विबोधवार्धि:' आदि श्लोक के द्वारा भगवान् महावीर स्वामी के सम्यग्ज्ञानरूप समुद्र से रत्नत्रय-प्राप्ति की आकांक्षा प्रकट करते हुए बतलाया कि चूँकि समय थोड़ा रह गया है अत: यह हमारे जैसे वक्ताओं के लिए प्रसन्नता की बात है (जनता ने मीठी हँसी द्वारा अध्यक्ष महोदय की निरभिमानता के प्रति हर्ष प्रकट किया)। आपने स्वस्ति श्री भट्टारक लक्ष्मीसेन जी महाराज के भाषण का उदाहरण देते हुए कहा कि भट्टारकजी ने पण्डित का जो लक्षण बताया है वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। स्वपरविज्ञानी जीव ही वस्तुत: पण्डित है। आजकल पण्डित शब्द कुछ संस्कृत पढ़े-लिखे लोगों में रूढ़ हो गया है, पर यथार्थ की बात यह नहीं है। पण्डित शब्द पहिले जितना आदरसूचक था, आज समाज में उतना अनादरसूचक हो गया है। यह समय का फेर है और पण्डितों की अपने आपकी कमी भी है।

सम्यग्ज्ञान के अभाव में सर्वागमधारी होकर भी विद्वान् नहीं हो सकता, उसका ज्ञान बेकार है। मिथ्याज्ञान से मनुष्य की शोभा नहीं, वह तो प्राणिमात्र के होता है, सम्यग्ज्ञान के समान कल्याणकारी अन्य वस्तु नहीं है। शास्त्रज्ञान उतना कीमती नहीं जितना कि आत्मज्ञान। मैं चाहता हूँ कि हमारे विद्वान् इस विभूति को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इसी के सिलसिले में आपने अध: करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण का शास्त्रीय स्वरूप बड़ी स्पष्टता से जनता के समक्ष प्रकट किया है।

भाषण के अन्त में आपने बतलाया कि विद्वानों में संगठन हो, उन्नति हो, विकास हो, समय की परख हो और कर्त्तव्यपटुता हो। विद्वान. अपने दायित्व को समझें। इसी में विद्वत्परिषद् प्रगतिशील होगी।

भक्ति-धर्म अमृत रूप है। भक्ति की धारा अमृत की गंगा है। इसमें गोता लगाते ही पाप धुल जाते हैं। श्रद्धापूर्वक इस अमृत का आचमन करने वाला राग, रोग, जरा और मृत्यु से छूट जाता है।

- दीनानाथ दिनेश (गीता-ज्ञान)

पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री कटनी

(मथुरा-१९४६ अधिवेशन के अध्यक्ष)
का
अध्यक्षीय उद्‌बोधन

प्रत्येक समाज व उसकी धर्मपरम्परा का सञ्चालन उस समाज के प्रबुद्ध तथा सच्चरित्र व्यक्तियों द्वारा होता आया है। जैन धर्म की परम्परा प्रवाह रूप से तीर्थंकरों के काल से चली आ रही है। प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् अपने समय के सर्वोच्च उपदेष्टा होते थे। जब दो तीर्थंकरों के मध्यकाल का बहुत बड़ा अन्तर रहता था उस समय धर्म व समाज का सम्पोषण तत्कालीन दिगम्बराचार्यो द्वारा हुआ।

भगवान् महावीर के बाद बहुत काल तक इस पंचम काल में भी आचार्यपरम्परा इस प्रवाह को आगे बढ़ाती रही, पर काल के प्रभाव से आचार्यो में भी पक्षव्यामोह व संघ-गण-गच्छव्यामोहने घर कर लिया और अनेक संघभेद हो गए। समाज में भी, जो जिनकी शिष्यपरम्परा में आए उनमें आचार-विचारभेद होता गया। राजकीय परिस्थिति बदलने पर म्लेच्छ राजाओं के अत्याचारों के कारण मुनिधर्म न चल सका, तब जिनके हाथ मे नेतृत्व था वे सवस्त्र भट्टारक हुए। उनकी कृतियों ने उनकी भी स्थिति समाप्त कर दी, तब समाज नेतृत्वविहीन हो गई। नगर की आम जैन जनता के हाथ सत्ता आई और पंचायतों की जगह-जगह स्थापना हुई, पंचायती शासन चला। कालान्तर मे कुछ अहंमन्य पंचों की मनमानी तथा स्वच्छन्दता के कारण उस बंधन से भी जनता निकल भागी।

आज का वर्तमान युग विद्वानों का युग है। समाज में धर्म के ज्ञाता भी विद्वान है और राजभाषा के विद्वानों का भी एक वर्ग है तथापि दोनों में इस समय सामञ्जस्य नहीं है। क्वचित् है जो न के बराबर है। राज्यभाषा के अध्येता अधिक है, और धर्मशास्त्री कम संख्या में है। संख्या राजभाषा के विद्वानों की बढ़ती पर है और धर्मशास्त्रियों की घटती पर। कारण स्पष्ट है कि राज्यभाषा के विद्वानों को राज्याश्रय प्राप्त हो जाता है, पर धर्मशास्त्री केवल समाजाश्रित है। राज्यभाषा के विद्वान आधुनिक विदेशी पद्धति पर समाज की रचना बदलना चाहते हैं। किन्तु धर्म के विद्वान् प्राचीन पद्धति पर धार्मिक उन्नति के साथ समाज की रचना के पक्षकार हैं। दोनों प्रकार के विद्वानों में उक्त कारणों से काफी मतभेद है। समाज अस्तव्यस्त हो रही है, धर्म की नींव हिल रही है। ऐसे समय धर्म के अध्येता विद्वानों ने शास्त्रीपरिषद् नाम से एक संगठन की स्थापना की। कुछ समय उसका कार्य अच्छा चला, पर उसमें पुरातन पंडितों की ही प्रमुखता रही, नये विद्वानों को उसमें विचारभेदों के कारण स्थान नहीं मिला। कुछ समय बाद वह बात भी समाप्त हो गई।

कलकत्ता में वीरशासन-जयन्ती का प्रथमोत्सव था। बड़ा जोर-शोर था। इसमें यद्यपि जैन शास्त्रियों को कोई खास आमंत्रण नहीं था तब भी उन्हें आकर्षण था, अत: पचीसों विद्वान् अपने अपने खर्च से भी उसमें सम्मिलित होने पहुँचे थे। वीरशासन-जयन्ती एक नया पर्व मनाया जा रहा है। उसका विज्ञापन भी बहुत था। इसलिए विद्वानों को आकर्पण था।

वहाँ के कार्यक्रम में दर्शन-विभाग, धर्म-विभाग, इतिहास-विभाग आदि नाना विभागों में समितियों की रचना थी और उसमें आंग्लविद्या के पारगामी जैन या जैनेतर विद्वान् ही सर्वेसर्वा थे। जैन संस्कृतज्ञ धर्मशास्त्रियों का उसमें एक भी नाम न था। ऐसा लगता था कि बुद्धिपूर्वक उनका बहिष्कार रखा गया है। अन्यथा वीरप्रभु के शासन की जयन्ती हो और उसमें वीर-शासन के निष्णात् विद्वानों में एक भी नाम न हो। ऐसा हो नहीं सकता था।

विद्वानों ने वहाँ पर इस समस्या पर विचार किया और समझा कि संगठन के युग में असंगठित विद्वानों की कोई कीमत समाज में नहीं है, फलतः वहाँ दि. जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना पं. इन्द्रलाल जी शास्त्री जयपुर की जो एक पुरातन विद्वान् थे, किन्तु नये विद्वानों के साथ जिनका धर्मवत्सलता का भाव था, प्रेरणा पर श्री पं. श्रीलाल जी पाटनी अलगढ़ की अध्यक्षता में हुई। तबसे संस्था कार्य करती आ रही है। विद्वत्परिषद् के सामने बहुत कार्य है। उनकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार की वहाँ दिखाई गई थी-

१. विद्वानों में विचार-भेद होते हुए भी संगठन मजबूत रखना।

२. विद्वान्, जो भी धर्म के आस्थावान् है, इसके सदस्य बनाए जाय।

३. संस्थाओं में (वणिकवृत्ति के कारण) काम करने वाले विद्वानों के निर्वाहयोग्य वेतनमान स्थापित कराना व उसे चलाना।

४. समाज में भाषण-लेखन-ग्रन्थानुवाद-नवग्रन्थ निर्माण द्वारा ज्ञान का प्रचार करना।

५. पुरातनग्रन्थों का उद्धार।

६. स्थान-स्थान पर धर्मज्ञान कराने को पाठशालाओं की स्थापना।

७. सामाजिक सुधार।

८. कुरीतियों को दूर करने के उपाय।

९. छात्रों को ज्ञानाभ्यास के लिए साधनों को सुलभ बनाना।

१०. कष्ट में पड़े विद्वानों की कौटुम्बिक सहायता का प्रयत्न करना।

कामी क्रोधी लालची, इनतें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय॥

- कबीर

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द शास्त्री

(सोनगढ़-१९४७ तृतीय तथा ललितपुर-१९४९ नवम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय-उद्‌बोधन

आपकी अध्यक्षता में सोनगढ़ तृतीय और ललितपुर में नवम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। समय की कमी के कारण आपका सोनगढ़ का अध्यक्षीय भाषण मुद्रित नहीं हो सका था। मौखिक भाषण में आपने सर्वप्रथम श्रीकानजी स्वामी की परीक्षा-प्रधानता का उल्लेख करते हुए उनके दिगम्बर धर्म में आगमन का अभिनन्दन किया तथा सोनगढ़ को श्रमणगढ़ बताते हुए वहाँ के धार्मिक वातावरण की प्रशंसा की।

विद्वत्परिषद् का परिचय देते हुए आपने उसकी स्थापना से लेकर अब तक के कार्यक्रमों का उल्लेख किया। विद्वान् का क्या दायित्व है, इस पर भी आपने अच्छा प्रकाश डाला। धार्मिक शिक्षा-संस्थाओं और उनमें काम करने वाले विद्वानों की स्थिति पर चर्चा करते हुए आपने समाज के कर्णधारों का उनकी ओर ध्यान आकर्षित किया। अन्त में मुमुक्षुशब्द का अर्थ और उसकी परिणति का अध्यात्मशैली से दिग्दर्शन कराया।

:: २ ::

ललितपुर अधिवेशन में हुए आपके अध्यक्षीय भाषण का प्रकाशन विद्वत्परिषद् की ओर से हुआ था। उनके कुछ स्तम्भ यहाँ समुद्धृत किये जाते हैं-

विद्वानों के ऊपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। वे शास्त्रज्ञ होने के कारण मार्गदर्शक माने जाते हैं। यदि मार्गदर्शक ही समाज को मार्गभ्रष्ट करने लगे, तो मार्ग की सुरक्षा फिर कौन करेगा?

शास्त्रज्ञ का मतलब होता है शास्त्र का ज्ञाता। किन्तु शास्त्रज्ञ से केवल इतनी ही आशा नहीं की जाती कि वह शास्त्र को मात्र जानता भर हो। ऐसा शास्त्रज्ञ शास्त्रों का बोझा भर ढोने वाला है। सच्चा शास्त्रज्ञ वह है जो शास्त्र को जानकर अपनी शक्ति के अनुसार अपने जीवन में भी उसे लावे। मेरा यह कहने से यह मतलब नहीं है कि सब विद्वानों को घर-बार छोड़कर त्यागी बन जाना चाहिये। किन्तु धर्म की आधारभूत जो बातें हैं, जिनका आश्रय पाकर धर्मरूपी वृक्ष लहलहाता है वे तो हर-एक शास्त्रज्ञ के जीवन में होनी ही चाहिये। उनके सिवाय उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि धर्म की ओट में भूलकर भी अधर्म नहीं करना चाहिये। जीवन में धर्म को ढोंग के रूप में अवतरित न करके उसे उसके वास्तविक रूप में ही अवतरित करना चाहिये। और समाज में ढोंग को पुजता देखकर भी ढोंगका ढोंग न रचकर उसका पर्दाफाश करने का ही प्रयत्न करना चाहिये। यदि विद्वान् भी ढोंग रचने लगेंगे तो फिर विद्वान् और अविद्वान् में अन्तर ही क्या रहेगा? अत: विद्वानों को तो यथार्थ रूप में ही अपनी शक्तिभर धर्म का आचरण करना चाहिये।

आज जो नये और पुराने विद्वान दृष्टिगोचर होते हैं वे समाज के लिए गौरवभूत हैं। विद्वानों की जो स्थिति आज है वह दस वर्षों के बाद नहीं रहेगी। क्योंकि विद्वानों का स्रोत सूखने लगा है। और उसके कई

कारण हैं। प्रथम तो जीवन का व्ययभार पहले से पंचगुना बढ़ गया है और बढ़ता जाता है। पहले ३५) माहवार मिलने पर भी विद्वान् की गुजर हो जाती थी, आज सौ मिलने पर भी नहीं होती। दूसरे, धार्मिक शिक्षा को अनावश्यक माना जाने लगा है। समाज के श्रीमन्त लोग भी जितनी रुचि से अपने बच्चों को लौकिक शिक्षा दिलाते हैं और उसका व्ययभार उठाते हैं, उतनी रुचि से न धार्मिक शिक्षा दिलाते हैं और न व्ययभार ही उठाते हैं। फलतः स्थानीय पाठशालाएँ उठती जाती हैं, और जो विद्वान उनमें काम करते हैं उनकी स्थिति दिन-पर-दिन शोचनीय होती जाती है। यही सब स्थिति को देखकर नये शिक्षितों के मानस भी बदलते जाते हैं। दूसरी ओर भारत के स्वतंत्र हो जाने से आज के प्रत्येक नागरिक के सामने उन्नति के सब द्वार खुल गये हैं। आजका नवयुवक देश की इस प्रगति में अपना योगदान देने के लिए उत्सुक है। अतः वह जीवन में आगे बढ़ना चाहता है, अब उसे कोरा पंडित बनकर ६०)/-७०) माहवार पर अपने जीवन को बेच देना सह्य नहीं है। पहले विद्वानों को मान-सम्मान मिलता था, उससे भी पैसे की कमी की थोड़ी पूर्ति हो जाती थी, अब वह भी समाप्त होता जाता है।

ऐसी स्थिति में विद्वत्ता की धूनी रमाना आज सबके लिए कठिन है। अब तो विरले साधक ही उस मार्ग में रह सकेंगे। जिनके पीछे कुटुम्ब का भार है उन विद्वानों को भरपेट देना भी समाज को अखरता है। वही समाज उन साधुओं के लिए लाखों रुपया खर्च करने को तैयार है, जिनके पीछे कोई भार नहीं है। फलतः विद्वान तो अर्थाभाव से पीड़ित होकर इस मार्ग से हटते जाते हैं और निर्ग्रन्थ साधु अर्थके भार से पीड़ित होकर अपने मार्ग से हटते जाते हैं। हमारी समाज की विचित्र स्थिति है।

आज जो नव-शिक्षित संस्कृत-शिक्षा के साथ अंग्रेजी पढकर स्कूलों और कालेजो में अध्यापक हो गये है, जैन समाज के विद्वानों से उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है और वे अपने जीवन में सुखी हैं। यदि वे नव शिक्षित जैन समाज को एकदम न भुलाकर समय-समय पर उसे सेवाएँ प्रदान करते रहें तो उन्हें समाज से विशेष आदर प्राप्त होगा और समाज को भी बिना कुछ व्यय किये उनसे पूरा लाभ होगा। ऐसे जैन शिक्षितों मे मे अपील करता हूँ कि वे अपना ध्यान समाज की ओर भी दें और इस तरह से सामाजिक ऋण से मुक्त हों।

चूंकि अब जैन विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी, विद्वान बनकर समाज में नहीं रहते इसलिय विद्यालयो को अनुपयोगी समझ लेना भूल होगी। समाज के बच्चे हर हालत मे समाज के बच्चे है। आज इन विद्यालयों के ही कारण न जाने कितने ऐसे धूल मे पड़े हुये चमकदार कण चांदी और सोने के टुकड़े बनकर अपने जीवन पथ में लगे हुए है। यदि उन्हे यह सहारा न मिलता तो पता नहीं आज वे किस हालत मे होते! वे कहीं भी रहें, आखिर है तो हमारे ही जिगर के टुकड़े। उन्हें फलता फूलता देखकर हमारी आँखें ठडी होती हैं। हमारे समाज के नवयुवक यदि योग्य बनकर जीवन के हर एक क्षेत्र में सफल होते हैं तो यह हमारे लिए गौरव की बात है। यह हमें नहीं भूल जाना चाहिये कि समाज में शिक्षितों की संख्या जितनी ही अधिक होगी उतनी ही हमारी सामाजिक स्थिति का धरातल ऊँचा उठेगा।

आगे हमें स्वतंत्र भारत में स्वतंत्र नागरिकों की तरह जीना है। आगे का सामाजिक और धार्मिक जीवन संघर्षमय हो सकता है, उसके लिए हमें सदा तैयार रहना होगा। यदि हम असावधान रहे तो पीस दिये जावेंगे। इस सत्य को हमे भूलना नहीं चाहिये।

अत: शिक्षा और शिक्षा-संस्थाओं की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। फिर, धार्मिक शिक्षा-संस्थाओं को तो हमें हर हालत में बनाये रखना चाहिये, क्योंकि वे बंद हो गईं तो महान् जैनाचार्यों के ग्रन्थों का पठन-पाठन फिर पहले की तरह उठ जायेगा और तब समाज के सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो जायेगा। जैन ग्रन्थों का पठन-पाठन हर हालत में उत्तम है। उसका संस्कार जीवन भर नहीं जाता। अत: जैन विद्यालयों को समाज से प्रोत्साहन मिलते रहना चाहिये।

इस संबंधमें मैं दानवीर साहू शांतिप्रसाद जी तथा उनकी धर्मपत्नी रमारानीजी का विशेष कृतज्ञ हूँ। और हम सबको उनका कृतज्ञ होना चाहिये।

उन्होंने अभी ही सागर के गणेशवर्णी दि. जैन विद्यालय को पाँच हजार रुपया वार्षिक की स्थायी सहायता देने का वचन दिया है। इससे पूर्व भी वे श्री स्याद्वाद् महाविद्यालय को डेढ़ लाख रुपया प्रदान कर चुके हैं। उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना करके दिगम्बर जैनाचार्यों के द्वारा रचित महाबन्ध, तत्त्वार्थराजवार्तिक, न्यायविनिश्चयालंकार, सिद्धिविनिश्चय, जैनेन्द्रमहावृत्ति जैसे महान् ग्रन्थों को छापकर प्रकाशित कराया है और अनेक ग्रंथ प्रकाशित होने वाले हैं। उनका यह जिनवाणी-प्रेम अनुकरणीय और उदाहरणीय है। वे प्रतिवर्ष हजारों रुपया छात्रवृत्ति के रूप में प्रदान करते हैं॥ इस प्रांत के गजरथ-प्रेमियों को अपने द्रव्य को उपयोग करने में उनके जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिये। खेद है कि यहाँ के धनिक गजरथों में तो लाखों रुपया व्यय कर देते हैं किन्तु अपने ही प्रांत के गरीब छात्रों के लिये कोई आदर्श छात्रवृत्ति फण्ड स्थापित नहीं करते। इस प्रांतके गरीब छात्रों के लिये इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। मैं साहूजी तथा उनके परिवार को पुन:-पुन: धन्यवाद देता हूँ और जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता हूँ कि उनका यह धर्म-प्रेम और उदारता दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धिंगत हो।

भेलसाके श्रीमंत सेठ लक्ष्मीचंदजी के द्रव्य से प्रो. हीरालाल जी ने पं. फूलचन्द्र जी सिद्धंतशास्त्री आदि विद्वानों के सहयोग से श्रीधवलजी के प्रकशन का जो गुरूतर कार्य वहन किया था वह पूर्ण हो गया है और इसके लिये श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी, प्रो. हीरालालजी, पं. फूलचन्द्रजी और पं. बालचन्द्रजी शास्त्री धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं। महाबंधका पूर्ण प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से हो चुका है। उसका अनुवादादि कार्य भी पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री ने किया है। भारतीय दि. जैन संघ की ओर से जयधवलाका प्रकाशनकार्य चालू है, उसके भी अनुवादादि का भार पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री उठाये हुए हैं। उसका कार्य आधा हो चुका है, आधा शेष है। दानवीर सेठ भागचंद्र जी साहब डोंगरगढ़ ने उसके प्रकाशन कार्य के लिये सोलह हजार रुपये प्रदान किये हैं। सेठ साहब तथा पं. फूलचन्द्र जी साहब इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

विद्वत्परिषद् मूलत: विद्वानों का एक संगठन है। अत: प्रतिवर्ष विविध विषयों पर विद्वानों के द्वारा निबन्ध-पाठ प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को चालू करना आवश्यक है। इससे जैन तत्त्वज्ञान के विकास में सहायता मिलेगी और विद्वानों में पठन-पाठन तथा शोध-कार्य की अभिरुचि जाग्रत होगी। उत्तम निबन्धों के लिये पारितोषिक भी होना चाहिये।

विद्वत्परिषद् ने जो शंका-समाधान का कार्य चालू किया था वह बराबर चल रहा है और पं. रतनचन्द्र जी मुख्तार उसके लिये पर्याप्त समय देते हैं जिसके लिये वह धन्यवाद के पात्र हैं।

सैद्धांतिक विषयों में मतभेद होना कोई नई बात नहीं है। पहले भी आचार्यों तक में मतभेद रह है। उन आचार्यों के मतभेदों को मिटाना या उनके सम्बन्ध में ऊहापोह करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचना तं कठिन ही है, किन्तु आज जो मतभेद है उस पर शान्ति के साथ ऊहापोह किया जा सकता है।

उदाहरण के लिये क्रमबद्ध पर्याय का प्रश्न है? केवलज्ञान भूत और वर्तमान की तरह भावि पर्यायं को भी जानता है। यह निर्विवाद सत्य है। षट्खण्डागम से लेकर उत्तरकालीन सभी ग्रंथों तक में यही कथः पाया जाता है। केवलज्ञानी भविष्य को तभी जान सकता है जब वह निश्चित हो। अनिश्चित दशा में वा उसे निश्चित रूप से नहीं जान सकता। केवलज्ञान की बात छोड़िये। विपुलमति मन:पर्यय केवल चिन्ति और अर्धचिन्तित को ही नहीं जानता, अचिन्तित को भी जानता है। इसका मतलब यह हुआ कि भविष्य में हम क्या सोचेंगे यह भी निश्चित है, अन्यथा मन: पर्ययज्ञानी अचिन्तित को कैसे जान सकता है?

और जैन शास्त्रों में बिना किसी मतभेद के अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान को भविष्यः भी बतलाया है। इससे क्रमबद्ध पर्याय की सिद्धि होती है। और क्रमबद्ध पर्याय मानने से नियतिवाद आ जात है। और नियतिवाद के भय से क्रमबद्ध पर्यायको न माननेपर सर्वज्ञ की सर्वज्ञता का खात्मा होता है। औ सर्वज्ञता तमाम जिनशासन की आधारशिला है। अत: हमें शान्ति के साथ पहले आपस में इस बात पर विचा करने की जरूरत है। यदि इसी विषय पर पहले विद्वानों से निबन्ध बुलवाये जायें और फिर उन पर चच हो तो उक्त विषय पर निर्णयात्मक प्रकाश पड़ने की आशा की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में इतना और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि नियतिवाद- सिद्धान्त का प्रस्थापक मक्खलि पुत्र गोशालक श्वेताम्बरीय भगवतीसूत्र के अनुसार भगवान् महावीर की छद्म स्थावस्था में छह वर्ष तक उनक शिष्य बनकर रहा था। और भगवान् महावीर की भविष्यवाणियों का अन्यथा करने का प्रयत्न करके भी ज वह अन्यथा न कर सका तो वह नियतिवाद हो गया। अत: नियतिवाद के बीज भविष्यज्ञता में ही विद्यमा हैं। फिर भी जैनाचार्यो ने नियतिवाद को स्वीकार नहीं किया और न भविष्यज्ञता को ही छोड़ा। अत: भविष्यज्ञत और नियतिवाद में अवश्य अन्तर होना चाहिये। उसी को हमें खोजना है।

और भी आजकी कई चर्चायें है। जिन पर विद्वानों को शांतचित्त से विचार करना चाहिये। निमि और उपादान, पुण्य बनाम धर्म, निश्चय और व्यवहार में साध्य-साधकभाव आदि ऐसे ही विषय हैं। जह तक निमित्त और उपादान का प्रश्न है, निमित्त की स्थिति इतनी सुदृढ़ है कि वह कुछ करे या न करे, किन उसका कोई निषेध नहीं कर सकता। 'निमित्त है, किन्तु वह कुछ करता नहीं है केवल उपस्थित रहता है इस कथन में जो उसकी उपस्थिति है वह अपरिहार्य है। इस अन्वयपक्ष को यदि व्यतिरेकका रूप दिया जा तो कहना होगा, 'निमित्त की उपस्थिति यदि न हो तो कार्य नहीं होता' यह व्यतिरेकपक्ष अन्वयपक्ष का ह दूसरा पहलू है, किन्तु अध्यात्म इसे स्वीकार नहीं करता। अध्यात्म का मतलब है जो आत्माश्रित हो। जह पराश्रितता है वहाँ अध्यात्म नहीं है, दर्शन है। दार्शनिक वस्तु विचार से अध्यात्म विषयक विचार भिन्न पड़त है। दार्शनिक वस्तुविचार का उद्देश्य वस्तुविश्लेषण है ओर अध्यात्मविषयक विचार का उद्देश्य है अबद्ध, अस्पृष्ट अनन्य, अविशिष्ट आत्मस्वरूप की प्राप्ति। उसमें रंचमात्र भी पराश्रितता का भान अध्यात्म-स्थिति से च्यु कर देता है। अत: जितना भी वस्तुविश्लेषणात्मक विचार है सब दर्शन है- उसकी आवश्यकता वस्तुको समझनेवे लिए उपयोगी है, अत: वह व्यवहारनयका विषय है; अध्यात्मक निश्चयनयका विषय है। विवाद करने वाल

के लिए पहला उपयोगी है, किन्तु आत्मोपलब्धि के अभिलाषियों के लिए दूसरा उपयोगी है। कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में स्वयं इस बात को स्पष्ट कर दिया है-

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

विद्वान् लोग निश्चय के विषयभूत अर्थ को छोड़कर व्यवहार द्वारा ही प्रवृत्ति करते हैं। किन्तु परमार्थ का आश्रय करने वाले यतीजनों ने ही कर्मों का क्षय किया है।

अत: दार्शनिक वस्तुविचार से अध्यात्मविषयक विचार जुदा है। इसीलिये देवसेनाचार्य ने आलाप-पद्धति में अध्यात्मविषयक नयोंका कथन अन्त में अलग किया है, 'अधुना अध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते।' और गुरुवर्य गोपालदासजी ने अपने जैनसिद्धांतदर्पण में शास्त्रीय नय और अध्यात्म नयोंका का अलग-अलग कथन किया है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो मूल शास्त्रीय नय हैं तथा निश्चय और व्यवहार ये दो मूल अध्यात्मनय हैं। कुन्दकुन्दस्वामी के समयसार में निश्चयनय और व्यवहारनयका ही कथन है। उनके भेद-प्रभेद उत्तरकालीन उपज हैं। कुन्दकुन्दस्वामी का निश्चयनय शुद्धनय है। उसके सिवाय सब नय अशुद्धनय हैं, अत: वे व्यवहारान्तर्भूत हैं।

व्यवहारनय को कुन्दकुन्दस्वामी ने अभूतार्थ- असत्यार्थ कहा है। इसका मतलब यह नहीं है कि व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ है। किन्तु वह परमार्थोपयोगी नहीं होने से अभूतार्थ कहा गया है। इसीलिये परमार्थ पथ के पथिकों के लिए उसका अनुसरण करने का निषेध किया है। समयसार की ११वीं और १२वीं गाथाओं और उनकी आत्मख्याति को ध्यानपूर्वक पढ़ने से वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। समयसार की १२वीं गाथा में कहा है-

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।

ववहरदेसिदा पुण जे दु अपरमे ठिदा भावे॥१२॥

अर्थ--जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान् हुये हैं तथा पूर्ण ज्ञान-चारित्रवान् हो गये हैं उन्हें शुद्ध आत्मा का उपदेश देने वाले शुद्धनय को जानना चाहिए। और जो जीव अपरमभाव में अर्थात् श्रद्धा तथा ज्ञान, चारित्र के पूर्ण भाव को नहीं पा सके, जोकि साधक अवस्थामें ही स्थिर हैं वे व्यवहार द्वारा उपदेश करने के योग्य हैं।

उक्त गाथा का यह अर्थ मैंने यहाँ श्रीकानजी स्वामी के समयसार-प्रवचन प्रथम भाग से उद्धृत किया है। टीकाकार जयसेनाचार्य के अनुसार भी परमभावदर्शीका का अर्थ है शुद्धात्मभावदर्शी। ओर 'अपरमे ठिदा' का अर्थ है अशुद्धभाव में स्थित। वे हैं चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें गुणस्थानवाले मुमुक्षु। उन्होंने लिखा है-

'ये पुरुषा: दु पुन: अपरमे अशुद्धे असंयतसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया श्रावकापेक्षया वा सरागसम्यग्दृष्टिलक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्तसंयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे वा ठ्ठिदा स्थिता:'।

अत: सातवें गुणस्थान तक के जीव व्यवहारनय के द्वारा उपदेश करने के योग्य हैं। उससे ऊपर के शुद्धोपयोग में स्थित जीवों के लिए व्यवहारनय की कोई उपयोगिता नहीं है, उन्हें तो शुद्धनय ही ज्ञातव्य है। उन्हीं के लिए उसकी उपयोगिता है। अत: व्यवहारनय न तो सर्वथा अभूतार्थ ही है और न सर्वथा अनुपयोगी ही है। किन्तु वह आदेय नहीं है, हेय है। इसी से अमृतचन्द्र सूरिने उक्त गाथा के कलशों में उसका अवलम्बन लेने पर खेद प्रकट करते हुए लिखा है-

व्यवहरणनय: स्याद्यद्यपि प्राक् पदव्यामिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्ब:।
तदपि परमर्थं चिच्चमत्कारमात्रं, परविरहितमन्त: पश्यतां नैष किञ्चित्॥

यहाँ मैं एक और बात की तरफ आप सबका, विशेषतया समयसार-रसिकों का ध्यान खींचना चाहता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि कुन्दकुन्दस्वामी ने अपने ग्रन्थ मुख्य रूप से श्रमणों को लक्ष्य में रखकर रचे हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि गृहस्थों को उन्हें नहीं पढ़ना चाहिए। अवश्य पढ़ना चाहिए, किन्तु इस तथ्य को भी दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहिए। आप पूछेंगे, इसमें क्या प्रमाण है? समयसार का आरम्भ होता है-**'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो।'** यह कथन छठे-सातवें गुणस्थान को लक्ष्य में रखकर किया गया है। ज्ञायकभावस्वरूप आत्मा प्रमत्त भी नहीं अप्रमत्त भी नहीं। इसी तरह प्रवचनसार की तो अनेक गाथाओं में स्पष्टरूपसे श्रमण का निर्देश आता है। तथा उसका प्रारम्भ ही **'उवसपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसम्पत्ति'** से होता है। बिना साम्यभाव के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। और मोह तथा क्षोभ से रहित आत्मपरिणामरूप साम्यभाव का पात्र श्रमण होता है।

किन्तु खेद इस बात का है कि आज के विरले ही श्रमण कुन्दकुन्दान्वय और मूल संघ के अनुयायी है, किन्तु कुन्दकुन्दाचार्य ने श्रमणों के लिए क्या कहा है, इसे जानने की इच्छा भी विरल श्रमणों में ही पाई जाती है, जबकि गृहस्थजन कुन्दकुन्द के समयसार को खूब पढ़ते ओर सुनते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है-जो एक को जानता है वह सबको जानता है ओर जो सबको जानता है वह एक को जानता है, तदनुसार यदि कहा जाये कि जो हेय को जानता है वही उपादेय को जानता है और जो उपादेय को जानता है वही हेय को जानता है, तो कोई अनुचित नहीं है। उपादेय तो केवल एक स्व है, उसके सिवाय सब हेय हैं। अत: उपादेय को जानने के लिए जैसे हेयों को जानना आवश्यक है वैसे ही एक समयसार को जानने के लिए कुन्दकुन्द तथा अन्य आचार्य प्रणीत जैन ग्रन्थों को भी जानना जरूरी है। उसके जाने बिना समय और उसके सार को नहीं जाना जा सकता। अत: समयसार के अभ्यासियों को कम-से-कम कुन्दकुन्द के सभी ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये।

चूँकि आजकल दि जैन समाज की चर्चा का प्रधान विषय उक्त बाते हैं इसलिए विद्वत्परिषद् में मैंने इनकी चर्चा करना उचित समझा। यह मेरा अपना दृष्टिकोण है जो मैंने विचारार्थ उपस्थित किया है। उस की सत्यता के लिए मेरा कोई आग्रह नहीं है। एक च्युतपक्षपात तत्त्ववेदी की तरह ही जो मैं समझ सका हूँ वह आपके सामने रख दिया है।

अन्त में मैं समस्त दिगम्बर जैन विद्वानों से यह अनुरोध करूँगा कि वे विद्वत्परिषद् के सदस्य बनकर इसके संगठन को स्थायी औंर दृढ़ बनाने का प्रयत्न करें।

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री १०५ क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी महाराज

(बरुआसागर-१९४८ चतुर्थ अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय-उद्‍बोधन

बरुआसागर अधिवेशन पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। क्षुल्लक-दीक्षा संभवत: आपने यहीं जिन-प्रतिमा की साक्षीपूर्वक ग्रहण की थी। आपका वरद् हस्त प्रत्येक विद्वान के मस्तक पर रहा है। विद्वत्परिषद् भी आप जैसे कल्पतरुकी शीतल-सुखद छाया में वृद्धिंगत हुई है। आपकी अध्यक्षता में सम्पन्न अधिवेशन में भाग लेने के लिए दूर-दूर से अनेक विद्वान पधारे थे। व्रती-सम्मेलन भी इसी समय आयोजित था, इसलिए अनेक व्रती महानुभाव भी यहाँ समासीन थे।

अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि वे विद्वान जैन धर्म के प्राण हैं। इनकी बदौलत ही आज भारत में जैनधर्म जीवित है। इनके द्वारा ही जैन समाज की प्रतिष्ठा बढ़ी है और इनके द्वारा ही हम पूर्वाचार्यों के द्वारा निर्मित महान् ग्रन्थों को समझ सकते हैं। आज धवल, जयधवल जैसे महान् ग्रन्थ प्रकाश में आ रहे हैं, यह इन्हीं लोगों के पुरुषार्थ का फल है।

विद्वत्परिषद् इन्हीं विद्वानों की सभा है। न जाने क्यों मेरे हृदय में विद्वान्मात्र को देखकर अपार हर्ष होता है। यहाँ अनेक विद्वानों को देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। यह पंडित मुन्नालाल जी रांधेलीय सागर से आये हैं। यह सागर के बड़े विद्वान् हैं। सागर विद्यालय के प्रथम स्नातक हैं, बड़े प्रतिभाशाली हैं। पं. दयाचन्द्रजी बैठे हैं। इन्हें गोम्मटसार कण्ठस्थ जैसा हैं। पं. कैलाशचन्द्रजी, पं. राकेशकुमारजी, पं. पन्नालालजी आदि विद्वान् उच्चकोटि के विद्वान हैं। इन लोगों ने मुझे अध्यक्ष बना दिया, सो इनकी महिमा कौन कहे। ये तो पत्थर को भी प्राण-प्रतिष्ठा कर भगवान् बना देते हैं, फिर हमारी तो बात ही क्या है?

विद्वानों से क्या कहूँ? उनसे तो मैं यही चाहता हूँ कि आप जैन समाज के मार्गदर्शक हैं, अत: अपने आपको इतना निर्मल बनाओ कि समाज आपको देख कर जैनधर्म को समझ जाय। पूज्यपाद स्वामी ने निर्ग्रन्थ आचार्य का वर्णन करते हुए लिखा है **'अवाग्विसर्गं वपुषा मोक्षमार्गं निरूपयन्तं'** वचन से बोले बिना शरीरमात्र से जो मोक्षमार्ग का निरूपण कर रहे थे।

उनकी शान्त मुद्रा देखकर लोग समझ जाते थे कि यह मोक्ष का मार्ग है। ऐसा बनने से ही विद्वान के प्रति जनता का आदरभाव बढ़ सकेगा। आदर की माँग करने से आदर नहीं मिलता, किन्तु उज्जवल आचरण से मिलता है।

एक बात की ओर, आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि आप लोग जितने रुपये खर्च करें उतने पैसे धार्मिक कार्यों के लिए बचा कर रख ले। जैसे १०) का आप धोती जोड़ा लायें तो १० पैसे धार्मिक कार्य के लिए बचा लें। इससे दान की प्रवृत्ति आपमें सरलता से बढ़ जायेगी। आपको कोई कष्ट भी नहीं होगा।

पं. दयाचन्द्र शास्त्री, न्यायतीर्थ, स्याद्वादवारिधि, सागर

(खुरई-१९५३ षष्ठम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय-उद्‌बोधन

आप प्रशमहृदय तथा जिनागमके मर्मज्ञ विद्वान हैं। आपके अध्यक्षीय भाषण का सारा निम्न प्रकार है-

सज्जनों! प्रत्येक लेखक एवं वक्ता अपने लेखों एवं व्याख्यानों द्वारा इस बात पर जोर दिया करता है कि समाज मे अमुक-अमुक त्रुटियाँ घर कर गई हैं, जब तक समाज इन्हें दूर न कर देगी तब तक उसका कल्याण नहीं होगा इत्यादि। परन्तु इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता कि समाज किस चिड़िया का नाम है।

जिस तरह शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्प आदि अवयवों से पृथक कोई वृक्ष नहीं होता उसी प्रकार व्यक्तियों से जुदा कोई समाज नहीं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को उन्नतिमार्ग में आरूढ़ हो जाने पर ही समाज की उन्नति सम्भव हो सकती है। स्वहित का विघात करने वाला व्यक्ति कभी समाजोन्नति करने में समर्थ नहीं हो सकता।

भगवान कुन्दकुन्द का वचन है कि-

आदहिदं कादव्वं जई सक्कई परहिदं च कादव्वं
आदहिदपरहिदादो आदहिदं सुट्‌ठु कादव्वं

भावार्थ-अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिये। यदि विशेष शक्ति हो तो दूसरों का कल्याण करने में प्रवृत्ति करना चाहिये। परन्तु जहाँ उक्त दो कार्यो में से एक ही किया जाना सम्भव हो वहाँ आत्मकल्याण को ही प्रमुखता देना चाहिये। इस सदुपदेश को साधारणजन स्वार्थपोषक कह सकते हैं परन्तु स्वशब्द के संस्कृत में आत्मा, आत्मीय, ज्ञान और धन ये चार अर्थ हैं। इनमें से प्रथम अर्थ की अपेक्षा स्वार्थी बनना अत्युत्तम है। यदि विश्व का प्रत्येक या अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार के स्वार्थी (आत्मार्थी) बन जायें तो संसार की समस्त अशान्ति क्षणमात्र में दूर हो जाय। हमारे जैनों को तो अवश्य ही इस प्रकार का स्वार्थी बन जाना चाहिये, क्योंकि हमारा धर्म तो आत्मा की भित्ति पर ही अवलम्बित है। सम्यग्दर्शन, जो धर्म का मुख्य अंग है, आत्मार्थी को ही प्राप्त हो सकता है। स्वशब्द के शेष तीन अर्थो क अपेक्षा स्वार्थी बनना जघन्य है, आज का विश्व इन अर्थो की अपेक्षा ही स्वार्थी बन रहा है, इसलिए उसमें त्राहि-त्राहि मच रही है।

विश्व की दशा देखकर रोते रहने की अपेक्षा अपनी दशा सुधारने के सत्प्रयत्न में संलग्न हो जाना श्रेयस्कर है।

इस अवसर पर अपने विद्वन्मण्डल से भी एक-दो बातें कर लेना उचित समझता हूँ।

सज्जनों! सौभाग्य से हमारे मण्डल को वह ज्ञानरत्न प्राप्त है जो अनन्त भवों में एकाध बार ही प्राप्त हो सकता है। इसका सदुपयोग करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इसके सदुपयोग द्वारा हम भवका अन्त भी कर सकते हैं। साधारण जनता से यदि हमारा सदाचार उत्कृष्ट न हो तो हमारा ज्ञान प्रशंसनीय नहीं हो सकता। नीतिकारों के इस वाक्य पर हमको सदा ध्यान रखना चाहिये कि-

ज्ञानं भार: क्रियां बिना

इस प्रकार कहने का हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हमारे मण्डल में सदाचार की हीनता है परन्तु मैं सिर्फ यह संकेत कर रहा हूँ कि हम जैन संस्कृति के अनुसार सदाचार को ही अपना भूषण समझें, इसी में हमारी शोभा है।

ज्ञानरत्न का प्रचार करना भी हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। हमारे विद्वानों में से अधिकांश सज्जन विद्यालयों एवं पाठशालाओं द्वारा ज्ञान का प्रचार कर ही रहे हैं परन्तु जिस स्थान में वे रहते हों वहाँ यदि स्वाध्याय-शाला न हो तो उसको अवश्य प्रारम्भ कर देना चाहिये और नियमित रूप से उसमें प्रति दिन घण्टा-आधघण्टा का समय देना चाहिये। यदि अधिक श्रोता उसमें सम्मिलित न हों तब भी उस कार्य को बन्द नहीं करना चाहिये। इससे प्रौढ़जनों में ज्ञान का विशेष प्रचार होगा और नूतन ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा निजका ज्ञान भी वृद्धिंगत होता रहेगा।

नवीन प्रस्तावों एवं सुझावों के विषय में मैं यह कह देना उचित समझता हूँ कि उनकी संख्या चाहे न्यून रहे परन्तु उनको कार्यरूप में परिणत करने के लिए अपनी समस्त शक्ति लगा देना चाहिये। प्राचीन प्रस्ताव भी जो कार्यरूप में परिणत नहीं हो सके हों उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिये।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल से ही विद्वान लोगों ने मृत्यु को जीता है।
- अथर्ववेद

पं. फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, काशी

(द्रोणगिरि-१९५५ सप्तम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय-उद्‌बोधन

गौरवमय इतिहास

सांस्कृतिक और सामाजिक कार्यो की दृष्टि से विद्वानों का इतिहास गौरवमय है। इस समय विविधि भाषाओं में उत्तरकालवर्ती जो भी जैन साहित्य उपलब्ध होता है उसकी रचना में इनका बहुत बड़ा हाथ है। अपने पूर्ववर्ती विद्वानों का स्मरण करते समय सबसे पहले हमारा ध्यान पण्डितप्रवर आशाधरजी की ओर जाता है। गृहस्थ होते हुए भी इनके पास मुनि तक शिक्षा लेने के लिए आते थे। इन्होंने धर्मशास्त्र, न्याय और साहित्य आदि अनेक विषयों पर उच्चकोटि कीं मौलिक रचनाएँ की हैं। कविवर मेधावी और अपभ्रंश भाषा में विविध विषयों के रचयिता कविवर रइधू भी गृहस्थ ही थे। आगे चलकर भाषा-साहित्य की दृष्टि से कविवर बनारसीदासजी, भगवतीदासजी, टोड़रमलजी, दौलतरामजी और जयचन्दजी आदि विद्वानों ने जो कार्य किये हैं वे स्वर्णाक्षरों में अंङ्कित करने लायक है। वस्तुत: इस समय जैनधर्म का जो भी प्रवाह दिखाई देता है वह इनकी पुनीत ग्रन्थ रचनाओ और सामाजिक सेवाओं का ही फल है। यदि हम वर्तमान युग का विचार करें तो भी हमें निराश होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। वर्तमान युग के विद्वानों की यह परम्परा पूज्यपाद गुरुवर्य्य पं. गोपालदासजी और पूज्यपाद श्री १०५ गुरुवर्य्य पं. गणेशप्रसादजी वर्णी से प्रारम्भ होती है। ये दोनों इस युग के ऐसे प्रकाशमान् नक्षत्र हैं जिनके पुनीत प्रकाश से धर्म और समाज की चहुँमुखी उन्नति हुई और हो रही है। हमारी सांस्कृतिक और सामाजिक परम्परा के प्रतीक पूज्य गुरु पं. देवकीनन्दनजी सा. तो आज हमारे बीच में नहीं हैं, पर ज्ञानवृद्ध पूज्य गुरु पं वंशीधरजी सा. आदि जो दूसरे विद्वान् प्रत्येक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उनकी सेवाएँ क्या कम हैं? वस्तुत: इन सब विद्वानों की तपश्चर्या का ही यह फल है कि समाज आज प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में अपने को खड़ा हुआ पाती हे।

संगठन को दृढ़ करने के मूलभूत आधार

इतना सब होते हुए भी हमें यहाँ एक ऐसे विषय पर गहराई से विचार करना है जो हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। वह विषय है हमारा संगठन। इसके पहले भी विद्वानो का एक संगठन था किन्तु उसके ढीला पढ़ने पर विद्वत्परिषद् के रूप में पुन: सब विद्वानों ने मिलकर यह संगठन बनाया है। इस संगठन को स्थापित हुए भी लगभग ११ वर्ष हो गये हैं। इस बीच इसके द्वारा दो बार शिक्षणशिविर संचालित किये गये हैं- एक मथुरा में और दूसरा सागर में। इनसे कुछ विद्वानों को अपनी योग्यता बढ़ाने में सहायता तो मिली ही है। साथ ही एक दूसरे के सम्पर्क में आने से हमें एक-दूसरे को समझने में और अपनी गुणोन्नति करने में भी सहायता मिली है। शिक्षणशिविर के अतिरिक्त विद्वत्परिषद् ने कुछ और भी

उपयोगी कार्य किये हैं जो इसके शुभारम्भ को सूचित करने के लिए पर्याप्त है। तथापि हमें इतने मात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। किन्तु हमें उन बातों पर भी विचार करना चाहिए, जो संगठन को दृढ़ करने के लिए आवश्यक होती है।

संगठन को दृढ़ करने के मुख्य आधार ये हैं-एक दूसरे के हित के लिए कार्य करना, परिचित या अपरिचित अपने किसी साथी पर किसी प्रकार की आपत्ति आने पर यथासम्भव योग्य सहायता द्वारा उसके परिहार के लिए प्रयत्नशील होना, योग्यता और निष्ठा के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रत्येक विद्वान् को आगे बढ़ाने में सहायता करना और जिन कार्यों के करने से एक विद्वान् के विषय में शंका उत्पन्न होना सम्भव है उन कार्यों से अपने को दूर रखना आदि।

ये संगठन के कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं जो व्यक्ति के जीवन में तो उपयोगी हैं ही, सार्वजनिक क्षेत्र में भी उपयोगी है। इनको जीवन में स्वीकार कर लेने पर भी अधिकतर मनीषियों द्वारा कार्यक्षेत्र में कुछ ऐसी भूलें होती है जो परस्पर के मनोमालिन्य का कारण बन जाती है। मेरी समझ में यहाँ उनकी स्पष्ट चर्चा कर लेना अनुचित न होगा।

१ प्राय: कुछ व्यक्तियों में यह मनोवृत्ति देखी जाती है कि जिस संस्था से उनका निकट सम्बन्ध होता है मात्र उसी के लिए वे प्रयत्न करते है। वे उस संस्था की उन्नति में लगे रहें, यहाँ तक तो ठीक है, क्योंकि उसकी उन्नति और सञ्चालन का भार उन पर अवलम्बित है। परन्तु इसके साथ वे दूसरा कार्य यह करने लगते हैं कि यदि उनकी उपस्थिति में अन्य सस्था के लिए कोई प्रयत्न होता है तो वे प्रत्यक्ष या परोक्ष में किसी न किसी प्रकार से उसको धक्का पहुँचाने मे जरा भी संकोच नही करते। मेरी समझ में इस प्रकार की मनोवृत्ति सांस्कृतिक क्षेत्र में हितावह नहीं मानी जा सकती। वस्तुत: जितनी भी सार्वजनिक संस्थाएँ कार्य कर रही है वे सब एक ही सांस्कृतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की गई है, इसलिए वे एक है। यदि हम किसी अन्य संस्था या उसके कार्यकर्ता की निन्दा करते हैं तो वह केवल उस संस्था की निन्दा न होकर हमारे सांस्कृतिक उद्देश्य की ही निन्दा होती है। ऐसा कौन विद्वान् होगा जो पूज्य श्री १०८ मुनि समन्तभद्र जी महाराज और पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णीको नहीं जानता होगा। इन दोनों महानुभावो में जो हमें सबसे बड़ी विशेषता दिखाई देती है वह यह कि इन दोनों ने अपने जीवन में कभी भी एक संस्था से दूसरी संस्था मे भेद नहीं होने दिया। यदि जैनत्व के प्राणस्वरूप एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में भेद नहीं किया जा सकता तो फिर संस्कृति का संरक्षण और संवर्द्धन करने वाली एक संस्था से दूसरी संस्था मे भेद कैसे हो सकता है? यदि समाज के कुछ व्यक्ति इस प्रकार का भेद करते हैं तो करें, पर जिन विद्वानों पर संस्कृति और समाज के सचालन का उत्तरदायित्व है वे ऐसे हलके विचार से अपने को बचाकर चलें, यही संस्कृति और समाज के हित में उचित प्रतीत होता है।

२ प्राय: विद्वानों में कई विषयों में मतभेद दिखाई देता है। किसी मतभेद का सम्बन्ध केवल आगम से होता है और किसी का सम्बन्ध आगम और समाज दोनों से होता है। जिसका सम्बन्ध मात्र आगम से होता है उसे तो हम सह लेते हैं। अथवा वह विशेष बुराई का कारण नहीं बनता। वस्तुत: मतभेद

वहीं पर उग्र रूप धारण करता है जिसकी प्रतिक्रिया स्पष्टत: समाज में दिखाई देती है। ऐसे समय में अधिकतर विद्वान् अपने संतुलन को खो बैठते हैं और अपने साथियों पर आग बरसाना प्रारम्भ कर देते हैं। हम यह तो मानते हैं कि जो विचार नया प्रतीत होता है उसकी आलोचना होनी चाहिए। इतना ही नहीं वह विचार सहसा कार्यान्वित न हो सके, इसके लिए प्रयत्न भी होना चाहिए। हमें इस विषय में पूज्य पं. देवकीनन्दनजी सा. का स्मरण होता है। उनके जीवन में हमें बड़ी विलक्षणता देखने में आई। वे विचारक थे और सामाजिक कार्यकर्ता भी। जहाँ तक विचार का सम्बन्ध था वे नाक मुँह सिकोड़ना और इस आधार से समाज को भड़काना जानते ही नहीं थे। विचारक के लिए उनके हृदय में जो उच्च स्थान था उससे कही अधिक वे सामाजिक कर्त्तव्य का अनुवर्तन करते थे। तत्काल समाज का ढाँचा क्या हो, इस विषय के ऊहापोह में न पड़कर हम इतना तो स्वीकार करते हैं कि द्रव्य, क्षेत्र और काल के अनुसार उसमें जो भी परिवर्तन हो वह सोच समझकर ही होना चाहिए। इसिलए हमारी समझ से समाज के लिये दोनों प्रकार के मनुष्यों की आवश्यकता है। एक वे जो मार्गदर्शन कराकर समाज को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं और दूसरे वे जो समाज को उच्छृंखल होने से बचाकर उसकी सीमाओं की रक्षा करते हैं।

३. लौकिक ख्याति एक बला है। इसके प्रलोभन में पड़ कर कभी-कभी एक विद्वान् अपने दूसरे साथी को पीछे धकेलता हुआ देखा जाता है। यह हम अच्छी तरह से जानते हैं कि ऐसी वृत्ति से स्थायी लाभ नहीं होता, प्रत्युत कालान्तर में यह विस्फोट का बहुत बड़ा कारण बन जाता है। यह तो हम मानते हैं कि जो व्यक्ति कर्तव्यशील है, व्याख्याता है और नेतृत्व करने की क्षमता रखता है उमे आगे बढ़ने से कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती है। पर व्यक्तित्व की एक मर्यादा होती है। यदि कोई व्यक्ति उस मर्यादा का उल्लंघन करता है तो ये समस्त गुण दोष में परिणत हो जाते हैं। वर्तमान काल में प्राय: सब विद्वानों ने पूज्य १०५ गुरुवर्य्य पं. गणेशप्रसादजी वर्णीका नेतृत्व स्वीकार किया है। इसलिए हमें आँख खोलकर देखना चाहिए कि उनमें वह कौन-सा गुणविशेष है जिसके कारण हम उन्हें अपना केन्द्र बनाते हैं। जहाँ तक हमने उनके दैनिक व्यवहार को देखा है वे किसी भी सामाजिक कार्यकर्ता या विद्वान् के उनके समक्ष पहुँचने पर उसे हर प्रकर से समाज के सम्पर्क में लाने का प्रयत्न करते हैं। इतना ही नहीं, उसमें यदि कोई अच्छाई उन्हें दिखाई देती है तो वे उसे जनता के समक्ष रखने में भी नहीं हिचकिचाते। वह किस मत को मानने वाला है इस बात को वे अपने जीवन में स्थान नहीं देते हैं।

४ हममें कुछ ऐसे भी मनीषी हैं जो विवेक को छोड़कर मात्र समाज के अनुवर्तन में अपना लाभ देखते हैं। नेतृत्व किसके हाथ में रहे, इसके लिए सदा से प्रयत्न होता आया है। आज भी यह समस्या सबके सामने हैं। इस समय साधन और श्रम के मध्य नेतृत्व की जो होड़ चल रही है उसका अन्तिम परिणाम क्या होगा, हम नहीं कह सकते। पर जहाँ तक हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रश्न है, सब मामलों में त्याग और विवेक से काम लिए जाने की आवश्यकता है। इसलिए हमें साधन और श्रम का उचित आदर करते हुए विवेक को ही प्राधान्य देना है और यह तभी हो सकता है जब ऐसे विद्वान् अपना दृष्टिकोण बदलें। विद्वान् समाज के मुख और हाथ-पाँव सब कुछ है। इस बदली

हुई परिस्थिति में तो उन्हें इस मामले में और भी गम्भीरता पूर्वक विचार करना है। ऐसा न हो कि हममें से कतिपय विद्वानों के समाज का अन्धानुकरण करने के कारण विवेक का बल उत्तरोत्तर घटता जाय और त्याग तथा विवेकमय इस परम्परा के अन्त होने का दुर्दिन हमें देखना पड़े।

५ हममें एक दोष गुटबन्दी का भी दिखाई देता है। समाज और संस्कृति के हित में किसी कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संगठन की आवश्यकता को हम अनुभव करते हैं। किन्तु जब कार्यक्रम के विषय में किसी प्रकर का मतभेद न होने पर भी हम गुटबन्दी करते हैं और अपने गुटके व्यक्ति को छोड़ कर अन्य का अनादर करने पर उतारू हो जाते हैं तब उसे शुद्ध स्वार्थपूर्ति के सिवा और क्या कहा जा सकता है। इस दोष के कारण हमारी सांस्कृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति को जो हानि पहुँच रही है वह किसी से छिपी हुई नहीं है। इस कारण विद्वानों का बल घटता है, यह बात स्पष्ट है।

ये चन्द ऐसे दोष है जो हमारे संगठन को पूरा नहीं होने देते हैं। प्रत्येक विद्वान् का ध्यान इस ओर जाय और वह इन दोषों को दूर करने में सक्रिय सहयोग करके विद्वत्परिषद के संगठन को दृढ़ करने में सहायक बने इस पुनीत अभिप्राय को ध्यान में रखकर ही हमने यहाँ इनकी विस्तृत चर्चा की है, क्योंकि हम यह बहुत ही अच्छी तरह जानते हैं कि वर्तमान काल में विश्व की बात छोड़िए, भारतवर्ष में जो सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति के होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं उनमें समुचित स्थान ग्रहण करने के लिए प्रयत्नशील होना है। यह कितनी बड़ी विडम्बना की बात है कि भारतवर्ष को स्वराज्य दिलाने में हमारा सांस्कृतिक कार्यक्रम सफल रहा और विश्व के आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक प्रश्नों को सुलझाने में भारतवर्ष उसी सह-अस्तित्व-मूलक अहिंसक व अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण से काम ले रहा है फिर भी उसका श्रेय हमें यत्किंचित् भी नहीं मिल रहा है। यद्यपि हम श्रेय के भूखे नहीं है पर पूरे तथ्य जनता के समक्ष न आसकने के कारण कदाचित् सारी परिस्थिति के उलटने का भय है। हमारे यहाँ अकम्पन आदि ७०० मुनियों की कथा आती है। बलिराजा द्वारा उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता के छीनने का प्रयत्न करने पर उन्होंने अहिंसक सत्याग्रह द्वारा ही तो उसका प्रतीकार किया था। क्या हमें इस घटना या इसी प्रकार की अन्य घटनाओं के आधार पर सत्य को उद्घाटित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, जो आज भारतवर्ष की राष्ट्रीय थाती मानी जाने लगी है। हमारा विश्वास है कि हमारे सब साथी व समाज इन तथ्यों को ध्यान में रखकर अपने दृष्टिकोण में न केवल विशालता लावेंगे अपितु वे और अधिक संगठित होकर उसका समुचित उपयोग करने की दिशा में योग्य कदम उठाने का भी प्रयत्न करेंगे।

समाज के प्रति

अपने भाषण को समाप्त करने के पहले यदि हम समाज से दो शब्द कहें तो अनुचित न होगा। बात यह है कि विद्वान समाज के एक अङ्ग हैं। वे जो भी कार्य अपने हाथ में लेते हैं उसे पूरा करने के लिए उन्हें समाज का वांछित सहयोग अपेक्षित है। अत: समाज का भी कर्त्तव्य है कि वह वर्तमान गतिविधि को देखते हुए अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करें। प्रथम तो उसे दिखाऊ कार्यों की अपेक्षा स्थायी कार्यों के सञ्चालन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूसरे, उसे विद्वानों के प्रति अपने रुख में समुचित परिवर्तन करना चहिये, क्योंकि ये समाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता है, वेतनभोगी नहीं। यह तो अपनी सांस्कृतिक

परम्परा के अनुरूप विद्वानों का पुरोहित वृत्ति को न स्वीकार करने का फल है जिससे उन्हें इस स्थिति को स्वीकार कर निर्वाह करना पड़ रहा है। वस्तुतः यह उनके बड़प्पन का सूचक है, हीनवृत्तिका सूचक नहीं। यदि समाज कार्यकर्त्ता के रूप में उनके प्रति समुचित आदर व्यक्त करती है तो इसमें समाज का ही हित है। यह इतिहाससिद्ध बात है कि जो समाज अपने कार्यकर्त्ता का आदर करना भूल जाती है उसकी भगवान् भी रक्षा नहीं करते हैं। तीसरे, वह ऐसे लोगों के (चाहें वे त्यागी हों या अन्य कोई भी) बहकावे में न आवे जो मतभेद की या दूसरे प्रकार की बातें आगे रखकर संस्थाओं की प्रगति में बाधक बनते हैं। वर्तमान काल में समाज को यह अनुभव करना है कि हमारी परम्परा की यह गाड़ी विद्वानों को सारथी बनाये बिना आगे नहीं बढ़ाई जा सकती है। यदि यह भाव उसके चित्त में अङ्कित हो जाता है तो सब समस्या सुलझ जाती है और विद्वान् व समाज दोनों मिलकर इस महान् परम्परा को आगे ले चलने में समर्थ होते हैं जो कि दोनो का ध्येय है।

मूर्ख लोग छोटा-सा कार्य आरम्भ करते हैं और उसी में अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं, बुद्धिमान् लोग बड़े से बड़ा कार्य आरम्भ करते हैं और निश्चिन्त बने रहते हैं। (अर्थात् सफलता प्राप्त कर लेते हैं।)

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नास्त्यगम्यं हि किंचन।
बुद्ध्या यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणय:॥

पंचतंत्र

पं. जीवन्धर न्यायतीर्थ इन्दौर

(श्री अतिशय क्षेत्र मढ़िया (जबलपुर)-१९५८ अष्टम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय-उद्‌बोधन

वर्तमान में जैन शासन की रक्षा का और प्रभावना का भार जैन पंचायतों प्रधानतया जैन साधु, जैन त्यागी और जैन विद्वानों पर ही है-अत: अपने ऊपर आई हुई इस जिम्मेदारी पर विचार करना स्वाभाविक है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रकृति की परकाष्ठा के युग में जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार के साधन तो सुलभ है पर प्रचारक व प्रसारक सुलभ नहीं है। समाजद्वारा अपेक्षित व्यवहार से विद्वानों और त्यागियों की स्थिति डावांडोल-सी हो रही है। उनकी मनोवृत्ति बदलती जा रही है। समाज की यह भावना, कि विद्वान् अपनी सेवाओं और ज्ञानद्वारा संसार में जैन धर्म का प्रकाश करें, तभी सफल हो सकती है, जब वह उनकी सांसारिक निर्वाह योग्य व्यवस्थाएँ आदरपूर्वक सुलभरूप में पूर्ण करती रहे। पूज्य निर्ग्रथ साधुओं व त्यागियों का भी एक-सा समझकर उनकी व्यर्थ की आलोचना और अवर्णवाद न कर उन्हें ज्ञान के साधनों से चारित्र में दृढ़ बनाने का प्रयास करें। साथ ही दीक्षक गुरुओं से व त्यागियों से भी विनय है कि वे देश-काल के अनुसार धर्म ज्ञान से परिपूर्ण शिष्य को सर्वथायोग देखकर ही निर्वाहयोग्य चारित्र की दीक्षा प्रदान करें। इस समीक्षक युग में समीचीन मार्ग पर चलकर ही धर्म की प्रभावना व्यक्ति कर सकेगा। जैसे आजकल पढ़ने वाले छात्रों के अनुशासन पर जोर दिया जाता है, वैसे मेरी नम्र विचारणा में दीक्षक आचार्य महोदय भी शिष्यों को चारित्र के अनुशासन का पाठ अवश्य देंगे तब ही उनका मार्ग प्रशस्त व पूज्य होगा।

विद्वानों की नई पीढ़ी का अपने प्रति समाज की विपरीत धारणा और आर्थिक कठिनाईयों का अनुभव करते हुए अपने जीवनस्तर को अर्थ के आधार पर ऊँचा बनाने की दृष्टि से आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का अवलम्बन लेने की ओर ध्यान आकृष्ट हो चुका है। इसका परिणाम यह दिख रहा है कि जैन सिद्धान्त, न्याय, साहित्य, व्याकरण आदि विषय के जो ठोस विद्वान् आज से १५ वर्ष पूर्व तक हुए, पीछे के १५ वर्षो में संस्कृतज्ञ विद्वान् तैयार नहीं हुए। यद्यपि संस्कृत-शिक्षण के साथ-साथ अंग्रेजी और हिन्दी की उच्च्व शिक्षा का प्रचार हमारे नवीन विद्वानों में अवश्य बढ़ा है, तथा ऐसे शिक्षणों से विदेश में या हमारे देश में धर्म-प्रचार में सहायता प्राप्त होती है, तथापि परिपूर्ण ज्ञान के बिना इसमें सफलता पाना संदेहस्पद प्रतीत होता है।

विद्वानों को भी अपने कर्त्तव्य व उत्तरदायित्व को निभाने के लिए त्याग व सेवाभाव को अपनाते रहना आवश्यक होगा। जैन धर्म व समाज की सेवा के लिए संतोषी, शीलवान्, प्रमाणिक, सत्यनिष्ठ और निर्भीक बनते हुए जीवन में सादगी को बनाये रखना चाहिये। हमें अपनी प्रतिष्ठा भौतिक समृद्धि के बल पर नहीं वरन्, उदारता और त्याग के बल पर बढ़ानी समुचित है।

अपने जीवन में स्वयं उतारे बिना किसी भी सिद्धान्त का केवल उपदेश द्वारा प्रसार संभव नहीं। हमें इस बात का भी पूरा ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है कि हम पर अनुचित आक्षेप न करे, जिससे हमारे व्यक्तित्व व विद्वत्समाज की अप्रतिष्ठा का अवसर प्राप्त हो। हमारे आचार और विचारों का प्रभाव समाज व जनता पर अच्छा पड़ना चाहिये।

समाज में ऐसी बहुत-सी प्रवृत्तियाँ हैं जिनके सुधार में विद्वान् तथा समाज के अग्रणी व्यक्तियों के परामर्श द्वारा उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है। यह कहना अनुचित न होगा, कि समाज में जिन-जिन विषयों में सुधार अपेक्षित है उन्हीं का समर्थन कर बीच में बाधा उपस्थित करने वाली शक्तियाँ भी हम लोगों में विद्यमान हैं। यही मुख्य हेतु है कि प्रतिगामी शक्तियों की सद्भावना व उदारता बिना सफलता मिलना दुर्लभ हो जाती है। इस संबंध में मेरी विनम्र राय है कि समाज को व विद्वानों को इस युग में एक ऐसे प्रभावशाली उदारचेता श्रीमानों व विद्वानों का परिगणित संघ स्थापित करना चाहिये, जिनकी विचारधारा से समाज में अनुशासनहीनता का अंत होकर हमारे छोटे-से जैन समुदाय को प्रतिसमय सत्य व सुयोग्य मार्गदर्शन मिलता रहे। इस स्वतंत्रता के युग में जब इतना बड़ा साम्राज्य सुसंगठित चल रहा है तब हम उसी पुरानी परम्परा में डूबे रहें, यह समाज का दुर्भाग्य ही होगा।

समाज एवं विद्वानों की अनेक समस्यायें हैं जिन्हें प्राय: अन्य सब जानते हैं। उनमें जिन्हें हम विचार कर हल कर सकते हैं उन्हीं का दिग्दर्शन कराया गया है। विद्वत्परिषद् विद्वानों की एक सुसंगठित संस्था है इसे जैन समाज के जिन विद्वानों का सहयोग प्राप्त है उनमें जैन सिद्धांत, जैन न्याय, व्याकरण, साहित्य, अंग्रेजी, हिंदी, प्राकृत आदि के उत्कृष्ट विद्वान् सम्मिलित हैं। सबमें किसी प्रकार की विशेष योग्यता दृष्टिगोचर होती है। मुझे यह जानकर गौरव का अनुभव होता है कि विचार-भेद होने पर भी सब लोग सद्भाव और सहानुभूति के साथ अपने विभिन्न विचारों का आदान-प्रदान द्वारा समन्वय कर लेते हैं। इसका उदाहरण मुझे ईशरीके विद्वत्सम्मेलन में मिला, उससे मैं प्रभावित हूँ। मेरा अनुरोध है कि विद्वान् बंधु आगे भी इसी नीति का पालन करते हुए परिषद् को सार्थक सिद्ध करेंगे।

समाज ने जिस भावना से संस्कृत-शिक्षा के प्रसार के लिये महाविद्यालयों की स्थापना करके जैन सिद्धांत, जैन न्याय, व्याकरण, साहित्यका पठन-पाठन चालू किया था उसके सुफल देखकर वह लुप्त न हो जाय, इसकी चिन्ता विद्वानों को अवश्य करनी चाहिये। समाज के संस्कृत-महाविद्यालयों में ऊँची कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों का न मिलना और अंग्रेजी शिक्षा की ओर विद्यार्थियों का अधिक झुकाव यद्यपि आगामी आजीविका की सुविधा के दृष्टिकोण को रखता है किन्तु पहले के समान संस्थाओं व समाज द्वारा संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों को समयानुकूल प्रोत्साहन दिया जावे तो उच्च संस्कृत-शिक्षा की परम्परा कायम रह सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है।

जैन विद्वानों का कार्यक्षेत्र यद्यपि सीमित है। पर अपनी क्रियाशीलता से उन्होंने राजनैतिक व साहित्यक क्षेत्र में भी अपना स्थान बनाने का प्रयत्न किया है। इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक क्षेत्र में भी स्वतंत्र आजीविका करने वाले निर्भीक व अच्छे माने जाते हैं तथापि यह सबके लिए साध्य नहीं तथा समाजसेवा में न्यूनता अवश्य रह जाती है। समाज के विद्वानों का किसी भी काम को करते समय सेवाभावी अवश्य होना चाहिए। सेवा संपादन कराने वाले महानुभावों का भी कर्त्तव्य है कि वह विद्वान् की सेवा का सम्मान करे तथा उसका मूल्यांकन

करे। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति का उपयोग प्रेमपूर्ण व्यवहार से समाज की सेवा में कर सकता है और उसी प्रकार समाज भी उससे लाभान्वित हो सकता है।

आजकल यह देखा जाता है कि जैन स्कूल व जैन कॉलेजों में जो पहिले धार्मिक शिक्षण अनिवार्य था, उसे साम्प्रादायिकता के प्रचार का साधन बताकर बन्द किया जा रहा है। उन स्कूलों व कॉलेजों में जो भी धर्माध्यापक रहते हैं उनसे दूसरा काम लिया जाकर भी साथी अध्यापकों के समान अधिकारों से वंचित रखा जाता है यह व्यवस्था उन विद्वानों को संकटमय हो जाती है। संस्था के संचालकों को थोड़ी दृढ़ता से व कर्त्तव्यदृष्टि से काम लेना आवश्यक है, जिससे कि ऐसे अध्यापकों को सदाचार-शिक्षण व नैतिक-शिक्षण के रूप से आश्रय अवश्य मिले। पाठ्यक्रम भी ऐसा ही रखा जावे ताकि जैन सिद्धान्त के मुख्य तत्व उसमें आजावें, जैनेतर लोगो को सांप्रदायिकता प्रदर्शन करने वाले विषय गौण रखकर, साधारण व्यवहारोपयोगी विषय पाँच पापों का स्वरूप, मद्य मांस मधु का त्याग, बीड़ी, सिगरेट आदि दुर्व्यसनों का निषेध, पंचशील वगैरह का वर्णन करने वाले पाठ्यक्रम द्वारा विद्यार्थियों के जीवन में नैतिक स्तर ठीक रखने की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। उसी के अंतगर्त अहिंसा, अनेकान्त, कर्मसिद्धान्त आदि का शिक्षण भी दिया जा सकता है। संबंधित विद्वानों को भी पुराना ढंग शिक्षा का बदलकर आधुनिक ढंग अपनाना चाहिये। उक्त पाठ्यक्रम के निर्माण में विद्वत्परिषद् भी अपना योग देकर जैन धर्म की सेवा का लाभ अवश्य लेगी।

वर्तमान युग अणुयुग कहा जाने लगा है। इस युग के वैज्ञानिकों ने अणु और उद्जन जैसे विध्वंसक शस्त्रों का आविष्कार कर समस्त मानवता को कुछ ही घंटों में नष्ट करने की क्षमता प्राप्त कर ली है।

हमारे देश में जो अहिंसा और सत्य की जगमगाती ज्योति निरन्तर जलता रहती है, उसका आदर्श ही आध्यात्मिकता और नैतिक स्तर बनाये रखना है। इस आदर्श को सुरक्षित रखने और भारतवर्ष में ही हुए श्रमण-संस्कृति के प्रसारक हमारे पूर्वज तीर्थङ्करों, आचार्यों और महापुरुषों की कीर्ति को दिगंतव्यापिनी बनाये रखने के लिए हम भी अपना सक्रिय योगदान करें। इसी से हमारा, हमारे धर्म व समाज की स्थिरता बनी रहेगी।

पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य बीना

(सिवनी-१९६५ दशम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय उद्बोधन

सभी प्रकार की कमियों के बावजूद भी आपने मुझे इस महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है और मैंने भी आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया है, अत: मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं उन समस्याओं को आपके समक्ष प्रस्तुत करूँ, जिनके विषय में आपको गंभीरता के साथ मन्थन करना है तथा जिनको हल करने का सुन्दरतम मार्ग भी आपको निश्चित करना है। इतना ही क्यों, उस मार्ग पर दृढ़ता के साथ उत्साहपूर्वक आप सबको चलने का संकल्प भी करना है।

१. विश्व के प्रांगण में सर्वत्र आपको किसी ने किसी संस्कृति के दर्शन अवश्य होंगे। भारतवर्ष तो प्राचीनतम काल से ही विविध संस्कृतियों की जन्मभूमि रही है तथा आज भी यहां अनेक संस्कृतियाँ विद्यमान हैं।

आप किसी भी संस्कृति के ऊपर दृष्टिपात करेंगे तो उसमें आपको दो पहलू देखने को मिलेंगे। उनमें से एक पहलू तो उस संस्कृति के विशिष्ट तत्त्वज्ञान का होना और दूसरा पहलू मानव-प्राणियों के जीवननिर्माण में उपयोगी उस संस्कृति की आचार-पद्धति का होना।

सम्पूर्ण मानव-समष्टि में सांस्कृतिक आधार को लेकर जितने समाज पाये जाते हैं उनसे सम्बद्ध व्यक्तियों का स्वाभाविक रूप से यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपनी संस्कृति के तत्त्वज्ञान के प्रति दृढ़तम आस्था रक्खें तथा उसमें उपदिष्ट आचारपद्धति के आधार पर यथाशक्ति अपने जीवनका योग्य रूप मे निर्माण करें।

जैन संस्कृति के मूल उद्देश्य जड़ पदार्थो के साथ बद्ध रहने के कारण परतंत्र हो रहे संसारी जीव को उन जड़ पदार्थो से मुक्त करके स्वतन्त्र बनाने का है, लेकिन उस संसारी जीव को जब तक वैसे साधन प्राप्त न हो जावें तथा साधनों के प्राप्त हो जाने पर भी जब तक वह जीव अपनी जीवनप्रवृत्तियों को उस दिशा में मोड़ न दे तब तक उसका लक्ष्य सही ढंग से जीवन व्यतीत करने का होना चाहिये।

जीवन व्यतीत करने का सही ढंग यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है अत: एक मनुष्य को जब तक अन्य मुनष्यों का यथायोग्य सहयोग प्राप्त नहीं होगा तब तक उसे अपना जीवन-संचालन करना दु:साध्य ही रहेगा। मानव समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की स्थापना मानव जीवन की परस्पर सहयोग-निर्भरता की सूचना देती है। आचार्य उमास्वामी का **"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"** सूत्रवाक्य भी इसी रहस्य का उद्घाटन कर रहा है। लेकिन मानव-समाज में जब संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं तो उसमें कुटुम्ब, नगर, राष्ट्र आदि के रूप में विद्यमान संगठनों में दरारें पड़ जाती हैं। वे संघर्ष भी तब उत्पन्न होते हैं जब एक के स्वार्थ दूसरे से टकराने लगते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक कुटुम्ब, प्रत्येक नगर और प्रत्येक राष्ट्र का

स्वार्थ यह है कि ये सभी अपने-अपने ढंग से दूसरों की अपेक्षा एक तो स्वयं वैभवशाली बनना चाहते हैं और दूसरे, दूसरों की उपेक्षा करके स्वयं मौज से रहना चाहते हैं। सम्पूर्ण मानव-समाज की आज यही संघर्षमय दशा हो रही हैं जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक कुटुम्ब, प्रत्येक नगर और प्रत्येक देश संत्रस्त हो रहा है।

इस त्रास से छुटकारा पाने का जैन संस्कृति में यह उपाय बतलाया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक कुटुम्ब, प्रत्येक नगर और प्रत्येक राष्ट्र **"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"** (दूसरों के जिस व्यवहार से हमें त्रास होता है उस व्यवहार को हम दूसरों के साथ न करें) के सिद्धान्त को अपने जीवन में उतार लें। लेकिन यह तभी हो सकता है जब उक्त प्रत्येक वर्ग स्वयं वैभवशाली बनने और स्वयं मौज उड़ाने अर्थात् संग्रह और भोग की भावना का त्याग करने को तैयार जो जावें तथा अपनी जीवन-आवश्यकताओं ओर अधिकारों के औचित्य को समझता और अपनाता हुआ दूसरों के प्रति अपने अन्दर कर्तव्यभावना का जागरण कर ले। जैन संस्कृति की आचार-पद्धति हमें यही उपदेश देती है।

(१) जैन संस्कृति के तत्त्वज्ञान का पहलू भी आज काफी विवादग्रस्त बन गया है जिसको सुलझाने का भार वर्तमान विद्वद्वर्गका है, अतः मौजूदा विद्वद्वर्ग इसे यदि नहीं सुलझा सका तो जैन समाज की भावी पीढ़ी के समक्ष वह अपराधी सिद्ध होगा तथा जैन संस्कृति के मानवकल्याणकारी बहुत से गूढ़तम रहस्य सदा के लिए गुप्त ही बने रहेंगे।

(२) जैन संस्कृति का तत्त्वज्ञान व आचारपद्धति सर्वज्ञता के आधार पर स्थापित होने से विज्ञान समर्थित है। षड्द्रव्यों व सप्ततत्त्वों की अपने-अपने ढंग से व्यवस्था, जीव के संसार और मोक्ष की व्यवस्था, संसार के कारणभूत मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग व मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की व्यवस्था, जीव की अवनति और उन्नति के आधार पर निर्मित गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास आदि की व्यवस्था, कर्मसिद्धांत, अनेकान्तवाद और स्याद्वाद, प्रमाण, नय और निक्षेपवाद, निश्चय और व्यवहार नयों की व्यवस्था, द्रव्यार्थिक और पर्यायाथिकनय तथा नैगमादिनयों की स्थापना का आधार व इसमें अर्थनय तथा शब्दनयका भेद आदि तत्त्वज्ञान सम्बन्धी विवेचन वैज्ञानिक तथा अन्य संस्कृतियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो सकता है। इसी प्रकार आचारपद्धति भी समझदार लोगों के गले उतरने वाली है। अतः इन सब बातों का हमें प्रचार करना है।

(३) यत विद्वानों की जीवन-कठिनाईयाँ व परस्पर के मतभेद अलगाव तथा संघर्ष उत्पन्न कर रहे हैं अतः इनका भी निराकरण होना अत्यन्त आवश्यक है। इतना ही नहीं, शिक्षा का प्रसार होने पर भी संस्कृति का जो विकास रुकता जा रहा है वह अधिक चिन्ता का विषय है। इसलिए न्यायमार्ग की ओर बढ़ने वाले व्यक्तियों में सांस्कृतिक अध्ययन की रुचि जाग्रत करने की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि वे कौटुम्बिक समस्याओं से दूर रहते हैं। अतः विद्यालयों में छात्र के रूप में रहने की ऐसे व्यक्तियों को आवश्यक सुविधा प्रदान की जावे। इसके साथ ही पठन-पाठन में वैज्ञानिक पद्धति को विकसित करने की योजना बनायी जावे।

ये सब बातें विद्वत्परिषद् के उद्देश्य में गर्भित हैं और उसके कार्यक्षेत्र में आती हैं, अतः उसको इस विषय में क्रियाशील बनकर अपनी जागरूकता का परिचय देना चाहिये।

अन्त में मुझे एक संकेत और करना है कि अभी तक तो विद्वत्परिषद् पर प्रातः स्मरणीय पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज की छत्रछाया बनी रही है, परन्तु दुःख है कि यह दशम अधिवेशन उनके स्वर्गस्थ

होने के पश्चात् हो रहा है। वास्तव में वर्णीजी ने जैनसंस्कृति की सर्वांगीण उन्नति का जीवनभर कार्य किया और जैन संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन को निरन्तर जारी रक्खा, अत: उनके कार्यक्रम को जारी रखने के लिए जगह-जगह वर्णी-स्वाध्यायशालाओं की स्थापना करने का विद्वत्परिषद् प्रयत्न करे।

विद्वत्परिषद् के श्रावस्ती नैमित्तिक अधिवेशन में श्री पं. वंशीधरजी व्याकरणाचार्य ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था उसका सार निम्न प्रकार है-

सिवनी (म.प्र.) में हुए साधारण अधिवेशन के ठीक दो वर्ष पश्चात् विद्वत्परिषद् का नैमित्तिक अधिवेशन करने का जो सुयोग जैन संस्कृति की प्राचीनतम और गौरवपूर्ण पवित्र तीर्थभूमि इस श्रावस्ती नगरी में हो रहे पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर प्राप्त हुआ उसका उचित उपयोग करते हुए हमें विद्वत्परिषद् की गतिशीलता को जीवित रखकर उसको सुदृढ़ बनाना है और उसे उद्देश्यों की पूर्ति करने की योजनाओं को मूर्तरूप देना है।

विद्वत्परिषद् का वर्तमान में जो कार्यक्रम चालू है उसके विषय में विद्वत्परिषद् के सिवनी अधिवेशन द्वारा निर्णीत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव आधार हैं जिनका उद्देश्य जैन संस्कृति के संरक्षण, विकास और प्रसार का है।

जैन संस्कृति के संरक्षण, विकास और प्रसार की आवश्यकता पर मैंने सिवनी अधिवेशन के अवसर पर पठित अपने भाषण में विस्तार से चर्चा की थी। उसमें मैंने बतलाया था कि विश्व की सम्पूर्ण मानव-समष्टि के जीवन पर यदि दृष्टि डाली जाय तो यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकती है कि प्रत्येक मानव-हृदय में अनधिकारपूर्ण और न करने योग्य भाग व संग्रह की असीम आकांक्षायें उद्दीप्त हो रही हैं तथा उनकी पूर्ति के लिए ही सम्पूर्ण विश्व अहिंसा के मार्ग से विमुख होकर परस्पर के संघर्ष में रत हो रहा है। यद्यपि इस तरह की आकांक्षायें व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए अहितकर है तथापि इनके उन्माद में मानव मात्र का विवेक समाप्त हो चुका है और इस तरह सम्पूर्ण मानव-समष्टिका जीवन त्रस्त है। इसको नष्ट करने के लिए ही जैन संस्कृति के पुरस्कर्ता महर्षियों ने अनुभव के आधार पर कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्त मानव-जीवन के संचालन के लिए स्थिर किये थे जिनकी उपेक्षा कर देने से ही मानव-समष्टि की यह त्रासमय स्थिति बनी हुई है। अब भी उन सिद्धांतों को समझकर यदि हम अपने जीवन में ढाल लें तो विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है।

वास्तव में विश्व के प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक कुटुम्ब, प्रत्येक समाज और प्रत्येक राष्ट्र ने अपनी आवश्यकतायें अप्राकृतिक ढंग से अधिकाधिक रूप से बढ़ा रखी हैं और बढ़ाता ही चला जा रहा है। इसके अतिरिक्त सभी वस्तुओं के अमर्यादित संग्रह की ओर भी वे झुके चले जा रहे हैं। इस तरह सम्पूर्ण मानवसमष्टि का जीवन परस्पर की विषमताओं से भरा पड़ा है। ऐसी हालत में परस्पर में संघर्ष का होना अनिवार्य ही समझना चाहिये।

जैन संस्कृति के पुरस्कर्ता तीर्थकरों, विकासकर्ता गणधरदेवों ओर प्रसारकर्ता आचार्यों ने उद्घोषित किया था कि हे मानवप्राणियों! यदि तुम अपना जीवन सुख और शान्तिपूर्वक व्यतीत करना चाहते हों तो जैन-संस्कृति के 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त को हृदयंगम करो, क्योंकि इसमें मन के संकल्पों को पवित्र और वाणी को अमृतमयी बनाने की क्षमता है व इसके प्रभाव से प्राणियों की जीवन-प्रवृत्तियाँ एक दूसरे प्राणियों के जीवन की अप्रतिघाती बन सकती हैं। यही कारण है कि भगवज्जिनेन्द्र के पुजारी को प्रतिदिन

पूजा की समाप्ति पर जैनागम में **''क्षेमं सर्वप्रजानाम्''** की भावना भाने की प्रेरणा की गयी है जिससे वह अपनी जीवन-प्रवृत्तियों में **''जिओ और जीने दो''** के सिद्धान्त को अपना सके।

''जिओ और जीने दो'' के सिद्धान्त को जीवन में उतारने के लिए मानवमात्र को विवेकी और वीतरागी बनने की अनिवार्य आवश्यकता है। मनुष्य विवेकी तभी बन सकता है जब वह अपनी ज्ञानशक्ति से मोह का प्रभाव नष्ट कर दे ऐसा करने से उसे उसके जीवन से राग और द्वेष का समूल नाश करने का आधार प्राप्त हो जाएगा।

बाह्य चेतन और अचेतन पदार्थो से हमारी इष्ट अथवा अनिष्ट बुद्धि का होना ही मोह है और इसकी प्रेरणा से उसमें प्रीति और अप्रीति का होना क्रमाश: राग अथवा द्वेष हैं। वे जब तक समाप्त न हों तब तक मनुष्य अपनी मनुष्यता को सुरक्षित नहीं रख सकता है और न वह अपने को तब तक सम्यग्दृष्टि, विवेकी, समझदार अथवा ज्ञानी कहलाने का ही अधिकारी है।

उक्त मोह, राग तथा द्वेष के समाप्त हो जाने पर जब मनुष्य सम्यग्दृष्टि, विवेकी, समझदार अथवा ज्ञानी बन जायेगा तब अशान्ति और संघर्ष के बीज समाप्त हो जाने से उसकी भावना में, उसकी वाणी में और उसके कार्यो में **''जीओ और जीने दो''** का सिद्धान्त समा जाएगा जिससे संपूर्ण विश्व में शान्ति और सुख का साम्राज्य आने में देर नहीं लगेगी, लेकिन इस मार्ग पर चलने के लिए मनुष्य को मनोबल की बड़ी आवश्यकता है। जिस व्यक्ति में मनोबल का अभाव है उसका मन कभी उसके नियंत्रण में रहने वाला नहीं है और अनियंत्रित मनवाला व्यक्ति हमेशा लोक में अन्याय व अत्याचार रूप अनुचित तथा जीवन-संरक्षण के लिए अनुपयोगी प्रवृत्तियाँ किया करता है, जिससे जीवन में सुख और शान्ति सही अर्थों में नहीं आ सकती है। ऐसे व्यक्ति को जैन संस्कृति में मिथ्यादृष्टि, अविवेकी, अज्ञानी या अधर्मात्मा कहा गया है तथा जो व्यक्ति अपने को मनोबल का धनी बना लेता है उसका मन उसके नियंत्रण में हो जाता है और तब वह व्यक्ति अपीन अनेक प्रकार की अनुचित, अनुपयोगी और अनावश्यक प्रवृत्तियों को समाप्त कर केवल उचित, उपयोगी और आवश्यक प्रवृत्तियों तक ही अपना प्रयास सीमित कर लेता है।

इस प्रकार अपने जीवन-संरक्षण में सफल व्यक्ति ही अपने अन्त: करण में आत्मकल्याण की भावना जाग्रत कर सकता है जो कि मानव-जीवन का मुख्य और अन्तिम ध्येय है। इसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को मनोबल के साथ ही जीवन की भोगादि वस्तुओं की पराधीनता को समाप्त करने वाले शारीरिक बल और आत्मबल की भी आवश्यकता है। जैनागम में वर्णित बाह्य तप शारीरिक बल की वृद्धि के और अन्तरंग तप आत्मबल की वृद्धि के कारण है। जिस व्यक्ति के अन्दर मनोबल के साथ शारीरिक और आत्मिक दोनों बल यथाक्रम से जितनी वृद्धि को प्राप्त होते जावेंगे उस व्यक्ति के सामने जीवन-संरक्षण का प्रश्न उतना ही गौण होता जाएगा। इस प्रकार वह व्यक्ति धीरे-धीरे अणुव्रत आदि के रूप में निवृत्त्यात्मक मार्ग पर अग्रसर होता हुआ आत्मस्वातंत्र्य की प्राप्ति रूप सफलता प्राप्त कर लेगा।

जैन संस्कृति के इस धार्मिक तत्त्वज्ञान के संरक्षण, विकास और प्रसार में ही विद्वत्परिषद को अपनी शक्ति लगाना चाहिये और यही उसकी महती सफलता मानी जा सकती है।

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री

न्याय-काव्य-ज्योतिषतीर्थ, ज्योतिषाचार्य, आरा

(सागर-१९६८ एकादशम अधिवेशन के अध्यक्ष)

का

अध्यक्षीय-उद्बोधन

भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना आज से दो युग पूर्व एशिया के महानगर कलकत्ता में हुई थी। तबसे अब तक पुरानी और नयी पीढ़ी के विद्वान् मिलकर इस संस्था के माध्यम से दि. जैन वाङ्मय और दिगम्बर जैन संस्कृति के संरक्षण एवं सम्प्रसारण के हेतु अथकश्रम करते आ रहे हैं।

भगवान् महावीर एवं उनके गणधर केवलियों की परम्परा के पश्चात् जैन शासन का दायित्व श्रुतकेवलियों पर आया। अनन्तर अन्य आरातीय आचार्यों और भट्टारकों ने इस दायित्व का वहन कर दिक्-दिगन्त जैनशासन का प्रचार-प्रसार किया। वास्तव में आचार्य ग्रन्थ-रचना, मन्दिर-प्रतिष्ठा एवं धर्माराधकों को सजग कर जैनधर्म का प्रचार करते रहे।

विगत सौ-सवा-सौ वर्षों से स्वनामधन्य स्वर्गीय पण्डित श्री गुरु गोपालदासजी, पूज्यपाद मुनि श्री गणेशकीर्तिजी (वर्णीजी महाराज), वैरिस्टर चम्पतराय जी एवं ब्र. शीतलप्रसाद जी प्रभृति ने इस शासन के ध्वज को उत्तोलित किया है। वर्तमान में पूर्वोक्त विद्वानों की निःस्वार्थ सेवा और त्याग के फलस्वरूप हमारे दिगम्बर समाज में अनेक विषयों के ज्ञाता लगभग ५-६ सौ विद्वान् दिखलायी पड़ रहे हैं। इन विद्वानों का यह नैतिक दायित्व है कि परम्परा से प्राप्त जैन शासन के ध्वज को उन्नत बनाये रखना और अनेक प्रकार के विरोधी आँधी एवं तूफ़ानों के आने पर भी उसे नीचे न गिरने देना।

वस्तुत: आज दि जैन वाङ्मय और जैन संस्कृति के उपकरण- तीर्थ आदि के संरक्षण, संवर्द्धन और प्रसारण का भार मुनि-त्यागियों, पंचायतों एवं विद्वानों पर है। अत: इस ग्यारहवें अधिवेशन में सम्मिलित विद्वन्मण्डलको विद्वत्परिषद् के इस संगठन को अतिसबल और सुदृढ़ बनाने के हेतु विशेष रूप से विचार करना है। इस समय कुछ ऐसी परिस्थितियाँ सामने उपस्थित हैं, जिनका सामना हम संगठित रूप में ही कर सकते हैं।

बुद्धिजीवियों की विचारधारा तर्कसंगत होने पर भी स्वतंत्र होती है। फलत: उनके विचारों में समन्वय बड़ी कठिनाईयों से हो पाता है। यही कारण है कि बुद्धिजीवियों के संगठन प्राय: शिथिल और कमजोर होते हैं। राजनैतिक या सामाजिक संगठनों की अपेक्षा बुद्धिजीवियों के संगठन में मौलिक अन्तर पाया जाता है। एक विचारक दूसरे विचारक के चिन्तन को गलत कहने में हिचकका अनुभव नहीं करता।

आज हमारे यहाँ भी निमित्त, उपादान और अध्यात्मवाद की चर्चा को लेकर विद्वानों में मतभेद दिखलायी पड़ रहा है। प्रत्येक पक्ष के विद्वान् अपने विचारों को सर्वथा सत्य और दूसरे पक्ष के विचारों को

असत्य सिद्ध करते हुए परिलक्षित होते हैं। यदि हममें विचारों की उदारता प्रतिष्ठित हो जाय तो हमारा यह संगठन बहुत ही सबल हो सकता है। शास्त्रिपरिषद् ओर विद्वत्परिषद् के एकीकरण में भी सफलता मिल सकती है। मेरा विश्वास है कि स्याद्वादकी उदार समन्वयात्मक नीति को जीवन में अपना लेने पर किसी भी संगठन के सबल होने में त्रुटि नहीं रह सकती। अतएव दिगम्बर जैन शासन के संरक्षण और संवर्द्धन के उद्देश्य को सामने रखकर विद्वानों के इस संगठन को उत्तरोत्तर दृढ़ एवं सबल बनाने में प्रवृत्त होना, हमारा पहला कर्त्तव्य होना चाहिए।

विद्वानों में मतभेद का होना स्वाभाविक है, पर यह मतभेद संगठन में बाधक नहीं होता है; बाधक होता है मनोभेद:, क्योंकि मनोभेद से पक्ष उत्पन्न होता है तथा पक्ष पर बल देने के साथ-साथ उत्तरोत्तर आग्रह की कट्टरता बढ़ती जाती है। आग्रह की यह अधिकता ही पृथकता उत्पन्न कर देती है। अत: संगठन सिद्धान्त की दृष्टि से मतभेद के रहने पर भी मनोभेद नहीं रहना चाहिए। परस्पर मैत्री, प्रेम एवं सद्‌भावना का प्रचार ही संगठन की समृद्धि का महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

जैनधर्म व्यक्तिनिष्ठ कहा जाता है और व्यक्तित्व के विकास के लिए आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन का यापन करना अपेक्षित होता है। जब तक मनुष्य भौतिकवाद में भटकता रहेगा, तब तक उसे सुख-शान्ति और सन्तोष की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैन संस्कृति का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है; संघर्ष नहीं, शान्ति है; विषमता नहीं, समता है; विषाद नहीं, आनन्द है। जीवन के शोधन का कार्य आध्यात्मिकता द्वारा ही सम्भव होता है। भोगवादी दृष्टिकोण मानव-जीवन में निराशा, अतृप्ति और कुण्ठाओं को उत्पन्न करता है; जिससे शक्ति, अधिकार और स्वत्व की लालसा अहर्निश बढ़ती जाती है। प्रतिशोध एवं विद्वेष के दावानलसे झुलसती हुई मानवता का त्राण अध्यात्मवाद ही कर सकता है। यह अध्यात्मकवाद कहीं बाहर से आने वाला **नहीं,** हमारे आत्मा का धर्म है, हमारी चेतना का धर्म है और है हमारी संस्कृति का प्राणभूत तत्त्व।

मनुष्य-जीवन में दो प्रधान तत्त्व हैं, दृष्टि और सृष्टि। दृष्टि का अर्थ है बोध, विवेक, विश्वास **और** विचार। सृष्टि का अर्थ है क्रिया, कृति, संयम और आचार। मनुष्य के आचार को परखने की कसौटी **उसका** विचार और विश्वास होता है। वास्तव में मनुष्य अपने विश्वास, विचार और आचार का प्रतिफल है। **दृष्टि** की विमलता से जीवन अमल और धवल बन सकता है। यही कारण है कि जैनदर्शन में विचार और आचार के पहले दृष्टि की विशुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। क्योंकि विश्वास और विचार को समझने का प्रयत्न ही अपने स्वरूप को समझने का प्रयत्न है। आशय यह है कि हमारा आचार बनता है विचार (ज्ञान) से और विचार बनता है विश्वास से।

अपने विशुद्ध स्वरूप को समझने के लिए निश्चयदृष्टि की आवश्यकता है। मैं इस सत्य को भी स्वीकार करता हूँ कि व्यवहार को छोड़ना एक बड़ी भूल हो सकती है, परन्तु मेरा विश्वास है कि निश्चय को छोड़ना उससे भी अधिक भयंकर भूल है। अनन्त जन्मों में अनन्त बार हमने व्यवहार को ग्रहण करने का प्रयत्न किया, किन्तु निश्चयदृष्टि को पकड़ने और समझने का प्रयत्न एक बार भी नहीं किया। यही कारण है कि आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि हमें नहीं हो सकी और यह तब तक प्राप्त नहीं हो सकेगी, जब तक कि हम आत्मा के विभाव के द्वार को पार कर उसके स्वभाव के भव्य-द्वार में प्रवेश नहीं कर लेंगे।

दु:ख एवं क्लेशप्रद परिणाम होने से पाप त्याज्य है; प्राणियों को दु:खरूप होने से ही पाप रुचिकर नहीं है। पुण्य आत्मा को अच्छा लगता है, क्योंकि उसका परिणाम सुख एवं समृद्धि है। इस प्रकार सुखप्राप्ति एवं दु:ख निवृत्ति की दृष्टि से संसारी आत्मा पाप को छोड़ता है और पुण्य को ग्रहण करता है; किन्तु विवेकशील ज्ञानी आत्मा विचार करता है कि जिस प्रकार पाप बन्धन है, उसी प्रकार पुण्य भी एक प्रकार का बन्धन है। यह सत्य है कि पुण्य हमारे जीवन-विकास में उपयोगी है, सहायक है। यह सब होते हुए भी पुण्य उपादेय नहीं है, अतन्त: वह हेय ही है। जो हेय है, वह अपनी वस्तु कैसे हो सकता है? आस्रव होने के कारण पुण्य भी आत्मा का विकार है, यह विभाव है, आत्मा का स्वभाव नहीं। निश्चयदृष्टिसम्पन्न आत्मा विचार करता है कि संसार में जितने पदार्थ हैं, वे अपने-अपने भाव के कर्ता हैं, परभाव का कर्ता कोई पदार्थ नहीं। जैसे कुम्भकार घट बनाने रूप अपनी क्रिया का कर्त्ता व्यवहार या उपचारमात्र से है। वास्तव में घट बनाने रूप क्रिया का कर्त्ता घट है। घट बनने रूप क्रिया में कुम्भकार सहायक निमित्त है, इस सहायक निमित्त को ही उपचार से कर्त्ता कहते हैं। तथ्य यह है कि कर्त्ता के दो भेद हैं- वास्तविक कर्ता और उपचरित कर्ता। क्रिया का उपादान कारण ही वास्तविक कर्ता है, अत: कोई भी क्रिया वास्तविक कर्त्ता के बिना नहीं होती है। अतएव आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन आदि चेतन-भावों का ही कर्त्ता है, राग-द्वेष-मोहादि का नहीं। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने बताया है-

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणदा सुद्धणया सुद्धभावाणं॥

-द्रव्य सं. गाथा ८

व्यवहारनय से आत्मा पुद्‌गलकर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतनकर्म का और शुद्धनय की अपेक्षा शुद्धभावों का कर्त्ता है।

तथ्य यह है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के साथ बन्ध को प्राप्त होता है, उस समय उसका अशुद्ध परिणमन होता है। उस अशुद्ध परिणमन में दोनों द्रव्यों के गुण अपने स्वरूप से च्युत होकर विकृत भाव को प्राप्त होते हैं। जीवद्रव्य के गुण भी अशुद्ध अवस्था में इसी प्रकार विकार को प्राप्त होते रहते हैं। जीवद्रव्य के अशुद्ध परिणमन का मुख्य कारण वैभाविक शक्ति है और सहायक निमित्त जीव के गुणों का विकृत परिणमन है। अतएव जीव का पुद्‌गल के साथ अशुद्ध अवस्था में ही बन्ध होता है, शुद्ध अवस्थ होने पर विकृत परिणमन नहीं होता। विकृत परिणमन ही बन्धका सहायक निमित्त है।

बन्ध के दो भेद हैं-सजातीय बन्ध और विजातीय बन्ध। पुद्‌गल के साथ पुद्‌गल के बन्ध को सजातीय बन्ध कहते हैं और जीव के साथ पुद्‌गल के बन्ध को विजातीय बन्ध कहा जाता है। जीव में केवल विजातीय बन्ध होता है, पर पुद्‌गल में सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार के बन्ध होते हैं। जीव और पुद्‌गल में वैभाविक शक्ति के साथ अन्य सहकारी कारण भी बन्ध के कारण होते हैं। जो आत्मरसिक कर्तृत्व और बन्धभाव को अवगतकर अपने विकल्प और विकारों को दूर करने में प्रयत्नशील हो जाता है, वह साधना के मार्ग को प्राप्त कर लेता है। उसके राग-द्वेषविकार शान्त हो जाते हैं।

शास्त्रीय परिभाषा में यों कहा जा सकता है कि मोहयुक्त अज्ञान बन्ध का कारण है। मोह न रहने पर केवल अज्ञान बन्ध का विषय नहीं है। मोहविद्ध ज्ञान आत्मोत्थान का साधन नहीं। जिस प्रकार घृत को

रजत-पात्र में रखने पर उसकी विशुद्धता बनी रहती है और पीतल के पात्र में रखने से दोष उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान को निर्मोह पात्र में रखने से मुक्ति का साधक होता है और विपरीत अवस्था में बन्ध का कारण। ज्ञानी आसक्तियों से पृथक् रहकर शरीर को आत्मा से भिन्न देखता है। मोक्ष प्राप्ति में वीतरागता ही सर्वोपरि है। सच्चा वीतरागी किसी पदार्थ पर राग नहीं करता, उसके लिए भौतिक-अभौतिक सभी प्रकार की आसक्तियाँ त्याज्य हैं। आचार्य अकलंकदेव ने इसी प्रकार की वीतरागता को लक्ष्यकर कहा है- **''यस्य मोक्षेऽप्यनाकाङ्क्षा स मोक्षमधिगच्छति''** जिसे मोक्ष की भी इच्छा नहीं, वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

वीतरागता की प्राप्ति हेतु व्यवहार और निश्चयरूप धर्म का आश्रय लेने की आवश्यकता है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र व्यवहार से मोक्ष का कारण और निश्चय से सम्यग्दर्शनादि त्रिरूप आत्मा मोक्ष का कारण है। व्यवहारधर्म निश्चयधर्म का साधन है। आचार्य कुन्दकुन्द ने व्यवहार और निश्चय की नय-सापेक्षता का कथन करते हुए लिखा है-

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥

-समयसार गाथा १२

जो शुद्धनय तक पहुँचकर पूर्ण श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र सम्पन्न हो गये हैं, उनको शुद्धनयका उपदेश करने वाला शुद्धनय जानने योग्य है; पर जो श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के पूर्णभाव को नहीं प्राप्त हो सके हैं तथा साधक अवस्था में स्थित हैं, उन्हें व्यवहारद्वारा उपदेश देना चाहिए।

उक्त गाथा की आत्मख्यातिटीका में अमृतचन्द्राचार्य ने व्यवहार और निश्चय की सापेक्षता का निरूपण करते हुए बताया है-

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

-आत्मख्याति टीका १२ गाथा

यदि जैनधर्म का प्रवर्तन-आचरण करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों को मत छोड़ो; क्योंकि व्यवहारनय के बिना तीर्थ-व्यवहारमार्ग का नाश हो जाएगा और निश्चय के बिना तत्त्व का नाश हो जाएगा।

अतएव वीतरागता की प्राप्ति के लिए निश्चय और व्यवहार धर्म का आचरण करना आवश्यक है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने प्रभावना अंग के वर्णन में धर्म के समस्त उपकरणों का निरूपण किया है-

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः॥

-पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लो. ३०

अर्थात्-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के तेज से अपनी आत्मा को प्रभावित करते हुए दान, तप, जिनबिम्बप्रतिष्ठा और विद्या-ज्ञानसम्पादन में विशेष योग्यता एवं चमत्कार द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए।

भक्ति या जिनपूजा शुभोपयोग का साधन है तथा परम्परा से मोक्षप्राप्ति का भी हेतु है। उपास्य या आराध्य में स्वरूप में एकाकार होना भक्ति है। भक्ति का अर्थ है तन्मयता। आराध्य के गुणों में तन्मय रहने वाला पूजक मन, वचन और काय के बहुमुखी व्यापार को ध्येय के एक बिन्दु पर ले जाता है, जिससे कर्मों की असंख्यगुणी निर्जरा होती है। जिस प्रकार सीढ़ी के सहारे प्रासाद-शिखर पर पहुँचने में सफलता प्राप्त होती है, उसी प्रकार भक्ति-मणिसोपान द्वारा मनुष्यभव की उन्नत अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। मूलाराधना की विजयोदया टीका में बताया है कि जिस प्रकार अर्हन्त आदि परमेष्ठी शुभोपयोग उत्पन्न होने में कारण होते हैं, उसी प्रकार उनके प्रतिबिम्ब भी शुभोपयोग उत्पन्न करने में सहायक हैं। बाह्य पदार्थ के आश्रय से जीव में शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं और इष्टानिष्ट पदार्थों का सान्निध्य होने से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार अपने पुत्र के समान किसी अन्य व्यक्ति के पुत्र का अवलोकन करने से अपने पुत्र की स्मृति उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार अर्हदादि के प्रतिबिम्ब का दर्शन करने से अर्हन्त आदि परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण हो जाता है। इस स्मरण से नवीन अशुभकर्म का संवर होता है और नवीन शुभकर्मों का आगमन। जो शुभप्रकृतियाँ बन्ध को प्राप्त हुई हैं, उनके स्थिति और अनुभाग में परमेष्ठी के गुणों के स्मरण से वृद्धि होती है तथा अशुभप्रकृतियों के स्थिति-अनुभाग में हीनता आती है[१]।

जिनेन्द्रपूजन सम्यकत्वोपत्ति का साधन है। इससे आन्तरिक, शान्ति, ज्ञान, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास और तप आदि की प्राप्ति होती है। पात्रकेसरी-स्तोत्र में बताया गया है कि भगवान् के गुणों का स्मरण करने से कर्मराशि नष्ट हो सकती है; क्योंकि प्रभु के गुणों का चिन्तन ही आत्मचिन्तन है।

दान का वास्तविक रहस्य तो राग-द्वेष का त्याग करना है। समाज-व्यवस्था के लिए दान का अत्यधिक महत्त्व है, दानद्वारा धन-वितरण की क्रिया सम्पन्न होती है। मोह कम होता है और भावनाएँ परिष्कृत तथा विशुद्ध हो जाती हैं। अतएव प्रत्येक गृहस्थ को दानद्वारा साधु का संवर्द्धन करना एवं समाजोत्थान के कार्यो में प्रवृत्त होना आवश्यक है।

जैनधर्म व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आत्मनिरीक्षण पर जोर देता है, इस प्रवृत्ति के बिना अपने दोषों की ओर दृष्टिपात करने का अवसर ही नहीं मिलता। व्यक्ति की अधिकांश क्रियाएँ यन्त्रवत् होती रहती हैं, इन क्रियाओं में कुछ क्रियाएँ सदोष भी होती हैं, व्यक्ति न करने योग्य कार्य भी कर बैठता है और न कहने लायक बात भी कह देता है तथा न विचार करने योग्य बातों की उलझन में पड़कर अपना और परका अहित भी कर बैठता है। पर आत्मनिरीक्षण या आत्मचिन्तन वह आत्मप्रकाश है, जिसके आलोक में अपनी समस्त गन्दगी और बुराइयाँ स्पष्ट दिखलायी पड़ती हैं। वस्तुत: आत्मनिरीक्षण दैनिक जीवन का लेखा-जोखा है। अपने दोषों को देखने के लिए यह एक वैज्ञानिक यन्त्र है; जिससे व्यक्ति घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, मान मत्सर

---

१ यथा वीतरागद्वेषास्त्रिलोकचूडामणयोऽर्हदादयो भव्यानां शुभोपयोगकारणतामुपयान्ति। तद्वदेतान्यपि तदीयानि प्रतिबिम्बानि। बाह्यद्रव्यालम्बनो हि शुभोऽशुभो वा परिणामो जायते। यथात्मनि मनोज्ञामनोज्ञ-विषयसान्निध्याद्रागद्वेषौ स्वपुत्रसदृशदर्शनं पुत्रस्मृतेरालम्बनम्। एवमर्हदादिगुणानुस्मरणनिबन्धनं प्रतिबिम्बम्। तथानुस्मरणं अभिनवाशुभप्रकृते: संवरणे प्रत्यग्रशुभकर्मादाने गृहीतशुभप्रकृत्यनुभवस्फारीकरणे पूर्वोपात्ताशुभ- प्रकृतिपटलरसापह्रासे च क्षममिति सकलाभिमतपुरुषार्थसिद्धिहेतुतया उपासनीयानीति।

-मूलाराधना, विजयोदया, शोलापुर सन् १९३५ ई., आ. १ पृ १६०

प्रभृति दुर्गुणों से अपनी रक्षा कर सकता है। आज का मानव अपने अवगुण नहीं देखना चाहता, दूसरे के अवगुण देखकर उसकी निन्दा करता है। अत: आत्मनिरीक्षण आत्मानुशासन का एक अंग है।

समस्त प्राणियों को उन्नति के अवसरों में समानता प्रदान करना जैनधर्म का सामाजिक सिद्धान्त है। जैन मान्यतानुसार समाजव्यवस्था विश्वप्रेम की नींव पर अवलम्बित है। परस्पर भाई-भाई का व्यवहार करना, एक दूसरे के दु:ख-दर्द में सहायक होना, दूसरों को ठीक अपने समान समझना, हीनाधिक की भावना का त्याग करना, अन्य व्यक्तियों की सुख-सुविधाओं को समझना तथा उनके विपरीत आचरण न करना जैनधर्म की समाज-व्यवस्था है। जैन परम्परा में केवल मनुष्य मनुष्य के साथ ही भाईचारे का सम्बन्ध स्थापित करने को नहीं कहा गया है, बल्कि संसार के पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि समस्त प्राणियों के साथ भी भ्रातृत्वभाव का सम्बन्ध स्थापित करने का निर्देश है। पाखण्ड और धाखेबाजी की भावनाओं का अन्त विश्वप्रेम द्वारा ही किया जा सकता है। विश्वप्रेम या अहिंसा ही एक ऐसा सिद्धान्त है जो व्यक्ति और समाज के बीच अधिकार एवं कर्त्तव्य की शृङ्खला स्थापित कर सकता है।

अहिंसा के आधार पर ही समाज में सहयोग और सहकारिता की भावना स्थापित की जा सकती है। समाज का आर्थिक एवं राजनैतिक ढाँचा लोकहित की भावना पर आश्रित हो तथा उसमें उन्नति और विकास के लिए सबको समान अवसर दिये जाएँ। अहिंसा के आधार पर निर्मित समाज में शोषण और संघर्ष नहीं रह सकते।

अपने योगक्षेम के लायक भरण-पोषण की वस्तुओं को ग्रहण करना तथा परिश्रम कर जीवन-यापन करना, न्याय और अत्याचार द्वारा धन-संचय न करना अपरिग्रह[१] है। धन, धान्य, रुपया, पैसा, सोना-चाँदी, स्त्री, पुत्र, घर प्रभृति पदार्थों में 'ये मेरे हैं' इस प्रकार के ममत्वपरिणाम को परिग्रह कहते हैं। इस ममत्व या लालसा को घटाकर उन वस्तुओं के संचय को कम करना परिग्रह-परिमाणव्रत है। जैनाचार्यो ने परिग्रह-परिमाण-व्रत के साथ भोगोपभोगपरिमाणव्रतका भी निरूपण किया है। इन दोनों व्रतों के समन्वय द्वारा मानव-समाज की आर्थिक व्यवस्था को उन्नत बनाना है। यह पूँजीवाद का विरोधी सिद्धान्त है, अत: आध्यात्मिक धरातल पर समाजवाद की व्यवस्था उक्त व्रतों के समन्वय द्वारा स्थापित की जा सकती है। बाह्य परिग्रहत्याग श्रमार्जित योगक्षेम के योग्य धनग्रहण पर जोर देता है और आभ्यन्तर-परिग्रह का त्याग धन-संचय के हेतु लोभ, मोह, तृष्णा आदि के त्याग पर।

आज के मानव का जीवन लोभ, अर्थलिप्सा एवं संचय के भयावह अग्निशोलों में झुलस रहा है, इससे वह अशान्त है, दु:खी है, इस आग को शान्त किये जाने का प्रयास जैन धर्म के संयमवाद में पाया जाता है। शान्ति का एकमात्र उपाय इन्द्रिय विजय है। संयमी अपने जीवन-निर्वाह के लिए कम से कम सामग्री का उपयोग करता है। जिससे अवशिष्ट सामग्री अन्य लोगों के काम आती है और संघर्ष कम होता है। इच्छाओं,

---

१. वास्तु क्षेत्रं धान्यं दासीदासश्चतुष्पदभाण्डम्।
परिमेयं कर्त्तव्यं सर्वं सन्तोषकुशलेन॥- अमित. श्रा पृ १६०
तन्मूला: सर्वदोषानुषङ्गा:-स: परिग्रहो मूलमेषां ते तन्मूला: ममेदमिति हि सति संकल्पे रक्षणादय: सञ्जायन्ते। तत्र च हिंसाऽवश्यं भाविनी तदर्थमनृतं जल्पति, चौर्यं चाचरति, मैथुने च कर्मणि प्रतियतते।

-तत्त्वार्थरा., ज्ञानपीठ संस्करण, ७/१७/६ पृ. ५४५

वासनाओं और कषायों पर नियन्त्रण करने में छीना-झपटी एवं आर्थिक विषमताएं दूर हो जाती है। नैतिक आधार के अभाव में आर्थिक समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। यह ध्रुव सत्य है कि जब तक समर्थ लोग संयम पालन नहीं करेंगे, तब तक निर्बलों की भोजन समस्या भी नहीं सुलझ करेगी। संयम आत्मशुद्धि और उसके विकास का साधन तो है ही, पर इसका रहस्य सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनान भी है। स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या द्वारा ही वर्गसंघर्ष दूर हो सकेगा।

उत्पादन और वितरण जन्य आर्थिक विषमता का सन्तुलन अपरिग्रहवाद और संयमवाद द्वारा किय जा सकता है। व्यक्ति हो या समाज अथवा राष्ट्र, सभी की कृत्रिम आवश्यकता इतनी अधिक बढ़ रही है जिससे वृद्धिंगत असंख्य आवश्यताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। इन्द्रिय-नियन्त्रण या संयम-सिद्धान्त ही अनावश्यक इच्छाओं का नियमन कर शान्ति की स्थापना कर सकता है। जैनाचार्य सोमदेवने धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ का अविरोधपूर्वक सेवक करने का कथन किया है। उनका मत है:-

धर्माविरोधेतु कामं सेवेत ततः सुखी स्यात्। नीतिवा. कामसमुद्देश-२
एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानात्मानमितरौ च पीडयति॥ वही, सूत्र ८

स्पष्ट है कि जैनाचार्यो ने अर्थ की उपेक्षा नहीं की। जैनधर्म ने पञ्चाणुव्रतों की व्यवस्था की वैयक्तिक जीवन के परिष्कार के साथ सुदृढ़ समाजव्यवस्था की भी प्रतिष्ठा की है। अणुव्रतों के अतिचार एवं व्रतो की भावनाओं में स्पष्टतः समाजवादी सिद्धान्त वर्णित हैं। अन्तर यही है कि वर्तमान समाजवाद में आध्यात्मिकता और नैतिकता की गन्ध नहीं है, जिससे समाजवादी तथाकथित देश भी अशान्ति और उत्पीड़न का अनुभव कर रहे हैं। जैनाचार्यो ने कूटनीति और धोखा के नियंत्रक सत्याणुव्रत का; एकाधिकार की भावना और अधिकारो के प्रति स्वाभाविक सम्मान जागृत करने के हेतु अस्तेयव्रतका; सरल और सादा जीवन यापन की प्रेरणा देने एवं ईमानदार बनाये रखने के लिए स्वदारसन्तोषव्रत तथा साम्राज्य और पूँजीवादकी आसुरी लालसा को नियंत्रित करने के हेतु परिग्रहपरिमाणव्रत का प्रतिपादन किया है। अहिंसाणुव्रत द्वारा बन्धुता, मैत्री, समता ओर सद्भाव का प्रचार किया जा सकता है। वर्गभेद, जातिभेद एवं आपसी मतभेद का शमन स्याद्वाद की उदारनीति द्वारा ही किया जा सकता है। स्याद्वाद-सिद्धान्त आपसी मतभेदों एवं पक्षपातपूर्ण नीति का उन्मूलन कर अनेकता में एकता, विचारों में उदारता एवं सहिष्णुता उत्पन्न करता है। आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से, एक वर्ग दूसरे वर्ग से और एक जाति दूसरी जाति से इसलिए संघर्षरत है कि उससे भिन्न व्यक्ति, वर्ग और जाति के विचार उसके विचारों के प्रतिकूल हैं। साम्प्रदायिकता और जातिवाद के नशे में मत्त होकर की जाने वाली निर्मम हत्याएँ भी स्याद्वाद की उदारनीति द्वारा रोकी जा सकती हैं।

विचार-विभिन्नता स्वाभाविक है, प्रत्येक व्यक्ति के विचार अपनी परिस्थिति, समझ एवं आवश्यकतानुसार बनते हैं, अतः विचारों में एकत्व होना सम्भव नहीं। समानरूप से प्रतिभासित होने वाली नीम की दो पत्तियाँ भी यथार्थ में समान नहीं है, फिर विभिन्न योग्यताओं वाले व्यक्तियों के विचारों में समानता किस प्रकार सम्भव है? तथ्य यह है कि अनेक गुण-पर्यायात्मक वस्तुओं में विभिन्न समयों पर विभिन्न अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार वस्तु की अनेक अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को देखता है और विचार करता है, अतः उसका एकाङ्गिक ज्ञान उसी की दृष्टि तक सत्य है। अन्य व्यक्ति

उसी वस्तु का अवलोकन दूसरे पहलू से करता है, अतः उसका ज्ञान भी किसी विशेष दृष्टि से ही ठीक है। अपनी-अपनी दृष्टि से ही वस्तु का विवेचन, परीक्षण और कथन करने में सभी स्वतंत्र हैं और वस्तु के एक गुण या अवस्था को जानने के कारण सभी का अंशात्मक ज्ञान है, अपूर्ण है। अतएव स्याद्वादनीति द्वारा प्रत्येक प्राणी को अपना मात्र समझ कर उदार समन्वयात्मक प्रेमपूर्ण व्यवहार करने में ही सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार जैन धर्म ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को परिष्कृत एवं व्यवस्थित बनाने का विधान किया है। आज हमें इस शासन के प्रचार-प्रसार की नितान्त आवश्यकता है। देश, समाज और राष्ट्र के जीवन को सुखी, सम्पन्न एवं सहयोग-सहकारिता बनाने के हेतु निम्नलिखित जीवन-मूल्यों को अपनाना आवश्यक है।

१. स्वावलम्बन की. प्रवृत्ति।

२. श्रम करने में आस्था तथा प्रमाद का त्याग।

३. सर्वधर्म-समभाव।

४. समानता और उदारता की दृष्टि।

५. सहयोग और सहकारिता सम्बन्धी भावना की प्रतिष्ठा।

६. धर्म के मौलिक तत्त्व-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवनव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न।

७. कर्त्तव्य के प्रति आदरभाव और जागरूकता।

८. शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए शुद्ध आहार-विहार के प्रति आस्था।

९. श्रद्धा, विचार और आचार का परिमार्जन।

१०. अन्य की भूल या गलती को देखने के पूर्व आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति।

११. आध्यात्मिक और नैतिक जीवन के प्रति आस्था।

१२. अनुशासन स्वीकार करने की प्रवृत्ति।

१३. अर्जन के समान त्याग के प्रति अनुराग।

विद्वत्परिषद् के मान्य सदस्यगण,

अब तक मैंने राष्ट्र, समाज और व्यक्ति के जीवन को परिमार्जित करने वाले उन धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण किया है जिनका प्रचार विद्वत्परिषद् को करना है। अब दि. जैन साहित्य के महत्त्व-मूल्याङ्कन का प्रयत्न करूँगा। वास्तव में वाङ्मय शान्ति से परिपूर्ण क्षणों में लिखित कोमल शब्दों, मधुर कल्पनाओं, उद्रेकमयी भवनाओं एवं जीवन्त को चिरन्तन शान्ति प्रदान करने वाले सिद्धान्तों की मर्मस्पर्शक भाषा है। यह सजरूप में तरंगित भावों, विचारों एवं जीवन-आस्थाओं का मधुर प्रकाशन है। मानव-जीवन वाङ्मयका पाथेय ग्रहण कर सांस्कृतिक संतरणकी क्षमता प्राप्त करता है। राष्ट्रिय, सांस्कृतिक और जातीय भावनाएँ वाङ्मय में ही सुरक्षित रहती हैं। अतः किसी भी धर्म, जाति या देश का वाङ्मय ही उसकी यथार्थ सम्पत्ति है। जैन

वाङ्मय की विशालता और अर्हता के कारण ही युग-युगान्तरों के संघर्षों को सहन करता हुआ भी जैन धर्म आज जीवन्त है।

वाङ्मय से समस्त जीवन की अभिव्यक्ति और ज्ञान-चेतना का बोध होता है। जैनाचार्यों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, प्रभृति भाषाओं में धर्म, दर्शन, आचार, काव्य, नाटक, पुराण, अलंकार शास्त्र, ज्योतिष एवं आयुर्वेद विषयक विपुल साहित्य का प्रणयन किया है। जितने ग्रंथ अभी तक प्रकाश में आये हैं, उनसे सहस्रगुणित ग्रन्थ भण्डारों में अप्रकाशित पड़े हैं। जैन साहित्य का मुख्याधार सप्तभङ्गी पद्धति है, जो विभिन्न दृष्टिकोणों से सत्य को उपस्थित करती है। विचारवैविध्य को एक धरातल पर उपस्थित कर समन्वयात्मक जीवन-मूल्यों का विश्लेषण ही इस पद्धति की विशेषता है। साहित्य-स्रष्टाओं के उदार विचार अनेकान्त-सिद्धान्त के आलोक में ही विकसित हुए है। आरम्भ से ही जैन साहित्य जनक्रान्ति को अपनाता रहा है, फिर भी श्रेण्यप्रवृत्तियाँ पूर्ण रुपेण वर्तमान है। दर्शनविशेष के रहने पर जैनसाहित्य को साम्प्रदायिक नहीं माना जा सकता है, क्योंकि साहित्य में अनिवार्यत: किसी दृष्टि या दर्शन का प्रतिफलन रहता है। यदि दर्शनविशेष के कारण जैन साहित्य को साम्प्रदायिक कहा जायगा तो फिर वर्तमान समाजवादी साहित्य या अन्य किसी भी कालखण्ड में निर्मित साहित्य को भी साम्प्रदायिक मानना पड़गा।

प्राकृत भाषा में निबद्ध पट्खण्डागम, कसायपाहुड, जयधवला टीकाओं, कुन्दकुन्द, वट्टकेर, यतिवृषभ, कार्त्तकेय, नेमिचन्द्र, शिवार्य प्रभृति के ग्रन्थों में गुणस्थान, मार्गणा, कर्मसिद्धान्त, सप्ततत्त्व, ज्ञानमीमांसा, सृष्टिविद्या आदि का निरूपण किया गया है।

संस्कृत में लिखित दर्शन एवं न्यायशास्त्रविषयक जैन ग्रन्थ भारतीय चिन्तन के लिए उसी प्रकार उपयोगी एवं असाम्प्रदायिक है, जिस प्रकार न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, मीमांसा, वेदान्त आदि दर्शनों से सम्बद्ध ग्रन्थ है अथवा इंडियन फिलासफी पर लिखे आधुनिक ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ, प्रतिष्ठा, व्रत-अनुष्ठान, मुनिचर्या, गृहस्थचर्या, लोकालोक वर्णन प्रभृति विषयों से सम्बद्ध ग्रन्थ भी प्राप्य है। भारतीय संस्कृति का वास्तविक ज्ञान जैन वाङ्मय के अध्ययन के बिना अपूर्ण है।

चरित-काव्य के स्वरूप, सिद्धान्त और गुण-धर्मों का विवेचन जैन वाङ्मय के अध्ययन के अभाव में कभी भी संभव नहीं है। इस प्रकार के काव्यों से पुण्यपुरूषों के आख्यानों के साथ वस्तुव्यापारों का नियोजन काव्य-शास्त्रीय परम्परा के अनुसार घटित हुआ है। कथावस्तु व्यापक, मर्मस्पर्शी स्थलों से युक्त और भावपूर्ण है। जैनाचार्यो ने चरितकाव्य के मूलसूत्र 'तिलोयपण्णत्ति' जैसे ग्रन्थों में निबद्ध किये हैं। पुराण और महाकाव्य का उद्भव एवं विकास समान्तर हुआ है। सामान्यत: जिसमें अनेक नायकों का अस्तित्व पाया जाय वह पुराण और जिसमें कथावस्तु एक ही नायक से सम्बद्ध हो, वह महाकाव्य कहा जाता है। संस्कृत के महाकाव्यों में धनञ्जय कवि का द्विसन्धान, वीरनन्दिका चन्दप्रभचरित, हरिचंद का धर्मशर्माभ्युदय, असंगकवि का वर्धमान-चरित आदि उल्लेख है। गद्यकाव्य के क्षेत्र में वादीभसिंह की गद्यचिन्तामणि एवं अलंकारसंग्रह कम मूल्यवान नहीं है। संस्कृत भाषा में प्रकाशित विपुल साहित्य के अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशनीय है:-

वृषभनन्दिका जिनसारसमुच्चय (१वीं शती); आशाधरका अध्यात्म रहस्य; वादिचन्द्र का सुलोचनाचरित; रत्नभूषण का चरित्रसार; भावसेन का विश्वतत्त्वप्रकाश; अभयचन्द्र की प्रवचनपरीक्षा; हस्तिमल्ल का श्रीपुराण;

पद्मनन्दि की रत्नत्रय कथा; सोमदेव की रूक्मिणीकथा; माधवचन्द्र की चन्दनषष्टि कथा; और त्रैलोक्यविधान कथा उल्लेख्य है। श्रावक धर्म प्रकरण, पार्श्वनाथचरित और मेघाभ्युदय आचार एवं काव्यतत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। शान्तिराज कवि का पञ्चसन्धान काव्य, भाषा, अलंकार, अर्थ-गाम्भीर्य एवं रस-नियोजन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से केवलज्ञानहोरा और ज्योतिर्ज्ञानविधि परिमाण और गुण दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

भट्टारक-युग में लिखे गये संस्कृत-साहित्य का तो अभी प्रकाशन ही नहीं हुआ है। सकलकीर्ति के श्रीपुराण, वर्धमानचरित, पाण्डवचरित आदि उल्लेखनीय है।

अपभ्रंश-साहित्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ दिगम्बर जैन कवियों की है। इनमें एक ओर विशालकाय महापुराण, हरिवंशपुराण पउमचरिउ जैसी कृतियाँ है तो दूसरी ओर एक व्यक्ति को भी केन्द्र मानकर लिखी गयीं पद्यबद्ध कथाकृतियाँ हैं जिन्हें चरितकाव्य में रखा जा सकता है। अपभ्रंश की रचनाओं की प्रयोग-विषयक प्रधान विशेषता है मात्रिकछन्द की। इस छन्द के जितने प्रयोग अपभ्रंश के कवियों ने किये, उतने मध्ययुगीन हिन्दी कवियों ने नहीं।

अपभ्रंश काव्य का मूल्य इतिवृत्त, संवाद, पात्र भावनियोजन एवं वस्तुव्यापारों के वर्णन की संस्कृत-काव्यों से भी अधिक है। वन, पर्वत, सागर, राजप्रासाद, हाट, वीथी, पशु-पक्षी, ऋतुएँ, राजकुमार, वनविहार, जलकेलि, नख-शिख चित्रण एवं पुष्पावचय का व्यौरेवार वर्णन पाया जाता है। इसी कारण अनेक कवियों ने अपभ्रंश के कवियों की प्रशंसा की है।

जलकीलाए सयम्भू चदमुह एवं व योग्गहकहाए।
भद्दं च मच्छवेहे, अज्जवि कइणो न पावन्ति॥

अर्थात् - जलक्रीड़ा वर्णन में स्वयम्भू को; गोग्रहकथा वर्णन में चतुर्मुख को और मत्स्यवेध वर्णन में भद्र को आज भी कवि नहीं पा सकते।

अपभ्रंश-कृतियों में अनेक कथानक-रूढ़ियों का मनोरम प्रयोग भी पाया जाता है - यथा स्वप्न द्वारा चरितनायक की उत्पत्ति की सूचना, दोहद की पूर्ति हेतु अमानवीय शक्ति द्वारा साहाय्य, अचानक गुप्त धन की प्राप्ति, भविष्यवाणी, मदान्ध गज को वश करना, बलि देने के हेतु किसी व्यक्ति का पकड़ा जाना, निर्जन स्थान पर चैत्यालय की प्राप्ति, जहाज के टूटने पर काष्ठपट्ट की प्राप्ति, प्रतिनायक द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट देने पर भी नायक के अभ्युदय का विकास एवं विमाता के द्वेष की विभिन्न परिणतिओं का निरूपण आया है।

अप्रस्तुत विधान के लिए अपभ्रंश-कवियों ने सामन्य जीवन की परिचित वस्तुओं को भी ग्राह्य किया है। अतः अपभ्रंश के काव्यों में हृदय में प्रविष्ट होने वाले अभुक्त उपमान संस्कृत-काव्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

अप्रकाशित अपभ्रंश ग्रन्थों में से कुछ अपभ्रंश रचनाओं की तालिका प्रस्तुत की जाती है-

रिट्ठणेमिचरिउ	स्वयम्भू	९वीं शती
हरिवंशपुराण	धवल	११वीं शती
सयलविहिविहाणकब्व	नयनन्दि	११वीं शती
पासणाहचरिउ	श्रीधर	११३९ई.
भविसयत्तचरिउ	श्रीधर	११७३ई.
सुकुमालचरिउ	विबुध श्रीधर	१२-१३वीं शती
पज्जुण्णचरिउ	सिद्धसिंह	१३वीं शती
चंदप्पहचरिउ	सिद्धसिंह	१३वीं शती
सुलोचणाचरिउ	गणिदेवसेन	१२वीं शती
जिणदत्तचरिउ	लक्ष्मण	१२७५वि. सं.
णेमिणाहचरिउ	लक्ष्मणदेव	१४वीं शती
सिरिवालचरिउ	नरसेन	१४वीं शती
बाहुवलिचरिु	धनपाल	१४वीं शती
सनमतिणाहचरिउ	शुभकीर्ति	१४वीं शती
संतिणाहचरिउ	शुभकीर्ति	१४वीं शती
वरांगचरिउ	तेजपाल	१४५०ई.
हरिवंशपुराण	यश:कीर्ति	१५वीं शती
पाण्डवपुराण	यश:कीर्ति	१५वीं शती
परमेष्ठीप्रकाशसार	श्रुतकीर्ति	१५वीं शती
नेमिणाहचरिउ	दामोदर	१५वीं शती
चंदप्पहचरिउ	दामोदर	१५वीं शती
अजितपुराण	बुध विजयसिंह	१५वीं शती
सिरिवालचरिउ	बुध विजयसिंह	१५वीं शती
सुकुमालचरिउ	पूर्णभद्र	१५वीं शती
अमरसेनचरिउ	माणिक्य	१५१९ई.
नागकुमारचरिउ	माणिक्य	१६वीं शती
मृगांकलेहाचरिउ	भगवतीदास	१७वीं शती

महाकवि रइधू के लगभग दो दर्जन ग्रन्थ अप्रकाशित है। नयनन्दि मुनि का दोहापाहुड, लक्ष्मीचन्द का दोहाणुवेहा, ब्रह्मदीप का मनकरहारास एवं भट्टारक गुणभद्र के सवण वारसिविहास, पक्खवइ, आयासपंचमी, चंदणछट्टी, मउडसत्तमी आदि १५ कथाग्रन्थ नीति, रस, अलंकार आदि दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

अन्य भारतीय भाषाओं में लिखा जैन साहित्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। तमिल के पञ्चमहाकाव्यों में जीवकचिन्तामणि, शिलप्पड्डिकारम् और वल्लैय्यापति ये तीन महाकाव्य जैनाचार्यों द्वारा निर्मित हैं। कुरलकाव्य तो तमिल साहित्य का पञ्चम वेद माना जाता है। नालडियार उत्तम गीतिकाव्य है। कन्नड़ में कविचक्रवर्ती पम्प के चम्पूशैली में लिखित आदिपुराण और भारत प्रसिद्ध काव्य है। काव्यसुधा धारा को प्रवाहित करने वाले ओडय्य (११७० ई.), नयसेन (१२ वीं शती), जन्न (११७०-१२३५), पौत्र, कर्णपार्य, गुणवर्मा, बन्धुवर्मा, रत्नाकर वर्णी एवं मंगिरस प्रभृति कवियों के नाम आदरपूर्वक स्मरण किये जा सकते हैं। जैन कवियों का कन्नड़ साहित्य की श्रीवृद्धि में अपूर्व योगदान है। मराठी में जिनदास, गुणदास, मेघराज, कामराज, गुणनन्दि, महेन्द्रकीर्ति, एवं विशालकीर्ति की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी में आदिकाल की प्रमाणिक सामग्री के अतिक्ति मध्ययुग में लगभग तीन सौ जैन कवियों ने विविध विषयक जैन साहित्य का प्रणयन किया है। हिन्दी में आत्मकथा और कोष ग्रन्थ लिखने की प्रथा का आरम्भ महाकवि बनारसीदास के 'अर्धकथानक' एवं 'नाममाला' मे होता है।

भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् का मुख्य उद्देश्य दि. जैनधर्म और संस्कृति को अधिकाधि व्यापक एवं उपयोगी बनाना है तथा ज्ञानाराधक सरस्वती-सेवकों की स्थिति को उन्नत करना भी है। इस सम्बन्ध में मैं निम्नाङ्कित सुझाव विचारार्थ मान्य सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ-

१ भगवान् महावीर का 2500 वाँ निर्वाणोत्सव निकट है। इस अवसर पर विद्वत्परिषद् को प्रकाशन योजना तैयार करने का संकल्प करना चाहिये। आगामी पांच वर्षों में इस संस्था के तत्त्वावधान में कम-से-कम पच्चीस-सौ पृष्ठों की साहित्यिक सामग्री प्रकाशित होनी चाहिए। अत: समाज और धर्म का उत्कर्ष, उसकी संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास के विकास और प्रसार पर ही अवलम्बित है। अतएव संस्कृति और साहित्य के विकास की चिन्ता विद्वत्परिषद् जैसे बौद्धिक संगठन को विशेषरूप से होना स्वाभाविक है।

प्रकाशन-व्यवस्था की सम्भाव्य रेखाएँ पाँच निम्न प्रकार हो सकती हैं-

क. काव्य और संस्कृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण पाँच अपभ्रंश-ग्रन्थों का एक जिल्द में प्रकाशन किया जाय। इस जिल्द में एक-सौ पृष्ठों की भूमिका तथा चार-सौ पृष्ठों में मूल ग्रन्थ। प्रकाशनार्थ निम्न ग्रन्थ लिये जा सकते हैं-

1. हरिवंशपुराण धवल
2. पासणाहचरिउ श्रीधर
3. चंदप्पहचरिउ सिद्धसिंह
4. सुलोचणाचरिउ गणिदेवसेन
5. बाहुवलिचरिउ धनपाल

ख. पाँच सौ पृष्ठों की दूसरी जिल्द में जैनन्याय का विषयक्रम और लेखकक्रमानुसार अनुशीलन। इस जिल्द में 250 पृष्ठों में प्रमाण-प्रमेयसम्बंधी विषयों का इतिहास तथा अवशेष 250 पृष्ठों में आचार्यों के परिचय, जीवनवृत्त, तिथि, रचनाओं के वर्ण्य विषय एवं तुलनात्मक विवेचन अंकित किये जाये।

ग. तीसरी पाँचसौ पृष्ठों की जिल्द में तत्त्वज्ञान और कर्मसिद्धान्त के विभिन्न अंग-प्रत्यांगों का ऐतिहासिक विकासक्रम की दृष्टि से विषयनिरूपण तथा तद्विषयक ग्रन्थों के लेखकों का जीवनवृत्त एवं उनकी रचनाओं का विस्तृत परिचय लिखा जाय।

घ. चतुर्थ जिल्द में धवलाटीका का अनुशीलन अथवा आचारविषयक ग्रन्थों का विषय और लेखक क्रमानुसार इतिहास लिखा जाय।

ङ. पंचम खण्ड में पद्मपुराण, हरिवंशपुराण और महापुराण इन तीन पुराण तथा काव्य-ग्रंथों के आधार पर समाज, संस्कृति, भूगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं कला आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया जाय।

२. समाज में संस्कृत-महाविद्यालय चालू हैं, पर आज शिक्षार्थियों की संख्या अत्यल्प है। जो छात्रविद्यालयों में प्रविष्ट भी होते हैं, उनके मन में भी संस्कृत-शिक्षा के प्रति अनुराग नहीं हैं; जिससे विद्वानों की परम्परा क्षीण होती जा रही है। अतएव महाविद्यालयों की शिक्षा को लोकप्रिय बनाने तथा विद्यार्थियों में सांस्कृतिक वाङ्मय के अध्ययन के प्रति अभिरुचि जागृत करने के हेतु प्रयत्न करना आवश्यक है।

३. समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को चालू करने के हेतु स्वाध्याय-शालाओं की स्थापना तथां शास्त्र खरीदने के प्रति आस्था जागृत करना।

४. विद्वानों की नयी पीढ़ी अपने प्रति समाज की विपरीत धारणा और कठिनाइयों का अनुभव करते हुए अपने जीवनस्तर को अर्थ के आधार पर उन्नत बनाने की दृष्टि से आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की ओर आकृष्ट हो चुकी है। इस प्रकार के विद्वानों को सिद्धांत, न्याय, व्याकरण एवं साहित्य विषय के अध्ययनार्थ प्रोत्साहित किया जाय। अध्ययनशील ऐसे विद्वान जो किसी पाठशाला या विद्यालय में कार्य करते हुए प्रौढ़ विद्वत्ता प्राप्त कर सकें। सिद्वान्त और न्याय ग्रन्थों के विशेष अध्येताओं को छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध किया जाय।

५. जैन-साहित्य विश्वशान्ति और विश्वमैत्री के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करता है। भ्रष्टाचार और अनैतिकता को रोकने के लिए इस साहित्य में किये गये विचार और कर्त्तव्य अत्यन्त उपयोगी है। भूतदया: गुणवाद, प्रेम, शान्ति और ममत्व के प्रचार से देश में नैतिकता की प्रष्ठिा की जा सकती है। अतएव विद्वत्परिषद् को सार्वजनिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जैन विचारधारा का प्रचार करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये तथा जैन साहित्य को सार्वजनिक लेखकों तक पहुँचाने का भी प्रयास करना चाहिए।

६. प्राकृत-भाषा वाङ्मय की मूल भाषा है, इस भाषा का उत्तरकालीन विकसित रूप अपभ्रंश है दिगम्बर जैनाचार्यो ने इन दोनों भाषाओं में सृजन किया है। वर्तमान में हमारे यहाँ प्राकृत और अपभ्रंश के

अध्ययन की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। भाषा की दृष्टि से प्राकृत और अपभ्रंश के अध्ययन के अभाव में संस्कृत का अध्ययन भी अपूर्ण है। अतएव अपने यहाँ के अतिरिक्त भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत और पालिके अध्ययन के समान ही प्राकृत के अध्ययन का भी विचार होना चाहिए। विद्वत्परिषद् को इस दिशा में विशेष प्रयास करना है।

७. दिगम्बर जैन विषयों पर अन्वेषण कार्य सम्पादनार्थ जैनेतर अनुसन्धित्सुओं को प्रतिवर्ष कम-से-कम एक 'फैलोशिप की' व्यवस्था समाज के धनी-मानियों से करानी चाहिए। प्रात:स्मरणीय पूज्यपाद वर्णीजी महाराज, गुरु गोपालदास जी, सेठ माणिकचन्द जी प्रभृति के नाम पर 'फैलोशिप' चालू करने की आवश्यकता है।

८ वर्तमान में मन्दिर-निर्माण और प्रतिमा-प्रतिष्ठाओं के लिए समाज द्वारा जितना धन व्यय किया जा रहा है, उतना साहित्योद्धार के लिए नहीं। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि संस्कृति के तीन उपकरणों - साहित्य, तीर्थभूमियाँ और चैत्यालय में साहित्य का प्रमुख स्थान है। धर्म और समाज का मूल्यांकन साहित्य द्वारा ही सम्पन्न होता है। अतएव प्रत्येक स्थान की पंचायत को साहित्योद्धार के लिए प्रयत्नशील होना आवश्यक है।

९ वरिष्ठ व्यक्तियों का सम्मान करने से संस्था की परम्परा सुदृढ़ होती है। अतएव विद्वत्परिषद् के मंच से प्रतिवर्ष कम-से-कम एक वरिष्ठ विद्वान् का सम्मान अवश्य होना चाहिये।

१०. आचार के बिना ज्ञान का मूल्य घट जाता है। आचार से ही ज्ञान में अमृततत्त्व उत्पन्न होता है। अतएव सम्मान्य सदस्यों को आचार ग्रहण करने की ओर भी प्रवृत्त होने का प्रयास करना चाहिये।

११. समाज में त्यागी, मुनि और ब्रह्मचारियों को यथेष्ट प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये। रत्नत्रय के विकास के कारण पवित्रात्माएँ मान्य हैं। अतएव साधना सम्पन्न व्यक्तियों की निर्बाध साधना के हेतु अतिथिसंविभागव्रत के प्रचार की परम आवश्यकता है।

वर्तमान में जैनतीर्थों विद्वानों एवं विद्यालयों की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं। विद्वानों के परम हितैषी पूज्यपाद वर्णीजी महाराज ने इन समस्त समस्याओं को जीवनपर्यन्त सुलझाया था और पैदल भ्रमण कर ज्ञान का अलख जगाकर विद्वद्वर्ग तैयार किया था। आज उन्हीं के आशीर्वादस्वरूप कई शतक ज्ञानमूर्तियाँ परिलक्षित हो रही है। मैं उनके चरणों में अपने शत-शत प्रणाम अर्पित करता हूँ और आप लोगों को पुन: साधुवाद देता हूँ।

विद्वत्परिषद् के खतौली नैमित्तिक-अधिवेशन में श्री डा. नेमिचन्द्रजी शास्त्री ने अध्यक्षीय भाषण दिया था वह इस प्रकार है -

मई सन् १९६८ में सम्पन्न हुए सागर अधिवेशन के पश्चात् मैं पुन: आपकी सेवा में उपस्थित हो रहा हूँ। उस समय मैंने अपने अभिभाषण में दिगम्बर जैन संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन की चर्चा की थी। आज मैं पुन: संस्कृति के स्वरूप और उसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालकर आपका ध्यान दिगम्बर जैन संस्कृति के प्रति दायित्व की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा।

जीवन-मूल्यों एवं उन मूल्य-दृष्टियों का विवेचन संस्कृति कहलाता है, जिनके द्वारा आत्मशोधन और आचार-व्यवहार संस्कृत होता है। वस्तुत: संस्कृति उन गुणों का समुदाय है, जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा एवं महान् प्रयत्नों द्वारा अर्जित करता है। संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव एवं मनोवृत्तियों से है। आचार-विचार और विभिन्न रुचियों का परिष्करण संस्कृति के अन्तर्गत है। मनुष्य की समस्त भूषणभूत चेष्टाएँ संस्कृति में परिगणित की जाती है। यत: इन चेष्टाओं द्वारा ही चेतना प्रबुद्ध होती है और जीवन-मूल्यों को समझने के लिए प्रेरणा मिलती है। अतएव संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषता है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण बनाती है तथा जो व्यक्ति जीवन-दर्शन को समझना चाहता है, उसे अपने प्राकृतिक जीवन को सांस्कृतिक जीवन के रूप में परिवर्तित कर देना पड़ता है। अतएव सौन्दर्य-चेतना, जीवन-मूल्य, आध्यात्मिक दृष्टि और आत्मिक विकास के लिए आवश्यक चरित्र की गणना संस्कृति में की जाती है।

जीवन में से मैल - कालुष्य और निर्बलता को दूर करना तथा उसके स्थान पर सर्वाङ्गीय स्वच्छता एवं सामञ्जस्यपूर्ण बल उत्पन्न करना ही जीवन की सच्ची संस्कृति है। व्यक्ति की सभी शक्तियाँ आत्मोत्थान के साथ समाज-कल्याणकारी दिशा में नियोजित होने पर ही संस्कृति चरितार्थ होती है। अत: संस्कृति ही असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमर तत्व की ओर, अनैतिकता से नैतिकता की ओर, भौतिकता से अध्यात्मवाद की ओर एवं परपरिणति से स्वपरणति की ओर अग्रसर करती है। मानवहृदय में होने वाले देवासुर संग्राम अथवा भौतिक और अध्यात्मिक द्वन्द्व के मध्य आसुरी और भौतिक वृत्तियों को दबाकर दैवी या आत्मिक वृत्तियों का उद्बोधन संस्कृति की सहायता से होता है। संस्कृति जीवन का परिष्करण कर उसमें सुविचारों को अंकुरित करती हैऔर ये ही अंकुर कालान्तर में कल्पपादप बन सुस्वादुफलों या अध्यात्मरस को प्रदान करते हैं।

जैन संस्कृति मानवतावादी है, यह मनुष्य को महत्त्व देती है। ईश्वर या अन्य किसी परोक्ष सत्ता के हाथ में अपना भाग्य समर्पित नहीं करती। व्यक्ति अपने विकास या ह्रास के लिए स्वयं उत्तरदायी है। वह अपने पुरुषार्थ और आचरण से ही अपने निजी ज्ञान, दर्शनादि गुणों का विकास कर सकता है। वह चाहे तो स्वयं भगवान् बन सकता है ओर चाहे भिखारी। उसे अपने उत्थान-पतन के लिए अन्य किसी अवलम्बन की आवश्यकता नहीं। जब तक व्यक्ति की दृष्टि पर की और लगी रहती है, तब तक वह स्वावलम्बन प्राप्त नहीं कर सकता, स्वावलम्बन द्वारा ही स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है और स्वतन्त्रता ही जीवन का लक्ष्य है।

जैन संस्कृति का भव्यमण्डप स्वावलम्बन, अहिंसा, स्याद्वाद और अपरिग्रह के स्तम्भों पर प्रतिष्ठित हैं। जगत् का प्रत्येक सत् प्रतिक्षण परिवर्तित होकर भी कभी समूल नष्ट नहीं होता। वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इस प्रकार त्रिलक्षण है। कोई पदार्थ चेतन हो या अचेतन इस नियम का अपवाद नहीं है। इस त्रिलक्षण परिणामवाद की आधार भूमि पर ही अनेकान्त दृष्टि और स्याद्वाद पद्धति का सर्वोदयी भव्य प्रासाद स्थित है। विविध नय, सप्तभङ्गी, निक्षेप आदि भी इसी में समाहित हैं। अतएव अनेकान्त दृष्टि द्वारा समत्व, वीतरागत्व या संयम का विकास कर कोई भी व्यक्ति महान् बन सकता है।

प्रत्येक जीव स्वरूप से चैतन्य-शक्ति का अखण्ड शाश्वत आधार है। वह कर्मवासना के कारण भले ही वृक्ष, कीट, पशु, मनुष्य आदि शरीरों को क्यों न धारण करें, पर उसके चैतन्यस्वरूप का एक भी अंश

नष्ट नहीं होता, कर्मवासनाओं से विकृत भले ही हो जाय। व्यवहारिक निमित्तों से उत्पन्न भेद-भाव या उच्चनीचत्व वास्तविक नहीं है।

जैन संस्कृति की एक विशेषता यह भी है कि पुरुष को वीतरागता और निर्मल ज्ञान की दशा में स्वयं प्रमाण मानती है। वह आत्मशोधन के मार्ग का स्वयं साक्षात्कार करता है। वह अपने धर्मपथ का स्वयं ज्ञाता होता है और इसी कारण मोक्षमार्ग का नेता भी है। वीतरागी की प्रामाणिकता के लिए अन्य किसी अनादिसिद्ध श्रुति या ग्रन्थ की आवश्यकता नही है। शब्द के गुण-दोष वक्ता के गुण-दोषों के अधीन है। शब्द तो एक निर्जीव माध्यम है, जो वक्ता के भाव का वहन करते हैं। अत: जैन संस्कृति शब्द को प्रमाण न मानकर सर्वज्ञ को प्रमाण मानती है। सर्वज्ञ की वाणी का संग्रह ही 'श्रुत' कहलाता है, जो परम्परा के लिए मार्गदर्शक होता है।

जैन संस्कृति की अन्य विशेषता परिनिष्ठित आचार की है। इस संस्कृति में तत्त्वज्ञान या दर्शनविस्तार जीवनशोधन और चारित्रवृद्धि के लिए हुआ है। जहाँ वैदिक परम्परा वैराग्य आदि से ज्ञान को पुष्ट करती है और विचारशुद्धि करके मोक्ष मान लेती है,पर जैन परम्परा में उस ज्ञान या विचार का कोई मूल्य नहीं, जो जीवन में न उतरे, जिसकी सुवास से जीवन सुवासित न हो। कोरा ज्ञान केवल मस्तिष्क का व्यायाम है, पर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से परिपुष्ट सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का साधन है। आशय यह है कि जैन संस्कृति में ज्ञान की अपेक्षा चारित्र का अन्तिम महत्त्व है और प्रत्येक विचार या ज्ञान का उपयोग चारित्र अर्थात् आत्मशोधन या जीवन में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए होता है। जैन सन्त तप और साधना के द्वारा वीतरागता प्राप्त करते हैं। जैन संस्कृति का साध्य विचार नहीं, आचार है, ज्ञान नहीं, चारित्र है।

जैन संस्कृति को विश्लेषण के हेतु निम्नाङ्कित पाँच अवयवों में विभक्त किया जा सकता है। इन अवयवों के सम्यक् विचार से संस्कृति का स्वरूप अवगत करने में सरलता होगी।

१. अध्यात्मवाद

२ परिनिष्ठित अचार-विचार

३. वाङ्मय

४. तीर्थ, चैत्य एवं चैत्यालय

५ वीतरागी गुरूओं का सद्भाव

अध्यात्मवाद

जैन संस्कृति का प्रमुख अंग अध्यात्मवाद है। आत्मा के स्वरूप, गुण, शंक्ति एवं उसकी पर्यायों का सम्यक् अध्ययन, मनन और चिन्तन करना अध्यात्मवाद के अन्तर्गत है। अत: धर्म और दर्शन का आधारबिन्दु मनुष्य का अध्यात्म-जीवन है। जब तक मनुष्य भौतिकवाद में भटकता रहता है, तब तक उसे सुख-शान्ति और सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकते। अध्यात्मवाद का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है, संघर्ष नहीं, शान्ति है, विषमता नहीं, समता है। जीवन, मुक्ति, जगत्, जीव् और जगत् का सम्बन्ध, बन्ध, बन्धप्रक्रिया, निर्जरा, आदि का बोध अध्यात्मवाद द्वारा ही सम्भव है। जो आत्मा अपने भले, बुरे, भूत, भविष्य और वर्तमान का चिन्तन कर सकता है, वही विकासोन्मुख है। आत्मानुभूति कहीं बाहर से आने वाली नहीं है, यह तो हमारा आत्मधर्म

है, हमारी चेतना का धर्म है। केवल हमें अपनी दृष्टि को बदल कर अध्यात्मशक्ति पर विश्वास करना है। यह दर्शन का सिद्धान्त है कि आचार बनता है विचार से और विचार बनता है विश्वास से। विश्वास, विचार और आचार ये तीनों आत्मा के निज गुण हैं। आत्मा के इन निज गुणों का शोधन, प्रकाशन और विकास ही वस्तुत: हमारी अध्यात्म साधना है।

आत्मा एक अखण्ड-अनन्त-चैतन्य पिण्ड है। यह स्वतन्त्र और मौलिक द्रव्य है। चैतन्यपरिणति इसका सामान्य लक्षण है, यह इसका असाधारण गुण है। बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से इस चैतन्य के ज्ञान और दर्शन रूप परिणमन होते हैं। जब आत्मा 'स्व' से भिन्न किसी ज्ञेय को जानता है, तब उसकी वह चैतन्य परिणति ज्ञान कहलाती है और जब चैतन्य मात्र चैतन्याकार रहता है, उस समय वह दर्शन कहलाता है।

आत्मा असंख्यात प्रदेशवाला है और आदिकाल से सूक्ष्म कार्माण शरीर से सम्बद्ध है। यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों के विलक्षण सम्बन्ध के कारण पर को निज मानता चला आ रहा है। इसी मान्यता के कारण ज्ञान-दर्शनस्वरूप सर्वपदार्थ प्रकाशक आत्मा ने स्वकीय आत्मद्रव्य से च्युत हो परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न राग-द्वेष-मोह के साथ अभेदसम्बन्ध समझ परद्रव्यों को अपना मान लिया है। यही मान्यता परसमय है और जब यह आत्मा समस्त पदार्थों के स्वरूप को अवगत करने वाले भेदज्ञान को प्राप्त कर लेता है, तो आत्मतत्त्व के साथ एकत्व की बुद्धि कर अपने चैतन्यस्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी को स्वसमय कहा गया है। स्वसमय और परसमय ये दोनों आत्मा के दो पर्याय हैं। एक पर्याय पुद्गल के सम्बन्ध से है और दूसरा पर्याय चैतन्य स्वरूप की अवस्थिति की अपेक्षा से है। अब तक शरीर सम्बन्ध है, तब तक आत्मा को संसारी कहा जाता है और शरीर सम्बन्ध का अभाव होने पर इसे सिद्ध। सामान्यरूप से आत्मा न सिद्ध है और न संसारी। ये आत्मा की दोनों अवस्थाएँ हैं और ये दोनों पर्यायदृष्टि हैं। द्रव्यदृष्टि से आत्मा नित्य है, परिणमनशील है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्ययुक्त है। चैतन्यस्वरूप होने के कारण ही यह ज्ञान-दर्शनस्वरूप है।

आत्मा दर्पणवत् है, इसकी स्वच्छता में समस्त पदार्थ प्रतिभासित होते हैं। नानात्मक होने पर भी यह एकात्मक है। आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने आत्मा के स्वभाव का विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि आत्मा का स्वभाव तो पदार्थ को जानना मात्र है, पर अनादिकाल से एक मोहकर्म इसके साथ लगा हुआ है, जो परपदार्थों में राग-द्वेषरूप परपरिणति क उत्पन्न कराने में निमित्त कारण है। इसी मोहकर्म के उदय ने आत्मानुभूति को मलिन कर दिया है और इष्ट-अनिष्टरूप भाव उत्पन्न किये हैं:-

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावाद विरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषिताया:।
मम परमविशुद्धि: शुद्धचिन्मात्रमूर्तेर्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूते:॥

-समयसार कलश, पद्य ३

स्पष्ट है कि स्वानुभूति द्वारा आत्मा की 'स्व' और 'पर' परिणतियों का अनुभव कर चैतन्य, शुद्ध सत्तारूप और समस्त पदार्थों के ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा को अवगत कर उसे आचरण द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रशमरतिप्रकरण में आचार्य ने स्वानुभूतिजन्य सुख को अनुपम और निरूपमेय बताया है, सांसारिक आडम्बरों से रहित स्वानुभवकर्ता व्यक्ति को जीवन में जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख न तो षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती को और न त्रिखण्डाधिपति अर्धचक्रवर्ती को प्राप्त होता है। देवराज इन्द्र का सुख भी उक्त स्वानुभूतिजन्य सुख के समक्ष नगण्य है। अत: स्वानुभूति से उत्पन्न हुआ सुख इन्द्रियातीत और निज स्वभावरूप है।

यथा -

नैवास्ति राजराजस्य तत्सुखं नैव देवराजस्य।
यत्सुखमिहैव साधोर्लोकव्यापाररहितस्य॥

-प्रशमरतिप्र. पद्य १२८

स्वानुभूति के उत्पन्न होने पर स्व की प्रतीति तो होती ही है, पर भेदविज्ञान के सद्भाव के कारण परम शान्ति भी प्राप्त होती है। महाकवि बनारसीदास ने भेदविज्ञान का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है -

भेदविज्ञान जगो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिवमारगमें, जगमाहिं जिनेश्वरके लघुनंदन॥

अर्थात्-भेदविज्ञानी को जिनेश्वर का लघुनन्दन कहकर उसका महत्त्व सूचित किया है। अतएव पुद्गल का एक अणु भी आत्मा का अपना नहीं है, न वह अतीत काल में आत्मा का अपना रहा है, न वर्तमान में है और न अनागत में ही आत्मा का अपना होगा। पुद्गल पुद्गल है और आत्मा आत्मा है। आत्मा कभी पुद्गल नहीं हो सकता और पुद्गल कभी आत्मा नहीं हो सकता। इस प्रकार का बोध-व्यापार ही भेद-विज्ञान है।

शुद्धनय की अपेक्षा आत्मा अपने एकपन में नियत है, स्वकीय गुण-पर्यायों में व्याप्त है तथा पूर्ण चैतन्य पिण्ड है। ऐसे आत्मा का आत्मातिरिक्त पदार्थों से पृथक् अनुभव करना भेद-विज्ञान है यह आत्मा अवद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य नियत, अविशेष और असंयुक्त है। पर व्यवहारनय के कारण इस आत्मा की नर, नरक, देव, तिर्यच आदि अनेक अवस्थाएँ दिखलायी पड़ती है। अनादिकालीन कर्मसंस्कारों के कारण ही इस आत्मा की रागादिरूप परिणति होती है। यह परिणति दो विजातीय द्रव्यों के सम्बन्ध के कारण निष्पन्न हुई है। इसी कारण नाना प्रकार के बद्ध, स्पृष्टत्वादि अनेक पर्याय आत्मा के दिखलायी पड़ते हैं। आत्मा परिणमनस्वभाववाला है। जब जिस भाव को करता है, वही भाव उसका कर्म कहलाता है और आत्मा उस भाव का कर्त्ता होता है। ज्ञानी जीव के समीचीनरूप से स्वपर का भेदज्ञान है। इसी कारण उसके आत्मानुभूति का उदय रहता है। अतएव ज्ञानी का वह भाव ज्ञानमय होता है और अज्ञानी के अज्ञानमय। वस्तुस्वभाव के अनुसार प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने परिणमन का कर्ता है, और उसका वह परिणमन कर्म कहलाता है। आचार्य कुन्द-कुन्द ने इसी भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है:-

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स॥

समयसार गाथा १२६

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि॥

वही, गाथा १२७

जिस प्रकार परिणमनस्वभाव होने पर भी एक परमाणु में अनेक अवस्थाएँ सम्भव नहीं, पर जब वही परमाणु स्कन्धरूप हो जाता है, तब उसमें शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य आदि नाना भेद उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार परिणमनशील आत्मा में राग द्वेषादि के रहने पर ही नर, नरकादिपर्याएँ सम्भव होती है; और राग-द्वेषादि के अभाव में नहीं। अतएव निश्चयनय की दृष्टि से यह शुद्ध-वृद्ध अलिप्त आत्मा अनादि काल से स्वपुरूषार्थ की हीनता के कारण रागादिरूप परिणामों को पर के कारण उत्पन्न करता आ रहा है और रागादि परिणामों का निमित्त पाकर कार्माणवर्गणाओं का ज्ञानावरणादिरूप परिणमन होता आ रहा है जिससे आत्मा विभिन्न प्रकार के शरीरों द्वारा चतुर्गति में परिभ्रमण कर रहा है।

आशय यह है कि उपादानरूप आत्मदृष्टि का प्राप्त करना ही परपदार्थों की आसक्ति से मुक्ति प्राप्त करने का साधन है, जब तक मन में रागद्वेष की वृति उत्पन्न न हो तब तक कोई भी बाह्य पदार्थ बाँध नहीं सकता है। यदि राग-द्वेष के बिना भी आत्माबद्ध होने लगे, तो विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जायगी। यहाँ यह ध्यातव्य है कि किसी पदार्थ को ज्ञानोपयोग के द्वारा जानने मात्र से ही बन्ध नहीं होता, बन्ध का कारण परदृष्टि या रागभाव है। पदार्थों का परिज्ञान करना तो आत्मा का सहज भाव है। यदि आत्मा अपनी ज्ञान शक्ति से अपने से भिन्न संसार के अन्य पदार्थों को जानता-देखता है तो इससे उसका कुछ बिगड़ता नहीं, बिगाड़ तो राग-बुद्धि के कारण होता है। जब जानने के साथ मन में राग-द्वेष की वृत्ति उत्पन्न होती है, तब अवश्य बन्ध होता है। अत: रागादियुक्त भाव ही बंध का कारण है और रागादिरहित ज्ञायक स्वभाव अबंध का।

निश्चयत: राग-द्वेष-मोह के सम्पर्क से उत्पन्न भाव अज्ञानमय है। ये अज्ञानभाव ही आत्मा को कर्मबन्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं अर्थात् आत्मा में ऐसी विभावता उत्पन्न कर देते हैं, जिनका निमित्त प्राप्त कर पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादि भावरूप परिणमन को प्राप्त हो जाता है। रागादि के भेदज्ञान से जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे ज्ञायकभाव हैं, ये भाव आत्मा के स्वभावस्थ होने के कारण ज्ञानावरणादि कर्मों के बन्धक नहीं होते। अतएव अज्ञानमयभाव कर्म के कर्त्तव्य में प्रेरक होने से बन्धक हैं और रागादि-अमिश्रित ज्ञायकभाव स्वभाव को प्रकट करने के कारण अबन्धक हैं।

यह स्मरणीय है कि जब एक द्रव्य दूसरे के साथ बन्ध को प्राप्त करता है, तो उस समय उसका अशुद्ध परिणमन होता है अशुद्ध परिणमन में दोनों द्रव्यों के गुण अपने स्वरूप से च्युत होकर विकृत भाव को प्राप्त होते हैं। जीवद्रव्य के गुण भी अशुद्ध अवस्था में इसी प्रकार विकार को प्राप्त होते रहते हैं। जीवद्रव्य के अशुद्ध परिणमन का मुख्य कारण उसकी वैभाविकी शक्ति है और सहायक निमित्त जीव के गुणों का विकृत परिणमन है। जीव ओर पुद्गल का अशुद्धावस्था में ही बन्ध होता है, शुद्ध अवस्था होने पर विकृत परिणमन नहीं होता। इस विकृत परिणमन को ही बन्ध का सहायक निमित्त कहा जाता है।

बन्ध के दो भेद हैं १. सजातीय बन्ध और २ विजातीय बन्ध। पुद्गल के बन्ध को सजातीय बन्ध कहा जाता है। जीव में केवल विजातीय बन्ध ही होता है, पर पुद्गल में सजातीय विजातीय दोनों प्रकार के बन्ध होते हैं। जीव और पुद्गल में वैभाविकी शक्ति के साथ अन्य सहकारी कारण भी विद्यमान रहते हैं। जो आत्म-रसिक कर्तृत्व और बन्धभाव को अवगतकर अपने विकल्प और विकारों को दूर करने में प्रयत्नशील रहता है, वह साधनामार्ग को प्राप्त कर लेता हैं ओर उसके रागद्वेष-विकार शान्त हो जाते हैं।

अशुद्ध आत्मा की दशा अर्धभौतिक जैसी है। इन्द्रियाँ यदि न हों तो श्रवणादिकी शक्ति होने पर भी संवेदन नहीं होता हैं। विचारशक्ति के रहने पर भी यदि मस्तिष्क ठीक न हो तो विचार या चिन्तन नहीं किया

जा सकता हैं। अशुद्ध आत्मा की दशा और उसका सारा विकास बहुत कुछ पुद्गल के अधीन है। अतएव अध्यात्मवाद की प्रक्रिया द्वारा आत्मा को शुद्ध करने का प्रयत्न करना आवश्यक है। और यह अध्यात्मवाद निश्चय और व्यवहार दृष्टियों का परिज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही संभव है। आत्मशुद्धि का सबसे प्रमुख साधन आत्मसत्ता की आस्था के साथ स्व-पर के भेद को अवगत करना है। जब तक भेदज्ञान का प्रकाश जीवन में उत्पन्न नहीं होता, तब तक हमारा आत्मा अंधेरे में भटकता रहता है। भेदविज्ञानरूपी दीपक के प्रज्वलित होते ही अन्धश्रद्धा का तिमिर नष्ट हो जाता है। साधक को आत्मानुभूति होने के साथ स्व स्वरूप की उपलब्धि होने लगती है और रागादिभावों के क्षीण होने से आत्मा में नये विभाव उत्पन्न नहीं होते। आस्रव संवर के रूप में और बन्ध निर्जरा के रूप में परिणत हो शुद्धोपयोग की स्थिति प्राप्त होने लगती है।

वस्तुत: आत्मसाधना का मूलाधार है आत्मा की आस्था, निष्ठा, श्रद्धा और विश्वास। जो आत्मदृष्टि को प्राप्त कर लेता है, उसका जीवन अमल-धवल बन जाता है। आत्मशुद्धि की प्रयोग विधि में इसी कारण आचार-विचार से पहले दृष्टि की विशुद्धि पर जोर दिया गया है। जब तक व्यक्ति अपने आपको समझने का प्रयत्न नहीं करता है, तब तक आत्मपाठशाला का वह अन्तेवासी बनने में असमर्थ है।

यह सार्वजननीय सत्य है कि ऐकान्तिक निश्चय के व्यामोह के फन्दे में फँसे रहकर निश्चय को छोड़ देना, उससे भी बड़ी भूल है। निश्चय और व्यवहार दोनों एक ही सिक्के की दो पीठिकाएँ हैं, जिन्हें अनेकान्तात्मक दृष्टि के प्रकाश में परखना होगा तथा वस्तुस्वरूप के अनुसार ग्रहण करना होगा। अनन्त जन्मों में अनन्त बार व्यवहार को पकड़ने का प्रयत्न किया, पर अपने मूल उपादान की ओर दृष्टिपात नहीं किया। पुरुषार्थ के यथार्थ स्वरूप को पहचाना नहीं। पुरुषार्थ की प्रबलता होने पर निमित्तसामग्री का साहाय्य प्राप्त होना स्वाभाविक है। कार्य की उत्पत्ति अन्तरंग और बहिरंग कारणों के मिलने से होती है। अत: आत्मसाधना के लिए आवश्यक है कि आत्मा के विभवद्वार को पारकर उसके स्वभाव के भव्यद्वार में प्रवेश किया जाय। इसी से विकल्प का विष विचार-आचार के ज्ञानामृत में परिवर्तित हो जाता है और वीतरागता की प्राप्ति होने लगती है। अशुद्ध से शुद्ध होने पर चेतन परम चेतन हो जाता है और कर्मबन्ध क्षीण होते हैं।

परिनिष्ठित आचार-विचार

परिनिष्ठित आचार-विचार से हमारा तात्पर्य संयम से है। संयम का अर्थ राग-द्वेष-मोह त्याग कर इन्द्रिय एवं मन को नियन्त्रित कर विकाररहित होना है। संयम के द्वारा व्यक्ति निजशुद्धि कर आत्मोत्थान करता है। संयम आत्मा के शुद्धिकरण की प्रयोगविधि है। आचार्यों ने इसके दो भेद बतलाये हैं- १. वीतरागसंयम, २. सरागसंयम। वीतरागसंयम का अर्थ वह संयम है जिसमें साधक इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाता है, जिससे उसके जीवन में किसी के भी प्रति राग-द्वेष नहीं रहता इसके विपरीत सरागसंयम में राग-द्वेष अल्पमात्रा में बने रहते हैं। जितने अंश में राग है, उतने अंश में चारित्र नहीं और इसमें जितना वीतराग भाव है, उतना ही परिनिष्ठित आचार-विचार है। परिनिष्ठित आचार-विचार के अभाव में जीवन-नौका कभी तट पर नहीं पहुँच पाती। जो संसार के भोगचक्र में तल्लीन है और वीतराग भाव से दूर है, उसके भवबन्धन दूर नहीं हो सकते। विकारों को दूर करने की एकमात्र औषधि संयम है।

यह मोह-मुग्ध आत्मा संसार-सागर की उत्ताल तरंगों पर उठता और गिरता है, पर जब इसे संयम का अवलम्बन प्राप्त हो जाता है, तब यह काम, क्रोध, मोहादि विकारों से मुक्त हो जाता है। संयम व्यक्ति

की नाना समारम्भों से रक्षा करता है, उसकी कामनाओं को नियन्त्रित करता है। जिस प्रकार नदी के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसके तटों की आवश्यकता होती है। तटों के अभाव में नदी का पानी फैलकर सूख सकता है और नदी दूर तक प्रवाहित नहीं हो सकती, इसी प्रकार संयम के द्वारा व्यक्ति इच्छाओं और आकांक्षाओं के तट प्रदान करता है। इच्छाएँ नियन्त्रित हो जाती हैं और जीवन वेगपूर्वक शुद्धि की ओर गतिशील होने लगता है। संयम में इच्छापूर्वक इन्द्रियों और मन को संयमित करना होता है। संयम विधि-निषेध की रेखाओं द्वारा घिरा हुआ क्षेत्र है, जो एक सफल आकृति प्रदान करता है। असंयम को क्षेत्रहीन शून्य माना जा सकता है, जो अपने अस्तित्व के लिए अन्य की अपेक्षा करता है। अत: विधिपक्ष में आत्मा की वीतरागी प्रवृत्ति संयम है।

संयम की आवश्यकता आत्मशोधन के साथ समाज को नियन्त्रित करने के लिए भी है। देखा जाता है कि संसार में सम्पत्ति एवं भोगोपभोग की सामग्री कम है और भोगनेवालों की संख्या अधिक है तथा तृष्णा और आकांक्षाएँ और भी अधिक हैं। इसी कारण समाज में मत्स्य न्याय चलता है, छीना-झपटी आरम्भ होती है और चलता है संघर्ष। फलत: नाना प्रकार के अत्याचार और अन्याय होते हैं, जिनसे अहर्निश अशान्ति बढ़ती जाती है। परस्पर में ईर्ष्या और द्वेष की मात्रा भी अधिक होती हैं, जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को भौतिक उन्नति के अवसर नहीं मिलने देता है। परिणाम यह होता है कि संघर्ष और अशान्ति की लहरें बढ़कर विषमता उत्पन्न कर देती हैं। इस विष को दूर करने का साधन संयम या नियन्त्रण ही है। समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छाओं, वासनाओं और कषायों पर नियन्त्रण रखकर ही शान्ति बनाये रखने में सहायक हो सकता है। अतएव संयम जिस प्रकार वैयक्तिक जीवन के लिए आत्मशोधन का कारण है, उसी प्रकार समाजव्यवस्था के लिए भी उपयोगी है। आंशिक संयम पालन से भी संग्रहवृत्ति का त्याग सम्भव है, असंयमी के जीवन में कामनाओं और आकांक्षाओं का प्राबल्य रहता है, अत: वह असंग्रही नहीं हो सकता है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने संयम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है-

वदसमिदिकसायाणं दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं।
धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणिओ॥

-जीवकाण्ड, संयममार्गणा, गा. ४६४

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालन; क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों का निग्रह करना, मन, वचन और काय रूप दण्डका त्याग एवं स्पर्शन, रसनादि पाँच इन्द्रियों का जय करना संयम है।

जो व्यक्ति आत्मशोधन के साथ समाज में समताभाव स्थापित करना चाहता है, उसे संयम धारण करना आवश्यक है। संयम धारण करते ही जीव परिवर्तित हो जाता है। तिर्यञ्च संयमी बन आत्मोत्थान करता है। हाथी, सिंह जैसे प्राणी भी संयमसाधना द्वारा महान् बन जाते हैं। महाकवि भूधरदास ने बताया है-

अब हस्ती संयम साधै। त्रस जीव न भूल विराधै॥
समभाव छिमा उर आनै। अरि-मित्र बराबर जानै॥
काया कसि इन्द्री दण्डै। साहस करि प्रोषध मंडै॥
सूखे तृण पल्लव भच्छै। परमर्दित मारग गच्छै॥

संयम साधना द्वारा ही मानवीय करुणा और मानवीय चेतना जागृत होती हैं। अहिंसा संयम का आधार स्तम्भ है और मानवजाति के ऊर्ध्वमुखी विराट्चिन्तन का सर्वोत्तम विकास बिन्दु है। लौकिक और लोकोत्तर दोनों ही प्रकार के मङ्गल-जीवन का यह मूलाधार है। अधिकारलिप्सा, असहिष्णुता, सत्तालोलुपता और स्वार्थान्धता के विषाक्त संसार में अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ विश्राम है। अहिंसा के द्वारा ही मनुष्य अपने को समझ पाता है। सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की भावना अहिंसा से प्राप्त होती है। जीवन के सभी उन्नत आदर्शों की प्राप्ति का साधन अहिंसा है और है यह आध्यात्मिक साधना की आधारभूमि। मन, वाणी और इन्द्रिय-संयम अहिंसा पर ही अवलम्बित है।

अहिंसा की भावना विचार और जीवन के तरीके में क्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं। अत: व्यक्तिगत गुण होने के साथ अहिंसा सामाजिक गुण भी है। समाज अपने कार्यों में अहिंसा का प्रयोग करे तो अधिक व्यवस्थित हो सकता है। अहिंसा द्वारा स्वनिरीक्षण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है तथा व दूसरे की आँख का तिल बतलाने की अपेक्षा अपनी आँख का पहाड़ देखने के लिए प्रेरित करती है। नि:स्स्वार्थ प्रेम फल की माँग नहीं करता, वह लोककल्याण को देखता है। अहिंसा-साधना से नि:स्स्वार्थ प्रेमभाव उत्पन्न होता है तथा व्यक्ति और समाज दोनों का स्तर उन्नत हो जाता है। अत: सामाजिक दृष्टि से अहिंसा का सम्बन्ध प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव, प्रेम, सहानुभूति और दया से है।

शास्त्रीय दृष्टि से राग, द्वेष, मोह, छल, कपट, घृणा आदि सभी विकार हिंसा है और इनका त्याग अहिंसा है। आगम में द्रव्यहिंसा की अपेक्षा भावहिंसा के त्याग पर विशेष जोर दिया है। अत: भावहिंसा से किसी अन्य का अहित होने के पूर्व अपना ही अहित होता है। जब क्रोध, मान, माया आदि विकार उत्पन्न होते है, तो वे आत्मा के निजी गुणों का घात करते हैं, जिससे आत्मा अनादि कर्मसंतति को अर्जित करता चला जाता है।

संयमी व्यक्ति को आचार-विचार की शुद्धि के लिये भी प्रयत्नशील रहना है। विचार की शुद्धि स्याद्वाद द्वारा होती है। मानसिक अहिंसा की स्थायी प्रतिष्ठा वस्तुस्वरूप के यथार्थ दर्शन के बिना सम्भव नहीं है। शारीरिक हिंसा के रोकने पर भी वचन-व्यवहार और चित्तगत विचार विषम और विसंवादी होने पर अहिंसा की सर्वाङ्गीण प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है। विश्व का प्रत्येक जड़-चेतन तत्त्व अनन्तधर्मों का भण्डार है। उसके विराट् स्वरूप को साधारण मानव पूर्णरूप में नहीं जान सकता। मनुष्य का आंशिक ज्ञान वस्तु के एक-एक अंश को जानकर अपने में पूर्णता का अभिमान कर बैठता है। विवाद वस्तु में नहीं है, विवाद देखने वालों की दृष्टि में है। अत: पक्षपातपूर्ण नीति का उन्मूलनकर अनेकता में एकता, विचारों में उदारता एवं जीवन में सहिष्णुता उत्पन्न करना संयमसाधना के अन्तर्गत है। एकाङ्गी ज्ञान होने के कारण विचारभिन्नता का उत्पन्न होना स्वाभाविक है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के विचार अपनी योग्यता, परिस्थिति, समझ एवं आवश्यकता के अनुसार बनते हैं। अतएव अनेकान्तवाद दृष्टि के व्यवहार द्वारा विचारों का समन्वय उत्पन्न करने की चेष्ठा करनी चाहिए।

आचार को अहिंसक बनाने के लिए आहार-पानी की शुद्धि भी अपेक्षित है। अमर्यादित और विकारोत्पादक भक्ष्य पदार्थों का सेवन भी त्याज्य है। मिथ्या आहार-विहार करने वाला व्यक्ति आत्मशोधन के लिए आवश्यक अहिंसा का पालन नहीं कर सकता है। तत्त्वज्ञानी होने पर भी अनशन, ऊनोदर आदि

द्वादश व्रतों के पालन के साथ आहार-जल का ग्रहण करना आवश्यक है। भोजनशुद्धि का सम्बन्ध भी आत्मविकास के साथ है, अतः आहार-विहार का प्रभाव मनुष्य के अन्तरंग पर भी पड़ता है।

मेरी दृष्टि से संयमसाधना के तीन अङ्ग है-

१. चित्तविषयों के प्रति अनासक्ति-निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति

२. चित्तवृत्तियों के प्रति जागरूकता-शुभ प्रवृत्ति

३. चित्तसाक्षी की स्मृति-ध्यान

चित्तविषयों के प्रति अनासक्ति से तात्पर्य राग-द्वेष-मोह को दूर करने हेतु स्वाश्रय की दृष्टि से है। इस दृष्टि के प्राप्त होते ही पुरातन कर्मसंस्कार विगलित होने लगते हैं और नवीन संस्कारों का उत्पन्न होना भी अवरुद्ध हो जाता है। चित्तवृत्तियों के प्रति जागरूकता से राग-द्वेषादि विकारों का विसर्जन आरम्भ होता है। शास्त्रीय परिभाषा में प्रथम को संवर और द्वितीय को निर्जरा माना जा सकता है। संयम का अन्तिम चरण वैराग्यजन्य ध्यान है। ध्यान के अवसर पर समस्त चित्तवृत्तियों की तटस्थरूप में स्मृति विद्यमान रहती है, पर संयम विभिन्न चित्तवृत्तियों के उत्पन्न होने पर भी उदासीन बना रहता है। न तो किसी वृत्ति से राग करता है और न किसी से द्वेष। उसकी जागरूकता प्रतिक्षण बढ़ती जाती है और परपरिणति दूर होती है।

वाङ्मय

वाङ्मय संस्कृति का प्रधान अङ्ग है। वैदिक परम्परा में जिस प्रकार अपौरुषेय वेद सर्वोपरि प्रमाणभूत है, उसी प्रकार जैन परम्परा में सर्वज्ञ, वीतरागी एवं हितोपदेशी व्यक्ति के वचनों से उत्पन्न ज्ञान। व्यक्ति के निर्दोष और पूर्ण ज्ञानी होने से उसके द्वारा प्रतिपादित वचनरूप वाङ्मय भी प्रमाण है। यह अमृत के समान हितकारी है, विषयवेदना से सन्तप्त प्राणियों के लिए परम औषधि है। आचार्य कुन्दकुन्द ने बताया है-

जिणवयणमोसहमिणं विसवसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥

-दंसणपाहुड गा. १७

वाङ्मय द्वारा समस्त द्रव्य और पर्यायों का ज्ञान प्राप्त होता है। स्याद्वादमय श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में विषयवस्तु को ग्रहण करने की दृष्टि से अन्तर नहीं; अन्तर केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष की अपेक्षा से है। वाङ्मय और केवलज्ञान को समान महत्त्व देते हुए बताया है-

सुद केवलं च णाणं दोण्ण वि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं॥

-गोम्मटसार जीव. गा ३६८

केवलज्ञान से स्याद्वादरूप आगम की उत्पत्ति होती है और स्याद्वादरूप आगम के अभ्यास से केवलज्ञान की। श्रुतज्ञान के पाठी के समस्त ज्ञेयों को जानने के कारण श्रुतकेवली कहा गया है।

वाङ्मय के स्वाध्याय द्वारा निजस्वरूप को प्रतिदिन अवगत करने का अवसर प्राप्त होता है। वस्तुस्वरूप की जानकारी होने से आत्मा का चिन्तन और अनुभव भी होता है। इसी कारण "पढमं णाणं तओ दया" अर्थात् प्रथम ज्ञान और पश्चात् दया का स्थान है। भेदविज्ञान की प्राप्ति भी स्वाध्याय से सम्भव है।

वाङ्मय पतंग की डोर के समान है। पतंग उड़ाने वाले के हाथ में पतंग का सूत्र रहता है, जिसके सहारे पतंग ऊपर दूर तक आकाश में उड़ती रहती है। यदि डोर हाथ में है तो पतंग को जिधर चाहें उधर ऊपर-नीचे कर सकते हैं। हाथ से पतंग की डोर छूट जाने पर पतंग की स्थिति क्या हो सकती है, यह कहा नहीं जा सकता? वह अनन्त आकाश में निराधार एवं लक्ष्यभ्रष्ट हो उड़ती जाएगी और कहीं भी गिरकर नष्ट हो जाएगी। इसी प्रकार स्वाध्यायद्वारा प्राप्त तत्त्वचिन्तन के पतंग को वाङ्मय के सूत्र के सहारे ही हम स्थिर करते हैं। यदि हमारा चिन्तन वाङ्मय के सूत्र से सम्बद्ध न रहे तो चिन्तन की पतंग कहीं भी पथभ्रष्ट हो सकती है। अतएव आचार्यो द्वारा प्रतिपादित वाङ्मय की डोर का हमारे हाथ में रहना आवश्यक है, इसी के द्वारा तत्त्वचिन्तन और आत्मानुभूति की पतंग निश्चित मार्ग में उड़ पाती है। वाङ्मय के स्वाध्याय द्वारा तत्त्वचिन्तन को पुष्ट किया जाता है और स्वाध्यायजन्य ज्ञान ही चारित्र की प्राप्ति में सहायक होता है। यही अन्धकार से प्रकाश में जाने का मार्ग है। अहंता, ममता और आसक्ति का त्याग इसी के द्वारा सम्भव है।

समत्वयोग की साधना भी स्वध्याय द्वारा प्राप्त होती है। साधक जो कुछ पाना चाहता है, उसे स्वाध्याय द्वारा प्राप्त कर लेता है। **'अज्झयणमेव झाणं'**-अध्ययन ही ध्यान है इस आगमवाक्य से स्वाध्याय का महत्त्व स्वत: सिद्ध हो जाता है।

तीर्थ एवं चैत्य-चैत्यालय

जैन संस्कृति का चतुर्थ अवयव तीर्थ एवं चैत्य-चैत्यालय हैं। इनकी भक्ति-भावना से विषय-विकारों पर विजय प्राप्त होती है। आगम में षट् आवश्यकों में वन्दन को स्थान दिया गया है। वन्दन मन, वचन और काय का वह व्यापार है, जिससे पूज्यों के प्रति बहुमान प्रकट किया जाता है। तीर्थ एवं चैत्य आत्मोत्थान के विश्रान्त पर्व हैं, इन्हें समवशरण का प्रतीक माना गया है। जिस प्रकार समवशरण के द्वार पहुँचते ही अहंकार विगलित हो जाता है, लोकेषणाएँ विलीन होने लगती हैं, उसी प्रकार तीर्थ और चैत्यालयों में प्रवेश करते ही सांसारिक वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं और आत्मबोध की किरणें आलोक विकीर्ण करने लगती है। अतएव तीर्थ, चैत्यालय एवं चैत्य के दर्शन से निजात्मा की शक्ति की आस्था उत्पन्न होती है। चैत्यों के दर्शन से आत्मा में अर्हन्त में समान ही अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख एवं अनन्तवीर्य अवस्थित है, इस आस्था की प्रतीति होती है।

चैत्य या देवप्रतिमा, सर्वज्ञ, वीतरागी और हितोपदेशी ध्यानावस्थित अर्हन्त का प्रतीक है। यह साभिप्राय प्रतीक है, जो समवशरण में स्थित धर्मोपदेश देने वाले तीर्थङ्कर का प्रतिनिधित्व करता है और अर्हन्त उस स्थिति को उपस्थित करता है, जिस स्थिति में कर्मकालिमा से लिप्त जीवों को पुरुषार्थ जागृति के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है। जिस प्रकार श्रोता, समवशरण में उपस्थित हो, तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का श्रवण कर आत्मास्था उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार दर्शक चैत्यालय या तीर्थों में पहुँचकर वीतरागी प्रतिमा का दर्शन और पूजन कर सम्यकत्व लाभ करता है। इस पञ्चमकाल में सम्यकत्वप्राप्ति एवं आत्मकालुष्य को दूर करने के लिए

जिनचैत्य आवश्यक साधन है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि जिनचैत्यालय और तीर्थ-स्थान स्वको समझने के लिए ऐसी पाठशाला है, जिसमें अध्यात्मवाद की मूक शिक्षा प्राप्त होती है। चैत्यों को दर्पण की उपमा दी जाती है, जिस प्रकार हम दर्पण में अपने मुख में लगी कालिमा देखकर उसे साफ कर देते हैं, उसी प्रकार जिनमूर्त्ति के साक्षात्कार में हम अपने राग-द्वेष को पहचानते हैं और उन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं। आशाधरजी ने बताया है कि शास्त्रज्ञों की बुद्धि भी देववन्दन के बिना मिथ्या हो सकती हे। अत: चैत्यालय संस्कृति के आवश्यक अंग हैं।

धिग्दु:षमाकालरात्रिं यत्र शास्त्रदृशामपि।
चैत्यालोकादृते न स्यात्प्रायो देवविशा मति:॥

– सागार. २/३६

वीतरागी गुरुओं का सद्‌भाव

संस्कृति का पञ्चम अवयव वीतरागी दिगम्बर गुरु हैं। निर्ग्रन्थ गुरु स्वयं मूर्तिमान् संस्कृति हैं। गुरु सर्वसावद्य से विरत होने के कारण आत्मलोक प्रदान करते हैं। अच्छे संस्कारों का आरम्भ गुरुओं के सान्निध्य से होता है। देव, गुरु और शास्त्र को समान महत्त्व दिया गया है। जिनेन्द्रमुद्रांकित, सम्यक्‌चरित्रनिष्ठ, अष्टाविंशति मूलगुणयुक्त संयम-स्वाध्यायपरायण गुरुओं द्वारा संसारी जीवों का महान् कल्याण होता है। वास्तव में दिगम्बर गुरु साक्षात् धर्मस्वरूप हैं। वे स्वयं सम्यक्‌चारित्र का पालन करते हैं और भव्यजीवों के हृदय एवं व्यवहार में उस आचरण के प्रति आस्था उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि कवि भूधरदास ने संसार-समुद्र से पार होने के लिए गुरु को जहाज का रूपक दिया है। यथा–

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भव-जलधि जहाज।
आप तिरें, पर तारहिं ऐसे श्री गुरुराज॥

वीतरागी गुरुओं की पञ्चपरमेष्ठी में गणना की जाती हैं। गुरु के लिए तप, ज्ञान और चारित्र सम्पन्न होना आवश्यक है। 'गुरु' शब्द में दो वर्ण हैं- गु और रु। 'गु' का अर्थ अन्धकार और 'रु' का अर्थ विनाशक है। अत: अज्ञान-अन्धकार विनाशक को गुरु कहा है–

'गु' शब्दस्त्वन्धकारे च रु-शब्दस्तन्निवर्तक:।
अन्धकारविनाशित्वाद् 'गुरु' रित्यभिधीयते॥

महाकवि वादीभसिंह ने बतलाया है कि रत्नत्रय से विशुद्ध, धर्मसंबर्धन हेतु भव्यजीवों पर स्नेह करनेवाला, मोक्षरूप परमपुरुषार्थमार्ग में संलग्न और दशलक्षण-अहिंसा परमधर्म का पालन करने वाला गुरु भवसिन्धु में डूबते हुए भव्यों के लिए तरण-तारण हैं। गुरु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के नायक और मोक्षमार्ग के उपदेष्टा हैं। अतएव वैयावृत्य, आहारदानादि क्रियाओं द्वारा वीतरागी गुरुओं का संवर्धन करना प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य है। वर्तमान साधु-संस्था को स्वस्थ, सबल और उपयोगी बनाना सभी का दायित्व है।

विद्वत्परिषद् के मान्य सदस्यगण

अब तक मैंने जैन संस्कृति के स्वरूप, वैशिष्ट्य एवं उसके अंगों पर प्रकाश डाला है। विद्वत्परिषद् को इस संस्कृति का प्रचार करना है। वर्तमान में हमारे समक्ष कई सांस्कृतिक समस्याएँ हैं, इन समस्याओं की ओर भी आप सभी का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा।

अध्यात्मवाद का प्रचार हो रहा है। पर उपादान, निमित्त, निश्चय और व्यवहार को लेकर मतभेद दिखलायी पड़ रहा है। प्रत्येक पक्ष के विद्वान् अपने विचारों को शास्त्रसम्मत बतलाते हैं और इतर पक्ष के विचारों को शास्त्रमान्यता से रहित। अत: हम उभय पक्ष के चिन्तकों से विनीत प्रार्थना करेंगें कि वे निष्पक्ष हो स्याद्वादनीति का अनुसरण कर अपने विचारों के समान अन्य के विचारों का भी आदर करें तथा समन्वय-मार्ग द्वारा मतभेद का शमन करें।

आज तीर्थों, पुरातन मूर्तियों एवं प्राचीन मन्दिरों के संरक्षण का प्रश्न उपस्थित है। सम्मेदशिखर जैसे पावन क्षेत्र पर विवाद विद्यमान है, हमारे छोटे-बड़े अनेक तीर्थों पर मुकद्दमे चल रहे हैं। हमारी प्राचीन मूर्तियों की चोरी हो रही है। अनेक मूर्तियों को खण्डित किया जाता है, और उन शिरों को विदेशों में अधिक मूल्य पर बेचा जाता है। अतएव संस्कृति के इस अंग की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। नये मन्दिर बनाने के स्थान पर पुरातन जीर्ण-शीर्ण मन्दिरों का जीर्णोद्धार एवं उनके पूजन-प्रक्षाल की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक है। अच्छा तो यह है कि अभी हम दो-तीन वर्षों तक पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठाएँ रोककर अपने तीर्थों और चैत्य-चैत्यालयों की रक्षा में उक्त धन का व्यय करें। अब नये मन्दिर बनवाने का समय नहीं है।

वाङ्मय संस्कृति का आधार है। इस समस्या की ओर भी मैं विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता हूँ। समाज के धनी-मानी श्रीमन्त मन्दिर बनवाने. पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठाएँ कराने एवं अन्य उत्सव-विधानों में प्रतिवर्ष लाखों रुपये व्यय करते हैं और जनसामान्य का ध्यान भी मन्दिर, मूर्त्ति-प्रतिष्ठा, आहारदान, वैयावृत्य आदि की ओर यत्किंचित् है, पर वाङ्मय के प्रकाशन और प्रसारण की ओर बहुत कम व्यक्तियों का ध्यान है। आज समाज में अध्यात्म, पूजापाठ या अन्य दूसरे प्रकार के कुछ ग्रन्थ अवश्य प्रकाशित किये जाते हैं। पर साहित्यिक, दार्शनिक या अन्य प्रकार के सांस्कृतिक ग्रन्थों का प्रकाशन अत्यल्प परिणाम में हो रहा है। अभी भी ग्रन्थागारों में सहस्रों अप्रकाशित ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिनके प्रकाशन अत्यल्प परिणाम में हो रहा है। अभी भी ग्रन्थागारों में सहस्रों अप्रकाशित ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिनके प्रकाशन की व्यवस्था आवश्यक है।

प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ आधुनिक परिवेश में नये साहित्य का निर्माण भी अपेक्षित है। हमारे समाज में सृजनात्मक साहित्य की ओर अभी विद्वज्जगत् का भी ध्यान नहीं गया है। प्राय: देखा जाता है कि जैनाचार्यो ने प्रत्येक युग में जैन कथानकों को लेकर युगानुकूल ग्रन्थों का प्रणयन किया है। वर्तमान में सभी जनपदीय भाषाओं में काव्य, नाटक, कथा, आख्यान, प्रभृति विधाओं में साहित्य-रचना की आवश्यकता है। हम टीका, अनुवाद एवं सम्पादन में ही साहित्य की समाप्ति न समझें, बल्कि प्रेरणाकर सुरुचि सम्पन्न साहित्य की रचना अन्य लेखकों से करायें और स्वयं भी नये साहित्य का निर्माण करें।

स्वाध्याय या नये प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन की रुचि भी उत्पन्न करनी है। आज सत् साहित्य प्रकाशित होता है पर उसके पाठक नहीं, जिससे किसी भी ग्रन्थ की पांच सौ प्रतियाँ भी कई वर्षों में बिक

पाती है। अधिकांश ग्रन्थ भेंट में दिये जाते हैं या उनकी बिक्री बहुत सीमित रूप में होती है। ऐसा शायद ही कोई ग्रन्थ होगा, जिसे द्वितीय संस्करण का अवसर मिला हो। अतएव हमें समाज में पाठक भी उत्पन्न करने हैं तथा श्रीमन्तों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट करना है कि वे कम से कम दस-दस प्रतियाँ प्रत्येक जैन ग्रन्थ की खरीदकर जिज्ञासुओं को भेंट करें तथा प्रत्येक मन्दिर में प्रत्येक नया ग्रन्थ खरीदा जाय। यदि हमारे समाज के मन्दिर भी ग्रन्थ खरीदने लगें तो प्रकाशन की समस्या सुलझ सकती है। बिक्री के अभाव में अच्छे साहित्य का प्रकाशन नहीं हो पाता है। अतएव भाद्रपद में दशलक्षणपर्व के अवसर पर प्रत्येक मन्दिर का बजट बनाते समय नये साहित्य के खरीदने के लिए कुछ रकम अवश्य रखनी चाहिए। व्यक्तिगतरूप से भी ग्रन्थ खरीदने की अभिरुचि उत्पन्न करनी चाहिए। यह सर्वमान्य सत्य है कि जैन ग्रन्थों की बिक्री जैनतर संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा नहीं होती या बहुत कम होती है। जैन ग्रन्थों की बिक्री का क्षेत्र जैन समाज है, अत: समाज के प्रत्येक सदस्य को जिनवाणी के संवर्धन और संरक्षण हेतु इस दिशा में प्रयत्नशील होना अपेक्षित है। जिस प्रकार हम अपने अन्य आवश्यक कार्यों में खर्च करते हैं, उसी प्रकार साहित्य खरीदने में भी कुछ व्यय करना आवश्यक है। यहाँ यह स्मरणीय है कि वाङ्मय की अर्हता के आधार पर ही कोई भी धर्म या संस्कृति चिरस्थायी होती है। संस्कृति का जीवन्तरूप साहित्य है, यही किसी देश, धर्म या जाति की यथार्थ सम्पत्ति है।

जैन साहित्य विश्वशान्ति और विश्वमैत्री के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मुख्याधार सप्तभङ्गी पद्धति है, जो विभिन्न दृष्टिकोणों से सत्य को उपस्थित करती है। विचार-वैविध्य को एक धरातल पर प्रतिष्ठितकर समन्वयात्मक जीवन मूल्यों का विश्लेषण ही इस पद्धति की विशेषता है। साहित्यसृष्टाओं के उदार विचार अनेकान्त सिद्धान्त के आलोक में ही विकसित हुए हैं। अत: विद्वत्परिषद् के मान्य सदस्यों को साहित्योद्धार की दिशा में विशेषरूप से प्रयत्नशील होना है। भारत सरकार साहित्य-प्रकाशन केलिए अनुदान देती है। अत: विद्वत्परिषद् को प्रकाशन हेतु अनुदान-प्राप्ति के लिए भारत-सरकार के साथ सम्बन्ध स्थापित करना भी परम आवश्यक है।

प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के अध्ययन की दिशा में जागरूकता प्राप्त करने की आवश्यकता है। भाषा और साहित्य की दृष्टि से दोनों भाषाएं इतनी समृद्ध एवं पूर्ण हैं कि इनके सम्यक् अध्ययन के अभाव में संस्कृत का अध्ययन भी अपूर्ण माना जाता है। अतएव अपने यहाँ के अतिरिक्त प्रत्येक भारतीय विश्वविद्यालय में उक्त दोनों भाषाओं के अध्ययन हेतु व्यवस्था कराने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। विश्वविद्यालयों के कुलपतियों के साथ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के साथ भी पत्राचार करना आवश्यक है। विद्वत्परिषद् को इस दिशा में विशेष प्रयत्न करना है।

जैनविद्यापर शोधकार्य करने की दिशा में इधर पर्याप्त विस्तार हुआ है। भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों में जैन विद्या के विभिन्न अंगों पर शोधार्थी शोधकार्य में संलग्न हैं। पर इस क्षेत्र में भी कुछ कठिनाइयाँ हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि सोमदेव जैसे विश्रुत कवि पर कई अनुसन्धित्सुओं ने शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किये हैं, जिससे पुनरावृत्तियों की भरमार है। दर्शन, अध्यात्म, लोकविद्या, आचार जैसे विषयों पर कार्य करने वालों का अभाव दिखलायी पड़ता है। यदि इन विषयों पर शोधकार्य सम्पादित करने के हेतु छात्रवृत्तियों की व्यवस्था हो तो जैन विद्यापर और अच्छा कार्य सम्भव हो सकता है। 'धवला' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ पर

आज तक शोधकार्य नहीं हो पाया। इस महाग्रन्थ पर कम से कम दस शोधप्रबन्ध विभिन्न दृष्टिकोणों से तैयार किये जा सकते हैं। अत: 'धवला' पर कार्य करने वालों को आर्थिक सहायता दिलाने की व्यवस्था करना अपेक्षित है। विद्वत्परिषद् के मान्य सारस्वतों को 'धवला' पर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिए प्रयासशील होना चाहिए।

मैंने अपने सागर अधिवेशन वाले भाषण में प्रात: स्मरणीय पूज्य वर्णीजी महाराज, गुरु गोपालदासजी वैरया, पूज्य ब्र. शीतलप्रसादजी, स्व. सेठ माणिकचन्द्रजी, पूज्य पं. चैनसुखदासजी, साहित्यमहारथी पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार प्रभृति के नामों पर 'फैलोशिप' दिये जाने का निवेदन किया था, पर अभी तक उक्त सुझाव पर कुछ कार्य नहीं हो सका है।

वर्तमान की समस्याओं में जन-गणना की समस्या महत्वपूर्ण है। यत: जनसंख्या के आधार पर ही राजनीतिक स्वत्व उपलब्ध होते हैं और शासन से साहाय्य भी जनसंख्या के अनुसार प्राप्त होता है। जैन समाज व्यापारियों का समाज माना जाता है और व्यापारी शान्तिप्रिय होते हैं। अत: जो हमारा वास्तविक प्राप्य है, वह भी नहीं मिल पाता, अतएव आगामी जनगणना के अवसर पर हमारा यह कर्त्तव्य है कि जैन समाज के सभी वर्ग-उपवर्ग पारस्परिक भेदभाव भूलकर 'जैन लिखाओ' आन्दोलन को गतिशील बनायें। भारत सरकार की ओर से जनगणना सन् १९७१ के फरवरी मास के द्वितीय सप्ताह में होने जा रही है, इसका प्रथम चरण जनवरी सन् १९७० में पूरा हो चुका है। अतएव विद्वत्परिषद् 'जैन लिखाओ' आन्दोलन को पूर्णतया सफल बनाने के लिए सभी प्रकार का प्रयास करे। इस आन्दोलन में भाग लेने वाली सभी संस्थाओं और व्यक्तियों के साथ पूर्ण सहयोग भी दिया जाय। बड़े आश्चर्य की बात है कि अभी तक हमारी संख्या पन्द्रह-बीस लाख ही बतलायी जाती है, जबकि हम एक करोड़ से अधिक हैं। अत: यथार्थ जनसंख्या ज्ञात हो सके और सही रूप में हम धर्म के कालम में जैन लिखायें इसके लिए पूर्ण सतर्क और प्रयासशील रहना है।

भगवान् महावीर का २५सौवाँ निर्वाणोत्सव अब निकट है। जैन समाज अनेक संस्थाएँ इस उत्सव को अपने-अपने ढंग से सम्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील हैं। भारत जैन महामण्डल के प्रयास से बम्बई में निर्वाणोत्सव-समिति संगठित की गयी है, जिसके तत्त्वावधान में 'युग युग में जैन धर्म' शीर्षक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रन्थ के सम्पादक-मण्डल में विद्वत्परिषद् इन सभी कार्यों में यथेष्ट सहायता तो करेगी ही, किन्तु श्रुतज्ञान का दायित्व दि. जैन समाज के सारस्वतों पर विशेष रूप से है, अत: मेरी दृष्टि से इस संस्था द्वारा निम्नलिखित साहित्यिक कार्य अवश्य होने चाहिए।

(१) भगवान् महावीर के जीवन से सम्बद्ध प्राचीन भाषाओं में प्रणीत चरित, काव्य और कथाग्रन्थों का प्रकाशन पच्चीससौवें निर्वाणोत्सव तक परम आवश्यक है। अभी तक मेरे जानकारी में अपभ्रंश भाषा में पाँच वर्द्धमानचरित अप्रकाशित हैं-

(अ) वड्ढमाणजिणचरिउ-बिबुध श्रीधर (इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि दुलीचन्द भण्डार जयपुर में है।)

(आ) वड्ढमाणचरिउ-जयमित्र हल (इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपियाँ जयपुर, ब्यावर आदि ग्रन्थागारों में हैं)

(इ) सम्मइजिणचरिउ-रइधू-(इसकी पाण्डुलिपि जयपुर में है और श्री डॉ. राजाराम जी कार्य कर रहे हैं।)

(ई) वड्ढमाणकव्वं-हरिश्चन्द्र (इसकी पाण्डुलिपि जैन सिद्धान्त भवन, आरामें है)

(उ) वड्ढमाणकहा-नरसेन (पाण्डुलिपि जयपुर में है)

संस्कृत में कवि पद्मनन्दि का वर्द्धमानचरित प्राप्य है। इसकी पाण्डुलिपि का प्रतिलिपिकाल वि. स. १५०० है। अतएव यह रचना अनुमानत: १२-१३वीं शताब्दी है। हिन्दी भाषा में कवि केशरी सिंह द्वारा रचित वर्द्धमानचरित भी प्रकाशनीय है। इसका रचनाकाल वि. सं. १८६१ है। काव्य की दृष्टि से यह चरितकाव्य महत्त्वपूर्ण है।

उक्त काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी में लिखित भगवान् महावीर सम्बन्धी आठ-दस पूजाएँ भी है। इसका संकलन भी अलग प्रकाशित होना चाहिए।

भगवान् महावीर सम्बन्धी लगभग तीस स्तोत्र प्राप्त हैं। इसका एक संकलन भी निर्वाणोत्सव के अवसर पर निकलना आवश्यक है।

अतएव वर्तमान में जैनतीर्थो और मूर्तियों की रक्षा के साथ तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा के समान ही आचार के प्रचार की आवश्यकता है।

प्राय: देखा जाता है कि जितना तत्त्वज्ञान का प्रचार हुआ है, उतना ही चारित्र शिथिल होता जा रहा है। अतएव ज्ञान के साथ चारित्र का उत्थान होना बहुत आवश्यक है। स्वाध्यायशालाओं की वृद्धि के साथ पाठक तैयार करना भी विद्वत्परिषद् का दायित्व है।

***

डॉ. दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य, बीना

(शिवपुरी-१९७३, द्वादशम् अधिवेशन के अध्यक्ष) का
अध्यक्षीय उद्बोधन्

धर्मतीर्थंकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमोनमः।
ऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये॥

भट्टाकलंकदेव, लघीयस्त्रय। १।

इस पावन पर्व श्री महावीरजिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के मंगलमय अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के बारहवें रजत जयन्ती अधिवेशन का आपने मुझे अध्यक्ष चुना, इसके लिए आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। लगता है कि आपने मेरी कमियों की ओर दृष्टिपात नहीं किया और केवल स्नेहवश इस दायित्वपूर्ण पद पर बिठा दिया है। इसे मैं आप सबका आशीर्वाद मानकर स्वीकार कर रहा हूँ। विश्वास है इस जोखिम भरे पद के निर्वहण में आप सभी का पूरा सहयोग मिलेगा।

दिवंगत संयमियों और विद्वानों को श्रद्धाञ्जलि

पिछला अधिवेशन सन् १९६८ में सागर (म. प्र.) में और नैमित्तिक अधिवेशन सन् १९७० में खतौली (उ. प्र.) में हुआ था। इन पांच वर्षों में हमारे बीच में अनेक पूज्य संयमियों तथा प्रतिष्ठित विद्वानों का वियोग हो गया। उनके वियोग से समाज की महती क्षति हुई है। संयमियों में क्षुल्लक पूर्णसागरजी महाराज और क्षुल्लक दयासागर जी महाराज की स्मृति अमिट रहेगी। पूर्णसागर जी महाराज ने दिगम्बर जैन संस्कृति और तत्त्वज्ञान के संरक्षण एवं सम्यग्ज्ञान हेतु दिल्ली में दिगम्बर जैन केन्द्रीय महासमिति की स्थापना में अथक प्रयत्न किया और उनके प्रवर्तन में निरन्तर अनेक वर्षों तक शक्तिदान किया था। क्षुल्लक दयासागर जी महाराज बहुत ही अच्छे वक्ता, लेखक और विचारक थे। लोकहित के लिए उनके हृदय में अपार करुणा थी। वियुक्त विद्वानों में अन्तिम क्षण तक वांगमय सेवा में निरत, इतिहास लेखक, महान ग्रन्थ समीक्षक पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' सरसावा, सिद्धान्तमहोदधि, तर्क रत्न, न्यायाचार्य, पं. माणिकचन्द जी कौन्दय (फिरौजाबाद) उ. प्र. महामनस्वी सूक्ष्म चिन्तक पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ जयपुर (राज.) सिद्धान्त मर्मज्ञ पण्डित इन्द्रलाल जी शास्त्री जयपुर अत्यन्त नैष्ठिक, सहृदय पण्डित अजितकुमार जी शास्त्री दिल्ली, यावज्जीवन समाजसेवी महोपदेशक पण्डित मक्खनलाल जी प्रचारक दिल्ली, जैन संघ मथुरा के यशस्वी प्रचारक पण्डित इन्द्रचन्दजी शास्त्री मथुरा और सदा समाजसेवा व्रती पण्डित रामरतन जी शास्त्री, एम. ए. दमोह (म. प्र.) समाज के अनुपम विद्वत्रत्न थे। इन मनीषियों ने अपने विचारों, लेखों, भाषणों और ग्रन्थों द्वारा समाज की जड़ता को दूर कर ज्ञानदान के स्तुत्य प्रयास किये हैं। हम इन वियुक्त पूज्य संयमियों और सारस्वतों के प्रति कृतज्ञभाव से नम्र श्रद्धाञ्जलि उनकी स्मृति स्वरूप अर्पित करते हैं।

पिछले अधिवेशन और कार्यों पर एक विहंगम दृष्टि

विद्वत्परिषद् के जन्म से ही मेरा सम्बन्ध रहा है। इसके जन्म की महत्वपूर्ण घटना है। सन् १९४४ में कलकत्ता में वीर शासन महोत्सव का विशाल आयोजन था। इस आयोजन के कार्यक्रमों में अंग्रेजी भाषा के विशेषज्ञों को ही प्राथमिकता दी गई थी। आयोजन में सम्मिलित समाज के विद्वानों का योगदान नहीं लिया गया था। यद्यपि वहाँ बहुसंख्यक मूर्धन्य विद्वान थे। इससे विद्वानों के स्वाभिमान को चोट पहुँची। उधर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में आयोजित अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के जैन विद्या विभाग से पठित भाषण में कुछ ऐसी स्थापनायें की गई थीं, जो दिगम्बर जैन मान्यताओं के प्रतिकूल थीं। इन दो कारणों से वहाँ एकत्रित नये पुराने सभी विद्वानों ने एक स्वर से अनुभव किया कि दिगम्बर जैन सिद्धान्तों के संरक्षण और विद्वानों में परस्पर सौहार्द एवं ऐक्य स्थापन के लिए उनका एक संगठन होना आवश्यक है। फलतः ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध स्वर्गीय पण्डित श्रीलालजी पाटनी अलीगढ़ की अध्यक्षता में 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्' की स्थापना की गई। उल्लेखनीय है कि परिषद् का शुभारम्भ कलकत्ता में ही जैन भवन में आहूत उस बैठक से हुआ, जो महोत्सव में पधारे उक्त भाषणकर्त्ता के साथ उनकी स्थापनाओं पर चर्चा करने के लिये आयोजित की गई थी। उपस्थित विद्वानों में अपूर्व उत्साह एवं उल्लास देखा गया था और सभी ने परिषद् की सार्थकता तथा आवश्यकता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया था।

इसका प्रथम अधिवेशन सन् 19४५ में कटनी में हुआ था, जिसमें जैन संस्कृति के संरक्षण तथा जैनधर्म के सम्यग्ज्ञान हेतु आत्मसमर्पक सुयोग्य विद्वानों का एक 'वीर संघ' बनाने का निश्चय हुआ था।

दूसरा अधिवेशन सन् १९४६ में मथुरा में किया गया। इस अधिवेशन में जैन साहित्य और इतिहास से अपरिचित लेखकों के गलत उल्लेखों एवं भूलों भ्रान्तियों का निरास करने के लिए एक विभाग की स्थापना का निर्णय हुआ था।

तीसरा अधिवेशन सन् १९४६ में सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में हुआ था। इसमें तत्कालीन चर्चा के विषय जीवट्ठाण संतपरूवणा के ६३वें सूत्र में 'संजद' पद के औचित्य निर्णयार्थ विद्वत्सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया गया, जो उसी वर्ष सागर में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था।

चौथे अधिवेशन की जो सन् १९४८ में बरुआसागर (झांसी) में बुलाया गया था, उसमें केन्द्रीय छात्रवृत्ति फण्ड स्थापित करने का निश्चय किया गया, जिससे विदेशों में जाकर शिक्षा लेने वाले और वहाँ जैनधर्म का प्रचार करने वाले प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति दी जा सके।

पांचवां अधिवेशन सोलापुर (महाराष्ट्र) में १९४९ में किया गया था। इस अधिवेशन में जैन झण्डे के स्वरूप पर विचार करके उसका रंग केशरिया आकर आयत चतुरस्त्र और प्रतीक लाल रंग से लिखा हुआ स्वास्तिक निर्धारण किया गया था।

छठे अधिवेशन में जो १९५३ में खुरई (म. प्र.) में हुआ था, पारित प्रस्ताव नं. ६ के द्वारा महर्षि कुन्दकुन्द, गृद्धपिच्छ, समन्तभद्र जैसे महानचार्यों की कृतियों को काटछांटकर उन्हें भ्रष्टरूप से छपान की मुनि क्षीरसागर की प्रवृत्ति पर क्षोभ प्रकट करते हुए समाज से इस प्रकार के साहित्य का प्रकाशन न करने के लिए अनुरोध किया गया था। इस प्रस्ताव का समाज पर सार्थक प्रभाव पड़ा था।

द्रोणगिरि (म.प्र.) में १९५५ में हुए सातवें अधिवेशन में सम्मिलित रथों को चलाने वालों के लिए सिंघई या सेठ पदवी देने पर रोक लगाई थी, जिसके फलस्वरूप वहाँ रथ चलाने वालों को कोई पद प्रदान नहीं किया गया था।

आठवां अधिवेशन सन् १९५८ में मढ़िया जी-जबलपुर (म.प्र.) में सम्पन्न हुआ था। इस अधिवेशन में नूतन मन्दिरों के अनावश्यक निर्माण प्रवृत्ति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए समाज से पुराने मन्दिरों, मूर्तियों की रक्षा तथा जीर्णोद्धार में द्रव्य का उपयोग करने का अनुरोध किया गया था। साथ ही ज्ञान दान, शास्त्र प्रकाशन आदि उपयोगी पुण्य कार्यों में द्रव्य को लगाने की प्रेरणा दी गई थी।

नवमें अधिवेशन में जो ललितपुर (उ. प्र.) में १९५९ में हुआ था, त्यागी व्रतियों से धन संग्रह की प्रवृत्ति से दूर रहने का अनुरोध, वेदिका शुद्धि आदि धार्मिक क्रियाओं की एक प्रामाणिक पुस्तक के निर्माण और परिषद् के रजिस्ट्रेशन का निश्चय किया था। परिषद् के सुयोग्य एवं कर्मठ मंत्री पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य द्वारा स्वयं उक्त पुस्तक निर्मित होकर दो बार श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो गई। परिषद्. का रजिस्ट्रेशन भी मध्यप्रदेश शासन से गत १९७० में हो चुका है।

दशम अधिवेशन १९६५ में सिवनी में हुआ था। इस अधिवेशन में गुरु गोपालदास जी वरैया स्मृति ग्रन्थ की योजना, मौलिक या सम्पादित कृति पर एक हजार रुपये के पुरस्कार की योजना और संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं के ज्ञाताओं को सदस्य बनाने के प्रस्ताव पारित किये गये थे। प्रसन्नता की बात है कि ये तीनों प्रस्ताव क्रियात्मक रूप पा चुके हैं। वरैया स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन तो इतना सुरूप और आकर्षक हुआ है कि सब ओर से उसका समादर हुआ है और दिल्ली में मनाई गई गुरुजी की जन्म शताब्दी चिरस्मरणीय रहेगी। पुरस्कार योजना के अन्तर्ग चार विद्वान और उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियां पुरस्कृत हो चुकी हैं। पांचवें विद्वान को उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति पर इसी रजत जयन्ती अधिवेशन में पुरस्कृत किया जा रहा है। इस योजना को मूर्तरूप देने का श्रेय श्रावक शिरोमणि दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी जैन और उनकी धर्मपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती रमारानीजी अध्यक्षा भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली को है। उन्हीं के अकल्प औदार्य से यह योजना सफल हो सकी है।

१९६८ में सागर (म.प्र) में हुए ग्यारहवें अधिवेशन की कई उपलब्धियां हैं। प्रस्ताव नं. ३ के द्वारा जैन पुरातत्त्व के संरक्षण और प्रकाशन का संकल्प लेते हुए उसे क्रियात्मक रूप देने के लिए दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्रों और सिद्धक्षेत्रों और वहां की प्रामाणिक सामग्री का सचित्र विवरण प्रकाशति करने का निश्चय किया गया था। प्रसन्नताकी बात है कि यह कार्य भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा द्रुतगति से हो रहा है। इसी अधिवेशन में प्रस्ताव नं. ५ के द्वारा भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के अवसर पर २५ पृष्ठों की सांस्कृतिका सामग्री के प्रकाशन का भी निश्चय किया गया था। इसके लिए बनाई गई उपसमिति के प्रधान लेखक डॉ. नेमीचन्द्र जी शास्त्री ने ''तीर्थकर महावीर'' नाम से उक्त सामग्री को तैयार कर पुस्तक का रूप भी दे दिया है, जो शीघ्र ही प्रेस को दे दी जावेगी।

विद्वत्परिषद के विगत अधिवेशनों के महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कतिपय कार्यों का यह संक्षिप्त विहंगावलोकन है। इनके अलावा शंका समाधान, तत्त्वगोष्ठियां, शिक्षण शिविर, शिक्षा सम्मेलन, श्रुत-सप्ताह जैसे अन्य कार्य भी विद्वत्परिषद् द्वारा सम्पन्न हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि विद्वत्परिषद् के जन्म से लेकर अब

तक गत २७ वर्षों में हुए सांस्कृतिक कार्यों की एक गौरवपूर्ण लम्बी श्रृंखला है, जिन पर हमें गर्व है और जिनका उल्लेख इस रजत जयन्ती के उत्सव पर आवश्यक होने से किया गया है।

विद्वान और समाज

विद्वान समाज का विशिष्ट अंग है। शरीर में जो स्थान शिर (उतमांग) का है वही समाज में विद्वान (ज्ञानवान) का है। यदि शरीर में शिर न हो या रुग्ण हो तो शरीर शरीर न रहकर धड़ हो जाएगा या उससे सार्थक जीवन की क्रिया नहीं हो सकेगी। सारे शरीर की शोभा भी शिर से ही है। अत: शिर और उसके उपांगों, आंख, नाक, कान आदि की रक्षा एवं चिन्ता सदा से की जाती है। विद्वान धर्म, दर्शन, इतिहास और श्रुत का निर्माण एवं सरंक्षण करके समाज तथा उसकी संस्कृति को सप्राण रखता है। यदि विद्वान न हो या वह चिन्तग्रस्त हो तो स्वस्थ समाज और उसकी उच्च संस्कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। पर दुर्भाग्य से इस तथ्य को समझा नहीं जाता। यही कारण है कि समाज में विद्वान की स्थिति चिन्तनीय और दयनीय है। किसी विद्यालय या पाठशाला के लिए विद्वान की आवश्यकता होने पर उससे व्यवसाय की मनोवृत्ति से बात की जाती है। संस्था संचालक उसे कम से कम देकर अधिक से अधिक काम लेना चाहता है। कुछ महीने पूर्व एक संस्था संचालक महानुभाव ने हमें विद्वान के लिए उसकी वांछनीय योग्यताओं का उल्लेख करते हुए लिखा। हमने उन्हें उत्तर दिया कि यदि उक्त योग्यता सम्पन्न विद्वान् के लिए कम से कम तीन सौ रुपये मासिक दिया जा सके तो विद्वान् भेज देंगे। परन्तु उन्होंने तीन सौ रुपये मासिक देना स्वीकार नहीं किया। फलत: वही विद्वान छह सौ रुपये मासिक पर अन्यत्र चला गया। कहा जाता है कि विद्वान् नहीं मिलते। विचारणीय है कि जो किसी धार्मिक शिक्षण संस्था में दश वर्ष धर्म दर्शन का शिक्षण लेकर विद्वान् बनें और बाद में उसे श्रुत सेवा के उपलक्ष्य में सौ डेढ़ सौ रुपये मासिक सेवा पारिश्रमिक दिया जाये तो वह आज के समय में उससे कैसे निर्वाह करेगा? काश! वह सद्गृहस्थ हो और दो चार बाल बच्चे हों तो वह श्रुत सेवा कर सकेगा या आर्थिक चिन्ता में ही घुलता रहेगा। अत: आज हमें इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर गंभीरता से विचारकर श्रुत सेवकों की परम्पराको हर प्रयत्न से जीवित रखना है। यदि हमने इसकी उपेक्षा की तो अगले दश वर्ष में ये टिमटिमाते दीपक भी बुझ जावेंगे और इस दिशा में कोई भी आना पसंद नहीं करेगा, जबकि उन्हें लौकिक विद्या के क्षेत्र में विविध मार्गों में प्रवेश कर भरपूर आर्थिक लाभ होगा। इससे संस्कृति की जो क्षति होगी उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

विद्वान का दायित्व

विद्वान को यह सदा ध्यान रखना आवश्यक है कि वह समाज से अलग नहीं है-वह उसका ही अभिन्न अंग है। बिना शिर के जैसे संज्ञा हीन धड़ कहा जाता है उसी प्रकार बिना धड़ के शिर भी चेतनाशून्य होकर अपना अस्तित्व खो देता है। अत: दोनों का अभिन्नत्व भी जीवनक्रिया का सम्पादक है। ठीक इसी प्रकार बिना विद्वान के समाज और बिना समाज के विद्वान भी अपना अस्तित्व नहीं रख सकते हैं। फिर जिस समाज में उसने जन्म लिया है उसके प्रति उसका कृतज्ञ भाव से बहुत बड़ा कर्त्तव्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, और न उसे भुलाया ही जा सकता है। संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य के संरक्षण का जिस तरह समाज का परमावश्यक कर्तव्य है उसी तरह विद्वान का भी उनके संरक्षण का परम दायित्व है। इस सत्य को हमें नहीं भुलाना है। इस पर उस श्रेष्ठ परम्परा को आगे बढ़ाने का दायित्व है, जिस परम्परा

को आचार्यों के बाद आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी, पण्डित जयचन्द जी, गुरु गोपालदासजी, वर्णी गणेशप्रसाद जी जैसे विद्वद्रत्नों ने जीवनव्यापी कष्टों को सहते हुए त्यागवृत्ति के साथ हम तक पहुंचाया है। बिना त्याग के श्रुतसेवा की ही नहीं जा सकती। हमारा विश्वास है कि श्रुतसेवा का लक्ष्य और उसकी ओर प्रवृतित रहने पर विद्वान धनी न बन सके, तो भूखा भी नहीं रह सकता। जो श्रुत केवलज्ञान दाता और परमात्मपद दाता है उसके उपासक आर्थिक कष्ट से सदा ग्रस्त नहीं रह सकते। सारस्वत का ध्येय स्वामी समन्तभद्र के शब्दों में "लोक में व्याप्त जड़ता और मूढ़ता को दूर कर जिनशान का प्रकाश करना" है। भौतिक उपलब्धियां तो उसे अनायास प्राप्त होंगी। सरस्वती का उपासक यों अपरिग्रह में ही सरस्वती की अधिक सेवा करता और आनन्द उपलब्ध करता है।

समस्याएँ

यों तो जीवन ही समस्याओं से घिरा हुआ है। कोई न कोई समस्या जीवन में खड़ी हुई मिलती है। किन्तु धीर और बुद्धिमान उन समस्याओं पर काबू पालेता है। आज देश के सामने कितनी समस्यायें हैं पर राष्ट्रनेता उन्हें देर सबेर हल कर लेते हैं। हमारी समाज में भी अनेक समस्यायें हैं। उनमें तीर्थक्षेत्रों की समस्या प्रमुख है। यदि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों समाजें जो भगवान महावीर और उनके पूर्ववर्ती ऋषभादि तेईस तीर्थकरों की उपासिका हैं, आगामी भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में समानता के आधार पर तीर्थक्षेत्रों की समस्या को सुलझा लें तो दोनों में घृणा और भय का भाव दूर होकर परस्परिक सौहार्द सम्भव है और उस दशा में तीर्थों का विकास तथा समृद्धि की सम्भावना है, जहां विश्व के लोग भारत भ्रमण पर आते हैं और पुन: अपने देश जाने पर विश्व को उनका परिचय दे सकते हैं।

यहां हमें मुख्यतया विद्वानों की समस्याओं का उल्लेख अभीष्ट है। उनकी समस्यायें साम्पत्तिक या अधिकारिक नहीं है। वे केवल वैचारिक हैं। तीन दशक पूर्व दस्सा पूजाधिकार, अन्तर्जातीय-विजातीय विवाह जैसी समस्यायें थीं, जो समय के साथ हल होती गयी हैं। दस्साओं को समान रूप से मन्दिरों में पूजा का अधिकार मिल गया। अन्तर्जातीय और विजातीय विवाह भी जो शास्त्र सम्मत हैं और अनार्यप्रवृत्ति नहीं है, होने लगे हैं और जिन पर अब कोई रोक नहीं रही। स्वामी सत्यभक्त (पण्डित दरबारीलालजी) वर्धा द्वारा की गई जैनधर्म के सर्वज्ञतादि सिद्धान्तों की मीमांसा भी दिगम्बर जैन संघ द्वारा प्रकाशित 'विरोध परिहार' जैसे ग्रन्थों के द्वारा उत्तरित हो चुकी हे। डॉ. हीरालाल जी द्वारा उठाये गये प्रश्न भी 'अनेकान्त' (मासिक) आदि द्वारा समाहित किये गये हैं।

हमें स्वर्गीय पण्डित देवकीनन्दजी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सुनाये गये उस युग की याद आती है जब गुरु गोपालदासजी को समाज के भीतर और बाहर जानलेवा जबर्दस्त टक्कर लेनी पड़ती थी, जिसे वे बड़ी निर्भयता और ज्ञानवैभव से लेते थे। उस समय संकीर्णता और अज्ञान ने समाज को तथा घृणा और असहनशीलता ने आर्य समाज को बलात जकड़ रखा था। गुरुजी ने दोनों मोर्चों पर शानदार विजय प्राप्त की थी। शास्त्रार्थ संघ अम्बाला का, जो अब दिगम्बर जैन संघ मथुरा के नाम से प्रसिद्ध है, उदय संकीर्णता, अज्ञान, घृणा, असहनशीलता जैसे कुण्ठाओं के साथ संघर्ष करने के लिए ही हुआ था और इस दिशा में उसने महत्वपूर्ण कार्य किया है। वेद विद्या विशारद पण्डित मंगलसेनजी अम्बाला, विलक्षण मेधावी पण्डित राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ जैसे समर्थ

विद्वान् सेनानियों ने आर्य समाज के साथ शास्त्रार्थ करके जैनधर्म के सिद्धान्तों की रक्षा ही नहीं की, स्वामी कर्मानन्दजी जैसे आर्यसमाजी महाशास्त्रार्थी विद्वान की अवस्था को जैनधर्म में परिणत भी किया था।

आज भी कुछ सैद्धान्तिक मतभेद की समस्यायें हैं, जिनका होना अस्वाभाविक नहीं है। आचार्यों तक में सैद्धान्तिक मतभेद रहा है। आचार्य वीरसेन ने ऐसे अनेक आचार्य मतभेदों का धवला में समुल्लेख किया है किन्तु दुर्भाय से आज कुछ खिचाव पाया जाता है। वह नहीं होना चाहिये। वाणी और लेखनी दोनों में संयम वांछनीय है। वीतराग कथा में असंयम का स्थान तो है ही नहीं। जब हम अपनी शास्त्र सम्मत बात को दूसरे के गले में उतारने का प्रयास करें तो आग्रह और आग्रह से चिपटे रोष, अहंकार एवं असद्भाव से मुक्त होकर ही उसकी चर्चा करें। दोनों पक्ष स्याद्वादी हैं उनहें निरपेक्ष आग्रह तो होना ही नहीं चाहिये। यह गौरव और प्रसन्नता की बात है कि ये दोनों पक्ष विद्वत्परिषद् में समाहित हैं और दोनों ही उसका समादर करते हैं हमरा उनसे नम्र निवेदन है कि वे विद्वत्परिषद का जिस प्रकार गोरव रखकर आदर करते हैं उसी प्रकार वे समग्र श्रुत की उपादेयता का भी गौरव के साथ सम्मान करें। श्रुत चार अनुयोगों-प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग में विभक्त हैं। समन्तभद्रस्वामी ने इनका समान रूप में विवेचन किया है और चारों की आस्था-भक्ति को सम्यग्ज्ञान का तथा सम्यग्ज्ञान को मुक्ति का कारण बतलाया है। ऐसी स्थिति में अनुयोग विशेष पर बल देकर दूसरे अनुयोगों की अपेक्षा से विवेचन करने पर उसकी प्रधानता हो जाय और अन्य की अप्रधानता। पर उनकी उपेक्षा न की जाय-विवेचन में उन्हें भी स्थान मिलना चाहिये। इसीलिए ज्ञेयतत्त्व को समझने के लिए प्रमाण के अतिरिक्त द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयो और निक्षेपों का तथा उपदेय को ग्रहण करने के लिए व्यवहार और निश्चश्य नयों का आगम में प्रतिपादन है। प्रथम को दर्शन शास्त्र का और दूसरे को अध्यात्मशास्त्र का प्रतिपादन कहा गया है। महर्षि कुन्दकुन्द ने इन दोनों शास्त्रों का निरूपण किया है। उनके पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ और प्रवचनसार मुख्यत: दर्शन शास्त्र के ग्रन्थ हैं तथा नियमसार एवं समयसार अध्यात्म शास्त्र के। द्वादशांग श्रुत इन दोनों का समुच्चय है। दर्शनशास्त्र जहां साधन है वहां अध्यात्मक शास्त्र साध्य है और साध्य की उपलब्धि बिना साधन के संभव नहीं है। हाँ, साध्य के उपलब्ध हो जाने पर साधन का परित्याग या गौणता हो जाय, यह अलग बात है। अग्निज्ञान हो जाने पर धूमज्ञान अनावश्यक हो जाता है। पर अग्निज्ञान के लिए धूमज्ञान की अनिवार्यता अपरिहार्य है।

जैनधर्म वीतराग विज्ञान धर्म है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। किन्तु वह अपने इस नाम से लक्ष्य निर्देश भर की अभिव्यक्ति करता है। उसमें लक्ष्य प्राप्तिके उपकरणों का समावेश नहीं है, ऐसा न कहा जा सकता है और न माना जा सकता है। किसी ग्रन्थ का नाम 'मोक्षशास्त्र' है। वह केवल मोक्ष का ही प्रतिपादक नहीं होता। उसमें उसके विरोधी-अविरोधी सभी आवश्यक ज्ञेय और उपादेय तत्त्वों का विवेचन होता है। स्वयं 'समयसार' में शुद्ध आत्मा का प्रतिपादन करने के लिए ग्रन्थकार कुन्दकुन्द महाराज ने बंध, आस्रव, संवर, निर्जरा आदि का भी निरूपण किया है। इन्हीं बन्धादि का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन 'षट्खण्डागम' में आचार्य भूतबली-पुष्पदन्त और 'कषायप्राभृत' में आचार्य गुणधर ने किया है तथा उन्हीं के आधार पर गोम्मटसारादि ग्रन्थ रचे गये हैं।

धर्म का आधार मुमुक्ष और सद्गृहस्थ दोनों हैं तथा सद्गृहस्थों के लिए संस्कृति और तत्त्वज्ञान आवश्यक है और इन दोनों की स्थिति के लिए वांगमय, तीर्थ, मंदिर, मूर्तियां, कला, पुरातत्त्व और इतिहास अनिवार्य

है। इसके बिना समाज की कल्पना और समाज के बिना धर्म की स्थिति सम्भव ही नहीं। मुमुक्ष धर्म भी गृहस्थधर्म पर उसी प्रकार आधारित है। जिस प्रकार खम्भों पर प्रासाद निर्भर है। मुमुक्षु को मुमुक्षु तक पहुंचाने के लिए आरम्भ में दर्शनशास्त्र का विमर्श आवश्यक है। उसके बिना उसकी नींव मजबूत नहीं हो सकती। यह हमें नहीं भूलना है कि लक्ष्य को समझने और पाने के लिए उसकी ओर ध्यान और प्रवृत्ति रखना नितान्त आवश्यक है। दर्शन शास्त्र को सहस्रों बार ही नहीं कोटि-कोटि बार भी पढ़ा-सुना है फिर भी लक्ष्य नहीं पा पाये। तात्पर्य यह है कि दर्शन शास्त्र और अध्यात्म शास्त्र दोनों का चिन्तन जीवन शुद्धि के लिए परमावश्यक है। इनमें से एक की भी उपेक्षा करने पर हमारी वही क्षति होगी, सिजे आचार्य अमृतचन्द्र ने निम्न गाथा में उद्धरणपूर्वक बतलाया है-

जइ जिणमयं पवज्जह तो मा ववहार-णिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

-आत्मख्याति, स. सा., गाथा १२

'यदि जिनशासन की स्थिति चाहते हो, तो व्यवहार और निश्चय को छोड़ने से तत्त्व (अध्यात्म) का विनाश हो जायेगा।'

यह सार्थ चेतावनी ध्यातव्य है। स्वामी अमृतचन्द्र ने उभयनय के अविरोध में ही समयसार की उपलब्धि का निर्देश किया है-

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥४॥

'उभयनय के विरोध को दूर करने वाले 'स्यात्' पद से अंकित जिनशासन में जो ज्ञानी स्वयं निष्ठ हैं वे अनव-नवीन नहीं, एकान्त पक्ष से अखण्डित और अत्यन्त उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप समयसार को शीघ्र देख (पा) ही लेते हैं।'

अमृतचन्द्र ने तीन सौ वर्ष पूर्व भट्ट अकलंकदेव ने ऋषभ आदि से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकरों को धर्मतीर्थकर्ता और स्याद्वादी कहकर उन्हें विनम्रभाव से नमस्कार किया था तथा उससे स्वात्मोपलब्धि की अभिलाषा की है। जैसा कि भाषण के आरम्भ में किये गये मंगलाचरण से जो उन्हीं के लघीयस्त्रयका मंगलश्लोक है, स्पष्ट है। इससे हम सहज ही जान सकते हैं कि स्याद्वाद तीर्थंकर वाणी है- उन्हीं की वह देन है। हम किसी आचार्य या विद्वान का आविष्कार नहीं है। वह एक तथ्य और सत्य है, जिसे इंकारा नहीं जा सकता। निश्चयनय से आत्मा का प्रतिपादन करते समय उस परद्रव्य का भी विश्लेषण करना आवश्यक है, जिससे उसे मुक्त करना है। यदि बद्ध परद्रव्य का विवेचन, जो षट्खण्डागमादि आगम ग्रन्थों में उपलब्ध है, न किया जाय और केवल आत्मा का ही कथन किया जाय, तो जैनदर्शन के आत्म प्रतिपादन में और उपनिषदों के आत्म प्रतिपादन में कोई अन्तर नहीं रहेगा।

एक बार न्यायालंकार पण्डित वंशीधरजी ने कहा था कि एक वेदान्ती विद्वान ने गुरुजी से प्रश्न किया था कि जैनदर्शन में आत्मा को सदा शुद्ध नहीं माना, संसारावस्था में अशुद्ध और मुक्तावस्था में शुद्ध दोनों माना

गया है। पर वेदान्त में उसे सदा शुद्ध स्वीकार किया है। जिस माया की उस पर छाया है वह मिथ्या है। लेकिन जैनदर्शन में आत्मा जिस पुद्‌गल से बद्ध, एतावता अशुद्ध है वह एक वास्तविक द्रव्य है। इससे संयुक्त होने से आत्मा में विजातीय परिणमन होता है। यह विजातीय परिणमन ही उसकी अशुद्धि है। इस अशुद्धि का जैन दर्शन में विस्तार से विवेचन है। उससे मुक्त होने के लिए ही संवर, निर्जरा आदि तत्त्वों का विवेचन है। तात्पर्य यह है कि जिन शासन जब स्वयं स्याद्वादमय है, तो उसमें प्रतिपादित आत्मस्वरूप स्याद्वादात्मक होना ही चाहिये। इस तरह दोनों नयों से तत्त्व को समझने और प्रतिपादन करने से ही तत्त्वोपलब्धि एवं स्वात्मोपलब्धि प्राप्य है।

साहित्यिक प्रवृत्तियां और उपलब्धियां

आज से पचास वर्ष पूर्व जैन साहित्य सबको सुलभ नहीं था। इसका कारण जो भी रहा हो। यहां साम्प्रदायिकता के उन्माद ने कम उत्पाद नहीं किया। उसने बहुमूल्य सहस्त्रों ग्रन्थों की होली खेली है। उन्हें जलाकर पानी गर्म किया है और समुद्रों एवं तालाबों में उन्हें डुबा दिया गया है। सम्भव है उक्त भय से हमारे पूर्वजों ने बचे-खुचे वांगमय को निधि की तरह छिपाया हो या दूसरों के हाथ पड़ने पर अविनय का उन्हें भय रहा हो। प्रकाशन के साधन उपलब्ध होने पर संभवत: उसी भय के कारण उन्होंने छापने का भी विरोध किया जाना पड़ता है, परन्तु युग के साथ चलना भी आवश्यक होता है। अतएव कितने ही दूरदर्शी समाज सेवकों ने उस विरोध का सामना करके ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य किया। फलत: आज जैने वांगमय के हजारों ग्रन्थ प्रकाश में आ गये हैं। षट्‌खण्डागम, कषायप्राभृत, धवला-जयधवलादि टीकायें जैसे सिद्धान्त ग्रन्थ भी छप गये हैं और जनसामान्य भी उनसे लाभ ले रहा है। इस दिशा में श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र जैन साहित्योद्धारक फण्ड द्वारा डॉ. हीरालालजी उनके सहयोगी पण्डित फूलचन्द जी शास्त्री, पण्डित हीरालाल जी शास्त्री और पण्डित बालचन्दजी शास्त्री के सम्पादन अनुवादादि के साथ षट्‌खण्डागम के १६ भागों का प्रकाशन उल्लेखनीय है। सेठ मणिकचन्दजैन ग्रन्थमाला से स्वर्गीय पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने कितने ही वांगमय का प्रकाशन कर उद्धार किया है। जीवराज ग्रन्थमाला से डॉ. ए.एन. उपाध्ये ने तिलोयपण्णत्ति आदि अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित कराया है। स्वर्गीय पण्डित जुगलकिशोरजी मुख्तार के वीर सेवा मन्दिर दिल्ली और वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट वाराणसी से कई महत्व के ग्रन्थ प्रकट हुए हैं। श्री गणेशप्रसादजी वर्णी ग्रन्थमाला का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जिस प्रकाशन संस्था से सर्वाधिक जैन वांगमय का प्रकाशन हुआ, वह है भारतीय ज्ञानपीठ की मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला। इस ग्रन्थमाला से सिद्धिविनिश्चय जैसे अनेक दुर्लभ ग्रन्थ सामने आये हैं और आ रहे हैं। इसका श्रेय जहां स्वर्गीय पण्डित महेन्द्रकुमारजी, पण्डित कैलाशचन्द जी, पण्डित फूलचन्द जी, पण्डित हीरालाल जी आदि उच्च विद्वानों को प्राप्त है वहां ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शान्तिप्रसाद जी और अध्यक्ष श्रीमती रमारानीजी को भी है। उल्लेख है कि श्री जिनेन्द्रवर्णी द्वारा संकलित-सम्पादित जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष (२ भाग) का प्रकाशन भी स्वागत योग्य है। इस प्रकार पिछले पचास वर्षों में साहित्यिक प्रवृत्तियां उत्तरोत्तर बढ़ती गई हैं, जिसके फलस्वरूप बहुत सा जैन वांगमय सुलभ एवं उपलब्ध हो सका है।

इधर डॉ. नेमीचन्द जी शास्त्री विद्यादान और साहित्य सृजन में जो असाधारण योगदान कर रहे हैं वह मुक्तकण्ठ से स्तुत्य है। लगभग डेढ़ दर्जन शोधार्थी विद्वान् आपके निर्देशन में जैन विद्या के विभिन्न अंगों पर पी-एच. डी. कर चुके हैं और लगातार क्रम जारी है। लोकविजय यंत्र, आदिपुराण में प्रतिपादित भारत

संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान जैसे अनेक ग्रन्थ रत्न आपकी रत्नगर्भा सरस्वती ने प्रसूत किये हैं। पण्डित पन्नालाल जी साहित्याचार्य की भारती ने तो भारत के प्रथम नागरिक सर्वोच्च पदासीन राष्ट्रपति की बराह बेंकट गिरि तक को प्रभावित कर उन्हें राष्ट्रपति सम्मान दिलाया और भारतीय वांगमय को समृद्ध बनाया है। आदिपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, उत्तरपुराण, गद्यचिन्तामणि, जीवन्धरचम्पू, पुरुदेवचम्पू, तत्त्वार्थसार, समयसार, रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि अर्धशती ग्रन्थ राशि आपके द्वारा अनुदित एवं सम्पादित हुई है। डा/देवेन्द्रकुमारजी रायपुर का 'अपभ्रंश' भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियां, डॉ. हीरालाल जैन का 'णायकुमारचरिउ', डॉ. ए.एन. उपाध्ये का गीतवीतराग, पण्डित कैलाशचन्दजी शास्त्री का नयचक्र पं. अमृतलाल जी शास्त्री का चन्द्रप्रभचरित, डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल का 'राजस्थान के जैन संत : कृतित्व और व्यक्तित्व', श्री श्रीचन्दजी जैन उज्जैन का 'जैन कथानकों का सांस्कृतिक अध्ययन' आदि नव्य भव्य रचनाओं ने जैन वांगमय के भण्डार की अभिवृद्धि की है। डॉ. हरीन्द्रभूषण जी उज्जैन के निर्देशन में दो विद्वानोंने जैन विद्या पर पी-एच. डी. की है। हमें आशा है जैन विद्या और जैन वांगमय के आदर का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा।

जैन शिक्षण संस्थायें

आज से पचास वर्ष पूर्व एकाध ही शिक्षण संस्था थी। गुरु गोपालदास जी वरैया और पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी के धारावाही प्रयत्नों से सौ से भी अधिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई। मुरैना विद्यालय और काशी का स्याद्वाद महाविद्यालय उन्हीं में से है। मुरैना से जहां आरम्भ में सिद्धान्त के उच्च्व विद्वान तैयार हुए। वहां काशी से न्याय, साहित्य, धर्म और व्याकरण के ज्ञाता तो हुए ही, अंग्रेजी के भी विद्वान निकले हैं। यह गर्व की बात है कि आज समाज में जो बहुसंख्यक उच्च्व विद्वान हैं वे इसी विद्यालय की देन है। वस्तुत: इसका श्रेय पण्डित कैलाशचन्द जी शास्त्री को है। जो विद्यालय के पर्यायवाची माने जातेहैं। सागर के गणेश विद्यालय की भी समाज को कम देन नही है। इसने सैकड़ों बुझते दीपकों में तेल और बत्ती देकर उन्हें प्रज्वलित किया है।

पर आज ये शिक्षण संस्थायें प्राणहीन सी हो रही है। इसका कारण मुख्यत: आर्थिक है। यहां से निकले विद्वानों की खपत समाज में अब नहीं केबराबर है और है भी तो उन्हें श्रुतसेवा का पुरस्कार अल्प दिया जाता है। अत: छात्र अब समाज के बाजार में उनकी खतप कम होने से दूसरे बाजारों को टटोलने लगे हैं और उनमें उनका माल ऊँचे दामों पर उठने लगा है। इससे विद्वानों का ह्रास होने लगा है। फलत: समाज और संस्कृति को जो क्षति पहुंचेगी उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। अत: समाज के नेताओं को इस दिशा में गम्भीरता से विचार करना चाहिये। यदि तत्परता से तुरन्त विचार न हुआ तो निश्चय ही हमारी हजारों वर्षों की संस्कृति और तत्त्वज्ञान की रक्षा के लिए संकट की स्थिति आ सकती हे।

विद्वत्परिषद् का भावी कार्यक्रम

विद्वत्परिषद् के साधन सीमित हैं और उसके चालक अपने-अपने स्थानों पर रहकर दूसरी सेवाओं में संलग्न हैं। उन आवश्यक सेवाओं से बचे समय और शक्ति का ही उत्सर्ग वे समाज, साहित्य और संगठन में करते हैं। अत: हमें अपनी परिधि के भीतर आगामी कार्यक्रम तय करना चाहिये।

हमारा विचार है कि परिषद् को निम्न तीन कार्य हाथ में लेकर उन्हें सफल बनाना चाहिये।

१. जैन विद्या फण्ड की स्थापना।

२. भगवान महावीर की २५००वीं निर्वाण शती पर सेमिनार।

३. ग्रन्थ प्रकाशन।

१. पूज्य वर्णीजी के सभापत्य में १९४८ में परिषद ने एक केन्द्रीय छात्रवृत्ति फण्ड स्थापित करने का प्रस्ताव किया था, जहां तक हमें ज्ञात है, इस प्रस्ताव को क्रियात्मक रूप नहीं मिल सका है। आज इस प्रकार के फण्ड की आवश्यकता है। प्रस्तावित फण्ड को 'जैन विद्या फण्ड' जैसा नाम देकर उसे चालू किया जाये। यह फण्ड कम से कम एक लाख रुपये का होना चाहिये। इस फण्ड से-

(क) आर्थिक स्थिति से कमजोर विद्वानों के बच्चों को सम्भवं वृत्ति दी जाये।

(ख) उन योग्य शोधार्थियों को भी वृत्ति दी जाये तो जैन विद्या के किसी अंग पर किसी विश्वविद्यालय में शोध कार्य करें।

(ग) शोधार्थी के शोध प्रबन्ध के टंकन या शुक्ल या दोनों के लिए सम्भव मात्रा में आर्थिक साहाय्य किया जाये।

२. भगवान महावीर की २५००वीं निर्वाण शती सारे भारतवर्ष में व्यापक पैमाने पर मनाई जायेगी। इसमें विद्वत्परिषद् के सदस्य व्यक्तिश: योगदान करेंगे ही, परिषद् भी एक साथ अनेक स्थानों पर अथवा भिन्न-भिन्न समयों में अनेक विश्वविद्यालयों में सेमिनारों (संगोष्ठियों) का आयोजन करे। इन सेमिनारों में जैन एवं जैनेतर विद्वानों द्वारा जैन विद्या की एक निर्णीत विषयावलि पर शोधपूर्ण निबन्ध पाठ कराये जायें। इन सेमिनारों को आज अपना महत्व है और उनमें विद्वान रुचिपूर्वक भाग लेंगे।

३. आगामी तीन वर्षों की अवधि के लिए एक ग्रन्थ प्रकाशन की योजना बनायी जाय। इस योजना के अन्तर्गत 'तीर्थंकर महावीर' ग्रन्थ का तो प्रकाशन हो ही, उसके अतिरिक्त तीन अप्रकाशित संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के ग्रन्थों या भगवान महावीर सम्बन्धी नयी मौलिक रचनाओं का प्रकाशन किया जाये।

यदि अगले तीन वर्षो में परिषद् ये तीन कार्य कर लेती है तो वह संस्कृति की एक बहुत बड़ी सेवा कही जायेगी।

शिवपुरी और उसकी गरिमा

विद्वत्परिषद् की रजत जयन्ती अधिवेशन जिस शिवपुरी में श्री महावीर जिन बिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पुण्यावसर पर हो रहा है उसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गरिमा है। भारतीय स्वतंत्रता के अमर सेनानी वीर तात्या टोपे को यहीं फांसी हुई थी। उनके अमर बलिदान का यह पुण्य स्थल है। खण्डेलवालवंशीय दानवीर सिंघई मोहनदास और उनके परिवार ने १७०३ में बाबन कुण्डों से युक्त नन्दीश्वरद्वीप की रचना करके इसकी सांस्कृतिक गरिमा भी स्थापित की और अब भाई नेमीचन्द जी गोंदवालों तथा उनके परिवार द्वारा महावीर जिनालय एवं सम्बद्ध अन्य संस्थान निर्मित होकर उस गरिमा में चार चांद लगा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि म. प्र. की सरकार द्वारा जो प्राचीन मूर्ति संग्रहालय स्थापित है उसमें बहुत सी जैन मूर्तियां

संग्रहीत एवं सुरक्षित हैं। इसके लिए म. प्र. शासन निश्चय ही बहुमूल्य पुरातत्व संरक्षण के लिए धन्यवादर्ह है। यहां के पूर्व कलेक्टर श्री रामबिहारीलालजी भी कम बधाई के योग्य नहीं हैं, जिन्होंने अपने निसर्गज पुरारतत्व प्रेम से एस संग्रहालय को जन्म दिया। यहां का मनीकुण्ड, भदैया कुण्ड और कोलारस की प्राचीन विशाल खड्गासन मूर्तियां शिवपुरी आने वालों के लिए आकर्षण की वस्तुयें हैं। विद्वत्परिषद् के आकर्षण के लिए ये वस्तुयें तो रहीं हैं, भाई नेमीचन्द जी और सुहृदय पण्डित परमेष्ठीदास जी की प्रेरणा और सौहार्द भी आकर्षक रहे हैं। विद्वत्परिषद् इन सबसे लाभान्वित हुई है।

अन्त में आप सबके प्रति नम्रतापूर्वक आभार प्रकट करता हूं, जो आपने धैर्यपूर्वक मेरे भाषण को सुना।

"जयतु जैनं शासनम्"

अच्छी तरह सोचना बुद्धिमता है, अच्छी योजना बनाना उत्तम है और अच्छी तरह काम को पूरा करना सबसे अच्छी बुद्धिमता है।

– अज्ञात

* * *

पंच महाभूतों से बनी हुई वस्तुओं से प्राणी श्रेष्ठ है। प्राणियों में बुद्धिजीवी उत्तम है, बुद्धि से काम करने वालों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में भी वे श्रेष्ठ हैं जिनकी बुद्धि जाग्रत है और जो उसका सदुपयोग करते हैं।

– अज्ञात

* * *

पं. नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर

श्री पंचकल्याणक जिनबिंब एवं गजरथ महोत्सव, बीना (बारहा) जि. सागर म. प्र.
(श्री भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का १३वां अधिवेशन)
का
अध्यक्षीय भाषण

श्रीमत्परमगंभीर स्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

मंगलमय अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधु-पंचपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनायतन और जिन चैत्य को नमस्कार कर मैं वर्तमान जैन शिक्षा एवं जैन विद्यालयों के प्रवर्तक स्व. गुरुणांगुरु पं गोपालदासजी बरैया एवं पूज्यपाद श्री गणेशप्रसादजी वर्णी का स्मरण करता हूं और स्याद्वादविद्या के अग्रगण्य दिवंगत विद्वान न्यायाचार्य पं. माणिकचन्दजी, सिद्धांतमहोदधि पं. बंशीधरजी, व्याख्यानवाचस्पति पं. देवकीनंदन जी, न्यायशास्त्र के उद्भट विद्वान पं. जीवंधरजी आदि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर दि. २-११-१९४४ को कलकत्ता में स्थापित भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के उद्देश्य (जैन शासन का संरक्षण, प्रचार और विद्वानों की सामयिक उन्नति) की सफलता हेतु अपने को समर्पित करने वाले वर्तमान वरिष्ठ विद्वद्गण की सेवाओं का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। आशा है जैन संस्कृति के गौरव पूर्ण अतिशय क्षेत्र बीना (बारहा) में हो रही श्री पंच कल्याणक जिनबिंव प्रतिष्ठा और गजरथमहोत्सव के अवसर पर विद्वत्परिषद् के 13 वें अधिवेशन का यह भव्य आयोजन आप सर्व उपस्थित धर्मवत्सल महानुभावों की सहानुभूति एवं सहयोग से सफलता पूर्वक संपन्न होगा और लगभग 600 विद्वानों का यह विशाल संगठन सबल और सुदृढ़ बना रहेगा।

भारतीय संस्कृति और उसका महत्व

हमें गौरवान्वित होना चाहिए कि अन्य संस्कृतियाँ उषा की तरह आई और संध्या की तरह चली गई, किन्तु आँधियों और तूफानों के बीच से गुजरती दुनिया में भारतीय संस्कृति और उसकी श्रमण धारा आज भी अटल है। इस संस्कृति के आध्यात्मिक आदर्श को कायम रखने वाले भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर और आचार्य कुन्दकुन्द, समंतभद्र आदि दि. जैन श्रमण हैं, जिन्होंने प्राणीमात्र के कल्याण के लिये अहिंसा, अनेकांत, स्याद्वाद और अपरिग्रह का मार्ग बतलाया। उन्होंने केवल मनुष्य जाति के ही नहीं, वरन् समस्त प्राणियों के विकास का माध्यम अहिंसा मानकर उसे स्वयं आरंभ कर परिवार, जाति समाज और राष्ट्र को विश्व के रूप में विस्तृत कर सबके हृदय में आत्मीयता को जाग्रत किया और उससे विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

यह समन्वय, समभाव और सहिष्णुता का परिणाम है कि संघर्ष के बावजूद वैदिक और जैन सभी इस देश में एक साथ रह रहे हैं। जैन दर्शन में जनसाधारण को जीवहिंसा से बचाने के लिये शारीररिक धरातल

पर आचार के अन्तर्गत अहिंसा और चिन्तकों एवं विचारकों को हिंसा कार्य से बिरत करने के लिये विचार के अंतर्गत अनेकांत का महत्व प्रदर्शित किया गया है। भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण-महोत्सव के अवसर पर इनकी खूब चर्चा हो चुकी है।

धर्म प्रचार की जिम्मेवारी

तीर्थंकरोपदिष्ट सिद्धान्तों को जीवन में उतारते हुये देश विदेश में आधुनिक साधनों द्वारा इनका अधिकाधिक प्रचार कने की जिम्मेवारी वर्तमान में जैन विद्वानों की है, जिन्हें भगवान महावीर की विराट विरासत को लेकर स्व. वेरिस्टर चंपतरायजी के समान सुयोग्य और संयमी बनते हुये यह कार्य करना है। इस समय आधुनिक प्रगतिशील विद्वानों की कमी नहीं है, जो विश्वविद्यालयों और कालेजों में ऊंचे वेतन पर कार्यरत हैं। देश के अतिरिक्त विदेश में भी कतिपय विद्वान जैन सिद्धांतों के प्रचार प्रसार हेतु भ्रमण करने में सक्षम हैं। अभी ऐसे एक दो विद्वानों ने कुछ उत्साह दिखलाया है।

पंडित वर्ग की कमी और उपाय

वर्तमान में यदि कोई कमी हुई तो जैन सिद्धांत के मर्मज्ञ पंडित वर्ग की, जो समाज के अंतर्गत शिक्षा संस्थाअें में अध्यापन, उपदेश एवं क्रियाकांड में निष्णात थे। अब संस्थाओं में ऐसे पंडित वर्ग का जो पद रिक्त होता है उसकी पूर्ति नहीं हो पाती इन पदों की पूर्ति के लिये मध्यप्रदेश महावीर ट्रस्ट की ओर से नये विद्वान तैयार करने की घोषणा करने और उचित छात्रवृति देने पर भी सफलता न मिलने का कारण समाज के मन में और बजट में अत्यल्प वेतन देने की भावना है। इन शिक्षा संस्थाओं में ३५-४० वर्ष पूर्व जैसा जैन सिद्धांत, न्याय, व्याकरण और साहित्य का अध्ययन अध्यापन होता था, अब नहीं होता। शोचनीय आर्थिक स्थिति वाले छात्र-छात्रालयों में अनपेड रूप से प्रविष्ट होकर आजीविका पाने के उद्देश्य से लौकिक स्कूल कालेजों में शिक्षण लेते हुये, बिना रुचि, विद्यालयों में संस्कृत विषयों का अध्ययन करते हैं। इसका यह परिणाम है कि पूर्व पंडितगण के समान वर्तमान पंडित तैयार नहीं होते। पूर्व विद्वानों के सेवा निवृत हो जाने से उनके स्थानों की पूर्ति न होकर आर्थिक दृष्टि से भी सामाजिक संस्थाओं का संचालन मुश्किल हो गया है। क्योंकि आर्थिक सहायता इन विद्वानों के प्रभाव और प्रवचन से प्राप्त होती थी। समाज में पंडितगण के अभाव की चिंता तो की जाती है, क्योंकि पर्व समारोह और प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर वे ढूंढ़ने से नहीं मिलते। किन्तु इस चिंता से मुक्त होने के लिये वर्तमान संस्कृत शिक्षण पर असंतोष व्यक्त न कर नये विद्वानों की आजीविका हेतु उनके वेतनमान का आकर्षण क्यों नहीं दिया जाता? इस वेतनमान के विषय में तो विद्वत्परिषद को भी अपने प्रभाव का उपयोग करना होगा। ताकि नये विद्वानों का समाज के बाहर अधिक वेतन पाने का विचार उत्पन्न न हो और शिक्षण में अरुचि न रहे। समाज में छात्रालयों और विद्यालयों की स्थापना में पूज्यवर्णीजी के प्रयत्न, दानवीर सेठ माणिकचन्दजी एवं रावराजा श्रीमंतसरसेठ हुकमचन्दजी आदि के आर्थिक योगदान तथा छात्रवृत्ति में साहू शांतिप्रसादजी आदि की उदारता से जो वृक्ष फूलफल रहा है उसे सूखने न देने के लिये शिक्षा संस्थाओं के संचालकों से अनुरोध है कि वे इस पर गंभीरता पूर्वक विचार करें। मेरी मान्यता है कि प्राय: इन जैन शिक्षा संस्थाओं से तैयार हुए विद्वान असदाचारी नहीं होते। विशेष यह है कि वर्तमान शिक्षण पद्धति में कुछ परिवर्तन लाना होगा।

विद्वता का महत्व और जिम्मेवारी

समाज में ही नहीं, विश्व में विद्वता (ज्ञान संस्कार) का बड़ा सन्मान है। इहलोक परलोक में सफलता और स्वर कल्याण विद्वता द्वारा ही संभव है। जो विद्वान या पंडित हैं, उन्हें स्वयं को गौरवशाली मानकर निष्ठापूर्वक कर्त्तव्य परायण रहना चाहिए। समाज में विद्वान की प्रतिष्ठा कम तभी होती है जब व्यवहार में अनैतिकता, याचना या दैन्य का भाव हो। समाज में सुधार या संगठन के विषय में विद्वानों का परामर्श और मार्ग दर्शन लिया जाता है। अखिल भारतीय संस्थाओं, शिक्षा संस्थाओं, प्रचलित रीति-रिवाजों और धार्मिक पूजा प्रतिष्ठाओं में विद्वद्वर्ग का अधिक सहयोग रहता है। इनकी सफलता असफलता में विद्वानों की जिम्मेवारी कम नहीं है।

वर्तमान समस्याओं में विद्वानों का दायित्व

समाज की वर्तमान समस्याओं में तेरापंथ बीसपंथ के समान, सोनगढ़ संबंधी पक्ष-विपक्ष भी है। समाज की कई पत्र-पत्रिकाओं और शास्त्र प्रवचनों ने इस विवाद को बढ़ाने में अग्नि में घृताहुति का सा काम किया है। हमारे यहां पर यह विवाद प्राय: घर-घर में पहुंच चुका है। यदि सहिष्णुता न रखी जावे तो पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई से भयंकर संघर्ष हो सकता है। जिस प्रकार घर में शांति के लिये अपने विचारों व व्यवहार में समन्वय, सहिष्णुता या अनेकांत का हम उपयोग करते हैं। जैसा कि बीसपंथ-तेरापंथ का निर्वाह एक साथ पति-पत्नी व पिता-पुत्र अपने गृह चैत्यालय में करते हैं। वैसा समाज में प्रयोग क्यों नहीं किया जावे? समाज को जीवित और निरापद रखने तथा विघटन से बचाकर संगठित रखने का दूसरा मार्ग कौनसा मिलेगा? समाज में सोनगढ़ का अध्यात्म ज्ञान प्रसार व दिगंबर मुनिराजों की व्रताचार परंपरा दोनों ही मौजूद है। जब ज्ञान और आचार दोनों ही धर्म के अंग हैं तो इनमें परस्पर संघर्ष कैसा? इनके नाम पर उत्पन्न हुये आग्रह, पक्षपात व एक दूसरे की निन्दा- आक्षेप से बचते हुये उदार बनकर स्वयं अपनी त्रुटियों व बिखराव के कारणों को दूर करने में ही हम सबका हित है।

विद्वत्परिषद या अन्य संस्थाओं में दोनों ही पक्ष के समर्थक हैं। हमारे पूज्य दिगम्बर साधुओं और व्रती त्यागी वर्ग में भी इस विषय में जो विचार भेद हैं उसे पत्र-पत्रिकाओं के पाठक भली-भांति जानते हैं। 'सन्मति वाणी' मासिक के संचालन में व हमारे प्रवचन के श्रोताओं में दोनों ही पक्ष के सज्जन विद्यमान हैं। यदि हम निर्णायात्मक बुद्धि रखकर संतुलन और विवेक से काम न लें तो अशांति हुये बिना न रहे। विद्वद्गण दूरदर्शिता, विवेक और माध्यस्थ्य भाव से सामाजिक शांति का दायित्व ग्रहण करें तो यह समस्या सहज हल हो जाये, क्योंकि पत्र-पत्रिका संपादन और प्रवचन आदि में उन्हीं का प्रमुख हाथ है।

जब विद्वद्परिषद में शास्त्री परिषद् के और शास्त्री परिषद् में विद्वत्परिषद् के सदस्य सम्मिलित हैं तो दूसरों को वात्सलय और सद्भाव का उपदेश देने के पूर्व हम इन सद्गुणों को स्वयं अपनाकर यश के भागी क्यों न बनें? विद्वानों का संगठन अलग-अलग होकर भी हम यदि सम्मिलित होकर कोई योजना बनावें तो उसका प्रभाव अधिक बढ़ जायगा।

विद्वानों के लिये विविध कार्य

उच्चतम लौकिक शिक्षण प्राप्त युवा विद्वानों द्वारा पी-एच. डी. के निमित्त से जैन पुराण एवं काव्य के विविध अंगों पर तथा प्राचीन जैन ग्रंथकारों पर सराहनीय कार्य हुआ है। अभी प्राचीन इतिहास एवं दर्शन आदि पर बहुत सा काम होना शेष है। अंग्रेजी स्कूल कालेजों के लिये नैतिक शिक्षण के नाम पर जैन धर्म

का ज्ञान कराने वाली पाठ्य पुस्तकों की रचना भी नहीं हो पाई है, जिनकी कई वर्षों से मांग है। विद्वन्मंडल उक्त कार्य के सिवाय बाल विकास साहित्य की रचना और बाल संस्कार केन्द्र को स्थापना व उनका संचालन करें जिसकी रूपरेखा उसे सार्वजनिक संस्था संचालन के अनुभवी श्री बाबूलालजी पाटोदी इन्दौर द्वारा प्राप्त हो सकेगी। वर्तमान में देश में अनेक बालमंदिर चलते हैं जिनमें मान्टेसरी शिक्षण पद्धति प्रमुख हैं, लेकिन संस्कार की दृष्टि से यह आवश्यक है कि भौतिक शिक्षण के साथ आध्यात्मिकता की ओर भी झुकाव हो - उनमें विश्वबंधुता और सेवा की भावना जाग्रत हो और भारतीय तत्वज्ञान युक्त सुसंस्कृत मस्तिष्क बनें।

समाज की या बाहर की पत्र-पत्रिकाओं में जो जैन विद्वान कार्यरत हैं वे परस्पर निन्दा प्रशंसा में न पड़ते हुए सदाचार व सत्साहित्य का प्रचार प्रसार करें और अपने अर्जित ज्ञान का सदुपयोग कर समाज के नैतिक एवं आर्थक स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करें। विद्वत्परिषद द्वारा आयोजित मथुरा व सागर के शिक्षण शिविर बीना की तत्वचर्चा के आयोजन सफल रहे हैं। उनमें प्रशिक्षण प्राप्त विद्वान प्रतिष्ठाचार्य, ज्योतिषी व व्याख्याता बनकर लाभ उठा रहे हैं। हम समय का त्याग कर इन योजनाओं को चालू रखें और प्रतिष्ठा, चिकित्सा, प्रवचनकला, ज्योतिष या समाज सेवा आदि का प्रशिक्षण तथा शंका समाधान द्वारा प्रगतिशील बनें। इस प्रकार परस्पर सम्मिलन एवं सहयोग से वर्तमान के अनेक विवाद भी सहज हल हो जायेंगे और हमारा संगठन दृढ़ होगा।

वर्तमान विज्ञान के युग में जब मानव चन्द्र तक पहुंच चुका है तो हम इसे असंभव बताने के बजाय अपने भूगोल को आज की भौगोलिक स्थिति के साथ तुलना करने का प्रयत्न करें, जबकि हमारे यहां बहुभाषाविद विद्वान हैं, जो विदेशों में जा सकते हैं। प्रो. लक्ष्मीचन्द जैन खंडवा का गणित विषयक तुलनात्मक अध्ययन सराहनीय है। अपने यहां की ऐसी प्रतिभाओं को प्रोत्साहित क्यों नहीं किया जाता?

जिन प्रांतों में दि. जैन धर्म प्रचलित हैं वहां विशेष संपर्क करके उनके संस्कार सुधारने व उनमें धर्म की पुनर्जागृति करने का काम विद्वद्गण का है। सराक, कलार आदि जातियों के लाखों की संख्या में लोग हैं, जिनका संपर्क टूट गया है उनके निवास क्षेत्र में जाकर उनका स्थितिकरण किया जावे।

इन दिनों मंदिरों में मूर्ति, यंत्र, सिंहासन, कलश आदि लाखों रु. मूल्य के उपकरण चोरी जाने की घटनायें हो रही हैं। इसका कारण दरिद्रता, बेरोजगारी, विलासिता और चलचित्रों द्वारा दुराचरण का प्रचार तथा दुर्व्यसनों की ओर लोगों का झुकाव है। मंदिरों में सोना, चांदी की बहुमूल्य वस्तुयें रखने का समय अब नहीं रहा है। हमें एसे सामान का प्रदर्शन बिल्कुल बन्द करा देना चाहिए। मंदिरों में वीतरागता की शिक्षा ग्रहण करने भक्तजन जाते हैं। यदि उन्हें प्रलोभन की सामग्री दिखलाई पड़ती है तो मूर्च्छा (लालसा) का भाव उत्पन्न हो जाना आश्चर्यप्रद नहीं है। विद्वद्वर्ग का कर्तव्य है कि अपने यहां के मंदिरों में पाषाण की विशाल मनोज्ञ प्रतिमा के अतिरिक्त शेष सर्वधातु, चांदी, स्फटिक, हीरा, मूंगा आदि लघु अवगाहना की प्राचीन मूर्तियां चारों ओर पेटीनुमा मजबूत सींकचे या शटल द्वारा सुरक्षित करा देवें। नवीन प्रतिमायें आगे प्रतिष्ठाचार्य प्रतिष्ठा हेतु स्वीकृत न करें। प्रतिष्ठा कार्य में भगवान के माता-पिता बनाना और जन्म कल्याणक में स्त्रियों से अभिषेक कराना तथा अभिषेक पीना उचित नहीं है। ऐसे काम जिनसे हमारे सम्मान और परम्परा को हानि पहुंचे, न किये जावे। नवीन मंदिरों या वेदियों में तो इसका अवश्य ध्यान रखा जावे। चांदी के सिंहासन, यंत्र आदि बहुमूल्य नये उपकरणों का निर्माण बंद कराकर पाषाण के छत्र, भामंडल और मंदिर के अन्य शिखरों पर पाषाण के कलशों का आरोहण किया जावे। बड़े शिखर पर सुवर्ण कलश के नीचे व मध्य में सफेद मसाले की सीमेंट भरकर सुदृढ़ता करा देवें ताकि बिना खोदे कलश न निकल सके। प्रतिमा की सातिशयता के लिये

यथाविधि प्रतिष्ठा सम्बन्धी मंत्र संस्कार करके हमेशा विनयपूर्वक पूजा का ध्यान रखा जावे अन्यथा अतिशय बना नहीं रहता। अतिशय पूजक के व्यक्तित्व पर निर्भर है। हमें शासन पर निर्भर न रहकर अपने धर्मायतन की रक्षा स्वयं करना होगी।

गौरवशाली विद्वान्

हमारे सहपाठी स्व. न्यायाचार्य पं. महेन्द्र कुमार जी कहा करते थे कि 'जब से मैंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्य करना प्रारम्भ किया तभी से मुझे सम्यग्दर्शन हो गया। जिस प्रकार सम्यग्दृष्टियों को अपूर्व आत्मानुभूति, आत्मगौरव और आत्मानन्द होता है उसी प्रकार समाज के आधीन न रहकर आजीविका प्राप्त करने और फिर नि:स्पृह होकर समाज सेवा में अपूर्व आनन्द और गौरव का अनुभव हो रहा है।' श्री पं. गोपालदासजी बरैया का आदर्श हमारे समक्ष है, जो स्वतन्त्र आजीविका कर समाज की निस्वार्थ सेवा करते थे। सामाजिक शिक्षा संस्था में रहकर वर्तमान में हमारे अग्रगण्य विद्वान श्री पं. जगन्मोहनलालजी सिद्धान्त शास्त्री और सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र जी आदि हमारे लिये आदर्श है, जो अपनी नि:स्पृह सेवा और प्रभाव द्वारा समाज से आर्थिक सहायता प्राप्त कर शिक्षासंस्था का सुचारु संचालन करने के पश्चात् अब निवृत्त होकर भी संस्था के लिये कुछ न कुछ लाते ही रहते हैं। इस प्रसंग पर स्व. विद्वान् पन्नालालजी बाकलीवाल ब्र. शीतलप्रसाद जी, पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार और पं. चैनसुखदासजी आदि की समाज एवं साहित्य सेवायें अविस्मरणीय है।

हमने जिस पवित्र ज्ञान का अर्जन किया है। क्यों न हम अपने को पुण्यशाली मानते हुए उसका आनन्द प्राप्त करें? यद्यपि यह अर्थयुग है, सबकी परिस्थिति भिन्न-भिन्न है, पर उससे विचलित या निराश न होते हुए कर्त्तव्यनिष्ठ बने रहना जीवन की सफलता है। हम किसी से प्रभावित न हों, उज्जवल आचार-विचार और त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए जिनशासन की प्रभावना में सतत् जागरुक रहें यही शुभ कामना है।

आँध्र में तूफान व मध्य प्रदेश में ओला वृष्टि से भयंकर क्षतिग्रस्त जनता के प्रति हमारी सहानुभूति है। विद्वानों का कर्त्तव्य है कि इसमें यथाशक्ति सहायता करें।

परिषद् की विशेषता

इस परिषद् की यह विशेषता है कि इसके सदस्यगण विचार वैषम्य को गौण कर विचार साम्य की बातों को महत्व देकर एक सूत्र में संगठित रहने में अपना हित मानते हैं। निवेदन है कि पूर्व पारित प्रस्ताव कितने क्रियान्वित हुए है इसे देखकर आगे कोई ठोस काम हो सके ऐसे निर्विवाद महत्वपूर्ण प्रस्ताव ही अधिवेशन में प्रस्तुत किये जावे। सहस्त्रों की संख्या में उपस्थित धर्मबन्धु हमसे आत्महित का उपदेश श्रवण करना चाहते हैं। हमें इस विशाल जनमेदिनी में व्यक्तिगत कमजोरियों का दिग्दर्शन कर विद्वानों की छवि को धूमिल न बनाते हुए वात्सल्यमय वातावरण से सबको संतुष्ट करना है। अन्त में विद्वत्परिषद् के मन्त्री श्री डा. पन्नालालजी साहित्याचार्य का, जिन्हें इस परिषद् को स्मृतिग्रंथ, विद्वत्सन्मान, विद्वत्सहायता, पुरस्कार, आदि योजनाओं द्वारा सफल एवं प्रगतिशील बनाते हुए विद्वानों को एक संगठन में लाने का श्रेय प्राप्त है, तथा समस्त विद्वत्मंडल का आभारी हूँ, जो परिषद् में वरिष्ठ एवं मूर्धन्य विद्वानों के रहते हुए मुझ अकिंचन को अध्यक्ष पद पर बैठाकर उसके निर्वाह हेतु सहयोग प्रदान किया। इस महोत्सव में श्री १०८ आचार्य विद्यासागरजी महाराज का पदार्पण हुआ उन्हें मेरा नमोस्तु।

डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य सागर

श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद्के चतुर्दश अधिवेशन - खजुराहो
का
अध्यक्षीय उद्‌बोधन

वीतरागाय नमः

स्वदोषशान्त्या विहितात्म शान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्‌भवक्लेश भयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनोमे भगवान् शरण्यः॥

जैनशासन के परम प्रभावक आचार्य विद्यासागरजी, दक्षिण और उत्तर भार को एक श्रृंखलाबद्ध करने के इच्छुक पूज्य भट्टारकजी, आत्माराधना में निरत पूज्य त्यागीगण, विद्वद्‌वृन्द, श्रीमन्त, सज्जनों, माताओं और बहिनो!

कलाप्रेमी श्री चन्देल राजा के शासनकाल में धर्मप्रेमी पाहल श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित श्री पार्श्वनाथ मन्दिर से विभूषित एवं सर्वविघ्नविनाशक श्री शान्तिनाथ भगवान् की अतिशयपूर्ण विशाल प्रतिमा से समलंकृत खजुराहो की पावन भूमि में लगभग १०० वर्ष बाद आयोजित पञ्चकल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा और गजरथ महोत्सव के समय अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का अधिवेशन आप लोगों ने आमन्त्रित किया, इसकी प्रसन्नता है।

विद्वत्परिषद् की स्थापना भगवान् महावीर के शासन महोत्सव के २५००वीं जयन्ती के समय सन् १९४४ ई. में कलकत्ता में हुई थी। विद्वत्परिषद् विद्वानों का स्वशासित सक्रिय संगठन है। इसके अधिवेशन प्रायः भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में हो चुके हैं। शिवपुरी में इसका रजत जयन्ती महोत्सव श्री डा. दरबारीलालजी कोठिया की अध्यक्षता में संपन्न हुआ था। विद्वत्परिषद् ने स्वर्गीय श्री गोपालदासजी वरैया और दिवंगत श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के शताब्दी समारोह बड़े उत्साह से मना कर गोपालदास वरैया स्मृतिग्रन्थ और गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। साथ ही भगवान् महावीर के सार्धसहस्त्रद्वय निर्वाण महोत्सव के समय स्वर्गीय डा. नेमिचन्द जी शास्त्री, आरा के द्वारा लिखित 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' के दो हजार पृष्ठ प्रमाण चार भाग प्रकाशित कर जिनशासन की प्रभावना बढ़ायी है। इन महनीय ग्रन्थों को समाज में अच्छा आदर प्राप्त हुआ और उसके फलस्वरूप अल्प समय में ही इनके संस्करण समाप्त हो गये। विभिन्न-विभिन्न अवसरों पर विद्वत्परिषद् ने अनेक शिक्षण शिविर, चर्चागोष्ठियाँ और विद्वत्सम्मेलनों का आयोजन किया है।

गुरुजनों के रहते हुए इस विशाल संस्था के गौरवशाली अध्यक्ष पद पर मेरा निर्वाचन कर आप लोगों ने मुझे संकोच में डाल दिया है। मैं इसे गुरुजनों का हार्दिक स्नेह ही मानता हूँ कि जिससे प्रेरित हो उन्होंने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को यहाँ लाकर बैठा दिया है। गुरुजनों का आशीर्वाद और आप सब लोगों की शुभ कामनाएँ ही मुझे वह बल प्रदान करेंगी जिससे मैं इस गुरुतर भार का निर्वाह कर सकूँगा।

विद्वान् एक प्रकाशस्तम्भ

भोगाकांक्षा रूप मोह यामिनी के सघन तिमिर में विद्वान् एक प्रकाश स्तम्भ के समान है। संसार में सब ओर भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त करने की आपाधापी चल रही है। पैसा को परमेश्वर मानकर छोटे से लेकर बड़े राष्ट्र तक उसी के संचय में लीन है। न्याय, अन्याय का विकल्प छोड़ सर्वत्र उसी के संचय करने की होड़ लग रही है। इस स्थिति में जन साधारण को आत्महित का मार्ग दिखलाने वाले विद्वान् प्रकाश स्तम्भ का काम करते हैं। स्वनाम धन्य पण्डित टोडरमलजी, सदासुखदासजी, जयचन्द्रजी छाबड़ा, कविवर बनारसीदासजी तथा भैया भगवतीदास जी आदि विद्वानों ने अपने काल में आगम ग्रन्थों की हिन्दी वचनिकाएँ आदि लिखकर तथा जगह-जगह स्वाध्याय की शैलियाँ स्थापित कर जिनवाणी की जो सेवा की थी उसी के फलस्वरूप आज समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति चल रही है और सच पूछा जाय तो गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, तथा त्रिलोकसार आदि करणानुयोग सम्बन्धी गहन ग्रन्थों का अध्ययन इन्हीं टीकाओं के बल पर प्रचलित हुआ है।

एक समय ऐसा आ गया था जब जैन समाज में तत्त्ववेत्ता विद्वानों की अत्यन्त विरलता हो गई थी। व्यापार प्रधान जैन समाज अपने बालकों को संस्कृत-प्राकृत पढ़ाना अनावश्यक समझती थी और आर्य समाज की ओर से जैन समाज को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा जाता था। इस स्थिति में स्वर्गीय गोपालदासजी बरैया और स्वर्गीय गणेशप्रसाद जी वर्णी का इस ओर ध्यान गया। फलस्वरूप मोरेना में जैन सिद्धान्त विद्यालय, बनारस में स्याद्वाद महाविद्यालय और सागर में सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशाला (जो आज गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है) स्थापित की गई। इन विद्यालयों में संस्कृत-प्राकृत का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर अनेक विद्वान तैयार हुए। पं. माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य, पं. मक्खनलालजी, पं. वंशीधर जी, पं. देवकीनंदन जी, पं. जीवन्धरजी, पं. फूलचन्दजी, पं. कैलाशचंद्रजी, पं. जगन्मोहनलालजी तथा पं. दयाचन्द जी आदि ऐसे उद्भट विद्वान् तैयार हुए जिन्होंने जिनवाणी की अपूर्व सेवा की है। न केवल पठन-पाठन के द्वारा किन्तु षट्खण्डागम, कषायपाहुड, महाबन्ध और त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि गहन ग्रन्थों की आधुनिक हिन्दी टीकाएँ लिखकर जन साधारण को उनके स्वाध्याय का अवसर दिया है। जब मैं आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय करता हूँ और उनके गहन स्थलों पर पं. फूलचन्दजी के विशेषार्थ देखता हूँ तब पं. फूलचन्दजी की प्रतिभा पर सहज आकर्षण होता है। स्व. श्री रतनचन्द जी मुख्त्यार भी करणानुयोग संबन्धी विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। किसी शिक्षा संस्था में क्रमबद्ध अध्ययन न कर मात्र स्वाध्याय के द्वारा ग्रन्थों की गणित सम्बन्धी गुत्थियों को सरलता से सुलझा देना आपकी विशेषता थी। पं. राजेन्द्रकुमार जी मथुरा, पं. अजितकुमार जी मुलतान, पं. मंगलसेन जी अम्बाला आदि ने आर्य समाज के शास्त्रार्थ को स्वीकृत कर उन्हें परास्त किया और आर्य समाज के कट्टर शास्त्रार्थी कर्मानन्दजी को जैनधर्म में दीक्षित कर शास्त्रार्थ की परम्परा को समाप्त कर दिया।

कहना चाहिये कि समाज ने शिक्षा संस्थाएँ स्थापित कर उनके संचालन में जितना व्यय किया था उससे असंख्य गुणित लाभ उन संस्थाओं से उत्पन्न विद्वानों ने समाज को प्रत्यर्पित किया है। उन विद्वानों में जिनवाणी के प्रति अपूर्व निष्ठा थी इसीलिए वे अपने निर्वाह की परवाह न कर सेवा में जुटे रहे और उस पीढ़ी के जो विद्वान् आज अवशिष्ट है वे अब भी जुटे हुए हैं।

यद्यपि संस्थाएँ आज भी वही है और पूर्व की अपेक्षा वृहत् साधनों से सम्पन्न हैं तो भी उच्च कोटि के विद्वान् तैयार नहीं हो रहे हैं। इसका एक कारण यही दृष्टि में आता है कि इस समय जीवनापयोगी वस्तुओं में अत्यन्त मँहगाई छाई हुई है, उस मँहगाई में जैन शिक्षा संस्थाओं से प्राप्त होने वाले अल्पतम वेतनमानों से विद्वान् का निर्वाह नहीं होता अत: वह साथ में इंगलिश आदि का अध्ययन कर अपना कार्यक्षेत्र अन्यत्र बना लेता है। सरकारी संस्थाओं में समयानुकूल वेतन प्राप्त होता है इसलिए विद्यार्थी के हृदय में इंगलिश आदि के प्रति विशेष आकर्षण हो जाता है और संस्कृत प्राकृत आदि के प्रति उसकी दृष्टिगौण हो जाती है। इस स्थिति में समाज का कर्त्तव्य है कि वह अपनी संस्थाओं में समयानुकूल वेतन देने की उदार भावना अपनावे और विद्वान् का भी कर्तव्य है कि वह कार्यक्षेत्र दूसरा होने पर भी अपनी धर्मनिष्ठा को गौण न कर जिनवाणी की सेवा तथा समाज के मार्गदर्शन में तत्पर बना रहे।

स्वाध्याय ही ज्ञानवृद्धि का परम उपाय है

जिस प्रकार एक सैनिक को अपने अस्त्र-शस्त्र सदा ठीक रखना आवश्यक है, उनकी देखभाल करते रहना अनिवार्य है, उसी प्रकार विद्वान को भी अपने अर्जित्त ज्ञान को ठीक रखना आवश्यक है, उसकी वृद्धि करते रहना अनिवार्य है। आजकल स्वाध्याय की परम्परा का प्रचार बढ़ रहा है। जगह-जगह द्रव्य गुण पर्याय और गुणस्थानों की चर्चाएँ सुनने में आती है परन्तु अधिकांश विद्वान्, खासकर नव पीढ़ी के विद्वान् इन चर्चाओं से अछूते रहते हैं। यह बात शोभास्पद नहीं है। विद्वानों को चाहिए कि वे जहाँ भी रहें वहीं स्वाध्याय मण्डल की स्थापना कर स्वयं स्वाध्याय करें और अपने ज्ञानार्जन का फल दूसरों के लिय भी प्रदान करें। अध्ययन करते समय जो कभी रह जाती है उसकी पूर्ति स्वाध्याय के द्वारा ही होती है।

निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, भेद रत्नत्रय, अभेद रत्नत्रय और व्रत विधान तपश्चरण आदि विषयों का अवगम नयदृष्टि को समझकर करना चाहिये। जिनागम में एकान्तवाद को कोई स्थान नहीं है। निश्चयैकान्त, व्यवहारैकान्त और उभयैकान्त को आचार्यों ने क्रमश: निश्चयाभास, व्यवहाराभास और उभयाभास कहा है। इनका यथार्थ स्वरूप न समझने के कारण समाज में विसंवाद की स्थिति बन रही है। इस स्थिति का निराकरण स्याद्वाद का आश्रय लेने से ही हो सकता है।

कुन्दकुन्द स्वामी तथा अमृतचन्द्र आचार्य ने जगह-जगह दोनों नयों का प्रतिपादन कर वस्तु स्वरूप को स्पष्ट किया है। अमृतचन्द्र आचार्य ने तो स्पष्ट घोषणा की है-

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के जिन वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहा:।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-रनवमनयपक्षाक्षुण्ण मीक्षन्त एव॥

अर्थात् जो पुरुष स्वयं मिथ्यात्व को, अनादिकालीन दुराग्रह को उगलकर दोनों नयों के विरोध को ध्वस्त करने वाले जिन वचन में रमण करते हैं वे शीघ्र ही अनाद्यनन्त एवं नय पक्षों से अक्षुण्ण उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप समयसार को नियम से देखते हैं। इन्हीं अमृतचन्द्र ने अनेक नयपक्षों का वर्णन करते हुए कहा है कि जो इन नयपक्षों से परे होते हैं वे ही साक्षात् अमृत का पान करते हैं। नय, वस्तु स्वरूप को समझने ओर समझाने के साधन मात्र हैं, साध्य नहीं है अत: आगे चलकर एक ऐसी भूमिका आती है जहाँ नय, प्रमाण और निक्षेपों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि निश्चय और व्यवहार के यथार्थ स्वरूप को समझकर मध्यस्थ रहने वाला व्यक्ति ही जिनेन्द्र देव की देशना का पूर्ण फल प्राप्त कर सकता है। कहा है-

व्यनहार निश्चयौ यः प्रबुध्य, तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्याः॥

व्यवहार और निश्चय का यथार्थ स्वरूप समझकर जो निश्चयाभास को निश्चय और व्यवहाराभास को व्यवहार मान बैठता है वह प्रवृत्तिरूप चारित्र को नष्ट कर देता है।

'निश्चयमबुध्यमानो यो, निश्चयतस्तमेव संश्रयते।
नाशयति करण चरणं, स बहिः करणालसो बालः॥'

एक प्राचीन गाथ परम्परा से चली आ रही है-

'जइ जिणमअं पवज्जइ, तो मा व्हार णिच्छयं मुइयह।
एकेण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण पुण तच्चं॥'

गाथा में कहा गया है -

यदि जिनमत की प्रवृत्ति चाहते हो तो व्यवहार और निश्चयनय को मत छोड़ो क्योंकि एक के बिना अर्थात् व्यवहार के बिना तीर्थ नष्ट हो जाता है और एक के बिना अर्थात् निश्चय के बिना तत्त्व नष्ट हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि व्यवहार और निश्चय दृष्टि का यथार्थ स्वरूप विद्वान् ही समझ सकता है अतः उसे स्वयं समझकर दूसरों को समझाना चाहिये। विद्वान् को पक्ष विपक्ष की भूमिका में न पड़कर शुद्ध वस्तु तत्त्व का विश्लेषण करना चाहिये।

विद्वान् का लक्ष्य विसंवाद को दूर करना होना चाहिये। मिथ्यात्व का निराकरण करने में जहाँ साहस की आवश्यकता है वहाँ सत्य तत्त्व को स्वीकृत करने का साहस होना भी आवश्यक है। विद्वान् का दायित्व है कि वह निष्ठापूर्वक समाज में आगत बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करें। उसे अपने इस अभियान में सफलता तब ही मिल सकती है जब वह अपने आपका तथाकथित बुराइयों से अछूता रक्खे। समुचित आचार विचार का धनी विद्वान् आज भी समाज में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखता है। पं. दौलतरामजी के कथनानुसार मनुष्य पर्याय, सुकुल और जिनवाणी के श्रवण-मनन का अवसर बार-बार प्राप्त नहीं होता सौभाग्य से यदि इनकी प्राप्ति हुई है तो उसका लाभ प्राप्त करना चाहिये।

विद्वत्परिषद् का विशाल दायित्व

सांसारिक प्रपञ्चों में पड़ी हुई साधारण जनता के बीच विद्वान् का स्थान गरिमापूर्ण है। विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह अपनी गरिमा को सुरक्षित रखता हुआ साधारण जनता के लिये आत्महित का मार्ग प्रदर्शित करता रहे। समाज में आये हुए द्वन्द्वों को दूर करने की क्षमता उसे प्राप्त करनी चाहिये। आज समाज में चारित्रिक स्तर गिरता जा रहा है, उसे सम्भालने का प्रयत्न होना आवश्यक है। बालकों को प्रारम्भ से धार्मिक संस्कार प्राप्त नहीं होता और युवा होने पर कुसंगति में पड़ जाना, यह चारित्रिक स्तर के गिरने का कारण है अतः बालकों को स्कूल और कालेजों में भेजने के पूर्व ही उनमें अच्छे संस्कार डालने का प्रयत्न होना चाहिये।

संपन्न लोग जहाँ अपनी संतान की सुख सुविधा के लिये अनर्गल रूप से खर्च करते हैं वहाँ अच्छे संस्कार डालने के साधनों में खर्च करते हुए अरुचि दिखाते हैं। सच कहा जाय तो सम्पन्न घराने के अनुशासनहीन बालकों से ही चारित्रिक पतन के काम शुरू होते हैं। साधारण घरों के बालक तो संगति से पतन का मार्ग अपनाते हैं। प्रत्येक नगर में ऐसी रात्रिशालाओं का होना आवश्यक है, जिनमें हमारे बालक जैनधर्म के अच्छे संस्कार सीखें। बाल्यावस्था के अच्छे संस्कार जीवन भर काम आते हैं। रात्रिशालाओं का संचालन विद्वान् सरलता से कर सकते हैं।

साहित्य सत्कार और लेखकों को प्रोत्साहित करना

मौलिक साहित्य का निर्माण तथा प्राचीन साहित्य का समुद्धरण, ये दो कार्य ऐसे हैं जो विद्वानों के सिवाय दूसरों के द्वारा संभव नहीं है अत: विद्वानों को इस ओर लक्ष्य देना चाहिये। विद्वत्परिषद् ने प्रतिवर्ष एक हजार के पुरस्कार से विद्वान् लेखकों को पुरस्कृत करने की योजना बनाई है और इस योजना के अनुसार अब तक अनेक विद्वानों को पुरस्कृत कर चुकी है। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से इस कार्य के लिये विद्वत्परिषद् को एक हजार का अनुदान प्राप्त होता है। इसलिये उसके संचालक धन्यवाद के पात्र है। अभी विद्वत्परिषद् मौलिक रचना पर गोपालदास बरैया पुरस्कार और प्राचीन ग्रन्थों के अनुवादादि पर गणेशप्रसाद वर्णी पुरस्कार प्रदान करती है। यदि भारतीय ज्ञानपीठ के अनुसार समाज के अन्य दानी महानुभाव भी इस ओर ध्यान देवें तो पं. देवकीनन्दन जी, पं. माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य, पं. वंशीधर जी न्यायालंकार, पं. दयाचन्द्र जी और पं. मक्खन लाल जी के नाम पर भी पुरस्कार स्थापित किये जा सकते हैं। ये वे विद्वान् हैं जिन्होंने जैन समाज और जैन साहित्य की सेवा में अपना जीवन अर्पित किया है। उनकी स्मृति में यह कार्य होना ही चाहिये।

सहकार और सहयोग की नीति

शिवपुरी में सम्पन्न होने वाले रजत जयन्ती अधिवेशन में उसके अध्यक्ष श्री डा. दरबारी लाल जी कोठिया ने विद्वत्परिषद् के लिये एक हजार का दान देकर महावीर विद्यानिधि की स्थापना की थी। इस निधि के द्वारा साधनहीन विद्वानों और उनके परिवार को सहायता दी जाती है। इस निधि में धीरे-धीरे दश हजार रुपये एकत्रित हो गये थे उसके ब्याज से प्रतिवर्ष एक हजार रुपये सहायता में वितरण किये जाते हैं। प्रसन्नता है कि सागर कार्यकारिणी में विद्वत्परिषद् ने इस महानिधि में 15000 पन्द्रह हजार रुप्ये और मिलाकर पच्चीस हजार का फण्ड स्थापित कर दिया है अत: अब अधिक मात्रा में सहयोग किया जा सकेगा। समाज के उदार दानी इस निधि को बृद्धिंगत कर सकते हैं। इसके सब रुपये पंजाब नेशनल बैंक की सागर शाखा में जमा हैं। इसी निधि से विद्वत्परिषद् ने पूज्य वर्णी जी की साधनाभूमि मड़ावरा में चलने वाले वर्णी विद्यालय के लिये ३६०) वार्षिक का स्थायी अनुदान स्वीकृत किया है।

विद्वत्परिषद् की एक योजना यह भी है कि यदि कोई विद्वान् वृद्धावस्था में आजीविका से दुखी हो गया है तो उसे विद्वत्परिषद् सन्मानपूर्वक अच्छी सहायता पहुँचाती है और इस योजना के अनुसार वह अब तक दो विद्वानों को एक-एक हजार रुपये की भेंट देकर सन्मानित कर चुकी है।

साधनहीन होनहार विद्यार्थी अपनी प्रगति कर सकें इस उद्देश्य से विद्वत्परिषद् ने शोध अनुदान की भी एक योजना वीना-बारहा अधिवेशन में बनायी थी और उस योजना के अनुसार वह अब तक विभिन्न

विद्यार्थियों एवं विद्वानों को शोध प्रबन्ध कों टाईप कराने के लिए ३०००) तीन हजार की सहायता प्रदान कर चुकी है।

विद्वत्परिषद् का उद्देश्य अपने सब सदस्यों के साथ भ्रातृभाव स्थापित करना भी है और इसी भावना से वह विद्वानों की स्थिति का ध्यान रखती है तथा संकट के समय उनके काम आती है। कितने ही सदस्यों की औषधि के लिए विद्वत्परिषद् की ओर से ५००) तक सहायता भेजी गयी है। विशेषता यह है कि सहायता के ये सब कार्य गुप्त रूप से संपन्न किये जाते हैं जिससे सहायता लेने वाले को हीनता का भाव उत्पन्न नहीं हो। इस विभाग का संचालन करने के लिए चार सदस्यों की एक उपसमिति है उसकी समिति से यह कार्य सम्पन्न होते हैं।

कार्यक्षेत्र विस्तृत है उनके अनुरूप विद्वत्परिषद् के पास पर्याप्त साधन नहीं हैं। समाज को इस ओर लक्ष्य करना चाहिये।

बाल साहित्य का निर्माण

प्रसन्नता है कि विद्वानों ने उच्चतम साहित्य का निर्माण कर एक बड़ी कमी की पूर्ति कर दी है परन्तु बाल साहित्य का एकदम अभाव हो रहा है। बालकों में अच्छे संस्कार डालने वाली छोटी-छोटी सचित्र पुस्तकों के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। बालकोपयोगी एक मासिक भी प्रकाशित करने की आवश्यकता है। विद्वत्परिषद् की शक्ति सीमित है अत: वह स्वयं कार्य प्रारम्भ न कर विद्वान लेखकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर रही है। अभी हाल पूज्य श्री आर्यिका रत्न ज्ञानमती माताजी ने इस ओर लक्ष्य दिया है। उन्होंने बाल विकास नामक चार भाग लिखकर जहाँ बालकों के धार्मिक ज्ञान को बढ़ाने का प्रयास किया है वहाँ पौराणिक कहानियों का आधुनिक नाम देकर अनेक पुस्तकों को पाकेट साईज में प्रकाशित किया है। माताजी का यह कार्य विद्वानों के लिए अनुकरणीय है। इस समय महिला जगत् में आर्यिका जिनमतीजी प्रबुद्ध महिलाएँ हैं। इन्होंने अष्ट सहस्री, त्रिलोकसार और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे न्याय के कठिन ग्रन्थों पर हिन्दी टीकाएँ लिखकर विद्वानों के सामने आदर्श उपस्थित किया है।

व्यवस्थित पठनक्रम और परीक्षालय

समाज में चल रहीं जैन संस्थाएं धीरे-धीरे समाप्त हो रही हैं। उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों को वहाँ के पाठ्यक्रम से संतोष नहीं हो रहा है। आज के छात्र और उनके अभिभावक पारमार्थिक शिक्षा के साथ जीवनोपयोगी शिक्षा भी चाहते हैं। समाज के प्रचलित विद्यालयों में जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम का अभाव है, यही कारण है कि उनमें छात्र संख्या कम होती जा रही है। अत: आवश्यक है कि विद्वान लोग एक ऐसा पाठ्यक्रम बनाकर देवें जो सब दृष्टियों से छात्र का बौद्धिक और आर्थिक विकास करने में सक्षम हो। इस पाठ्यक्रम को चलाने के लिए परीक्षालय की आवश्कता का अनुभव हो तो वह भी खोला जा सकाता है। सन् १९४४ में सागर में एक एज्युकेशन बोर्ड की स्थापना कर उसके माध्यम से हमने विद्यालय में हिन्दी, गणित, अंग्रेजी तथा सामाजिक अध्ययन जैसे लौकिक विषयों का भी समावेश कराया था। उन विषयों की परीक्षा का भार दि. जैन महासभा परीक्षालय इन्दौर के तात्कालिक व्यवस्थापक स्व. पं. मुन्नालाल जी काव्यतीर्थ ने संभाला था। प्रसन्नता है कि उक्त परीक्षालय के वर्तमान व्यवस्थापक सहितासूरि श्री पं. नाथूलाल जी भी परिश्रम पूर्वक

इस भार को संभालते आ रहे हैं परन्तु महासभा की ओर से आर्थिक सहयोग न मिलने के कारण वे हतोत्साह हो रहे हैं। यदि महासभा ने अपने इस प्राचीनतम विभाग पर दृष्टि दी तो एक पृथक परीक्षालय की आवश्यकता होगी। उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही जयपुर की कार्यकारिणी में विद्वत्परिषद् ने एक 'वर्धमान परीक्षालय' की योजना बनाई थी तथा तदनुरूप पाठ्यक्रम निर्माण किया था।

साप्ताहिक पत्र की आवश्यकता

समाज में चल रहे पत्र दिन प्रतिदिन क्षीण हो रहे हैं। इस महँगाई के काल में उनकी पृष्ठ संख्या कम हो गयी है। फिर वे अपनी-अपनी संस्थाओं के उद्देश्य की पुष्टि में निरत हैं। अपना पक्ष पोषण के विरुद्ध यदि कोई प्रत्युत्तर का लेख उन पत्रों में प्रकाशन के लिए भेजता है तो वह प्रकाशित नहीं होता। विद्वत्परिषद् के कार्यालय में कितनी ही शास्त्रीय शंकाएं आती हैं, उनके समाधान भी प्रकाशित नहीं हो पाते अत: कार्यालय से भेजा हुआ उत्तर शङ्काकार तक ही रह जाता है, साधारण जनता उससे लाभान्वित नहीं हो पाती। इस स्थिति में उचित होगा कि विद्वत्परिषद् की ओर से स्वस्थ विचारधारा का एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया जाय। वर्तमान में कुछ समाजसेवी विद्वान् रिटायर्ड हुए हैं उन्हें यह कार्य सौंपकर उनके अनुभवों से लाभ उठाया जा सकता है। विद्वत्परिषद् के ६०० सदस्य हैं, यदि वे स्वयं ग्राहक हो जाते हैं तो कम से कम दो ग्राहक बनाकर देते हैं तो पत्र का संचालन कठिन नहीं होगा। स्वस्थ पत्र के प्रति जनता के ह्दय में आज भी अभिरुचि विद्यमान है।

विद्वत्परिषद् की कार्य प्रणाली

विद्वत्परिषद् विविध विचार वाले विद्वानों का एक संगठन है। उसकी नीति है कि मञ्च पर वे ही कार्य उपस्थित किये जायें जिसमें सब का मतैक्य हो। विभिन्न मत वाले कार्यों को व्यक्तिगत रूप से अथवा अन्य मञ्च से कर लिया जाय। इस नीति के कारण सब विचारधारा के सदस्य विद्वत्परिषद् में संगठित हैं। शासकीय स्कूलों तथा कॉलेजों में काम करने वाले उभय भाषा के विज्ञाता अनेक विद्वान् भी विद्वत्परिषद् के सदस्य हैं। बैंकों तथा अन्य शासकीय संस्थाओं में काम करने वाले विद्वान् भी सम्मिलित हैं। विद्वत्परिषद् अपनी इस नीति में सफल है इसीलिये सब प्रान्तों तथा सब विचारों के लोग इसमें संगठित हैं।

विद्वत्परिषद् और शास्त्रिपरिषद्

विद्वत्परिषद् के अनेक सदस्य शास्त्रिपरिषद् में और शास्त्रिपरिषद् के अनेक सदस्य विद्वत्परिषद् में सम्मिलित हैं। यहाँ तक कि कार्यकारिणी के सदस्य भी हैं और वे अपनी-अपनी परिषद् की मर्यादा की रक्षा करते हुए बैठकों में सम्मिलित होते हैं। यह सब है, फिर भी विद्वानों की पृथक् दो संस्थाओं का होना जनसाधारण के लिए रुचिकर नहीं लगता। काश, दोनों संस्थाएँ एक हो सकें तो यह प्रसन्नता की बात होगी। दोनों संस्थाएँ एकजुट होकर कार्य करें तो समाज का कायापलट कर दें। एकीकरण के लिए किसी संस्था से अस्तित्व को समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से विद्वत्परिषद् एक साधारण सभा रहे क्योंकि उसमें छोटे बड़े सभी प्रकार के सदस्य हैं और शास्त्रिपरिषद् उस साधारण सभा के द्वारा चुने हुए उन २१ विद्वानों की हो जो सचमुच ही शास्त्री तथा जिनागम के मर्मज्ञ हैं। शास्त्रीय निर्णय या शास्त्रीय व्यवस्था का नाम देना इस शास्त्रिपरिषद् के अधीन रहे।

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा गजरथ और विद्वत्परिषद् के अधिवेशन

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा एक धार्मिक महोत्सव है। कहीं-कहीं इस महोत्सव के साथ गजरथ का भी आयोजन होता है। यह कार्य जैन समाज में बड़े उत्साह के साथ किए जाते हैं। पहले किसी एक व्यक्ति के द्वारा कराये जाते थे परन्तु अब परस्पर के सहयोग से सम्पन्न होते हैं। इन उत्सवों में खासकर गजरथ महोत्सवों में जैन जनता के सिवाय अजैन जनता भी लाखों की संख्या में उपस्थित होती है। विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी में एक बार ऐसा विचार आया था कि इन महोत्सवों के अवसर पर विद्वत्परिषद् के अधिवेशन न बुलाये जावें क्योंकि इससे उन समारोहों को विद्वत्परिषद् का समर्थन प्राप्त होता है। गजरथ विरोध का आन्दोलन भी समाज में एक बार उठा था परन्तु समाज की गतिविधि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सब समारोह चलते इतना अवश्य हुआ था कि विद्वानों के बिना उन समारोहों की सार्थकता नहीं हो सकी। इसलिये पूर्वापर विचारकर विद्वत्परिषद् ने इन समारोहों पर अधिवेशनों के निमन्त्रण को स्वीकृत करना उचित समझा। फलस्वरूप द्रोणगिरी, जबलपुर, रेशन्दीगिरि, बीना बारहा, सागर, धौलपुर आदि स्थानों पर पञ्चकल्याणक तथा गजरथ समारोहों के समय विद्वत्परिषद् के अधिवेशन, नैमित्तिक अधिवेशन या कार्यकारिणी के अधिवेशन सम्पन्न हुए हैं। सरलता से जनता को धार्मिक लाभ पहुँचाना विद्वत्परिषद् का उद्देश्य है।

अतिशय क्षेत्र खजुराहो

खजुराहो, कला की दृष्टि से देश विदेश में प्रसिद्ध है। यहाँ जैनेतर समाज के अनेक दर्शनीय मंदिर हैं। उनसे कुछ दूरी पर पहल श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित पार्श्वनाथ जिन मन्दिर है। इसी प्राङ्गण में १००८ भगवान् शान्तिनाथ की विशाल प्रतिमा है जो अपने अतिशय के लिए प्रसिद्ध है इनके सिवाय और भी मन्दिर है। पार्श्वनाथ मंदिर की शिखर कलापूर्ण है। ऐसा लगता है कि जैनेतर मंदिरों के कलाकारों द्वारा ही इस मन्दिर की शिखर का निर्माण हुआ है। खजुराहो के समीपवर्ती ग्रामों में जैन वसति कम है इसलिये यह क्षेत्र उपेक्षित सा पड़ा रहा। जैनेतर मंदिरों को देखने के लिए आने वाले पर्यटक जैन मंदिर के प्राङ्गण में भी आते हैं परन्तु यहाँ की व्यवस्था समयोचित न होने से उनका आकर्षण नहीं हो पाता। प्रसन्नता है कि पन्ना तथा छतरपुर के कुछ महानुभावों का ध्यान इस क्षेत्र के जीर्णोद्धार की ओर गया। श्री स्व. साहु शान्तिप्रसाद जी का भी क्षेत्र पर शुभागमन हुआ तथा उन्होंने संग्रहालय के निर्माण की आवश्यकता देख एक लाख का दान घोषित किया। उत्साही कार्यकताओं ने तन, मन, धन से क्षेत्र के नवीनीकरण में श्रम किया है। मैंने यहाँ की जो स्थिति २० वर्षों पूर्व देखी थी, उससे आज बहुत ही सुधार हुआ है। धर्मशाला के कमरों का निर्माण आधुनिक ढंग से हुआ है और मन्दिरों की वेदियों का भी नवनिर्माण हुआ है। मन्दिरों के आगे बगीचा का निर्माण हुआ है जिससे प्राङ्गण की शोभा बढ़ गई है।

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा और गजरथ समारोह समिति ने श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के अधिवेशन के लिये उत्कण्ठापूर्वक निमन्त्रण दिया जिसे कार्यकारिणी ने स्वीकृत किया। विद्वत्परिषद् के इस चतुर्दश अधिवेशन में समाज के गणमान्य अनेक विद्वान पधारे हैं। उनके द्वारा समाज को मार्गदर्शन मिलेगा तथा विद्वानों के मार्कदर्शन से क्षेत्र के विकास में पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। हम सब विद्वानों के साथ आयोजक महानुभावों के आभारी हैं। क्षेत्र निरन्तर समुन्नत हो तथा आयोजित समारोह निर्विघ्न समाप्त हो, यह कामना करते हैं।

विद्वानों की क्षति

खेद है कि इस वर्ष जैनसमाज को अनेक प्रबुद्ध विद्वानों की क्षति उठानी पड़ी है। अन्तस्तत्व की प्रेरणा से दिगम्बर धर्म को स्वीकृत कर अध्यात्म धारा को प्रवाहित करने वाले, श्री कान जी स्वामी अब नहीं रहे। करणानुयोग के मर्मज्ञ ब्र. पंडित रतनचन्द्र जी मुख्त्यार का देहावसान हो गया। श्री गोपालदासजी वरैया की शिष्य परम्परा के प्रमुख शिष्य, जैन समाज के प्राभृत विद्वान् न्यायालंकार पं. मक्खनलाल जी मुरैना दिवंगत हो गये। मूडविद्री के महाविद्वान् पं. के. भुजबली शास्त्री, वीरसेवा मंदिर दिल्ली की जीवनभर सेवा करने वाले पं. परमानन्द जी शास्त्री, बड़वानी की संस्थाओं की सेवा में जीवन अर्पित करने वाले पं. क्षेमंकरजी न्यायतीर्थ और बरुआसागर के विद्यालय की निष्ठापूर्वक सेवा करने वाले श्री मनोहरलाल जी शास्त्री आदि विद्वान् हमारे बीच से उठ गये हैं। ये सभी विद्वत्परिषद् के स्नेही विद्वान् थे। इनके प्रति हमारा पूर्ण आदर भाव है। दिवंगत आत्माओं की शान्ति लाभ की कामना करते हुए उनके शोक संतप्त परिवारों के प्रति समवेदना प्रदर्शित करते हैं।

अन्त में आप लोगों ने मुझ अल्पज्ञ को अध्यक्ष जैसे गुरुतर पद पर आसीन कर जो सम्मान दिया है उसके लिए मैं आभारी हूँ और सब सदस्यों से अनुरोध करता हूँ कि विद्वत्परिषद् के कार्य कलापों में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। आप सबके सहयोग ही विद्वत्परिषद् का कलकत्ता में प्रस्फुटित यह अंकुर वट वृक्ष जैसा विस्तृत हो सका है।

शान्तिनाथ भगवान की जय

जिस मनुष्य की बुद्धि का विकास नहीं होता अथवा जो बुद्धिद्रोही या अविवेकी होता है वह मनुष्यता से गिर जाता है।

यया धर्ममधर्म च कार्य चाकार्यमेव च।
अन्यथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥

- भगवान् श्रीकृष्ण (गीता १८-३१)

* * *

बुद्धिमान मनुष्य का एक दिन मूर्ख के जीवन भर के बराबर होता है।

- अज्ञात

* * *

डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य सागर

श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद्के अहार क्षेत्र पर संपन्न-नैमित्तिक अधिवेशन
का
अध्यक्षीय उद्बोधन

स्वदोषशान्त्या विहितात्म शान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेश भयोपशान्त्यै, शान्तिर्जिनोमे भगवान् शरण्यः॥

मदनसरोवर के तटपर रमणीय पर्वतिकाओं की उपत्यिका में स्थित श्री सिद्धक्षेत्र अहार का शान्तिमय वातावरण हृदय को आकर्षित करने वाला है। श्री १००८ शान्तिनाथ, कुन्थु और अरहनाथ भगवान् की विशाल प्राचीन प्रतिमाओं के दिव्य शरीर से स्पृष्ट वायुमण्डल, जन्मविरोधी जीवों के विरोध को शान्त करने वाला है। स्वनामधन्य पाण्ड्याशाह जिनदर्शन की प्रतिज्ञाबद्ध थे, इसलिए जहाँ जहाँ उनके ठहरने के स्थल थे वहाँ-वहाँ उन्होंने मन्दिरों का निर्माण कराया था। ऐसे मन्दिर, अहार, ईसुरवारा, पजनारी तथा बजरंगगढ के हमारे जाने-माने हैं। जब कि जिनभक्ति के प्रसाद से संसारी प्राणी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है तब रांगा चांदी रूप से परिणत हो जाय, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

दक्षिण भारत में आदिनाथ तथा उनके उभय पार्श्व में भरत और बाहुबली की प्रतिमाओं का प्रचलन है तो उत्तर भारत में शान्ति, कुन्थु और अरनाथ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का प्रचलन है। ये तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव पद के धारक थे। इन्होंने राज्यावस्था में षट् खण्ड भरत क्षेत्र की वसुधा का पालन किया और मुनि अवस्था में घोर तपश्चरण कर कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त की। समन्तभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र में इन तीनों तीर्थंकरों का भावभीना स्तवन किया है।

शान्तिनाथ भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठित हुए आठसौ वर्ष व्यतीत हो गये। किसी समय अहारक्षेत्र अत्यन्त समुन्नत अवस्था में रहा होगा। यहाँ उपलब्ध खण्डित प्रतिमाओं के शिलालेखों से जाना जाता है कि यह क्षेत्र अनेक जैन उपजातियों का श्रद्धाभाजन था। यहाँ तथा उसके पार्श्व में अनेक जैन उपजातियों का संगम रहा होगा, तभी तो उनके द्वारा प्रतिष्ठापित प्रतिमाएँ यहाँ उपलब्ध है। संग्रहालय में संगृहीत प्रतिमाओं के शिलालेख अतीत के इतिहास पर प्रकाश डाल रहे हैं।

आजीविका आदि के साधन सुलभ न रहने से यहाँ के निवासी अन्यत्र चले गये और कुछ आततायिओं ने मूर्ति भंजन कर क्षेत्र को भी क्षत-विक्षत कर दिया। शान्तिनाथ मन्दिर में स्थित कुन्थुनाथ की प्रतिमा को खण्डित कर विध्वस्त कर दिया तथा मूलनायक शान्तिनाथ की प्रतिमा को भी विध्वस्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु दैविक चमत्कार से सफल नहीं हो सके। शान्तिनाथ का मन्दिर अनेक शताब्दियों तक असुरक्षित पड़ा रहा। झाड-झंखाड़ों के बीच प्रवेश करने में लोग भयभीत रहते थे।

विदित हुआ है कि सन् १९२९ ई. में पठा निवासी राजवैद्य पं. बारेलालजी का लक्ष्य इस क्षेत्र के उद्धार की ओर गया और उन्होंने एक प्रान्तीय समिति गठित कर क्षेत्र के उद्धार का कार्य शुरु किया।

अर्धशताब्दी के दीर्घकाल तक चलने वाली पं. बारेलालजी की अविरत सेवाओं ने आज क्षेत्र को जिस समुन्नत दशा में प्रस्तुत किया है वह सबके सामने है। दिवंगत पं. बारेलालजी प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा समर्पित करता हूँ।

श्री पं. बारेलालजी की समाधि के बाद क्षेत्रीय जनता के आग्रह से उनके ज्येष्ठ सुपुत्र डा. कपूरचन्द्र जी ने उसी निष्ठा के साथ कार्य संभाला है और उसी के फलस्वरूप भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा का अष्टशताब्दी-महामस्तकाभिषेक आयोजित किया गया है। इस माङ्गलिक अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का नैमित्तिक अधिवेशन आमन्त्रित किया गया है। विद्वत्परिषद् भारतवर्षीय दि. जैन विद्वानों का एक सक्रिय संगठन है जिसका लक्ष्य समाज में धार्मिक चेतना को जागृत रखते हुए विद्वानों को सुसंगठित करना है।

विद्वत् परिषद् का द्वार उन समस्त विद्वानों के लिये सदा खुला हुआ है जो परस्पर भ्रातृभाव का संरक्षण करते हुए आगमोक्त पद्धति से जिनधर्म की प्रभावना करने में संलग्न रहते हैं। यह विद्वत्परिषद् सन् १९४४ में भगवान् महावीर के २५००वीं वीरशासन जयन्ती के समय कलकत्ता में स्थापित हुई थी। दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य विद्वानों ने विद्वत्परिषद् में संमिलित हो इसे गौरवमय बनाया। देश के विविध प्रान्तों में इसके अधिवेशन सम्पन्न हुए हैं। गत वर्ष कलाकेन्द्र खजुराहो में इसका चतुर्दश अधिवेशन सम्पन्न हुआ था। विद्वानों को अध्ययन, अध्यापन, प्रवचन और लेखन के क्षेत्र में प्रगतिशील बनाने के लिये विद्वत्परिषद् की ओर से अनेक शिविर, तथा विद्वत्संगोष्ठियां आयोजित की गई है। इनके माध्यम से कई विद्वान् आगे आये है। लेखन के क्षेत्र में उच्च कोटि का साहित्य लिखने वाले विद्वानों की पुस्तकों को भी गोपालदास बरैया और श्री गणेशप्रसाद वर्णी पुरस्कार से पुरस्कृत किया जाता है। यह पुरस्कार की योजना ग्यारह वर्ष से चल रही है। गत वर्ष खजुराहों अधिवेशन में श्री पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी द्वारा लिखित 'अध्यात्म-अमृत-कलश' पुरस्कृत किया गया था और इस वर्ष श्री नीरजजी सतना द्वारा लिखित 'गोम्मटेश गाथा' नामक पुस्तक पुरस्कृत की जा रही है। विद्वत्परिषद् को पुरस्कार की यह राशि भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्राप्त होती है। पुरस्कार राशि का परिमाण पहले एक हजार रुपये था, परन्तु अब उदारचेता साहु श्रेयान्साप्रसादजी ने उसे वृद्धिगत कर २१००) कर दिया है।

पारित प्रस्ताव

खजुराहो अधिवेशन में विद्वत्परिषद् ने दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए थे -

१. प्रतिष्ठा-विषयक शिविर लगाना और बाल-किशोर साहित्यक का निर्माण करना। प्रतिष्ठा-विषयक सर्वमान्य ग्रन्थ की तैयारी चल रही हैं। वह कब पूर्ण होती है, यह लेखन विद्वानों पर निर्भर है। प्रयत्न किया जा रहा है कि वह शीघ्र ही तैयार हो जाय तो उसके आधार पर तद्विषयक शिविर का आयोजन किया जाय। बाल-किशोर साहित्य निर्माण की कोई व्यवस्थित रूपरेखा हम अभी तक प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं, इसका खेद है। डॉ. भागचन्द्रजी भागेन्दु इस दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं। अपनी-अपनी व्यस्तताओं के कारण उपसमिति

के सदस्य यह नहीं कर सके हैं, ऐसा मैं समझता हूँ। श्री मिश्रीलालजी एडवोकेट गुना इस विषय में प्रयत्न कर रहे हैं। लेखक विद्वानों से अनुरोध है कि वे इस महत्त्वपूर्ण कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न कर दें।

श्री डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री स्मारक निधि

स्व. डा. श्री नेमिचन्द्र जी शास्त्री स्मारक निधि की ओर से अभी हाल 'भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान' प्रथम भाग प्रकाशित किया गया है। इसमें शास्त्रीजी के महत्त्वपूर्ण लेखों का संकलन - लेख, साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा सामाजिक-सभी प्रकार के हैं। श्रीमान् पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने उस पर प्राक्कथन लिखा है। बहुश्रुत विद्वानों ने इसके प्रकाश पर उत्तमोत्तम संमतियाँ दी हैं। षट्खण्डागम स्वाध्याय शिविर के समय सागर में पूज्यवर आचार्य विद्यासागर जी के करकमलों द्वारा ग्रन्थ का विमोचन हुआ था। इस ग्रन्थ का द्वितीय भाग प्रेस में है। हमारा अनुरोध है कि व्रिद्वत्परिषद् के सदस्य एवं अन्य श्रुतप्रेमी सज्जन इस ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार और विक्रय में सहयोग करेंगे। इन दोनों भागों के विक्रय से प्राप्त राशि से अन्य साहित्य प्रकाशित किया जा सकेगा।

हीयमान शिक्षा का स्तर

जैन समाज के प्रचलि विद्यालयों में गिरता हुआ शिक्षा का स्तर देखकर मन में वेदना होती है। गुरु गोपालदासजी वरैया और श्री १०५ क्षु. गणेशप्रसादजी वर्णी ने जैन समाज के अन्दर धार्मिक विद्यालय स्थापित कराकर जैनधर्म और जैनदर्शन के अध्ययन-अध्यापन की जो धारा प्रवाहित की थी वह उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। आज का छात्र आजीविका की दृष्टि से अध्ययन करता है और धार्मिक अध्ययन करने से महँगाई के जमाने में उसकी आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती, वह इस ओर से अपनी शक्ति हटाकर इंगलिश के अध्ययन की ओर लगाने लगा है। कुछ विद्यालयों ने दुहरी शिक्षा की व्यवस्था अपने यहाँ की, परन्तु यह सफल होती नहीं दिखी। उसका कारण है कि छात्र न इतनी कुशाग्र बुद्धि रखता है और न हीं इतना श्रम करता है जिससे दोनों विषयों में परिपक्वता प्राप्त कर सके। येन केन प्रकारेण छात्र परीक्षा तो उत्तीर्ण कर लेते हैं। परन्तु योग्यता के नाम पर वे शून्य जैसे होते हैं। इस विषय पर विद्वानों को विचार करना है। जिस प्रकार छात्र पहले एकनिष्ठ होकर संस्कृत-प्राकृत भाषा के माध्यम से धार्मिक और दर्शनिक विषयों का अध्ययन करते थे उसी प्रकार अब भी करें तथा समाज के उदार महानुभाव उन्हें समयोजित संरक्षण दें तो समस्या सुलझ सकती है। इस ह्रास के समय एकनिष्ठ अध्ययन करने वाले छात्रों को संस्थाओं की ओर से विशेष सुविधा मिलनी चाहिये। साथ ही छात्रों को भी अपने लक्ष्य का परिमार्जन करा चाहिये। **'सा विद्या या विमुक्तये'** इस सूक्ति पर ध्यान देते हुए धार्मिक अध्ययन करना चाहिये।

मनभेद, मतभेद के कारण न बनें

इस समय ही नहीं, बहुत पहले से लोगों में विचार-वैषम्य चला आता है। अपने-अपने ज्ञान के आधार पर विद्वान् लोग विषय का प्रतिपादन करते हैं परन्तु जब कभी लेखक और वक्ता सूत्र और वाणी का संतुलन खोकर इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं कि जिससे समाज का वातावरण क्षुभित हो जाता है। यदि समालोचक विद्वान् दूसरे की छीछलेदारी न कर विषय का यथार्थ वर्णन करें तो स्थिति में बहुत सुधार हो सकता है। समाज के पत्र एक दूसरे की आलोचना-प्रत्यालोचना से भरे रहते हैं, इससे कई लोग तो ऐसी धारणा

बना चुके हैं कि जैन पत्रों में काट-छाँट के सिवाय रहता ही क्या है? समाज के अन्दर ऐसा एक भी साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक पत्र दृष्टिगोचर नहीं होता जो हिन्दी के अन्य पत्र-पत्रिकाओं के समक्ष रखा जा सके। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लेखक विद्वान् अपने विचार प्रकट करें, यह ठीक है परन्तु उसका वह कार्य मनभेद का कारण न बने, इसका ध्यान रक्खा जाय।

धार्मिक संस्कार

अभिषेक, पूजन तथा प्रतिष्ठा आदि पर अपने विचार प्रकट करते हुए कुछ विद्वानों ने इन सबको विकृत और निरर्थक बताने का प्रयत्न शुरू किया है। इस प्रकार की पुस्तकें लिखकर प्रचारित की जा रही हैं। उनके लिखने का एक ही तर्क है कि भगवान् तो वीतराग हो चुके, उनके अभिषेक की क्या आवश्यकता? उनका तो प्रक्षाल ही होता है। इस विषय पर कहना यह है कि साक्षात् वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र का तो न अभिषेक होता है और न प्रक्षाल ही। परन्तु प्रतिमाओं का अभिषेक सदा से चला आया है। नन्दीश्वरभक्ति तथा चैत्यभक्ति की अंचलिकाओं में चतुर्निकाय देवों के द्वारा अकृत्रिम चैत्यालयस्थ प्रतिमाओं के अभिषेक का उल्लेख किया गया है। ये प्राकृत-भक्तियाँ तथा अंचलिकाएँ कुन्दकुन्दाचार्य कृत कही गई हैं। संस्कृत-भक्तियाँ पूज्यपादाचार्य विरचित बताई जाती हैं उनमें भी सौधर्मेन्द्र की स्नपन-कर्तृताका उल्लेख किया है (नन्दीश्वरभक्ति श्लोक १५/१६, क्रियाकलाप)। स्वर्ग में भी देव जब उपपाद शय्या से उठता है तब सर्वप्रथम अपने विमान में स्थित अकृत्रिम चैत्यालयस्थ प्रतिमाओं का अभिषेक तथा पूजन करता है, पश्चात् अन्य कार्य। आज की युवा पीढ़ी वैसे ही जिनपूजा आदि धार्मिक क्रियाओं से विमुख हो रही है, फिर इनकी निरर्थकता का उपदेश यदि मिल जाय तो कहना ही क्या होगा।

ग्रन्थों का संपादनादि

ग्रन्थों के संपादन, संकलन एवं अनुवाद आदि पर उठने वाले विवादों से समाचार पत्रों के कालम भरे देखे जाते हैं। इस संदर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि सिद्धान्त-विरुद्ध बातों का विरोध तो होना चाहिये, पर विरोध की भाषा संयत हो, तो उससे विवादों को स्थान नहीं मिलेगा। नवीन लेखक और प्रकाशक यदि पाण्डुलिपि का वाचन किसी योग्य विद्वानों से करा लें तो ग्रन्थगत अशुद्धियाँ प्रकाशन के पूर्व ही निकाली जा सकती हैं। विद्वत्परिषद् या शास्त्रिपरिषद् के माध्यम से यह कार्य अच्छी तरह संपन्न कराया जा सकता है। कोई वक्ता या लेखक अपने चिन्तन एवं मनन के आधार पर यदि कुछ नई बात लिखता या कहता है तो गंभीरता से उस पर विचार करके ही कुछ लिखना या कहना ठीक होता है। वक्ता की विवक्षा और प्रवचन के प्रकरण पर विचार किये बिना ही कितने ही विद्वान् वक्ता के ऊपर असंयत शब्दों का प्रयोग कर अपने आप को ज्ञानी और सम्यग्दृष्टि घोषित करने का प्रयास करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति समीचीन नहीं मालूम होती।

पंथवाद का आग्रह

पंथवाद ने समाज में गहरी जड़ जमा ली है, इसलिये उसे सहसा परिवर्तित नहीं किया जा सकता। तेरह पंथ और बीस पंथ, कितने ही नगरों में विवाद का विषय बना हुआ है। कितने ही जगह कोर्ट में केस

चल रहे हैं। इस पर उभय पंथवालों को गंभीरता से विचार करना चाहिये। आराध्यदेव दोनों के एक हैं परन्तु आराधना की पद्धति में भेद है। इस पद्धतिभेद का समन्वय पण्डितप्रवर आशाधरजी ने-

यथाकथञ्चिद् भजतां जिनं निर्व्याजचेतसाम्।
मनोरथाश्च सिध्यन्ति दिशः कामान् दुहन्ति च॥ सागारधर्मामृत।

इस श्लोक में 'यथाकथंचिद्' शब्द देकर बड़ी सुन्दरता से किया है। पूजा में पद्धतिभेद सहन किया गया है परन्तु अभिप्राय में ब्याज-छलको स्वीकृत नहीं किया गया है। शास्त्रों के चिन्तन और मनन से यदि किसी को अपनी त्रुटि समझ में आ जाती है तो विचार-परिवर्तन में विलम्ब नहीं लगता। ऐसे हजारों व्यक्ति अपने सामने हैं जो जन्मजात पंथ को छोड़कर दिगम्बर धर्म में दीक्षित हुए हैं। जन्मजात पंथ को छोड़ना अल्प साहस की बात नहीं है। मैं ऐसे लोगों का स्वागत करता हूँ।

निश्चय और व्यवहार

मोक्षमार्ग के निरूपण में आचार्यों ने निश्चय और व्यवहार दोनों नयों का आलम्बन लिया है। पात्र की योग्यता देख कहीं व्यवहार नय से उन्होंने उपदेश दिया है और कहीं निश्चय नय से। दोनों नयों की उपयोगिता को आचार्यों ने स्वीकृत किया है परन्तु निश्चय और व्यवहार की जो मर्यादा है उसे स्वीकृत करते हुए ही दोनों नयों को स्वीकृत किया है। हमारे चलने में आँख की उपयोगिता मार्गदर्शन में है और पैरों की उपयोगिता मार्ग के चलने में है। पैर आँख की उपेक्षा नहीं कर सकते और आँख पैरों की उपेक्षा नहीं कर सकती। पैर और आँखों की उपयोगिता तब तक है जब तक हम गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँचे हैं। गन्तव्य स्थान प्राप्त कर लेने पर दोनों को विराम मिल जाता है। पैर और आँखों की तरह व्यवहार और निश्चय भी परस्पर सापेक्ष हैं। आज विवाद वहाँ हो जाता है जहाँ वक्ता एक नय को कहकर दूसरे नय को छोड़ देता है-छोड़ ही नहीं देता त्याज्य बतलाने लगता है। समयसार के प्रणेता कुन्दकुन्दाचार्य हैं उन्होंने उसमें निश्चय नय का प्रतिपादन करने के बाद व्यवहार नय का भी प्रतिपादन किया है, और 'स न सन्' कहकर उसके पक्ष को गौण दिखा दिया है। पर आज तक किसी को समय-सार की कथनी से विवाद उत्पन्न नहीं हुआ। यदि वक्ता अपनी वक्तृत्वशैली को परिमार्जित कर बोलने लगें तो बहुत सारा विवाद स्वयं समाप्त हो जाय।

आचार-विचार

आज हमारा आचार और विचार अधिकांश अपने पड़ोसी हिन्दू धर्म में घुल मिल गया है। जैन कुलोचित आचार क्या है? और ईश्वरवाद के विपक्ष-कर्मवाद पर अवलम्बित मानव का विचार क्या है? इसे हम भूलते जाते हैं, यह अच्छी बात नहीं है। मद्य, मांस, मधु का त्याग, देवदर्शन, छने जल का सेवन और रात्रि भोजन का परित्याग, ये जैन धर्म के धारक मानव के बाह्य चिह्न प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। इन चिह्नों से ही हमारे जैनत्व का बोध होता आ रहा है परन्तु आज हम लोग इन्हें उपेक्षित करने लगे हैं।

कित निगोद कित नारकी कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो पायो जिनवर थान॥

कितना भावपूर्ण दोहा है यह? निगोद, नारकी और अज्ञानी निर्यंचों में परिभ्रमण करते हुए मेरा कितना काल बीत गया, पता नहीं, आज मेरा धन्यभाग्य है कि मुझे जिनेन्द्रदेव का स्थान प्राप्त हुआ है। दुर्लभ जैनधर्म

पाकर उसकी उपेक्षा करना, तदनुरूप श्रद्धा और आचरण नहीं करना हस्तगत मणि को गहरे समुद्र में फेंक देना है। हमारे विद्वानों का कर्तव्य है कि वे निष्ठापूर्वक जैन गृहस्थ के आचार का पालन करें तथा दूसरों को सम्बोधित करें।

कुछ सामाजिक भी

इस संदर्भ में कुछ सामाजिक गतिविधियों पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। आज समाज में लड़की के योग्य वर का प्राप्त कर लेना कठिन काम हो गया है। पच्चीस-पच्चीस तीस-तीस वर्ष की कुमारी लड़कियाँ घर में बैठी हैं, पर मुँहमाँगे दहेज की व्यवस्था न कर सकने के कारण माता-पिता निरन्तर चिन्तित रहते हैं। हमारे युवावर्ग में ऐसी अकर्मण्यता क्यों आ गई है कि वे स्त्रीपक्ष से प्राप्त धन से अपना निर्वाह करना चाहते हैं। यदि किसी के घर ४-५ लड़कियाँ हुई तो उसे अपना मकान या जायदाद बेंचकर सड़क पर डेरा डालने की स्थिति आ जाती है। लोग कहते हैं कि अन्तर्जातीय विवाह करने से समस्या का समाधान किया जायगा। पर हम वहाँ भी देखते हैं। अन्तर्जातीय विवाह वही करते हैं जहाँ अधिक दहेज मिलता है। गरीब की कन्या लेने के लिये कोई बड़ा आदमी सामने नहीं आता। किसी तरह यदि कोई गरीब की लड़की ले भी लेता है तो उसे सास-ननद के कटुक वचन निरन्तर सहन करने पड़ते हैं। ऊबकर लड़की आत्मघात् कर लेती है या पतिदेव उसे परित्यक्ता बना देते हैं। आज गाँव-गाँव में ऐसी परित्यक्ता स्त्रियाँ कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही है। माता-पिता की कठिनाई का अनुभव कर कितनी ही लड़कियों ने ब्रह्मचर्य व्रत ले रखा है। पर ऐसा महान साहस सभी लड़कियाँ तो नहीं कर सकती।

हमारे युवासंगठन यदि यह सोच लें कि हम विवाह में दहेज की माँग नहीं करेंगे तो बहुत कुछ अंशों में समस्या का हल हो सकता है। वैवाहिक कार्य यदि सादगी से निपटा लिये जायें तो कन्या और वर दोनों पक्ष के लोगों को लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

यह नैमित्तिक अधिवेशन बोरवली (बम्बई) में संपन्न विद्वत् संगोष्ठी में उपस्थिति तीन संरक्षकों तथा दश-बारह सदस्यों ने निर्णय लिया कि खजुराहों अधिवेशन में पारित प्रस्तावों को क्रियान्वित करने के लिए नैमित्तिक अधिवेशन किया जाय। कार्यकारिणी के समस्त सदस्यों तथा जगह-जगह से समागत सदस्यों से विनयपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि वे विद्वत्परिषद के अधूरे कार्यों को पूर्ण तत्परता से सम्पन्न करें।

आभार

श्री शान्तिनाथ भगवान् के मस्तकाभिषेक-समारोह-समिति ने विद्वत् परिषद् को आमन्त्रित किया, इसके लिये उसका आभारी हूँ। साथ ही सदस्य विद्वानों ने अधिवेशन में शामिल होकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और धैर्य के साथ भाषण सुना, एतदर्थ सबका आभारी हूँ। इस मस्तकाभिषेक-समारोह के समय न्यायाचार्य डॉ. दरबारीलाल कोठिया को अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित कर उनके अभिनन्दन का आयोजन किया गया, यह महान् हर्ष का विषय है। भारतीय ज्ञानपीठ के अध्यक्ष की साहु-श्रेयान्स-प्रसादजी के करकमलों द्वारा गोम्मटेश गाथा के लेखक श्री नीरज जी सतना को प्रशस्तिपत्र तथा २१००) का पुरस्कार समर्पित किया जा रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। अन्त में त्रुटियों के लिये क्षमा-याचना करता हुआ विराम लेता हूँ।

समाजरत्न पं. भँवरलाल न्यायतीर्थ

श्री भगवान पार्श्वनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं भगवान बाहुबली प्रतिष्ठापना महोत्सव फिरोजाबाद के शुभ अवसर पर आयोजित श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद्केपन्द्रहवें अधिवेशन

का

अध्यक्षीय भाषण

वीतरागाय नमः

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनं।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥

जैनशासन के परमप्रभावक, आत्माराधना में निरत पूज्य आचार्यसंघ, त्यागीगण, विद्वद्वृन्द, श्रीमन्त, धीमन्त, देवियों और महानुभावों!

स्व. सेठ श्री छदामीलालजी द्वारा निर्मापित मन्दिर एवं भी बाहुबली भगवान की अतिशय पूर्ण विशाल प्रतिमा से समलंकृत भारत की विख्यात ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक नगरी फिरोजाबाद में आयोजित भ. पार्श्वनाथ पंचकल्याणक एवं भ. बाहुबली प्रतिष्ठापना महोत्सव के शुभावसर पर अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद् के १५वें अधिवेशन पर उपस्थित सभी विद्वान् मनीषियों एवं सभी उपस्थित महानुभावों का मांगलिक अभिवादन एवं अभिनन्दन।

सन् १९४४ में अपनी स्थापना से लेकर अद्यावधि पर्यन्त ४१ वर्ष में विद्वत्परिषद् को समय-समय पर मान्य गुरुजनों एवं सुधीजनों के सान्निध्य में जैनत्व के गरिमामय प्रचार-प्रसार के साहित्यिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुई हैं। जिन शासन के संरक्षण, प्रचार-प्रसार तथा देश एवं विद्वानों के उन्नयन के अपने महान् लक्ष्य की सम्पूर्ति में अग्रसर इस विद्वत् मनीषियों स्व. गुरुणां गुरु पं. गोपालदासजी बरैया, पूज्यपाद गणेशप्रसाद जी वर्णी, पं. जीवन्धरजी, बाबू जुगलकिशोर जी मुख्तार, ब्र. शीतलप्रसाद जी, पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ एवं पं. नेमिचन्दजी ज्योतिषचार्य, तथा विद्यमान पं. कैलाशचन्द जी, पं. जगन्मोहन जी, पं. फूलचन्दजी, पं. बालचन्द जी, डा. दरबारी लाल जी कोठिया, पं. नाथूलालजी, डा. पन्नालालजी एवं अन्यान्य विद्वान् पदाधिकारियों आदि की सत्प्रेरणा एवं आशीर्वाद का ही सुफल है।

सम्प्रति विद्वत्परिषद् में वरिष्ठ एवं मूर्धन्य विद्वानों के रहते हुए इस महती संस्था के गौरवशाली गरिमामय अध्यक्ष पद पर मुझ अकिंचन का निर्वाचन कर आप लोगों ने मुझे संकोच में डाल दिया है कि मैं इसे कैसे निभा सकूंगा? यद्यपि मैं इस पद के योग्य नहीं हूँ फिर भी विद्वज्जनों एवं मान्य विद्वान् मित्रों का तथा सहयोगियों का ही इसे स्नेह मानता हूं। इस गुरुतर दायित्व के निर्वहन में आप सभी सुधीजनों के आशीर्वाद, परामर्श, प्रेरणा एवं मंगल कामनाएँ मेरे लिए सम्बल होंगे।

स्वाध्याय की आवश्यकता:-

यह हम जानते हैं कि **"ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण" - "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"** ज्ञान और ध्यान की अग्नि सब बुराइयों को भस्म कर देती है। ज्ञान पूर्वक आचरण और ध्यान जैन परम्परा में महत्वपूर्ण हैं। इसीलिए स्वाध्याय को परम तप कहा गया है। जनसामान्य को स्वाध्यायोन्मुखी बनाने में विद्वानों का सदैव योगदान रहा है। स्वनामधन्य पं. टोडरमलजी, पं. जयचन्द्र जी छबड़ा, पं. सदासुखदासजी, पं. दौलतरामजी कासलीवाल, पं. खुशालचन्द जी काला प्रभृति विद्वानों ने आवश्यकतानुसार आगम ग्रंथों की हिन्दी वचनिकायें लिखकर एवं स्थान-स्थान पर स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना कर जिनवाणी की महती सेवा की है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल प्रथमानुयोग अपितु द्रव्यानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग सम्बन्धी गम्भीर ग्रन्थों का भी अध्ययन प्रारम्भ हुआ और आत्मकल्याण के साथ-साथ समाज का हित सम्पादित हुआ।

इस शती में ऐसे मनीषी विद्वान रहे हैं जिन्होंने जिनवाणी की उपासना में अपना जीवन लगा दिया है और सबको ज्ञानामृत पान कराया है। षट्खण्डागम आदि महान्ग्रन्थों का हम नाम ही सुनते थे, पर आज वे सब मुद्रित होकर हमारे समक्ष हैं, उनका प्रचार हुआ है। परम पूज्य युवा तपस्वी आचार्य प्रवर श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के सान्निध्य में उक्त महान् ग्रन्थों का विद्वत्परिषद् के मनीषी विद्वानों द्वारा एक साथ बैठकर वाचन, ऊपापोह और चर्चावार्ता से स्पष्ट है कि जैनतत्त्व के गूढ़ रहस्य को समझने-समझाने में हमारे विद्वान् सक्षम हैं। यह एक महान उपलब्धि है और विद्वत्परिषद् के लिये गौरव की बात है। ऐसी महत्त्वपूर्ण वाचनाओं में युवापीढ़ी के विद्वानों को भी सम्मिलित होना चाहिए ताकि वे पुरानी पीढ़ी के इन जैन तत्त्व के तलस्पर्शी विद्वानों के साथ बैठकर उसी प्रकार के विद्वान् बन सकें। विद्वत्परिषद् को चाहिए कि आगम और दर्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन नई पीढ़ी के विद्वानों को कराया जाय और इस कार्य के लिए 'आगम अध्ययन शिवर' और 'दर्शन अध्ययन शिविर' वर्ष में दो बार आयोजित किये जायें। वर्तमान में अध्यात्म-ग्रन्थों के शिविर आयोजित हो रहे हैं परन्तु दर्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन समाप्त प्रायः है।

शोध प्रवृत्तियाँ -

आज जैन ग्रन्थों के शोध का कार्य भी कई जगह चल रहा है। कई विद्वानों द्वारा शोध-प्रबन्ध लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। इस वैज्ञानिक युग में विद्वानों का कर्तव्य हो जाता है कि नवीन विधाओं को जनसाधारण के सामने प्रस्तुत करें और भूगोल, खगोल, परमाणु, कर्म-सिद्धान्त, ज्योतिष, आयुर्वेद साहित्य आदि की विभिन्न विधाओं के शोधकार्य पर ध्यान दिया जाय। विद्वत्परिषद् के अनेक गणमान्य विद्वानों के निर्देशन में शोधकार्य हो रहे हैं, यह गौरव की बात है। आज आधुनिक प्रगतिशील विद्वानों की कमी नहीं और अनेक शोध-संस्थायें इस कार्य में रहत हैं। श्री महावीर जी का जैन विद्या शोध संस्थान, वैशाली का प्राकृत शोध संस्थान, वाराणसी का श्री गणेशवर्णी दि. जैन शोध संसथान, कुम्भोज बाहुबली का अनेकान्त शोध विद्यापीठ, वीर सेवा मंदिर दिल्ली आदि कई प्रमुख है। भारतीय ज्ञानपीठ एवं जयपुर में श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के प्रकाशन भी इस दिशा में उल्लेशनीय कार्य हैं।

हमारे ज्ञान मंदिर

जैन समाज में संस्कृत महाविद्यालय/विद्यालय/पाठशालायें आदि शिक्षण संस्थायें पं. गोपालदासजी बरैया एवं पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के समय से चल रही है और उन संस्थाओं के प्रायः सभी स्नातक समाज

में कार्यरत हैं जिनसे समाज अपरिचित नहीं है। यह तथ्य है कि समाज ने शिक्षा संस्थायें स्थापित कर उनके संचालन में जितना व्यय किया है उससे असंख्य गुणित लाभ उन संस्थाओं से उत्पन्न विद्वानों ने समाज को प्रत्यर्पित किया है। उन विद्वानों में सरस्वती के प्रति अपूर्व लग्न होने से वे अपनी आजीविका की परवाह न कर अद्यलौं जिनवाणी की आराधना में संलग्न हैं।

पूज्य वर्णी जी आदि द्वारा स्थापित अनेक विद्यालय आज भी मौजूद हैं, परन्तु उनमें छात्र संख्या की स्थिति नगण्य है। विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिए कि उन विद्यालयों ने पुन: छात्रों की संख्या कैसे बढ़े, और उनमें अध्ययन के प्रति रुचि कैसे जागृत हो? यद्यपि आज अध्यात्म-पाठशलाएँ खुल रही हैं, परन्तु उनमें परम्परागत आवश्यक अध्ययन की व्यवस्था नहीं होने से अपेक्षित संस्कार उत्पन्न नहीं हो पा रहे हैं।

सम्प्रति आवश्यकता है - नई पीढ़ी को प्राच्य महाविद्यालयों के प्रति आकर्षित किया जाय ताकि परम्परागत शैली के प्रौढ़ विद्वान तैयार हो सकें। इस कार्य को वर्तमान में जयपुर स्थित सौ वर्ष प्राचीन दि. जैन आ. संस्कृत महाविद्यालय प्रति वर्ष 10-15 शास्त्री आचार्य स्तर के विद्वान तैयार कर, सम्पन्न कर रहा है।

प्राच्य महाविद्यालयों में सैद्धान्तिक प्राच्य शिक्षण व्यवस्था के साथ ही शोध कार्य के अध्ययन-अध्यापन की श्री महती आवश्यकता है। ऐसी व्यवस्था जयपुर के उक्त महाविद्यालय में आरम्भ हो चुकी है। यहां के प्राचार्य डा. शीतलचन्द्र जैन के निर्देशन एवं उनके अधीन प्रोफेसर के निर्देशन में चार शोधार्थी कार्य कर रहे हैं। मेरी जानकारी में पूरे भारतवर्ष में मात्र यही एक जैन महाविद्यालय है जहां जैन दर्शन, साहित्य के शास्त्री/आचार्य की शिक्षा के साथ-साथ शोध कार्य का अध्यापन भी हो रहा है।

इसी सन्दर्भ में प्राच्य महाविद्यालयों में प्राकृत एवं अपभ्रंश के अध्ययन अध्यापन की ओर भी विद्वानों का ध्यान अपेक्षित है। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारें एतदर्थ भी अनुदान देती हैं। समाज के विद्वानों एवं संस्थाओं के संचालकों को इससे लाभ उठाना चाहिये।

बालकों में संस्कारों का बीजारोपण

बालक विकसित समाज की नींव हैं। उनके अच्छे संस्कार उनके स्वयं के भावी जीवन एवं सुसंस्कृत समाज की आधारशिला है। इस दृष्टि से बालोपयोगी साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन अपेक्षित है। यद्यपि पूर्व में भी इस कार्य के लिये प्रस्ताव पारित हुए हैं परन्तु उनकी क्रियान्विति नहीं हो पाई। इस ओर पुन: ध्यान दिया जाना चाहिये।

समाज में व्याप्त शैथिल्य

धार्मिक क्षेत्र में शिथलाचार जब भी फैला तब-तब ही तत्कालीन विद्वानों ने जनसामान्य को संबोधन हेतु एक क्रान्ति पैदा की, पुरुषवर्ग को ही नहीं महिलाओं को भी शिक्षित बनाया और आगम के गूढ तत्वों में उन्हें भी पारंगत किया। फलत: गृहस्थ के जीवन में सही रूप में जैनाचार उतारा, विसंगतियाँ दूर हुईं। आज फिर शिथिलाचार बढ़ रहा है। जनसाधारण में स्वाध्याय की परिपाटी नहीं रहने से मनमानी प्रवृत्तियाँ होने लगी हैं और उसी को लोग धर्म मान बैठे हैं। फलत: मिथ्यात्व बढ़ता जा रहा है। सोनगढ़ में कपोलकल्पित तथाकथित सूर्यकीर्ति का प्रतिष्ठापन जैसा मिथ्यात्व वर्धक कार्य हुआ है तो निन्दनीय है। आज गृहस्थों में भौतिक वातावरण

में ग्रस्त होने के कारण आचार-विचार, आहार-विहार आदि सभी क्रियाओं में विकृतियाँ एवं शैथिल्य फैलता जा रहा है। जैन संस्कृति में श्रमण और श्रावक संस्था में तनिक भी शैथिल्य सह्य नहीं है। जैन संस्कृति की इन दोनों आधारशिलाओं में से एक में भी शैथिल्य आया तो दूसरे पर असर पड़े बिना नहीं रहता। यही कारण है कि आज व्रतीवर्ग में भी कहीं-कहीं शैथिल्य आने लगा है। अत: विद्वत्ववर्ग का कर्त्तव्य है कि वह शिथलाचार को दूर करने का पूर्ण प्रयास करें ताकि हमारी संस्कृति अक्षुण बनी रहे।

जैसा कि मैंने निवेदन किया है कि स्वाध्याय हमारे लिए परमोपयोगी है - इसी से अज्ञान दूर हो सकता है। इसी से सर्वसाधारण धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को पहचान सकता है - इसी से शिथिलाचार और मिथ्यात्व दूर हो सकता है। परमपूज्य एलाचार्य श्री १०८विद्यानंदजी महाराज ने भारत के कौने-कोने में जैनत्व को चमकाया है, जैन तत्त्व का प्रचार किया है। उनकी सभा में हजारों श्रोतागण उपस्थित होते हैं। उनकी षष्टी पूर्ति पर यह वर्ष श्रावकाचार वर्ष के रूप में घोषित हुआ है। यह बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी योजना है। हमें सही मायने में इसे श्रावकाचार वर्ष के रूप में अपनाते हुए अपने अन्तर को शोधना है और जन-जन को इसका महत्त्व समझाना है।

यह संतोषावह है कि विद्वत्परिषद् विविध विचार वाले विद्वानों का सुसंगठन है; परिषद् की नीति के अनुसार अपेक्षित विषय पर वे मतैक्य भी रखते हैं। विद्वत्परिषद् में शास्त्रिपरिषद् के विद्वान भी हैं, और इसी प्रकार शास्त्रि-परिषद् में विद्वत्परिषद् के विद्वान भी हैं। पर विद्वानों की भिन्न-भिन्न दो संस्थाओं का होना वास्तव में जन सामान्य के लिये रुचिकर नहीं होता। अतएव कितना अच्छा हो कि दोनों संस्थाएँ एक होकर अपनी संबर्द्धित शक्ति से आर्षमार्गानुसार समाज का बहुमुखी हित सम्पादित करें।

गत वर्षों में जैन समाज को पूज्य मुनिराजों एवं विद्वानों की क्षति भी उठानी पड़ी है। परम पूज्य आचार्य श्री जयसागरजी महाराज आदि के पावन दर्शनों से हम वंचित हुये। इसी तरह लोकप्रिय प्रचारक उत्साही विद्वान् पं. बाबूलालजी जमादार, पं. परमानन्द शास्त्री, पं. व. पा. शास्त्री आदि दिवंगत विद्वानों के लिए श्रद्धांजलियाँ एवं शान्तिलाभ की कामना के साथ शोक-संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक समवेदना व्यक्त करते हैं।

अपने भाषण को समाप्त करने से पूर्व मैं उपस्थित विद्वत्परिषद् के सदस्य महानुभावों से निवेदन करना चाहूँगा कि आगामी बैठकों में हम जो भी प्रस्ताव प्रस्तुत कर पारित करें वे भले ही संख्या में कम ही हों- परन्तु वे महत्वपूर्ण, व्यावहारिक, ज्वलन्त समस्याओं के समाधान हेतु एवं क्रियान्विति के योग्य हों।

अन्त में, मुझ अल्पज्ञ को अध्यक्ष पद का गुरुतर दायित्व संभलाया है उसके प्रति आपका कृतज्ञ हूँ। आप विद्वज्जनों से निवेदन है कि आप अपने सौजन्यपूर्ण सहयोग से मुझे सम्बल प्रदान करें। आपका अपेक्षित सहयोग ही इस विद्वत्परिषद् को वट वृक्ष का रूप दे सकेगा। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ हम सब ज्ञानाराधना से स्व-पर कल्याण में प्रवृत्त होवें।

जय महावीर

समाजरत्न पं. भँवरलाल न्यायतीर्थ

श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र कुण्डलगिरि (दमोह- म.प्र.) के वार्षिक मेले के शुभावसर पर आयोजित श्री अखिलभारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के साधारण (नैमित्तिक) अधिवेशन पर अध्यक्षीय उद्‌बोधन

वीतरागाय नमः

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनं।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥

जैनशासन के परमप्रभावक, आत्माराधना में निरत पूज्य मुनिवृन्द, त्यागीगण, विद्वत्वृन्द, श्रीमन्त, धीमन्त, देवियों और महानुभावों!

रमणीय कुण्डलाकार पर्वतिकाओं की उपत्यि का में स्थित श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर का शान्तिमय वातावरण हृदय का आकर्षित तो करता ही है साथ में पूज्य मुनिसंघ के दर्शन से वैराग्यमयी प्रेरणा भी मिलती है।

1400 वर्ष प्राचीन 12 फुट ऊँची कलापूर्ण मनमोहक श्याममूर्ति युक्त 'बड़े बाबा' के नाम से प्रसिद्ध यह क्षेत्र किसी समय अत्यन्त समुन्नत अवस्था में रहा होगा। वर्तमान में आदरणीय पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री के सानिध्य में ज्ञान गंगा प्रवाहित होती रहती है। यह इस क्षेत्र की प्रबन्ध समिति को बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस क्षेत्र का विकास भी उत्तरोत्तर उन्नति पर है, यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

क्षेत्र के वार्षिक मेले के मांगलिक अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् का साधारण नैमित्तिक अधिवेशन आमंत्रित किया गया है। विद्वत्परिषद् भारतवर्षीय दि. जैन विद्वानों का एक सक्रिय संगठन है जिसका लक्ष्य समाज में धार्मिक चेतना को जागृत रखते हुए विद्वानों को सुसंगठित करना है।

विद्वत्परिषद् का द्वार उन समस्त विद्वानों के लिये सदा खुला हुआ है जो समाज में परस्पर भ्रातृभाव का संरक्षण करते हुए आगमोक्त पद्धत्ति से जैन धर्म की प्रभावना एवं सरस्वती की सेवा में संलग्न हैं। विद्वत्परिषद् की स्थापना सन् 1944 में कलकत्ता में हुई थी। इन 45 वर्षों में विद्वत्परिषद् के देश विभिन्न प्रान्तों में 15 अधिवेशन हुए हैं। जिनमें समाज को विद्वानों से अधिक मार्गदर्शन प्राप्त हुए हैं। जिन शासन के संरक्षण, प्रचार-प्रसार तथा देश एवं विद्वानों के उन्नयन के अपने महान लक्ष्य की सम्पूर्ति में अग्रसर इस विद्वत्परिषद् ने समाज में जो कीर्ति स्थापित किये हैं वे भूरिशः-प्रशंसनीय है। यह सब उन विद्वान् मनीषियों स्व. गुरुणांगुरु पं. गोपालदास जी बरैया, पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी, पं. माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य, पं. बंशीधर जी शास्त्री, पं. देवकीनन्दन जी, पं. जीवंधर जी, बाबू जुगुलकिशोर जी मुख्तार, ब्र. शीतलप्रसाद जी, पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ, पं. नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य एवं पं. कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री तथा विद्यमान में पं. जगन्मोहनलाल जी, पं.

फूलचन्द्र जी, पं. बालचन्द्र जी, पं. बंशीधर जी डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया, पं. नाथूलाल जी, डॉ. पन्नालालजी, एवं अन्यान्य विद्वान् पदाधिकारियों आदि की सत्प्रेरणा एवं आशीर्वाद का ही सुफल है।

खजुराहो अधिवेशन में विद्वत्परिषद् ने प्रतिष्ठा विषयक सर्वमान्य ग्रन्थ तैयार कराने का प्रस्ताव पारित किया था। वह ग्रन्थ भी पं. नाथूलाल जी शास्त्री एवं सहयोगी पं. गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' के अथक परिश्रम से तैयार हुआ है। आशा है यह ग्रन्थ छपकर जल्दी ही प्रकाश में आयेगा।

विद्वानों की कमी

सम्प्रति पुरानी पीढ़ी के विद्वानों की सम्पूर्ति नहीं के बराबर हो रही है। यद्यपि आज डाक्टर युवा विद्वान् तैयार हुये हैं और हो रहे हैं जो समाज की सेवा भी कर रहे हैं, परन्तु आज हमारे विद्वत्परिषद् की जो युवा विद्वान् पीढी है उसके बाद के जो छात्र आज संस्कृत महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में अध्ययन कर रहे हैं वे आजीविका की दृष्टि से अध्ययन कर रहे हैं। यही कारण है कि धार्मिक शिक्षण की ओर से मन हटकर इंग्लिश अध्ययन की ओर लग रहा है। इस विषय पर विद्वानों को विशेषतया युवा पीढ़ी के विद्वानों को विचार करना चाहिए। आज कई जगह की समाज की ओर से विद्वानों की माँग आती है, परन्तु आगमोक्त पद्धति से अध्ययन करने वाले विद्वान् उपलब्ध नहीं होने के कारण समाज निराश हो जाता है। विद्वानों के अभाव में धार्मिक चेतना के ह्रास का भय है। इस मँहगाई के युग में धार्मिक शिक्षा की ओर ध्यान तब ही जा सकता हैं जब समाज सरकार के बराबर विद्वानों को वेतन एवं मँहगाई भत्ता और सेवा सुरक्षा नियम बनाये। इस अधिवेशन में इस दिशा में विद्वानों ने यदि कोई मार्गदर्शन समाज को दिया तो बहुत बड़ी उपयोगिता होगी। समाज को चाहिए कि जो संस्कृत पाठशाला, महाविद्यालय बन्द या जिनके बन्द होने की आशंका बनी हुई है, उन्हें पुनर्जीवित किया जाये।

सुसंस्कार विहीन पीढ़ी

आज का बालक प्रात:काल उठता है तो अपनी जीवनचर्या टी.वी. से प्रारम्भ करता है और जब सोने जाता है तो टी. वी. से ही समाप्त करता है। टी. वी. पर जो संस्कार बच्चों को मिल रहे हैं उनसे हम सभी सुपरचित हैं। इसके साथ धार्मिक शिक्षा का अभाव बच्चों के संस्कार को दिशा-विहीन बना रहा है। आज अपने बच्चों को ही जैन कुलोचित आचार क्या हैं? ईश्वरवाद के विपक्ष-कर्मवाद पर अवलम्बित मानवीय जैन विचार क्या है? यह भूलते जा रहे हैं। आज मद्य-मांस-मधु का त्याग, देवदर्शन, छने जल और रात्रि भोजन का त्याग, ये हमारे बाहरी प्रतीक चिह्न जो प्राचीनकाल से चले आ रहे थे वे प्राय: लुप्त होते जा रहे हैं।

इस वैज्ञानिक युग में जहाँ भौतिकता की प्रधानता है। हम विद्वानों को विचार करना है कि टी. वी. युग के बच्चों को किस प्रकार धार्मिक संस्कार दिये जाये? अच्छा यह हो कि विभिन्न प्रान्तों में रहने वाले विद्वान अपने-अपने प्रान्तों के दूरदर्शन केन्द्र, और आकाशवाणी द्वारा आधुनिक तरीकों से अपने सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करें।

अपने-अपने गाँव नगर कालोनी में धार्मिक कक्षाओं का प्रतिदिन आयोजन नहीं कर सकते तो कम से कम सप्ताह में एक दिन कक्षाओं का आयोजन अवश्य करें। साथ ही दीपाली, शरदकालीन और ग्रीष्मावकाश के अवसरों पर विद्वत्परिषद् के विद्वानों द्वारा विशेष शिविरों का आयोजन करावें।

कुन्दकुन्द - द्विसहस्रादि

आचार्य कुन्दकुन्द का जैनाचार्यों में प्रमुख स्थान है। यही कारण है कि समस्त जैन समाज विविध समारोहों द्वारा उत्साहपूर्वक मना रहा है। इसी क्रम में पूज्य-आचार्य विद्यासागरजी महाराज के गुरु पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज द्वारा की गई समयसार की हिन्दी टीका प्रकाशित हुई है। समयसार जैसे महान् ग्रन्थ को समझने के लिये उक्त हिन्दी टीका अवश्य अधिकाधिक स्वाध्याय में आना चाहिए।

कुन्दकुन्द भारती नई दिल्ली द्वारा भी कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का पुनर्प्रकाशन हो रहा है और उनमें जो संशोधन हो रहे हैं उनको सम्पादन परम्परा का ध्यान रखकर करना चाहिये।

विद्वत्परिषद् के विद्वानों से भी अपेक्षा है कि 'रयणसार' मूलाचार जैसे महान् ग्रन्थों पर शोधकार्य कर इनके कर्तृत्व का निर्णय करें।

अभी हाल में अष्टपाहुड़ पर युवा विद्वान् डॉ. महेन्द्रकुमार 'मनुज' ने शोध प्रबन्ध लिखकर विद्यावारिधि (पी-एच. डी.) की उपाधि प्राप्त की जो सराहनीय है।

श्रमण संस्कृति पर प्रहार

आज का समय संगठन का समय है यदि हम संगठित होकर अपनी संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकें तो निश्चय है कि जैसा सम्प्रति एक ओर हमारे धर्म गुरुओं, विद्वानों एवं क्षेत्रों पर कुछ असामाजिक तत्व उपसर्ग कर रहे हैं तो दूसरी ओर "चौथी दुनिया" और "सरिता" जैसी अनेक राष्ट्रीय पत्रिकायें हमारी संस्कृति पर अनर्गल चर्चा कर रही हैं। जिसका प्रतिवाद वीरवाणी, जैनसन्देश, करूणादीप जैसे पत्रों ने किया है परन्तु हमें विचार करना है कि आगे इस प्रकार की घटनाएँ चर्चाएँ हमारे साथ न हों उसके लिये एक अखिल भारतीय जैन सम्मेलन आयोजित हो जिसमें सभी जैन समुदाय के लोग एकत्रित हों और विचार कर दिशा निर्धारण करें।

इस नैमत्तिक अधिवेशन के अवसर पर विद्वत्परिषद् के समस्त सदस्यों एवं पदाधिकारियों से विनय पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि वे विद्वत्परिषद् द्वारा पारित प्रस्ताओं के अनुसार कार्यों को पूर्ण तत्परता के साथ सम्पन्न करें।

गत वर्षों में जैन समाज को अनेक पूज्य मुनिराजों एवं विद्वानों की क्षति भी उठानी पड़ी है। परम पूज्य आ. श्री धर्मसागरजी महाराज, श्रुतसागरजी महाराज आदि के पावन दर्शनों से हम वंचित हुए।

इसी तरह सिद्धान्तवेत्ता विद्वत्वर्य पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पं. मौजीलाल जी वाराणसी, कवि कल्याणकुमारजी शशि आदि दिवंगत विद्वानों के लिये श्रद्धांजलियाँ एवं शान्तिलाभ की कामना के साथ शोक संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक सम्वेदना व्यक्त करते हैं।

आभार

श्री दि. जैन सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर की प्रबन्ध समिति ने विद्वत्परिषद् को आमन्त्रित किया इसके लिये आभारी हूँ, साथ ही सहयोगी सदस्य विद्वानों ने अधिवेशन में शामिल होकर उसकी प्रतिष्ठा/गरिमा बढ़ाई और अत्यन्त धैर्यपूर्वक मेरे विचार सुने एतदर्थ सबका आभारी हूँ। अन्त में क्षमायाचना करता हुआ विराम लेता हूँ।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के 19 वें अधिवेशन श्री दिगम्बर जैन मन्दिर संघी जी सांगानेर (जयपुर) दि. 23-6-1999 के आयोजन के अवसर पर

अध्यक्ष

डॉ. रमेशचन्द जैन

का अध्यक्षीय उद्‌बोधन

प्रातः स्मरणीय अध्यात्मयोगी परमपूज्य मुनिवर श्री सुधासागर जी महाराज पू. क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी व धैर्यसागर जी महाराज, उपस्थित विद्वद्‌गण, भाईयों और बहिनों!

जैनों की सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी संग्राम नगर (साँगानेर) में आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निर्मित श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी के प्राङ्गण में आप सभी के मध्य उपस्थित होने में मैं अत्यन्त गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। विद्वानों की सर्वमान्य प्राचीन संस्था अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष के रुप में आसीन कर आप सभी ने मुझे जो हार्दिक स्नेह और सम्मान दिया, उसके लिए मैं आप सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। मुझे यह विश्वास है कि आप सभी की छत्रछाया में विद्वत् परिषद् दिन दूनी-रात चौगुनी प्रगति करेगी।

आज सभी लोग यह जानते हैं कि अनादिनिधन जैनधर्म की परम्परा शाश्वत काल से चली आ रही है। वर्तमान अवसर्पिणी काल में देवाधिदेव भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों ने त्याग, तप, संयम, अहिंसा और अध्यात्म-ज्ञान की जो धारा प्रवाहित की, उस धारा को परवर्ती केवली, श्रुतकेवली और हजारों-हजारों आचार्यों ने सुरक्षित रखा। कालदोष से मध्य काल में जब नग्न दिगम्बर मुनियों का विहार कहीं-कहीं बन्द हो गया तो भट्टारक परम्परा का उदय हुआ। इन भट्टारकों ने जैनधर्म संस्कृति और साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की, जिसके कारण हमारी सांस्कृतिक और धार्मिक सम्पदा का बहुत बड़ा अंश सुरक्षित रह सका। धीरे-धीरे जब भट्टारक परम्परा में शिथिलाचार प्रवेश करने लगा तो पण्डित परम्परा का उदय हुआ, इन पण्डित विद्वानों ने डूबते जैनधर्म की नौका को सँभालने का बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया, फलस्वरुप भट्टारकों के शिथिलाचार का उत्तर भारत में प्रबल विरोध हुआ, जिसके कारण भट्टारक परम्परा का उत्तर भारत से लोप हो गया और वह केवल दक्षिण में ही नामशेष रह गयी। फलस्वरुप जैन समाज का नेतृत्व विद्वानों के हाथ में आया। इन विद्वानों ने संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा गुजराती, तमिल, तेलगू, मराठी, मलयालम और कन्नड़ आदि क्षेत्रीय भाषाओं में प्रभूत मात्रा में साहित्य सृजन किया। अपभ्रंश भाषा के पुष्पदन्तादि कवीश्वरों के साथ हिन्दी भाषा में कविवर बनारसीदास, वृन्दावनदास, भैया भगवतीदास, द्यानतराय पं. टोडरमल पं. भूधरदास, नरसेन, देवीदास, रुपचन्द, नन्द, सुन्दरदास, पांडे हेमराज, खरगसेन, खुशाल चन्द्र काला, ब्र. जिनदास, नवल शाह आदि सैकड़ों कवियों और विद्वानों ने साहित्य सृजन किया। संस्कृत और प्राकृत की प्राचीनता के कारण अपभ्रंश, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के कवियों और उनकी रचनाओं की घोर उपेक्षा हुई है। कन्नड़ कवियों में पम्प, पोन्न, रन्न और रत्नाकर जैसे कुछ कवि ही प्रकाश में आ सके हैं। आवश्यकता इस बात की है

कि योजनाबद्ध रुप से समस्त जैन हिन्दी साहित्य और क्षेत्रीय भाषाओं में रचित साहित्य का आधुनिक दृष्टि से सम्पादन, संशोधन और यथावश्यक अनुवाद आदि होकर प्रकाशन हो। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने जैन हिन्दी साहित्य की उपयोगिता के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किया है-

''........ यह नयी सामग्री बहुत ही उपयोगी हो सकती है, एक तो हिन्दी के शब्द भण्डार की व्युत्पत्तियों की छानबीन करने के लिए और दूसरे साहित्यिक अभिप्रायों और वर्णनों का इतिहास जानने के लिए। अब वह समय आ गया है जब ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रत्येक शब्द के विकास को ढँढना आवश्यक है। शब्द और अर्थ दोनों का विकास ऐतिहासिक पद्धति पर बने हुए हिन्दी-कोष के द्वारा ही हमें ज्ञात हो सकता है। किस शब्द ने हिन्दी में किस समय प्रवेश किया और कैसे-कैसे उसका रुप बदलता गया और अर्थ की दृष्टि से उसमें कितना विस्तार, संकोच या परिवर्तन होता रहा , इन बातों पर प्रकाश डालने के लिए हिन्दी के ऐतिहासिक शब्द कोष की बड़ी आवश्यकता है। जिस प्रकार अंग्रेजी भाषा में डॉ मरे द्वारा सम्पादित 'आक्सफोर्ड महाकोष' में समस्त अंग्रेजी साहित्य से हर एक शब्द की क्रमिक व्युत्पत्ति और अर्थविकास का अन्वेषण किया गया है, इसी प्रकार प्रत्येक हिन्दी शब्द की निजवार्ता या अन्तरङ्ग, ऐतिहासिक परिचय के लिए हमें हिन्दी साहित्य के अंग प्रत्यंग एवं समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों की छानबीन करनी होगी, इस कार्य के लिए जैन साहित्य की बहुत बड़ी उपादेयता है। यह साहित्य अभी तक बहुत कुछ अप्रकाशित है। इसके प्रकाशन के लिए सबसे पहले प्रयत्न होना चाहिए। धार्मिक भावुकता से बचकर ठोस साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से इन ग्रन्थों का सम्पादन आवश्यक है।''

(हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, ले. डॉ. कामताप्रसाद जैन, प्राक्कथन पृ ८)

हिन्दी के समान अपभ्रंश साहित्य को सम्पूर्ण रूप में प्रकाश में लाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसकी उपयोगिता के विषय में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने बहुत ही महत्वपूर्ण उद्‌गार व्यक्त किए हैं-

''अब यह बात प्राय: सर्वमान्य है कि हिन्दी भाषा को अपने वर्तमान स्वरुप में आने से पहले अपभ्रंश युग को पार करना पड़ा। वस्तुत: शब्द शास्त्र और साहित्यिक शैली दोनों का बहुत बड़ा वरदान अपभ्रंश भाषा से हिन्दी को प्राप्त हुआ है। तुकान्त छन्द और कविता की पद्धति अपभ्रंश की ही देन है। हमारी सम्मति में अपभ्रंश काव्य को हिन्दी से पृथक् गिनना ठीक नहीं। अपभ्रंश काल (८वीं-११वीं सदी) हिन्दी भाषा का आद्यकाल है। हिन्दी की काव्यधारा का मूल विकास सोलह आने अपभ्रंश काव्यधारा में अन्तर्निहित है, अतएव हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक क्षेत्र में अपभ्रंश भाषा को सम्मिलित किए बिना हिन्दी का विकास समझ में आना असम्भव है। भाषा - भाव - शैली तीनों दृष्टियों से अपभ्रंश का साहित्य हिन्दी भाषा का अभिन्न अंश समझा जाना चाहिए। अपभ्रंश (८-११वीं सदी), देशी भाषा (१२-१७वीं सदी) और हिन्दी (१८वीं सदी से आज तक) ये हिन्दी के आदि, मध्य और अन्त तीन चरण हैं।''

(वही पृ. ८-९)

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि कतिपय कृतियों को छोड़कर शत-प्रतिशत अपभ्रंश साहित्य जैन साहित्य हैं और उसमें भी दिगम्बर जैनों का बहुत बड़ा योगदान है। कन्नड, मराठी और तमिल साहित्य की प्राचीनतम कृतियाँ जैन साहित्यकारों द्वारा रची गयी हैं। पुरानी हिन्दी का सर्वप्रथम परिचय हमें रासा साहित्य

के द्वारा प्राप्त होता है। रासा की परिपाटी सातवीं शताब्दी के लगभग अस्तित्व में आ चुकी थी। वाग्भट्ट ने रासा साहित्य का उल्लेख किया है। जैन साहित्य में छोटे-बड़े सैंकड़ों रासा ग्रन्थ सुरक्षित हैं और भाषा की दृष्टि से वे साहित्य के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इन सबका अध्ययन, अनुसन्धान और प्रकाशन अपेक्षित हैं।

बीसवीं शताब्दी समाज और धर्म के उद्धार की दृष्टि से पिछली कुछ शताब्दियों की अपेक्षा विशिष्ट रही है। इस शताब्दी में समाज में जो अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए, वे पिछली अनेक शताब्दियों में भी सम्पन्न नहीं हुए थे। समाज के सौभाग्य से इस शताब्दी के प्रारम्भ में जैन समाज रूपी आकाश में ऐसे अनेक नक्षत्रों का उदय हुआ जिनके कार्यों से समाज और धर्म के क्षेत्र में बहुत बड़ी जागृति आयी। इस शताब्दी के प्रारम्भ में चारित्र चक्रवर्ती तपोनिधि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने दक्षिण से उत्तर की ओर सारे देश में परिभ्रमण कर आदर्श दिगम्बर जैन चर्या का रुप प्रस्तुत किया, जिससे क्षीणप्राय होती दिगम्बर जैन मुनि परम्परा का पुनरोदय हुआ और निष्कलंक जीवन चर्या का रुप देखने का विश्व को सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी कृपा के फलस्वरुप आज अनेक निर्ग्रन्थ सन्त इस भूतल पर विचरण करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के परमशिष्य आचार्य वीरसागर जी महाराज एवं उनकी परम्परा के वाहक आचार्य शिवसागर जी, आचार्य धर्मसागर जी, आचार्य ज्ञानसागर जी, आचार्य अजितसागर जी, आचार्य वर्द्धमानसागर जी तथा उनके शिष्य समुदाय ने आदर्श मुनिचर्या का रूप प्रस्तुत किया। आचार्य शान्तिसागर महाराज के ही समकालीन उत्तर भारत में उन्हीं के ही नामधारी एक अन्य पूज्य आचार्य हुए जो आचार्य शान्तिसागर छाणी के नाम से प्रख्यात हुए। दोनों का एक साथ चातुर्मास ब्यावर नगरी में हुआ था। छाणी महाराज की परम्परा में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी तथा आचार्य निर्मलसागर जी जैसे सन्त आजकल धर्म का उद्योत कर रहे हैं। इसी परम्परा में आचार्य सूर्यसागर महाराज का उदय हुआ था, जो जैन साहित्य के गहन अध्येता हुए और उनके द्वारा अनेक कृतियाँ लिखी गईं। पूज्य क्षु. गणेशप्रसाद जी वर्णी इन्हें अपना गुरु मानते थे और आदर से उनका स्मरण करते थे।

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि पूज्य क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी इस युग के असाधारण सन्त थे, जिन्होंने इस बीसवीं शताब्दी में घोर अज्ञान अन्धकार में डूबी हुई जैन समाज में चारों ओर ज्ञान का दिव्य प्रकाश फैलाया। वे जन्मना वैष्णवधर्मी थे, किन्तु ग्राम मड़ावरा के जैन मन्दिर व श्रावकों से उन्हें वे संस्कार प्राप्त हुए, जिनके कारण वे जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धानी हो गए। यौवन की अवस्था में अनेक कठिनाईयों के और विपत्तियों का सामना करते हुए उन्होंने जैन दर्शन और न्याय के ग्रन्थों का गम्भीरता से पारायण किया और उस समाज में जहाँ विद्वानों का अकाल था, वे बड़े पण्डित जी के नाम से प्रख्यात हो गए। उनकी त्यागवृत्ति और निस्पृहता दिनों-दिन बढ़ती गई और उन्होंने क्षुल्लक के व्रत अङ्गीकार कर लिए। उनकी त्यागवृत्ति का स्मरण कर लोग कहते हैं - पूज्य वर्णी जी जैसा निस्पृह सन्त होना आज भी कठिन है। उन्होंने उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर जैन पाठशालाओं की स्थापना कराई और स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी तथा गणेशवर्णी दि. जैन विद्यालय, सागर जैसी संस्थायें समाज को दीं, जिनमें सैकड़ों छात्रों ने अध्ययन कर ज्ञान की ज्योति फैलाई। हम सब आज उपस्थित विद्वान् पूज्य वर्णी जी द्वारा स्थापित संस्थाओं की ही देन है और पूज्य वर्णी जी के बड़े उपकार को कभी भी भुला नहीं सकते हैं। पूज्य वर्णी जी कहा करते थे कि विद्वानों की संगति के बिना स्वर्ग सुख भी निरर्थक है। एक बार विद्वत्परिषद् के कटनी अधिवेशन में पूज्य वर्णी जी ने अपनी भावना इन शब्दों में व्यक्त की थी -

"हे भगवान्! जिस प्रान्त में सूत्रपाठ के लिए दस या बीस ग्राम में कोई एक व्यक्ति मिलता था, वह भी शुद्ध पाठ करने वाला नहीं मिलता था, आज उन्हीं ग्रामों में राजवार्तिकादि ग्रन्थों के विद्वान् पाए जाते हैं। जहाँ गुणस्थानों के नाम जानने वाले कठिनता से पाए जाते थे, वहाँ आज जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड के विद्वान् पाए जाते हैं। जहाँ पर पूजन पाठ का शुद्ध उच्चारण कराने वाले न थे, आज वहाँ पञ्चकल्याणक के कराने वाले विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर लोगों को "जैनी नास्तिक हैं" यह सुनने को मिलता था, आज वही पर यह शब्द लोगों के द्वारा सुनने में आता है कि जैनधर्म ही अहिंसा का प्रतिपादन करने वाला है, इसके बिना जीव का कल्याण दुर्लभ है। जहाँ पर जैनी पर से वाद करने में भयभीत होते थे, आज वहीं पर जैनियों के बालक पण्डितों से शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं। इत्यादि व्यवस्था देखकर कौन व्यक्ति होगा, जो आनन्दसागर में मग्न न हो जावे। आज सब ही लोग जैनधर्म का अस्तित्व स्वीकार करने लगे हैं सभी मतावलम्बी इस धर्म का गौरव स्वीकृत करने लगे हैं। इसका श्रेय इन विद्वानों को ही तो है तथा साथ ही हमारे दानी महाशयों को भी है, जिनके कि द्रव्यदान से यह मण्डली बन गई।"

(मेरी जीवन गाथा-प्रथम भाग पृ. ३८९)

अध्ययन अध्यापन के द्वारा शास्त्र परम्परा को विश्रृंखलता से बचाकर उसे उज्जीवित रखने में जिस विशिष्ट व्यक्तित्व ने जैन वाङ्मय को गतिशील एवं पुनर्जागरण प्रदान किया, वह 'गुरु गोपालदास' थे।

(आचार्य विद्यानन्द)

बरैया जी के नाम पर मुरैना में स्थापित गुरु गोपालदास बरैया, संस्कृत महाविद्यालय ने जैन विद्या के शिक्षण के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया। आज भी जैनधर्म के शिक्षण का यह सबसे बड़ा विद्यालय है। गुरु गोपालदास जी करणानुयोग के बहुत अच्छ ज्ञाता था, उनके शिष्य प्रशिष्यों की एक लम्बी परम्परा है, जो आज भी प्रवाहित है। उनके द्वारा लिखित जैन सिद्धान्त दर्पण, सुशीला उपन्यास और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पठन-पाठन में अच्छी तरह प्रचलित हैं।

यहाँ पर प्रमुख समाज सुधारक, लेखक और जिनधर्म प्रभावक ब्र. शीतल प्रसाद जैन को नहीं भुलाया जा सकता। उन्होंने जीवन भर घूम-घूम कर जैन धर्म का प्रचार किया। छोटी बड़ी पुस्तकें लिखी। अनेक पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद कराए। ब्रह्मचारी जी को विश्वास था कि यदि प्रचार किया जाय तो जैनधर्म राष्ट्रधर्म हो सकता है। ब्रह्मचारी जी की बलवती इच्छा थी कि यूरोप और इंग्लैंड जाकर जैनधर्म का प्रचार किया जाय, किन्तु 1942 में स्वर्गवासी हो जाने के कारण उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

भारतवर्ष के साथ-साथ जैनधर्म विदेश में भी फैले, इसके लिए समाज के जिनविद्वानों ने अथक परिश्रम किया, उनमें वैरिस्टर चम्पतराय जी का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। उन्होंने लन्दन में ऋषभ जैन लाइब्रेरी की स्थापना की थी तथा जैनधर्म सम्बन्धी बीसों ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखे थे, इनमें Key of Knowledge, Risabhdewa: the founder of Jainism, Conflicnce of oppoosits, Sanayas dharma तथा Practical dharma आदि कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। उनका सारा साहित्य पुनः प्रकाशित होना चाहिए।

गुरु गोपालदास बरैया ने जिस परम्परा का सूत्रपात किया, उसमें श्रद्धेय पं. वंशीधर जी न्यायलंकार इन्दौर, पं. जीवन्धर न्यायतीर्थ इन्दौर, सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र जी, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं. जगन्मोहनलाल

शास्त्री, पं. लालबहादुर शास्त्री, पं. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पं. नाथूलाल जी संहितासूरि, पं. बंशीधर शास्त्री, बीना, डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री, आरा, डॉ. राजाराम जैन, आरा, डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, इन्दौर, डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच आदि सैकड़ों विद्वानों ने अपना विशिष्ट योगदान किया। विदेशों में जैनधर्म का प्रचार करने में बैरिस्टर श्री वीरचन्द्र गाधी चम्पतराय जी के साथ, श्री जे. एल. जैनी, बाबू अजित प्रसाद जैन, लखनऊ, पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर, डॉ. ए. एन. उपाध्ये, डॉ. हीरालाल, डॉ. नथमल टाटिया डॉ. विलास आदिनाथ संगवे तथा डॉ. नन्दलाल जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

क्षु. जिनेन्द्र वर्णी जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश लिखकर अपने को अमर कर गए। वर्णी जी ने जो कार्य किया, वह कोई संस्था १० वर्ष तक लगातार कार्य कर भी पूर्ण नहीं कर सकती थी। इस युग को उनकी यह अमूल्य भेंट है।

न्याय शास्त्र के ग्रन्थों के सम्पादन, अनुवाद, लेखन के क्षेत्र में पं. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, डॉ. दरबारी लाल कोठिया, पं. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य आदि ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

काव्य ग्रन्थों के सम्पादन एवं अनुवाद के क्षेत्र में डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, अमृतलाल शास्त्री, पं. जिनदास फड़कुले, डॉ. एम. जी. कोठारी प्रभृति विद्वानों ने योग दिया।

आगम ग्रन्थों के सम्पादन, अनुवाद और प्रकाशन के क्षेत्र में पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ने जो कार्य किया, उस प्रकार का कार्य पिछले एक हजार वर्षों में नहीं हुआ। इस क्षेत्र में डॉ. हीरालाल जैन, पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री, साढूमल, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री, पं. सुमति बाई शाह एवं पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

आर्यिका वर्ग के अन्तर्गत आर्यिका इन्दुमती, आर्यिका ज्ञानमती, आर्यिका जिनमती, आर्यिका विजयमती, आर्यिका विशुद्धमती एवं आर्यिका सुपार्श्वमती ने साहित्यिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

श्राविका वर्ग को जागृत करने में ब्रह्मचारिणी कमला बाई, ब्र. चन्दाबाई, आरा, पं. सुमति बाई शाह, ब्रह्मचारिणी विमला देवी प्रभृति विदुषीरत्नों ने अथक प्रयास किया है।

श्रेष्ठि वर्ग में सरसेठ हुकुमचन्द्र जी सरनाईट इन्दौर, सेठ माणिकचन्द्र जी बम्बई, सेठ लखमीचन्द जी विदिशा, सेठ चन्द्रभान जी बमराना, सेठ लक्ष्मीचन्द्र, साढूमल, सेठ जम्बुकुमार, सहारनपुर, साहू शान्तिप्रसाद जैन कलकत्ता, साहू श्रेयांसप्रसाद जैन, बम्बई, सेठ चाँदमल पाण्ड्या गोहाटी, श्री निर्मलकुमार सेठी लखनऊ, साहू अशोक कुमार जैन दिल्ली, साहू रमेशचन्द्र, जैन दिल्ली, श्री रतनलाल अशोक कुमार पाटनी, मदनगंज किशनगढ़ आदि ने समाजोत्थान हेतु अनेक कार्य किए।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में देश के कोने-कोने में अन्य आन्दोलनकारियों के कन्धे से कन्धा लगाकर जैन समाज के अनेक कार्यकर्त्ताओं ने योगदान दिया। इन सबके क्रियाकलापों का अभी तक समग्र मूल्याङ्कन नहीं हो सका है। इस विषय में डॉ. कपूरचन्द्र जैन खतौली तथा उनकी धर्मपत्नी डॉ. ज्योति जैन महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आजाद हिन्द फौज की सहायतार्थ पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी जैसे सन्त ने अपनी चादर तक दान कर दी थी।

श्रद्धेय बाबूलाल रतनलाल जैन, बिजनौर कई वर्ष तक जेल में रहे और जेल से बाहर अनेक वर्षों तक बिजनौर जनपद की स्वतन्त्रता प्रिय देशभक्त जनता का नेतृत्व करते रहे। बिजनौर के ही श्री नेमिशरण जैन ने इस क्षेत्र में पर्याप्त योग दिया। ऐसे व्यक्तियों की गणना की जाय तो हजारों व्यक्तियों के नाम का पता चल जाएगा, जिनकी सम्मिलित जानकारी समाज को नहीं है।

बीसवीं सदी में ही दस्सा पूजन अधिकार, जिनवाणी का मुद्रण, विधवा विवाह, कानजी स्वामी की ऐकान्तिक विचारधारा आदि अनेक विषयों को लेकर समाज में उथल-पुथल होती रही। इस सदी का पूर्वार्द्ध आर्यसमाजियों के साथ शास्त्रार्थ का काल रहा है, जिसमें सब जगह जैनों की विजय हुई और पराजित होकर आर्य समाज को अपनी यह नीति अपनानी पड़ी कि जैनों से शास्त्रार्थ न किया जाय। स्वामी कर्मानन्द जैसे कट्टर आर्यसमाजी आर्यसमाज का परित्याग कर जैनी बन गए और बाद में उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा भी ले ली। उस समय के विद्वानों में अपूर्ण उत्साह था। पं. राजेन्द्रकुमार जैन मथुरा वालों ने अनेक जगह शास्त्रार्थियों से टक्कर ली, वे पण्डित शार्दूल कहे जाते थे। एक बार शास्त्रार्थ में विजित होने पर लोगों ने उन्हें हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला था।

इसी सदी में समाज को २५०० वाँ भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव मानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। देश क कोने-कोने में धर्मचक्र का भ्रमण हुआ। भगवान महावीर और जैनधर्म के विषय में इस अवसर पर शासकीय स्तर और आम जनता के स्तर पर प्राय: हर जिले, शहर और गाँव में आयोजन हुए और शासन ने पूरा सहयोग दिया।

श्रवणबेलगोला में स्थापित भगवान् गोम्मटेश्वर की स्थापना के एक हजार वर्ष पूरे होने पर महामस्तकाभिषेक का आयोजन हुआ। इस उत्सव का देश, विदेश में कफी प्रचार हुआ। इस क्षेत्र में ऐलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द जी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन महासमिति के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। साहू श्रेयांसप्रसाद जैन, श्री सुकुमार चन्द्र जैन, मेरठ एवं उनकी पूरी टीम इस पुण्य समारोह को सफल बनोन में जुटी रही। महोत्सव के समय भारतवर्ष की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी भी पधारीं और कर्नाटक सरकार ने पूरा-पूरा सहयोग दिया। हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र से ज्ञानज्योति का प्रवर्तन हुआ। तीर्थ वन्दना रथ का देश में परिभ्रमण हुआ।

जहाँ तक तीर्थक्षेत्रों की बात है, बीसवीं सदी में कई नए क्षेत्र प्रकाश में आए। अनेक जो पहले से प्रकाश में थे, अब दिनों-दिन विकसित हो रहे हैं मन्दिरों की व्यवस्था में पहले की अपेक्षा काफी सुधार हुआ है। हजारों नए मन्दिरों का निर्माण हुआ है। सैकड़ों ग्रामों और नगरों में पञ्चकल्याणक महोत्सव और गजरथ महोत्सव के भी आयोजन हुए हैं। जैन समाज ने अनेक अन्धविश्वासों और रुढ़ियों कों तिलाञ्जलिं दे दी है। कुदेवों की पूजा अब पहले की अपेक्षा काफी कम हो गयी है। बाल विवाह, मृत्युभोज आदि प्रथायें काफी कम हुई हैं। समाज के स्त्री और पुरुषवर्ग में लौकिक शिक्षा का काफी प्रसार हुआ है। अच्छे-अच्छे सरकारी पदों पर जैनों की नियुक्ति हुई है। अनेक प्रान्तों में मन्त्री मुख्यमंत्री और विधायक जैन हुए हैं। देश के संसद भवन में कई जैन सांसद पहुँचे हैं। समाज ने अनेक स्थानों पर नए स्कूल और कॉलेज खुलवाए हैं तथा सैकड़ों धर्मशालाओं और बड़े तथा छोटे औषधालयों की स्थापना की गयी है। व्यापार, उद्योग धन्धों और नौकरियों की सुविधा के कारण समाज की आम जनता की माली हालत पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी हुई है। धार्मिक

सङ्कीर्णता कम होने से धर्माचरण के रास्ते खुले हैं। आम आदमी को जैनधर्म के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त हुई है। भारत तथा विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में सुयोग्य प्राध्यापकों के निर्देशन में जैन विषयों पर शोधकार्य हो रहा है और लगभग ३०० शोध प्रबन्ध लिख जा चुके हैं। अन्य समाजों के साथ मेलजोल में वृद्धि हुई है। भारतवर्ष के जैनसमाज की प्रमुख संस्थाओं दिगम्बर जैन महासमिति, दिगम्बर जैन महासभा, दिगम्बर जैन परिषद् जैनमिलन एवं दक्षिण भारतीय जैन सभा जैसी संस्थाओं के कार्यकलापों में काफी वृद्धि हुई है। भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के कार्यों में गति आयी है, सम्मेदशिखर जैसे तीर्थराज पर हमारी विजय ने हमें बहुत आशावान् बनाया है। हमारे अनेक तीर्थक्षेत्र अब भी उपेक्षित स्थिति में हैं, वहाँ पर संस्कृति, कला और स्थापत्य की सुरक्षा का बहुत बड़ा दायित्व समाज पर है। यह परम हर्ष की बात है कि भा. दि. जैन महासभा तथा उसके अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी तथा उनके सहायकों ने इस ओर गहरी रुचि लेना शुरु किया है, फलस्वरुप अनेक प्राचीन जैन तीर्थों का संरक्षण और समुद्धार हुआ है। इस ओर और भी अधिक प्रगति होगी, ऐसी आशा है। सम्मेद शिखर जी पर विजय दिलाने का बहुत कुछ श्रेय साहू अशोक कुमार जी का है। इस हेतु पूज्य आचार्य विमल सागर जी महाराज का समाज को पूरा-पूरा आशीर्वाद मिला।

पूज्य महाराज आचार्य विद्यानन्द जी की प्रेरणा से गत वर्ष श्री महावीर जी क्षेत्र की मूलनायक प्रतिमा की प्रतिष्ठापना का 1000 वाँ वर्ष पूरा होने पर अभिषेक महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया, जिसमें समाज ने सोत्साह भाग लिया तथा अनेक भव्य आयोजन किए गए जिनमें महिला सम्मेलन, विद्वत् सम्मेलन, बुद्धिजीवी वर्ग का सम्मेलन एवं कुछ सुप्रसिद्ध विद्वानों का सम्मान प्रमुख है।

पूज्य आचार्य देशभूषण महाराज की पावन प्रेरणा से अनेक ग्रन्थ रत्नों का प्रकाशन हुआ, उन्होंने स्वयं भी अनेक ग्रन्थों का सम्पादन, अनुवाद और लेखन किया एवं अनेक सद्गृहस्थों एवं श्राविकाओं को त्याग मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित किया। पूज्य आचार्य देशभूषण महाराज के ही शिष्य आचार्य विद्यानन्द महाराज ने जैनधर्म को विश्वधर्म के रूप में उपस्थित कर हजारों लाखों नर-नारियों के बीच धर्म की दुन्दुभि बजाई है, उनसे जैनत्व का मस्तक ऊँचा हुआ है।

इस युग में प्राचीन आचार्यों के समान संस्कृत में काव्यरचना करने वाले परम तपस्वी आचार्य ज्ञानसागर महाराज को कोई भुला नहीं सकता। उन्होंने विद्वत्ता की ऊँचाईयों को छूने के साथ-साथ चारित्र के क्षेत्र में प्रवेश किया, उनकी निवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती ही गई और वृद्धावस्था में उन्होंने महाव्रत अङ्गीकार कर निर्दोष श्रमण चर्या का पालन किया। उन्होंने आचार्य विद्यासागर जैसा शिष्य समाज को प्रदान किया, जिनके नाम पर हजारों लोगों का मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज जहाँ भी विहार करते हैं, वहाँ जङ्गल में भी मङ्गल हो जाता है। उनके त्याग, तपस्या और निर्दोष चर्या की जिसने प्रशंसा नहीं की, मानो उसने अपनी वाणी को धन्य नहीं किया। इस युग में वे समता, सदाचार और निष्परिग्रहत्व के प्रतीक हैं, उनका शिष्य समुदाय मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक और क्षुल्लिका तथा ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के रुप में बहुत विशाल हैं। उन्होंने इस भारत भूमि पर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में त्याग की गंगा प्रवाहित की है, उससे जगह-जगह समाज का परिष्कार हुआ है। उनके प्राय: सभी शिष्य ज्ञानी और तपस्वी हैं। अनेकों ने उत्तम ग्रन्थ लेखन का कार्य सम्पन्न किया है, इनमें पू. मुनि श्री उपाध्याय गुप्तिसागर जी महाराज मुनि श्री क्षमासागर जी महाराज मुनि श्री सुधासागर जी महाराज, एवं मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज आदि का नाम

उल्लेखीय है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज स्वयं कन्नड, मराठी, हिन्दी, प्राकृत और संस्कृत आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं, उन्होंने संस्कृत और हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्नों का सृजन किया है। उनका मूकमाटी महाकाव्य हिन्दी में बहुचर्चित हुआ है तथा जनसाधारण में दिये हुए उनके सैकड़ों प्रवचनों ने जनता को दिशा बोध प्रदान किया है। पूज्य आचार्य श्री के संघ की साध्वी समुदाय की साधना भी अनुपम है।

हम लोगों के सौभाग्य से पूज्य विद्यासागर जी महाराज श्री के शिष्य अध्यात्मयोगी संत मुनि श्री सुधासागर जी महाराज हमारे मध्य में विराजमान हैं। पूज्य मुनि श्री की प्रवृत्तियाँ बहुआयामी हैं, उन्होंने अपने दादा गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की कृतियों का शीघ्र प्रकाशन कराकर अद्भुत कार्य किया है। उनकी प्रेरणा से ललितपुर, साँगानेर, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, मदनगंज किशनगढ़, सीकर आदि अनेक स्थानों पर बड़ी-बड़ी विद्वत्संगोष्ठियों का आयोजन हुआ है। उन्होंने आचार्य श्री ज्ञानसागर और आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के साहित्य के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विद्वानों को चिन्तन करने हेतु प्रेरित किया है। उनकी प्रेरणा से ब्यावर और सांगानेर में बड़ी--बड़ी ग्रन्थमालायें स्थापित हुई हैं, जहाँ से आचार्य प्रणीत अनेक ग्रन्थ, विद्वानों के शोध प्रबन्ध, शोध आलेख और साधु परमेष्ठियों के प्रवचन प्रकाशित हुए हैं। ज्ञानदान हेतु साँगानेर में उन्होंने ''श्रमण संस्कृति संस्थान'' जैसी बहुत बड़ी संस्था की स्थापना की है, जिसमें अध्ययन करने वाले छात्रों को सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हैं। जयपुर, अजमेर मार्ग पर स्थित नारेली स्थान को वे बहुत बड़ा तीर्थक्षेत्र का रुप देने हेतु निरन्तर सचेष्ठ हैं और उनकी प्रेरणा से क्षेत्र शीघ्र ही विकसित हो रहा है, इसी प्रकार साँगानेर के संघी मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य भी आपकी प्रेरणा से सम्पन्न हो रहा है। उनके सानिध्य में पूज्य क्षुल्लक गम्भीरसागर जी और धैर्यसागर जी महाराज विराजमान हैं, जो गाम्भीर्य और धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं। पूज्य महाराज सुधासागर जी महाराज की योजनाओं के साथ इन्होंने अपनी विचारधारा को एकाकार किया है।

यहाँ पर मैं पूज्य १०८ आचार्य शान्तिसागर छाणी परम्परा के ही एक सन्त पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज को भुला नहीं सकता। वे आज जैन जगत् के लिए अपरिचित नहीं है। वे युगचेतना के संवाहक के रूप में जन-जन के श्रद्धा के केन्द्रीयभूत हैं। वे अहर्निश ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं। विद्वानों के प्रति उपाध्याय श्री में वात्सलय भरा हुआ है। पूज्य उपाध्याय श्री की प्रेरणा से मुंगावली, खेकड़ा, शाहपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, सरधना, सम्मेदशिखर, गया, राँची, देहली, सीकर आदि अनेक स्थानों पर सफल विद्वत् गोष्ठियों का आयोजन हुआ।

ललितपुर में न्यायविद्या वाचना हुई, जिसमें देश के कोने-कोने से विद्वान् पधारे। सहारनपुर में उनके सान्निध्य में दर्शन और विज्ञान विषय पर महत्त्वपूर्ण गोष्ठी हुई। अनेक गोष्ठियों में शाकाहार, श्रावकाचार आदि अनेक विषयों पर मन्थन हुआ। मथुरा में भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन और उपदेशों पर सुन्दर गोष्ठी का आयोजन हुआ। अनेक स्थानों पर शास्त्री परिषद् के अधिवेशन उनके चरण सान्निध्य में सम्पन्न हुए। उनके आशीर्वाद से अनेक ग्रन्थरत्नों का प्रकाशन हुआ और स्वर्गीय विद्वानों के कार्यों के मूल्यांकन हेतु स्मृति ग्रन्थों आदि का प्रकाशन हुआ।

पूज्य उपाध्याय श्री के कार्यों का एक महत्त्वपूर्ण पहलू उनका सराकोद्धार का कार्य है। उनकी प्रेरणा से सराक जाति का सर्वेक्षण कराया गया। सराकोद्धार के लिए ट्रस्ट कमेटियाँ वगैरह बनीं, पाठशालायें खुलीं,

मन्दिर बने। इस प्रकार एक अच्छी शुरुआत हुई, किन्तु अब भी समाज को बहुत कुछ करना शेष है। सराक समाज की मुख्यधारा से जुड़ जाए, यह आवश्यक है। महाराज श्री सराकों के कल्याण की निरन्तर कामना करते हैं। जिन सराकों ने कभी-कभी दिगम्बर मुनि के दर्शन नहीं किए थे, उनके बीच उपाध्याय ज्ञान सागर महाराज 'ज्ञानमुनि' के नाम से प्रतिष्ठित हैं। उन्हें विश्वास है कि ज्ञानमुनि के आशीर्वाद से वे अवश्य ही पुराने गौरव को प्राप्त करने में सफल होंगे। पूज्य उपाध्याय श्री के सान्निध्य में प्रतिवर्ष विद्वानों का सम्मान किया जाता है, यह शृंखला कुछ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई और आगे ही चलती रहेगी, ऐसी आशा है।

यहाँ मैं पूज्य सुधासागर जी महाराज की कार्यशैली की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, वह है-श्रावक संस्कार शिविर। इन शिविरों में हजारों सामान्य गृहस्थों को श्रावकोचित संस्कारों से अनुशासित देखा जा सकता है, जो समाज और व्यक्ति के परिष्कार का विशिष्ट ढंग है। नारेली तीर्थक्षेत्र में मुझे इस प्रकार के शिविरों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिससे मैं बहुत प्रभावित हुआ।

उपर्युक्त साधुजनों के अतिरिक्त अन्य अनेक साधुजन हैं, जो साहित्य की आराधना और सृजन में निरन्तर तत्पर हैं, इस छोटे से वक्तव्य में प्रत्येक के कार्य का लेखा-जोखा सम्भव नहीं है। यथार्थ में इस सदी में जैन समाज की स्थिति का सही मूल्याङ्कन करने हेतु कई खण्डों में इसके इतिहास लेखन की आवश्यकता है, ताकि बीसवीं सदी के साधुवर्ग, विद्वान् एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं के कार्यों का सही मूल्याङ्कन हो सके एवम् इस सदी के जैन समाज की स्थिति का आगामी काल में भी लोगों को परिज्ञान हो सके। पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार के लेख प्रकाशित होने चाहिए।

जैन समाज में अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं, जिनका उद्देश्य जन साधारण और प्रबुद्ध वर्ग में धर्म के प्रति जागृति, आस्था और लगन पैदा करने के साथ-साथ सामाजिक चेतना का सञ्चार करना है। उत्तर में प्रमुखत: वणिक् और दक्षिण में कृषक समाज होने के कारण जैन समाज में ज्ञान के प्रति उतना अधिक झुकाव नहीं, जितना कि होना चाहिए, यही कारण है कि व्यक्तिगत प्रयास से कोई पत्र-पत्रिकायें या ग्रन्थ भले ही प्रकाशित कराता रहे, इसके लिए समाज की ओर से कोई नियमबद्ध योजना नहीं है। इनी-गिनी संस्थायें ही समाज में ऐसी हैं, जो इस विषय में कुछ कार्य कर रही है और उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं की रीति-नीति और ढाँचा कुछ इस प्रकार का है कि आज की युवा पीढ़ी के आकर्षित करने में ये अधिक सफल नहीं रही है। जो पत्र-पत्रिकायें किसी संस्था से सम्बन्धित है, उनके सम्पादक उस संस्था के नियमों से बँधे हुए हैं, अत: उस संस्था के दायरे में बँधकर उन्हें कोई बात लिखनी पड़ती है, फिर भी संस्था के पदाधिकारी उन्हें किसी न किसी बात पर कचोटते रहते हैं। इन सब कारणों से किसी पत्र में जो निर्भीकता आनी चाहिए, वह नहीं आ पाती है। आज समाज में गिनने को पत्र-पत्रिकायें बहुत हैं, किन्तु हिन्दुओं के 'कल्याण' और 'आखण्ड ज्योति' जैसी पत्रिका का जैनसमाज में अभाव है, इसकी पूर्ति अवश्य की जानी चाहिए।

समाज में आज लेखन को कोई प्रोत्साहन नहीं है। समाज के एक बहुत बड़े स्वर्गीय विद्वान् के बेटे से, जो विज्ञान के किसी विषय में प्रख्यात प्रोफेसर हैं, मैंने पूछा कि आपने जैन धर्म क्यों नहीं पढ़ा? तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैं भी अपने पिता की तरह भूखा मर जाता। प्रमुखत: तो अधिकारी विद्वान् ही नहीं मिलते,

यदि कोई विद्वान् है भी और लिखने की चेष्टा करता है तो उसके ठीक प्रकाशक नहीं मिलते। यदि प्रकाशक मिलते भी हैं तो वे उस लेखन का कोई पारिश्रमिक या सम्मान राशि नहीं देना चाहते। यदि कोई अपेक्षा करता भी है तो यही उत्तर मिलता है कि हमने आपके ग्रन्थ को प्रकाशित किया, क्या यही कम उपकार है? यहाँ तक कि प्रूफ रीडिंग भी उसे निःशुल्क करनी पड़ती है, कहीं-कहीं तो बिकवाने का भी भार वहन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में अधिकांश प्रतिभाशाली लेखक अन्यत्र लेखन में प्रवृत्त हो जाते हैं, वे जैन समाज के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते। शोध के क्षेत्र में यह स्थिति है कि शोध छात्रों को प्रकाशित पुस्तकों की सही जानकारी नहीं प्राप्त हो पाती। यदि जानकारी हो भी जाती है तो अनुपलब्ध पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं तथा सही निर्देशक भी प्राप्त नहीं हो पाते हैं। कहने को तो शोध संस्थान नामधारी अनेक संस्थायें हैं, किन्तु वहाँ यथार्थ में किसी भी प्रकार की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाती। दिगम्बर समाज में पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी अथवा जैनविश्व भारती, लाडनूँ जैसी सुविधा सम्पन्न श्वेताम्बर संस्थाओं के समान शोध संस्थाओं का अभाव है। इस हेतु गणेशवर्णी संस्थान, वाराणसी, वीर सेवा मंदिर, जयपुर, जैसी संस्थाओं को विकसित किया जाना चाहिए।

धर्म प्रचार की दृष्टि से हमारा समाज बहुत पीछे है। तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तथा उनकी परम्परा के आचार्यों ने ज्ञान की जो मन्दाकिनी प्रवाहित की, उसका सर्वसाधारण में प्रचार एवं प्रसार होना चाहिए। किसी समय जैन धर्म दक्षिण भारत का राजधर्म और प्रमुख धर्म था। तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने के कारण उत्तर में भी उसका अच्छा प्रभाव था और हर प्रकार की जातियों तथा वर्गों के लोग उसमें सम्मिलित थे। आचार्यों की परम्परा अधिकांशतया ब्राह्मणों की मिलती है। आज के श्रावक अधिकांशतया व्यापारी है। दक्षिण में बहुसंख्यक श्रावक और उत्तर की सराक जाति के लोग अधिकांशतया कृषक हैं। धर्मशर्माभ्युदय के कर्त्ता महाकवि हरिचन्द ने अपने आपको कायस्थकुलोत्पन्न कहा है। मथुरा के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि धोबी, रँगरेज, कुम्हार आदि अनेक जातियों के लोग जैनधर्म का पालन करते थे। इन सबका कारण हमारी उदारता, समन्वयात्मक नीति और समता की भावना थी। आज समाज की स्थिति ऐसी हो गयी है कि हम अपने अन्दर किसी अन्य समाज के व्यक्ति को अपनाने में नितान्त असमर्थ हैं, यही कारण है कि जैनधर्म सूखता जा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज उन लोगों के चक्कर में न फँसे जो जातिवाद, वर्गवाद, रूढ़िवाद अथवा 'धर्म खतरे में है' का नारा लगाकर समाज में विषमता के बीज बो रहे हैं। यह जैनधर्म सर्वोदय तीर्थ है और सर्वोदय की भावना ही इस धर्म की अभ्युन्नति कर सकती है।

भारतवर्ष के लोगों की खान-पान की प्रवृत्ति बदल रही है। पश्चिम में शाकाहार का प्रचार जोरों से हो रहा है, जबकि भारतीय समाज मांसाहारी हो रहा है। जैन समाज भारतीय समाज का अंग है, अतः हमारा युवा वर्ग अन्य लोगों के सम्पर्क में आकर गलत खान-पान करने लगा है। धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए खान-पान की शुद्धता प्रथम भूमिका है। देश में बढ़ती हुई हिंसा की प्रवृत्ति का कारण बढ़ता हुआ मांसाहार है। मांसाहारी प्राणि में धीरे-धीरे करुणा का लोप हो जाता है। शाकाहारी प्राणि अधिक सुसंयत और पर दु:ख कातर होता है, ऐसा वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा सिद्ध हो चुका है। भारत सरकार की मांस निर्यात की नीति और बूचड़खानों को बढ़ावा देने के कारण देश का गोधन समाप्त होता जा रहा है। वन इतने अधिक काटे जा चुके हैं कि पर्यावरण के ऊपर इसका बहुत बड़ा असर पड़ा है। दूषित वायु और विचारों के बीच रहने

वाले मनुष्य का शारीरिक और मानसिक सन्तुलन बिगड़ा है। इन सबसे हमें बचना है तो प्रकृति को सर्वनाश से बचाना होगा, नहीं तो प्रकृति स्वयं हमारा विनाश कर देगी। इसके लिए मनुष्य के जीवन में अहिंसक दृष्टिकोंण का उदय होना आवश्यक है। अहिंसक जीवन पद्धति ही पशु, धान्य, हिरण्य और मानव सम्पदा की भली भाँति रक्षा करने में समर्थ है।

उत्सव जैन परम्परा के अङ्ग रहे हैं, इनका आयोजन प्रमुखत: धर्मप्रभावना की दृष्टि से किया जाता रहा है। उत्सव मनाते समय यह ध्यान रखा जाता है कि वह हमारे दर्शन, संस्कृति और आचार के अनुकूल हो एवं जैन सिद्धान्तों से उसका तालमेल हो। उत्सवों का यह रूप कहीं-कहीं आज भी दृष्टिगोचर होता है, तथापि अनेक स्थानों पर विकृतियाँ व्याप्त हो गयी हैं जिनकी ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आज के उत्सव अधिक प्रदर्शन और दिखावे से परिपूर्ण तथा आडम्बरी हो गए हैं। महँगे मण्डप, महँगे बैंडबाजे, महँगे हाथी, घोड़े आदि तथा महँगे संगीतज्ञ, गायक और कलाकार आज के उत्सवों के अंग बन गए हैं। समाज के पैसे से आकर्षित होकर कई अजैनों ने अपनी मण्डलियाँ बना ली हैं, उनमें जैन कथानकों को तोड़-मरोड़कर, किसी कहानी के अधूरे अंश को किसी दूसरी कहानी के साथ जोड़कर जनता की मनोरंजनप्रियता को महँगे दामों में भुनाया जाता है। महावीर जयन्ती इत्यादि शुभ अवसरों पर भीड़भाड़ एकत्रित करने के लिए अनेक स्थानों पर लोग कवि सम्मेलन का आयोजन कर लेते हैं। इन कवि सम्मेलनों में बाहर से पधारे हुए कविगणों पर समाज को अत्यधिक धन व्यय करना होता है। कविगण हास्य अथवा शृंगार की विविध कवितायें या चुटकुले सुनाकर थोड़े समय तक जनता की वाहवाही लूटकर चले जाते हैं और आयोजक इसे धार्मिक कृत्य मानकर धर्मप्रभावना का अनोखा माध्यम मान लेते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि भगवान् महावीर या इक्की-दुक्की जैनधर्म सम्बन्धी रचनाओं को छोड़कर अधिकांश कवितायें काम, भोग और बन्ध की कहानी को ही कहने वाली होती हैं। इनके श्रोताओं में प्रशम रस बहने की बजाय सांसारिक राग की धारा अधिक फूटती है। ये कवि आचार का तो किञ्चित् मात्र भी ध्यान नहीं रखते। रात्रि भोजन तो आम बात हो गयी है, कई स्थानों पर ये मदिरा का सेवन करते हुए भी पाए हैं; क्योंकि इनमें से कई लोगों की सरस्वती बिना मन्दिरापान किए नहीं फूटती है। मञ्च पर बैठे-बैठे धूम्रपान करना तो इनके लिए कोई अजूबा बात नहीं है। धार्मिक उत्सव के लिए मात्र भीड़ इकट्ठा करना ही काफी नहीं है, उपस्थिति चाहे कम रहे, किन्तु उसमें जैन परम्परा और आचार का प्रभाव होना चाहिए। भीड़भाड़ तो किसी अभिनेता के शहर में पधारने पर या किसी नर्तकी का नृत्य होने पर अथवा पहलवानों की कुस्ती आयोजित होने पर भी इकट्ठी हो जाती है, क्या आगे समाज इसे भी अपने उत्सवों का अङ्ग बना लेगी? कई स्थानों पर विशेष अवसरों पर सांस्कृतिक प्रोग्राम होते हैं। इन प्रोग्रामों में जैनत्व का नाम भी नहीं होता। अजैन लोग यह कहकर चले जाते हैं कि हम तो यहाँ इसलिए आए थे कि कुछ शिक्षात्मक बात सुनने को मिलेगी या शिक्षात्मक दृश्य देखने को मिलेगा, किन्तु यहाँ तो राग रंग का नजारा है।

मन्दिर तथा तीर्थक्षेत्र जैन संस्कृति के संरक्षक तथा संवर्द्धक हैं। पद्मचरित में पर्वत-पर्वत पर, गाँव-गाँव में, पत्तन-पत्तन में, महल-महल में, नगर-नगर में, संगम-संगम में तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे-चौराहे पर जिनालय बनाए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि नगर के अंदर तथा बाहर सभी स्थानों पर मन्दिर बनाए जाते थे। ये मन्दिर देश के अधिपति राजाओं तथा गाँव का उपभोग करने वाले सेठों

द्वारा बनाए जाते थे। इन मन्दिरों में तीनों काल में वन्दन के लिए साधु समूह (साधुसंघ) रहता था। साधुसंत के रहने के उल्लेख से मन्दिरों में व्यावहारिक महत्व पर भी प्रकाश पड़ता है। प्राचीन काल के मन्दिर महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का काम तो देते ही थे, साथ ही जनता की धार्मिक जिज्ञासा के पूर्ण समाधाता थे। जिज्ञासु धार्मिक जनता मन्दिरों मे जाकर धर्म का उपदेश सुनती थी तथा भजन कीर्तन में भाग लेकर उपास्य देव की भक्ति में विभोर ओकर अपने को कृतकृत्य करती थी। ये मन्दिर नगर की शिक्षा, दीक्षा, धर्म एवं भक्ति, अध्यात्मक एवं चिन्तन तथा योग एवं वैराग्य के जीते जागते केन्द्र थे। दिगम्बर आम्नीय में निर्वाण क्षेत्र, कल्याणक क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र इन तीनों को तीर्थक्षेत्र की मान्यता प्राप्त है। देवदर्शन प्रत्येक जैनी का प्रतिदिन का कर्त्तव्य है। आधुनिक काल में मन्दिर, मूर्ति और तीर्थों के निर्माण में प्रगति हुई है, फिर भी मेरे कुछ सुझाव हैं-

१. यद्यपि नये मन्दिर और मूर्तियाँ प्रतिष्ठित होती जा रही हैं, किन्तु पूजन करने वालों की संख्या घट रही है। इसके लिए आवश्यक है कि गर्मियों में पूजन-प्रशिक्षण शिविर लगाए जाएँ। नवयुवकों को पूजन हेतु प्रेरित किया जाए।

२. जहाँ पहले से बहुत अधिक मन्दिर है, वहाँ नए मन्दिर न बनें। यह आवश्यक है कि जहाँ भगवान् विराजमान हैं, वहाँ पूजन भी हो।

३. तीर्थक्षेत्रों पर विनम्र पुजारी रखे जाँय, ताकि वे यात्रियों के साथ सद्व्यवहार करें।

४. पुजारियों की आर्थिक दुरवस्था दूर करने के लिए उनका वेतन बढ़ाया जाय।

५. पञ्चकल्याणकों में होने वाले अपव्यय को रोका जाय, अपेक्षाकृत कम खर्चीली व्यवस्था अपनायी जाय। विधि-विधान का अधिकाधिक प्रशिक्षण दिया जाए, ताकि सीमित लोगों पर ही निर्भरता न रहे।

६. तीर्थक्षेत्र पिकनिक स्पाट न होकर आत्मकल्याण के केन्द्र बनें।

७. तीर्थक्षेत्रों पर साधुसंत विराजमान रहें इस दिशा में प्रयत्न किया जाय।

८. जहाँ उचित व्यवस्था नहीं है या व्यवस्था का अभाव है, वहाँ तीर्थक्षेत्र कमेटी अपनी ओर से उचित व्यवस्था करे। जहाँ जैनी नहीं है, किन्तु मन्दिर विद्यमान हैं, वहाँ नियमित पूजन हेतु पुजारी रखे जाएँ। अनेक गाँव जैनियों से खाली होते जा रहे हैं, किन्तु वहाँ मन्दिर अब भी विद्यमान हैं, वहाँ मन्दिर तथा मूर्तियों की पूर्ण सुरक्षा की जाए।

९. मन्दिर के कीमती उपकरणों तथा मूर्तियों की चोरी रोकने के लिए सुरक्षा व्यवस्था और कड़ी की जाय। प्रयत्न यह किया जाय कि बहुत अधिक कीमती वस्तुयें मन्दिर में न रखीं जाकर सुरक्षित स्थानो में रखी जाएँ।

१०. तीर्थक्षेत्रों पर गुरुकुलों की स्थापना की जाय।

११. जहाँ मन्दिरों में अतिरिक्त आय है, वहाँ से जैन ग्रन्थ प्रकाशित किए जाएँ। मन्दिर के साथ व्यवस्थित पुस्तकालय हो।

१२. पुरानी प्रतिमाओं के पादपीठ में लिखे हुए लेखों को तद्वस्थ ही रहने दिया जाए।

१४. प्रत्येक स्थान के मूर्तिलेख तथा शिलालेख प्रकाशित करें।

१५. प्रबुद्ध यात्री जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँ के यात्रा विवरण प्रकाशित करें।

१६. समस्त मन्दिरों और तीर्थक्षेत्रों की कमेटियों भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई के अधीन काम करें। जहाँ की व्यवस्था ठीक न हो, वहाँ केन्द्रीय तीर्थक्षेत्र कमेटी सारे अधिकार अपने हाथ में ले ले। जो तीर्थक्षेत्र कमेटी के अधीन कार्य करने को तैयार न हो, उसे हतोत्साहित किया जाए। समाज उसकी स्वच्छन्दचारिता को रोके।

१७. पुराने तीर्थक्षेत्रों का सर्वेक्षण हो, जहाँ मन्दिरों की हालत जर्जर हो, वहाँ उनका जीर्णोद्धार कराया जाय, इस हेतु पुरातत्त्वविद् और वैज्ञानिकों की सलाह ली जाय।

१८. जहाँ विधर्मियों ने अड्डा जमा लिया है, किन्तु यथार्थ के स्वामित्व जैनियों का हो, वहाँ अन्य धर्मियों से अपने स्थल वापिस लेने हेतु न्यायिक प्रक्रिया का अवलम्बन लिया जाए।

१९. प्रत्येक तीर्थक्षेत्र की विस्तृत परिचय पुस्तिकायें प्रकाशित हों।

२०. प्राचीन अभिलेख और गजेटियरों में जैन तीर्थस्थलों के जो विवरण प्रकाशित हों, उनकी सामग्री का उपयोग किया जाए।

२१. तीर्थक्षेत्रों पर ठहरना अपेक्षाकृत कम खर्चीला हो, ताकि गरीब परिवार भी आसानी से ठहर सकें। क्षेत्र पर किसी भी यात्री का शोषण न हो।

२२. क्षेत्र पर मैनेजर इत्यादि जैन ही रखे जाएँ।

२३. क्षेत्र पर होने वाले अपव्यय को रोका जाएँ।

२४. प्रत्येक मन्दिर और क्षेत्र के साथ दिगम्बर शब्द अवश्य जुड़ा हो।

२५. तीर्थ भक्ति केन्द्र के साथ ज्ञानकेन्द्र भी बनें, यह प्रयास किया जाए।

२६. प्रत्येक क्षेत्र और मन्दिर का वार्षिक आय-व्यय विवरण प्रकाशित हो।

२७. तीर्थों के विषय में कोई भ्रान्त सूचनायें प्रकाशित हों तो उनका निराकरण किया जाय।

२८. तीर्थों या मन्दिरों में विद्यमान प्राचीन ग्रन्थों का वैज्ञानिक ढंग से संरक्षण हो।

२९. मन्दिर संख्या में अधिक और बेतरतीव न बनकर कलात्मक बनें। पत्थर का अधिकाधिक प्रयोग हो; क्योंकि प्रत्थर अधिक टिकाऊ होता है।

३०. मन्दिरों और तीर्थक्षेत्रों में आगम विपरीत चेष्टायें न हों। ये निजी स्वार्थ की पूर्ति के साधन न बनें।

३१. जहाँ जैन नहीं है, वहाँ के मन्दिरों में पूजन हेतु स्थायी ध्रौव्यकोष की व्यवस्था हो।

३२. नए तीर्थक्षेत्रों के निर्माण की अपेक्षा प्राचीन क्षेत्रों के पुनरुद्धार पर अधिक ध्यान दिया जाए। जो क्षेत्र सम्पन्न और विकसित हो वे प्राचीन अविकसित किसी क्षेत्र को गोद लेकर उसका विकास करें।

३३. क्षेत्र के विकास के लिए योजनाबद्ध रूप से कार्य हो। अनुभवी लोगों से इस विषय में परामर्श लिया जाए।

३४. प्राचीन मन्दिरों की कला और स्थापत्य का समुचित मूल्यांकन हो।

३५. पर्यटकों के आकर्षण हेतु निकटवर्ती क्षेत्रों का विकास किया जाए।

३६. मन्दिरों और तीर्थक्षेत्रों के आसपास अवैध निर्माण रोके जाएँ।

३७. क्षेत्रों के एलबम तैयार कराए जाएँ।

३८. मन्दिरों का स्वरूप यथावत् रखने का प्रयास किया जाय पत्थर के स्तम्भ पर Synthetic paintings नहीं की जाए।

३९. प्राचीन स्मारकों के १०० मीटर बाहर तक कोई निर्माण न हो।

४०. मन्दिरों या तीर्थों का रुपया व्यक्तिगत खाते में न रखकर बैंक में रखा जाए।

आज के बहुचर्चित विषय पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा के विषय में कुछ न कहा जाय तो मेरा वक्तव्य अधूरा ही रहेगा। इस विषय में 20 मई 1999 के जैनगजट में सुप्रसिद्ध विद्वान् प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसे पढ़कर समाज को उनके सुझावों की ओर ध्यान देना चाहिए। प्राचार्य जी अपने लेख के प्रारम्भ में कहते हैं-

''अपनी दिगम्बर जैन समाज में उत्सवप्रियता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अब पहले से कई गुने अधिक पंचकल्याणक महोत्सव होने लगे हैं। जहाँ नई मूर्तियों और मन्दिरों की आवश्यकता है, वहाँ भी और जहाँ नहीं है, वहाँ भी। यों कहने के लिए तो ये धार्मिक अनुष्ठान हैं, किन्तु धार्मिक संस्कारों को जीवन्त बनाए रखने की प्रेरणा इनसे अब शायद ही किसी को मिलती हो। आडम्बर और प्रदर्शन बहुत बढ़ गए हैं। एक ओर तो पंखों और टी.वी. सैटों से सज्जित बढ़िया और विशाल पाण्डाल तथा बिजली की भारी जगमगाहट दर्शकों के चित्त को आकर्षित करती है तो दूसरी ओर रवीन्द्र जैन, राजेन्द्र जैन, अनुराधा पोड़वाल, अनूप जलौटा आदि के भजन संगीत एवं कौशिक नाइट या कविसम्मेलन आदि के कार्यक्रम भी भारी भीड़ खीचते हैं। अधिक से अधिक भीड़ें जुटाना ही आज किसी भी आयोजन की सफलता का मापदण्ड मान लिया गया है। एक एक महोत्सव पर बीस तीस लाख से लेकर दो ढ़ाई करोड़ रुपयों तक के व्यय का कीर्तिमान अब तक स्थापित किया जा चुका है। यह सब देख सुनकर हमें खुशी भी होती है और रंज भी। खुशी तो इसलिए कि इससे जैन समाज की बढ़ती हुई समृद्धि का परिचय मिलता है और रंज इसलिए कि पैसा पानी की तरह बहाकर भी परिणाम कुछ अच्छा नहीं दिख रहा है। इन समारोहों में धन की धमक और धमाके तो सुनाई देते हैं, किन्तु धर्म का ह्रास होता नजर आता है। अब समय आ गया है कि इन महोत्सवों की आवश्यकता, महत्ता, रूप और स्वरूप के बारे में तटस्थ भाव से पुनर्मूल्यांङ्कन करें।''

किसी जमाने में एक व्यक्ति अपनी जीवन भर की न्यायोपार्जित सम्पत्ति का उपयोग पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा में करता था, जिससे धर्म प्रभावना होती थी। विद्वानों के शास्त्र प्रवचन सुनने को मिलते थे, साधु वर्ग की सङ्गति का लाभ मिलता था। अब कोई व्यक्तिगत रूप से पञ्चकल्याणक नहीं कराता है। सामाजिक स्तर पर पञ्चकल्याणक होने लगे हैं, जिनमें बोलियों के माध्यम से यह चेष्टा की जाती है कि जितना व्यय हो, उससे अधिक आय हो। आय के रूप में बचे हुए पैसे के लिए कई जगह छीना-झपटी होती है, जो ज्यादा प्रभावशाली होता है, उसके स्वामित्व में पैसा रखा जाता है। बाद में उस पैसे का कितना सदुपयोग होता है, यह किसी से छिपा नहीं है। प्रतिष्ठाचार्य की भी इसमें मोटी कमाई हो जाती है। अब समाज में पण्डित नाथूलाल

जी जैसे प्रतिष्ठाचार्य कहाँ है? पण्डित जी ने कई प्रतिष्ठायें सम्पन्न करायीं हैं, किन्तु उन्होंने प्रतिष्ठाचार्य के रूप में कभी भी कोई भेंट/धन स्वीकार नहीं किया। पद्मश्री बाबूलाल पाटौदी के शब्दो में-''वे एक कठोर प्रतिष्ठाचार्य हैं, जो प्रतिष्ठाकारक के हाथ की कठपुतली नहीं बनते, वरन् शास्त्रोक्त रीति से प्रतिष्ठाकार्य सम्पन्न कराते हैं। इस कठोरता के कारण कई बार उन्हें संघर्ष करना पड़ा, किन्तु कभी वे झुके नहीं, सदैव दृढ़, अभीत और अविचल बने रहे और जब यह अनुभव किया कि प्रतिष्ठाकारक अपनी नाम-बढ़ावरी के लिए प्रतिष्ठायें कराते हैं तब उन्होंने प्रतिष्ठायें कराना ही बन्द कर दिया।''

-प्राकृत विद्या वर्ष ८ अंक ३ पृ. ४६-४७

आवश्यकता इस बात की है कि पञ्चकल्याणक सादे तरीके से हों और इन्हें देखकर धर्म के संस्कार जगें। प्रतिष्ठाचार्य द्वारा मन्त्र, तन्त्र, ताबीज देकर और तरह-तरह के हथकंडे अपनाकर अधिक से अधिक धन संचय करने के कारण तथा अन्यान्य स्वरूप के कारण अब यह खुला व्यापार बनकर रह गया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि अधिकाधिक लोग जैनधर्म, जैनधर्म के प्रचारक तीर्थंकर तथा जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह आदि के विषय में जानें। जैनधर्म और भगवान महावीर के विषय में हमारे पास कोई ग्रन्थ नहीं है, जिसका देश की सभी भाषाओं मे अनुवाद हुआ हो या जो अनेक विदेशी भाषाओं में भी उपलब्ध हो। यदि हम इतना भी कर सके तो हम सच्चे मायने में पञ्चकल्याणकों के आराधक सिद्ध होंगे। साधु समुदाय इस विषय में दिशानिर्देश दे सकता है। पूज्य बड़े वर्णी जी निरन्तर कहा करते थे- भैया! ज्ञानरथ चलाओ। ज्ञान की उपासना में योग देने वालों को उन्होंने सिंघई (संघपति) पदवी दी थी।

जैन समाज में ऐसा कोई वर्ग नहीं, जिस पर जैनधर्म के संरक्षण का पूरी तरह दायित्व हो। हिन्दुओं में ब्राह्मण वर्ग उस धर्म के सरंक्षण के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है। ईसाईयों में कई लाख पादरी हैं। मुसलमानों में मुल्ला और मौलवीं हैं। ऐसी स्थिति में जैन समाज में विद्वत् वर्ग ही धर्मसंरक्षण की भूमिका का निर्वाह कर सकता है। इस हेतु समाज को भी सचेष्ट रहना चाहिए कि विद्वानों की परम्परा अक्षुण्ण रहे। विद्या और विद्वानों के सरंक्षण, संवर्द्धन और पोषण हेतु मेरे कुछ सुझाव हैं-

१. पुराने विद्यालय जो अपना स्वरूप खोते जा रहे हैं, उन्हें पुनरुज्जीवित किया जाय। इन विद्यालयो से पढ़कर निकले हुए विद्वानों को सर्विस आदि की पूरी सुविधा दी जाय।

२. प्रत्येक ग्राम में एक जैन पाठशाला अवश्य हो।

३. छात्र-छात्राओं को जैन धर्म की शिक्षा देने हेतु जगह-जगह ग्रीष्मकालीन शिविर लगाये जाँय।

४. शासकीय सेवा से निवृत्त जैन विद्या के ज्ञाता विद्वानों को आकर्षक वेतन देकर शैक्षणिक संस्थाओं में नियुक्त किया जाय।

५. विद्वानों की दीर्घकालीन सेवाओं का ध्यान में रखते हुए उन्हें समय-समय पर पुरस्कृत किया जाय।

६. गीता प्रेस गोरखपुर जैसी प्रकाशन संस्था की स्थापना हो, जहाँ सस्ते मूल्य पर जैन साहित्य उपलब्ध हो सके।

७. दिगम्बर जैन विद्वत् समुदाय के सहयोग से एक स्तरीय पत्रिका का प्रकाशन किया जाय।

८. बच्चों को आकर्षित करने के लिए छोटी-छोटी सचित्र कहानियों की पुस्तकें प्रकाशित की जाँय।

९. महिलाओं को जैनधर्म की शिक्षा ग्रहण करने हेतु देश में एक स्वतन्त्र विद्यापीठ हो। वनस्थली विद्यापीठ की तरह कोई संस्था स्थपित हो।

१०. अप्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का जैन साहित्य आधुनिक सम्पादन पद्धति से सम्पादित कराकर प्रकाशित कराया जाय।

११. मानक जैन ग्रन्थों का अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में अनुवाद कराया जाय।

१२. जैन अध्ययन और अनुसन्धान में रत छात्र/छात्राओं को छात्रवृत्ति दिलायी जाय।

१३. अप्रकाशित शोध प्रबन्ध प्रकाशित कराए जाँय।

१४. प्रकाशित ग्रन्थों का एक स्थान पर बहुत बड़ा विक्रय केन्द्र खोला जाय। जहाँ सब प्रकार के ग्रन्थ उपलब्ध हो। जो ग्रन्थ बाजार में अनुपलब्ध हों, उनकी जीरोक्स प्रति उपलब्ध कराने की व्यवस्था हो।

१५. विद्वानों को विधि विधान का भी प्रशिक्षण दिया जाय।

१६. विद्वानों के लेखन पर समुचित पारिश्रमिक दिया जाय, उनका शोषण न हो।

१७. तीर्थकरों एवं जैन महापुरुषों की स्वतन्त्र जीवनियाँ प्रकाशित की जाँय।

१८. महावीर पूर्वकालीन और अन्तरकालीन जैन इतिहास का लेखन कराया जाय।

१९. जैन कला और पुरातत्त्व सम्बन्धी मानक ग्रन्थ तैयार कराया जाय।

२०. स्तरीय जैन विश्व कोश तैयार कराया जाय।

२१. प्रत्येक प्राचीन आचार्य के व्यक्तित्व और कृतित्व के के समुचित मूल्याङ्कन हेतु विद्वत् गोष्ठियाँ आयोजित की जाँय।

२२. जैन उत्सवों में फिजूलखर्ची को रोका जाय।

२३. साधु वर्ग में कहीं-कहीं प्रविष्ट शिथिलाचार को रोका जाय।

२४. जैन धर्म को जैनधर्म बनाने का प्रयास किया जाय। सराक जाति को पूरी तरह जैनधर्म की मुख्यधारा से जोड़ा जाय। समाज की हर संस्था में सराकों का प्रतिनिधित्व अवश्य हो।

२५. अहिंसा और शाकाहर का खूब प्रचार किया जाय। इस हेतु छोटे-छोटे ट्रेक्ट और पुस्तकें वितरित कराकर इस सिद्धान्त के प्रति आस्था पैदा करायी जाय।

२६. सरकार की मांस नियति की नीति का घोर विरोध हो।

२७. साधुओं की निरंकुशता को दूर करने के लिए उनसे निवेदन किया जाय कि वे एकलविहारी न हों।

२८. अजैनों में जैन साहित्य वितरित किया जाय।

२९. विद्वानों से टीम-वर्क के रुप में कार्य करने का अनुरोध किया जाय।

३०. साधुओं और श्रावकों की निर्दोष जीवनचर्या का प्रचार किया जाय।

३१. जैन राजनैतिक दृष्टि से भी संगठित हों।

३२. धर्म और दर्शन के अतिरिक्त जैनों द्वारा अन्य क्षेत्र में किए गए कार्यों का प्रामाणिक रुप में प्रस्तुतीकरण हो।

३३. बच्चों में धार्मिक संस्कार डालें जाय।

३४. जैन शिक्षा पद्धति पर स्वतन्त्र चिन्तन हो।

३५. जैन स्कूलों में बच्चों में अहिंसा के संस्कार डाले जाँय।

३६. प्राचीन तीर्थक्षेत्रों का संरक्षण किया जाय।

३७. जैनधर्म के विषय में समय-समय पर विद्वत् गोष्ठियाँ, परिचर्चा और कार्यशालायें आयोजित की जाय।

३८. स्थान-स्थान पर श्रावक संस्कार शिविर लाए जाँय।

३९. बड़े-बड़े नगरों में जीवदया केन्द्र, गोशालायें आदि खोली जाँय।

४०. जैन कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में Prakrit & Jainology विभाग की स्थापना करायी जाय।

४१. शोध छात्रों को जैन विषय पर कार्य करने हेतु प्रेरित किया जाय।

४२. संस्कृत, हिन्दी, दर्शन और इतिहास आदि विषयों के पाठ्यक्रम में जैन ग्रन्थ भी रखाये जाँय।

४३. सरकारी स्तर पर संस्कृत के ही समान प्राकृत के संस्थान स्थापित हों।

४४. जैनों के अल्पसंख्यक स्वरुप को कायम रखा जा।

४५. सरकारी स्तर पर जैन विद्वान् भी पुरस्कृत हों, इस हेतु प्रयास किया जाय।

४६. २६००वीं भगवान महावीर जयन्ती विश्व स्तर पर मनायी जाय।

४७. जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आधुनिक संचार माध्यमों का सहारा लिया जाय।

४८. नियमबद्ध और अनुशासन बद्धता के द्वारा जैनों की स्वतन्त्र पहिचान बनायी जाय।

४९. नयी पीढ़ी को संस्कारवान बनाया जाय, पर पुरानी पीढ़ी के प्रति आदरभाव हो।

५०. नए जैन कैसे बनें, इस हेतु चिन्तन हों।

ये सब कार्य समाज के पूर्ण सहयोग के बिना सम्पन्न नहीं हो सकते। विद्वान इन योजनाओं में पूरे मनोयोग से कार्य करें और एक भरपूर आर्थिक सहायता दें, तभी सारी योजनाओं की साकारता सम्भव है। इस हेतु अभी तक जो प्रयास हुए हैं, विद्वत् परिषद् उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करती है।

आप सभी ने मनोयोग पूर्वक हमारे विचारों को सुना। एतदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद।

जैनं जयतु शासनम्।

अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के २०वें अधिवेशन के अवसर पर कुण्डलपुर में डॉ. रमेशचन्द जैन, का

अध्यक्षीय उद्‍बोधन

प्रात: स्मरणीय अध्यात्म योगी श्रमणरत्न परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज, मञ्च पर आसीन समस्त तपो ऋषि सन्त पूज्य साध्वीवृन्द, पू. ऐलक व क्षुल्लक समुदाय के चरणों में त्रिबार नमोस्तु, ब्रह्मचारी भाई, ब्रह्मचारिणी बहिनों, विद्वत् समुदाय एवं समस्त श्रावक-श्राविका गण के प्रति हार्दिक विनयभाव समर्पित करता हुआ आज मैं अपने को परम गौरवशाली मान रहा हूँ कि इतने बड़े सन्त समुदाय के मध्य मुझे कुछ कहने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है।

सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर भारतवर्ष के जैन तीर्थों की सुदीर्घ श्रृंखला में अपना गौरवमयी स्थान बनाए हुए हैं। यहाँ की भगवान् ऋषभदेव की मूल नायक प्रतिमा बड़े बाबा के नाम से प्रसिद्ध है। यह जैन-अजैन की श्रद्धा का केन्द्र है। यह स्थान श्रीधर स्वामी की निर्वाणभूमि के रुप में प्रख्यात है। सन् ११४२ में नन्दी संघ के आचार्य पद्मनन्दी महाराज का आगमन यहाँ हुआ था तथा उन्होंने इस क्षेत्र में रहकर चूलिका सिद्धान्तवृत्ति की १२०० श्लोक प्रमाण रचना की थी। काल के प्रभाव से सन् १६५७ के पूर्व मन्दिर धवस्त होकर गुफा का रुप धारण कर चुका था। बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल ने विपत्ति के समय बड़े बाबा के चरणों में शरण ली थी। तभी उन्होंने बाबा के समक्ष शपथ ली थी कि पुन: गद्दी प्राप्त होने पर मन्दिर का जीर्णोद्धार करायेंगे। उन्होंने अपने वचन का पूर्ण निर्वाह किया। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति और फिर ब्रह्मचारी नेमिसागर ने इस मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया, जिसके लिए महाराजा छत्रसाल ने आर्थिक योगदान दिया था। संवत् १७५७ ई. के अभिलेखों में इसका उल्लेख है, जो मन्दिर के मुख्य द्वार पर लगे हैं। महाराज छात्रसाल ने मन्दिर के साथ-साथ पहुँच मार्ग, सीढ़ियाँ और वर्द्धमानसागर के घाटों का भी जीर्णोद्धार कराया था, साथ ही पूजन के बर्तन एवं सोने के छत्र भी बड़े बाबा को भेंट किए थे। सन् १९७६ ई. में संत शिरोमणि पूज्य १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का प्रथम बार कुण्डलपुर में आगमन हुआ। आचार्य श्री इस क्षेत्र की रमणीयता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अब तक ५ चातुर्मास कुण्डलपुर में व्यतीत किए हैं। यहाँ एक विशाल भव्य मन्दिर का निर्माण पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से हो रहा है। यह मन्दिर विश्व में अपनी विशिष्ट पहिचान बनाएगा। बड़े बाबा के मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ ६२ मन्दिर और हैं। कुण्डलाकार पर्वतमाला के बीच में निर्मल जल से भरा 'वर्द्धमान सागर' नाम का सरोवर है।

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज इस युग के जैन सन्तों में सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं। उनकी श्रमण चर्या और उनके संघ के तप-पूत साधुओं का निष्कलुष जीवन वर्तमान युग के साधकों को आदर्श है। वे श्रमणाचार के जीवन्त प्रतीक हैं और उनसे अधिष्ठित यहाँ भारतभूमि अपने को धन्य अनुभव करती है।

आप सभी लोग भली-भाँति जानते हैं कि श्रमण संस्कृति इस देश की प्राचीनतम संस्कृति है। पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने लिखा है कि जैन इस देश के मूल निवासी हैं। वस्तुत: हमारा धर्म आर्यधर्म होने के साथ-साथ उन अनार्यों का भी धर्म है, जिसमें यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, वानर, द्रविड नाग आदि जातियाँ आती हैं, जिनके उत्तराधिकारी आज भी दक्षिण भारत तथा विन्ध्य में निवास करते हैं। विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है कि किसी जमाने में जैन धर्म दक्षिण का राष्ट्रधर्म था। उत्तर भारत तो तीर्थंकरों की शाश्वत जन्मभूमि रही है और उसके कण-कण में जैन संस्कृति के अवशेष समाए हुए हैं। यह विचित्र संयोग है कि उत्तरभारत जहाँ पुण्य श्लोक तीर्थंकरों की जन्मभूमि रहा, वहाँ दक्षिण भारत में अधिकांश हमारे बड़े-बड़े आचार्य हुए। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण की सम्मिलित उदार, सहिष्णु और समन्वयात्मक विचारधारा का जो विशिष्ट स्वरुप प्राप्त होता है, उसे ही हम जैन धर्म, जैन संस्कृति, अहिंसा धर्म, निर्ग्रन्थ अथवा निगण्ठ धर्म या श्रमणधर्म के रुप में जानते हैं। इस धर्म की धारा तीर्थंकरों से निष्यूत हुई, आचार्यों ने इसे सँवारा, भट्टारकों ने इसकी रक्षा की और विद्वत् परम्परा ने श्रावकों के सहयोग से इसे निधि के रुप में सुरक्षित रखा।

विद्वानों का सम्बन्ध विद्या से है और विद्या प्रभावना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है -

विज्जारहमारुढो मणोरहर हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥

समयसार-२५१

जो जीव विद्या रुपी रथ पर आरुढ होकर मन रुपी रथ के बेगों को नष्ट करता है। वह सम्यग्दृष्टि ज्ञान की प्रभावना करने वाला माना गया है।

इसकी टीका में आचार्य जिनसेन स्वामी ने कहा है कि जो चेतन आत्मा अपने शुद्ध आत्मा की उपलब्धिस्वरुप विद्यामयी रथ पर आरुढ होकर मान बड़ाई, पूजा प्रतिष्ठा, लाभ, तथा भोगों की इच्छा को आदि लेकर निदानबन्ध आदि विभावरुप परिणाम होता है, जो कि द्रव्य क्षेत्रादि रुप पाँच प्रकार सांसारिक दु:खों के कारण होते हैं एवं जो आत्मा के शत्रु है, ऐसे मनोरथ के वेगों को, चित्त की तरंगों को स्वस्थ-भाव समभाव रुप सारथी के बल सो और दृढ़तर ध्यान रुप खड्ग के द्वारा नष्ट कर देता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना करने वाला माना गया है।

ज्ञान की गंगा आदिपुरुष आदीश जिन भगवान् ऋषभदेव से प्रवाहित होकर भगवान महावीर तक आई और वहाँ से आगे बढ़कर अनगिनत ऋषि मुनियों और भट्टारकों का अभिसिञ्चन करती हुई विद्वत्परम्परा को प्राप्त हुई। हमारे साहित्य की यह विशेषता है कि शासन में परिवर्तन होते गए, एक के पश्चात् दूसरे शासन आते गए, किन्तु साहित्यकारों की लेखनी अविच्छिन्न चलती रही और समाज का निरन्तर मार्गदर्शन करती रही। प्राकृत एवं अपभ्रंश इन दोनों भाषाओं पर जैन कवियों का एकाधिपत्य रहा है। ये दोनों ही भाषायें अपने समय में जनसाधारण की भाषा रही थीं और लोक भाषा में साहित्य निर्माण जैन कवियों का प्रथम उद्देश्य रहा है। लोकभाषा के साथ-साथ जैन आचार्यों ने संस्कृत भाषा को भी अपनाया और संस्कृत में हर विद्या का जैनसाहित्य रचा। इसमें पूज्य आचार्यों के अतिरिक्त भट्टारकों ने भी अप्रतिम योगदान दिया। पद्मनन्दि,

सकलकीर्ति, ब्रह्म जिनराय, ज्ञानभूषण, भुवनकीर्ति, ज्ञानकीर्ति, शुभचन्द्र, सोमसेन, नरेन्द्रकीर्ति आदि सैकड़ों भट्टारक हुए, जिनकी रचनाओं का अभी तक सम्यक् मूल्यांकन नहीं हुआ है।

गृहस्थ विद्वानों की परम्परा पण्डित आशाधर जी से प्राप्त होती है। ये विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए थे और इनकी 20 कृतियों के उल्लेख प्राप्त होतें हैं। उन्होंने अष्टांगहृदय, काव्यांलकार एवं अमरकोष पर जो संस्कृत टीकायें लिखी थीं वे अभी तक अनुपलब्ध है। आशाधर जी बहुश्रुत विद्वान् थे और उन्होंने अपने ग्रन्थों की टीकाओं में सैकड़ों ग्रन्थों के उद्धरण दिए हैं तथा अपने समय तक प्राप्त सभी मूल ग्रन्थों को उन्होंने देखा था, ऐसा उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है। पण्डित राजमल संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी लाटी संहिता, पञ्चाध्यायी एवं जम्बूस्वामी चरित संस्कृत की प्रमुख रचनायें हैं। भट्टारक जगन्नाथ की ९ संस्कृत रचनायें उपलब्ध हैं, जिनमें श्वेताम्बर पराजय, सुखनिधान, सुषेणचरित, शिवसंधान आदि नाम उल्लेखनीय है। चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के अनेक विद्वान् हुए जिनकी रचनायें अद्यावधि अप्रकाशित हैं। इन रचनाओं में कथा, रासो, रास, मंगल, जयमाल, अष्टक, स्तर, समुच्चय, सुभाषित, चौपाई, व्याहलो, बोल, छप्पन, आरती, बेल, धमाल, चौढालिया, चौभासिया, हिण्डोलना, बारहमासा, चूनड़ी, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, बावनी, आदि अनेक विधायें दृष्टिगोचर होती है। कविवर बनारसीदास, छीहल, ठक्कुरसी, बूचराज भूधरदास, विवेकसिंह, छीतर ठोलिया, ब्रह्मरायमल्ली, हेमराज, ब्रह्म ज्ञानसागर, जोधराज गोदीका, जोधराज कासलीवाल, केशवसिंह, सेवाराम पाटनी, जयचन्द छाबड़ा, किशनसिंह, रिषमदास निगोतिया, खुशालचन्द काला, टोडरमल, भैया भगवतीदास, दोलतराम कासलीवाल, दिलाराम, दीपचन्द कासलीवाल, सदासुख कासलीवाल, बाबा दुलीचन्द आदि की रचनायें जैन साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

बीसंवीं सदी के प्रारम्भ में आध्यात्मिक संत पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी ने ज्ञान की वह ज्योति जलाई, जिसके आलोक मे आज भी हम जिनवाणी माँ का आशीर्वाद प्राप्त कर रहे हैं। इस युग के धुरीण विद्वानों ने साहित्य का वह अलख जगाया कि हम पुराने विद्वानों को भूल से गए। गुरु गोपालदास बरैया, ब्र. शीतल प्रसाद, पं. मक्खनलाल शास्त्री, राजेन्द्र कुमार धर्मतीर्थ, इन धुरीण विद्वानों में पं. माणिकचन्द्र कौन्देय, पं. खूबचन्द शास्त्री, पं.देवकीनन्दन शास्त्री, पं. फूलचन्द्र शास्त्री, पं. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री, पं. बंशीधरजी, पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर, पं. दरबारी लाल कोठिया, पं. अमृतलाल जैन दर्शनाचार्य, पं. उदयचन्द्र दर्शनाचार्य, डॉ. हरीन्द्र भूषण जैन, पं. बालचन्द्र शास्त्री, पं. खुशालचन्द्र गोरावाला, डॉ. ए. एन. उपाध्येय, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, पं. दयाचन्द्र साहित्याचार्य, डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री, पं. मल्लिनाथ शास्त्री, डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, पं. लालबहादुर शास्त्री, पं. जीवन्धर न्यायतीर्थ, पं. अयोध्याप्रसाद गोयलीय, पं. दयाचन्द्र गोयलीय, पं. परमानन्द शास्त्री पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ आदि इन धुरीण विद्वानों की कोटि में परिगणत होते हैं। आधुनिक युग के विद्वानों में डॉ. राजाराम जैन, डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री,डॉ. कोमलचन्द्र शास्त्री, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. कमलेश कुमार जैन, डॉ. सुदर्शन लाल जैन, डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी, डॉ. कमलचन्द्र सोगाणी, पं. विमलकुमार, डॉ. प्रेमसुमन जैन, डॉ. उदयचन्द्र जैन, डॉ. कपूरचन्द्र जैन, डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, डॉ. अशोक कुमार जैन, डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन, डॉ. रतनचन्द जैन, डॉ. लालचन्द जैन, डॉ. भागचन्द भास्कर, डॉ. भागचन्द्र भागेन्दु, डॉ. महेन्द्र मनुज, डॉ. नरेन्द्रकमार, डॉ. शीतलचन्द्र जैन, डॉ. नन्दलाल जैन, डॉ. ऋषभ फौजदार, डॉ. राजकुमार

जैन, डॉ. सनतकुमार जैन, डॉ. विमल कुमार जैन, पं. शिवचरण लाल, पं. निहालचन्द्र जैन, डॉ. सुशील जैन, डॉ. शोभालाल जैन आदि अनेक विद्वानों के नाम लिए जा सकते हैं, जो निरन्तर जिनवाणी की सेवा में संलग्न हैं।

विद्वत्परिषद् की स्थापना सन. १९४४ में वीर शासन जयन्ती महोत्सव के समय कलकत्ता में हुई थी। तब से यह संस्था निरन्तर जिनवाणी और साहित्य की सेवा में संलग्न है। अब तक इसके १९ अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं। गत अधिवेशन राजस्थान की पवित्र भूमि सांगानेर के सुरम्य अतिशय क्षेत्र संघी जी के मन्दिर में पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक गम्भीरसागर जी महाराज एवं पू. धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य में हुआ था, जिसमें शताधिक विद्वान् उपस्थित हुए थे। परिषद् द्वारा अब तक अनेक ग्रन्थरत्न और ट्रेक्ट प्रकाशित किए जा चुके हैं, इनमें गुरु गोपालदास बरैया अभिनन्दन ग्रन्थ, भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भारतीय संस्कृति के विकास में जैनाचार्यों का अवदान, देव शास्त्र-गुरु तथा पं. जुगलकिशोर मुख्तार व्यक्तित्व और कर्तृत्व प्रमुख हैं श्री दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् का मुख्य उद्देश्य जैन धर्म और संस्कृति को अधिकाधिक व्यापक एवं उपयोगी बनाना है तथा विद्वानों की स्थिति को सुदृढ़ बनाना है। इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं -

१. भगवान् महावीर का २६०० वाँ जन्म जयन्ती महोत्सव सन्निकट है। इस अवसर पर विद्वत् परिषद् को प्रकाशन योजना तैयार करने का संकल्प लेना चाहिए। इस अवसर पर कम से कम २६०० पृष्ठों की साहित्यिक सामग्री प्रकाशित हो, जिसमें अपभ्रंश साहित्य, जैन न्याय, कर्मसिद्धानत तथा आचार विषयक ग्रन्थों का आलोड़न विलोड़न हो।

2. वैशाली से भगवान् महावीर तथा उनके सिद्धान्तों के अनुरूप साहित्य का प्रकाशन किया जाय। यहाँ एक गुरुकुल की स्थापना हो, जहाँ हर वर्ग के बच्चों को संस्कृत- प्राकृत और अपभ्रंश की शिक्षा आचार्य और एम. ए. स्तर तक दी जाय।

३. वैशाली में स्थित प्राकृत शोध संस्थान को और गतिशील बनाया जाय।

४. इस शताब्दी में विद्वानों के अभाव की पूर्ति करने में स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी की बहुत बड़ी भूमिका रही है। अव्यवस्था और फण्ड के अभाव के कारण विद्यालय की स्थिति ठीक नहीं है। अब वहाँ छात्र संख्या भी नगण्य है। दिगम्बर जैन समाज की केन्द्र महावीर जन्म की २६०० वीं जयन्ती समारोह की समिति के पदाधिकारियों का एक प्रतिनिधि मण्डल वाराणसी जाकर वहाँ सर्वेक्षण करे और विद्यालय के विकास में आए अवरोधों को दूर करने का प्रयास करे। प्रत्येक विद्वान् स्वयं विद्यालय को प्रतिवर्ष दान भेजे तथा श्रीमन्तों को दान भेजने हेतु प्रेरित करें।

५. वाराणसी में स्थित गणेश वर्णी संस्थान को और अधिक समुन्नत बनाया जाय।

६. जैन समाज जहाँ मन्दिर की आवश्यकता नहीं है, वहाँ न बनाकर सराक क्षेत्र में मन्दिर और चैत्यालय बनवाए, ताकि सराक क्षेत्र में पुनः जैनधर्म का प्रचार और प्रसार हो। इस हेतु पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के निर्देशन में हो रहे कार्यों को गति दी जाय।

७. छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए जगह-जगह कानवेण्ट टाइप के स्कूल खोले जाँय, जहाँ जैनधर्म की शिक्षा अनिवार्य हो और जैन प्रार्थना, देवदर्शन आदि के संस्कार दिए जाँय।

८. भगवान् महावीर के जीवन चरित सम्बन्धी पुराने आचार्यों की कृतियों के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किए जाँय। इस योजना की सम्पूर्ति हेतु भारतीय ज्ञानपीठ के पदाधिकारियों से निवेदन किया जाय। जैन साहित्य के अन्य ग्रन्थ भी अंग्रेजी में अनूदित हों। इस दिशा में भगवान् ऋषभदेव ग्रन्थमाला, साँगानेर अच्छा प्रयास कर रही है, जहाँ से सुदर्शनोदय, समुद्रदत्तचरित, दयोदय मानवधर्म आदि ग्रन्थ पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी की प्रेरणा से प्रकाशित हो चुके हैं। आदिपुराण के अंग्रेजी अनुवाद का कार्य लगभग आधा सम्पन्न हो चुका है। वीरोदय के अनुवाद का भी प्रयास चल रहा है।

९. जैन पारिभाषिक एवं व्युत्पत्ति कोशों का हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशन हो। साँगानेर से इस दिशा में कुछ प्रयास हुआ है। यहाँ से मेरी सुधासागर हिन्दी इंग्लिश जैन डिक्शनरी का प्रकाशन हुआ है। सोनागिर से भी एक कोश हिन्दी इंग्लिश डिक्शनरी आफ जैन टैक्निकल टर्म्स प्रकाशित हुई। ज्ञात हुआ है कि पूज्य मुनि क्षमासागर जी महाराज ने एक संक्षिप्त कोश हिन्दी में तैयार किया है। डॉ. नन्दलाल जैन ने भी एक संक्षिप्त हिन्दी अंग्रेजी कोश प्रकाशित कराया है। भिन्न-भिन्न विद्याओं पर अलग-अलग कोश ग्रन्थ प्रकाशित हों। लेश्याकोश इस दिशा में मार्गदर्शक हो सकता है।

१०. भगवान महावीर के जीवनचरित तथा शिक्षाओं को दिग्दर्शित कराने वाली ४०-५० पृष्ठों की एक पुस्तक तैयार कराकर देश की प्रमुख सभी भाषाओं में छपाकर लाखों की संख्या में वितरित की जाए।

११. भगवान् महावीर तथा उनसे सम्बन्धित साहित्य को आधार बनाकर जगह-जगह गोष्ठियाँ आयोजित की जाँय, जहाँ अजैन जनता की उपस्थित का भी प्रयत्न किया जाए।

१२. समस्त जैन स्कूलों तथा कॉलेजों में भगवान महावीर के जीवन पर आधारित पत्रिकायें प्रकाशित की जाँय।

१३. देश में प्रकाशित समस्त पत्र-पत्रिकाओं के महावीर जयन्ती विशेषाङ्क प्रकाशित किए जाँय।

१४. जगह-जगह शाकाहार रैली, महिला सम्मेलन तथा युवा सम्मेलन आयोजित किए जाँय। एक वर्ष, अहिंसा वर्ष घोषित हो। मांस का निर्यात बन्द हो।

१५. जैन धर्म पर एक सामान्य परिचयात्मक ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय।

१६. महावीर जयन्ती के दिन प्रभात फेरी निकाली जाय।

१७. देश के प्रमुख पर्वों पर मांस की दुकानें बन्द रखी जाँय।

१८. जैन स्कूलों, कॉलेजों में महावीर सप्ताह निर्धारित कर निबन्ध प्रतियोगिता, भाषण प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोगिता, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता आदि का आयोजन हो तथा भगवान् महावीर के सिद्धान्तों पर विशिष्ट विद्वानों के भाषण हों।

१९. देश में एक केन्द्रीय प्राकृत विद्यापीठ की स्थापना हो।

२०. विदेशों में जैनधर्म के जानकार विद्वान् भेजे जाँय।

२१. पुराण एवं चरित ग्रन्थों में वर्णित मुनिराज तथा उनके चरित पर एक मानक ग्रन्थ तैयार हो।

२२. भारत तथा विदेश के विश्वविधालयों में जैन साहित्य पर सैकड़ों की संख्या में शोध प्रबन्ध लिखे गए हैं। इनमें से १० प्रतिशत से अधिक प्रकाशित नहीं है। अच्छे शोधप्रबन्धों के प्रकाशन की एक

योजना बनाई जाय। साँगानेर की भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला से कुछ महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं, जिनमें बौद्ध दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा: जैन ग्रन्थों के आधार पर, जैन राजनैतिक चिन्तन धारा, जैन दर्शन में रत्नत्रय का स्वरुप, महाकवि आचार्य ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन, आ. ज्ञानसागर साहित्य में पर्यावरण दृष्टि, आचार्य ज्ञानसागर द्वारा रचित साहित्य, अनेकान्त एवं स्याद्वाद विमर्श, जयोदय महाकाव्य परिशीलन, जयोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, जयोदय महाकाव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, सर्वार्थसिद्धि का समीक्षात्मक अध्ययन, पासणाहचरिउ एक समीक्षात्मक अध्ययन, संस्कृत साहित्य में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान, आचार्य ज्ञानसागर वाङ्मय में नय निरूपण, आचार्य ज्ञानसागर साहित्य में चित्रालंकार, आचार्य विद्यासागर का व्यक्तित्व एवं काव्यकला, सांख्य दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। विद्वानों को इन प्रकाशित शोध प्रबन्धों से लाभ लेना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के बहुत बड़े लेखक और साहित्यकार आचार्य ज्ञानसागर महाराज को लोग भूलते जा रहे थे। उनकी जीवन कृति आचार्य विद्यासागर तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों ने अपने ज्ञान और चारित्र की यश:सुरभि से सौर नभमण्डल को महका दिया। पुण्य श्लोक आचार्य ज्ञानसागर की संस्कृत और हिन्दी रचनाओं का तीव्रगति से पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी की सत्प्रेरणा से प्रकाशन हुआ। उनके साहित्य की विविध विद्याओं पर राजस्थान में-जयपुर, सीकर, साँगानेर, अलवर, अजमेर, ब्यावर आदि अनेक स्थानों पर गोष्ठियों का आयोजन किया गया तथा विद्वानों द्वारा पठित आलेखों का अनेक ग्रन्थों के रुप में प्रकाशन हुआ। इन ग्रन्थों में कीर्तिस्तम्भ, लघुत्रयी मन्थन, जयोदय महाकाव्य परिशीलन, महाकवि आचार्य ज्ञानसागर अध्यात्म सन्दोहन आदि प्रमुख हैं। इस मध्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज के साहित्य पर अनेक शोधप्रबन्ध भी लिखे गए, जिनमें श्रीमती हेमलता शर्मा का वीरोदय परिशीलन, श्रीमती डॉ. रेखारानी का जयोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन, ब्र. मीना जैन का आचार्य ज्ञानसागर साहित्य में पर्यावरण दृष्टि एवं ब्र. नीता कुमारी जैन का आचार्य ज्ञानसागर के काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन आदि प्रमुख हैं। एक ही आचार्य के जीवन और साहित्य के विषय में विद्वानों द्वारा किया गया यह कार्य प्रेरणादायी है। प्रत्येक आचार्य की रचनाओं का इस प्रकार आलोड़न विलोड़न हो तो हमारा साहित्य समाज को बहुत बड़ी दिशा निर्देशन कर सकता है। इस दिशा में कुछ प्रयास आरम्भ हुए हैं। अलवर में एक बहुत बड़ी विद्वत् गोष्ठी का आयोजन किया गया था, जिसमें आदिपुराण के विषय में महत्त्वपूर्ण शोध उल्लेख प्रस्तुत किए गए थे। सीकर में इसी प्रकार की महान् गोष्ठी का आयोजन हुआ था, जिसमें बीसवीं सदी के महान् सन्त पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विभिन्न पहलुओं पर विद्वानों ने अपने आलेख वाचन किए थे। इन आलेखों का संकलन शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् अपने प्रारम्भिक समय से है। इस विषय को लेकर गम्भीर चिन्ता व्यक्त करती रही है कि विद्वानों की परम्परा को आगे कैसे बढ़ाया जाय। पुराने जमाने में जो पाठशालायें गाँव-गाँव में चला करती थी, वे प्राय: काल कवलित हो चुकी हैं, शेष में से भी अधिकांश काल कवलित हो चुकी है। बुन्देलखण्ड और दूसरे स्थानों पर प्रतिदिन एक या दो बार जो शास्त्र प्रवचन की परम्परा थी, वह भी आजकल की टी. वी. संस्कृति के कारण प्राय: लोप हो चुकी है। आज विद्वानों के पास डिग्रियाँ तो बहुत हैं, किन्तु अपेक्षित शास्त्रीय ज्ञान की निरन्तर कमी होती जा रही है। ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों में से भी ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद और ब्रह्मचारिणी चन्दाबाई जैसे साहित्य और ज्ञान के रसिक दिखाई नहीं देते हैं। यदि आज का ब्रह्मचारी और

ब्रह्मचारिणी वर्ग मूल ग्रन्थों के अध्ययन, अनुसन्धान और सम्पादन का वीणा उठाए तो विद्वानों के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो सकती है। समाज को पुन: सजग होकर रात्रि पाठशालायें चालू करनी चाहिए। बाल साहित्य का भी पर्याप्त प्रकाशन हो और महिला वर्ग एकजुट होकर साहित्य के अध्ययन में लग जाय तो बालकों और युवापीढ़ी को अनायास मार्गदर्शन का लाभ मिल सकता है।

दिगम्बर जैन समाज में अनेक वर्ग हैं। ये सभी अपने को परम्परा से सम्बन्धित करते हैं, तथापि उनमें अनेक प्रकार के वैचारिक मतभेद हैं। एक ही परम्परा से सम्बन्ध होते हुए भी उनमें इस प्रकार के मतभेद होना किसी भी विचारवान् व्यक्ति को सोचने के लिए प्रेरित करता है। आचार्य समन्तभद्र ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म कहा है तथा सम्यग्दर्शन के लक्षण में सच्चे देव, शास्त्र और गुरुओं का तीन मूढ़ता रहित, आठ अंग सहित और मदरहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा है। तीन मूढ़ताओं में देवमूढ़ता, शास्त्रमूढ़ता और गुरुमूढ़ताओं का समावेश है। वीतरागता की कसौटी पर जो खरा नहीं उतरता वह कोई भी देव हमारा पूज्य नहीं है। शासन देवता स्पष्ट रुप से सरागी देव है। उनकी उपासना को किसी भी स्थिति में समुचित नहीं कहा जा सकता चाहे उसके लिए कितने ही शास्त्र प्रमाण क्यों न उपस्थित किए जाँय। सम्यग्दृष्टि श्रावक या साधु परम्परा को प्रधानता न देकर परीक्षा और तर्क की कसौटी पर किसी मान्यता को कसता है। यदि युक्ति की कसौटी पर कोई बात खरी नहीं उतरती तो सम्यग्दृष्टि उसे नहीं मानता है। आज की साधारण जनता जिनवाणी के नाम पर जो कुछ भी लिखा गया है, उसे सच मान लेती है।

भगवान महावीर का निर्वाण हुए आज २५०० वर्ष से अधिक हो गए हैं। बीच के अन्तराल में जैनियों को जैनेतरों के कठोर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा है। बहुसंख्यक लोगों से तालमेल स्थापित करने के लिए उसने अपनी आचार परम्परा में परिवर्तन भी किए हैं। आज का बहुत सारा क्रियाकाण्ड बहुसंख्यक जैनेतर समाज की ही देन है, आत्मप्रधान जैन धर्म के साथ उसकी किसी प्रकार संगति नहीं है।

आज का युग बदल रहा है। किसी जमाने में मन्त्र-तन्त्रादि का प्रभाव बतलाकर जनता को अपने धर्म की ओर आकर्षित किया जाता था। आज की जनता में मन्त्र-तन्त्रादि के प्रति वैसा विश्वास नहीं रहा है, अत: किसी धर्म के अनुयायी के दूसरों के प्रति किए गए सुकार्य ही लोगों को उस धर्म की ओर आकर्षित कर सकते हैं। ईसाई मिशनरी की सेवा भावना से ही उनके धर्म के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हुई है, वहाँ जैन धर्मावलम्बियों की संख्या दिनों-दिन कम हो रही है। 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' की उक्ति के अनुसार जब धार्मिक लोग ही नहीं रहेंगे तो धर्म कहाँ रहेगा? समाज के कर्णधारों को समाज की गिरती हुई जनसंख्या की चिन्ता नहीं है। घटती हुई जनसंख्या का कारण अपने धर्म से च्युत होना नए धर्म के अनुयायियों के समावेश का अभाव होना ही है। सामाजिक दृष्टि से जब तक नए लोगों को समान स्थान नहीं मिलेगा, तब तक समाज की जनसंख्या की वृद्धि होने की आशा नहीं है। जातिवाद की पनपती हुई स्थिति में एक ही धर्म के अनुयायियों में ही जब समानता का बोध नहीं है तो वे दूसरों को समान कैसे समझ सकते हैं? कहाँ तो भगवान् का विशाल हृदय था कि अपनी सभा में उन्होंने पशु-पक्षियों को भी स्थान दिया और कहाँ हमारा हृदय है कि हम संसार की मानव समाज को भी एक नहीं मानते। हमारा यह सब कहने का तात्पर्य किसी व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग विशेष को चोट पहुँचाना नहीं है, अपितु हम चाहते हैं कि भगवान महावीर के धर्म का लाभ सबको

मिले और वे सच्चे देव शास्त्र, गुरु का उपासक मानने में गौरव का अनुभव कर सकें। साथ ही हम यह भी कहना चाहते हैं कि दिगम्बरत्व पर जिनकी श्रद्धा नहीं, उनका इस धर्म में कोई स्थान नहीं है।

मेरा तो यह विश्वास है कि जिसकी महान् आचार्य समन्तभद्र में आस्था है, वह तीन मूढ़ताओं का सेवन कर ही नहीं सकता। यदि करता है तो आचार्य समन्तभद्र के शास्त्रों का उसने मर्म नहीं जाना, यही समझना चाहिए। हमारे धर्म की कसौटी सम्यक्त्व है और सच्चा सम्यक्त्वी कभी सच्चे देव, शास्त्र तथा गुरु के स्थान पर कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु की आराधन नहीं कर सकता। जैनं जयतु शासनम्।

दिनांक २३-२-२००१ ई.

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नास्त्यगम्यं हि किंचन।
बुद्ध्या यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणय:॥

बुद्धिमान की बुद्धि के सम्मुख संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है। बुद्धि से ही शस्त्रहीन चाणक्य ने सशस्त्र नंद वंश का नाश कर डाला।

– पंचतंत्र

* * *

–:: विशेष ध्यातव्य ::–

सतना (म. प्र.) में आयोजित अ. भा. दि. जैन वि. प. के 16वें अधिवेशन के अवसर पर पं. माणिकचन्द जयकुमार चंवरे कारंजा एवं खुरई (म. प्र.) में 17वें अधिवेशन में डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन ने लिखित भाषण नहीं पढ़ा।

* * *

अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद्

आजीवन सदस्यता सूची 2001

१. श्री अखिल बंसल
129, स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा
जयपुर-18

२. श्री अजय कुमार जैन, प्राचार्य
पुत्र श्री जयप्रकाश जैन,
बड़ा बाजार,
खतौली-251201 (उ. प्र.)

३. ब्र. अजित कुमार शास्त्री, करके,
न्यायतीर्थ बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम,
बाहुबली, कोल्हापुर
(महाराष्ट्र)-410116

४. श्री अजीत कुमार जैन
3743 गली नं. 8
शान्ति मुहल्ला, दिल्ली-110031

५. श्री अजीत कुमार जैन, एम. ए.
शासकीय महाविद्यालय, बीना
सागर (म. प्र.)-470113

६. श्री अनन्तराज तूपकर
जीवराज जैन ग्रन्थमाला,
फलटण गली,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

७. अनिल कुमार जैन "सौम्य"
C\o विमल कुमार जैन
श्री दि. जैन आ. सं. कॉलेज
(मनिहारों का रास्ता) जयपुर-3

८. श्रीमती अनीता जैन
20 वां कि. मी. करनाल,
जी टी. रोड़, अलीपुर, दिल्ली

९. डॉ. अनुपम जैन, शोधाधिकारी,
कुन्कुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी रोड़,
तुकोगंज, इन्दौर (म.प्र.)-452001

१०. श्री अनूपचन्द्र, न्यायतीर्थ
766, गोदिकों का रास्ता,
जयपुर (राजस्थान)

११. श्री अनूपचन्द्र एडवोकेट
234/2, जैन कटरा, पठानान,
फिरोजाबाद, आगरा
(उ. प्र)-283203

१२. श्री अभय कुमार जैन, एम.ए.
कानूनगो वार्ड, कुआवाली बाखर,
बीना (म. प्र.) सागर-470113

१३. श्री अभय प्रकाश जैन
एन. 14-चेतकपुरी,
ग्वालियर-474006

१४. पं. अमृत लाल जैन 'प्रतिष्ठाचार्य'
असाटी वार्ड-2
दमोह (म. प्र.)-470661

१५. श्री अमर चन्द्र जैन
उदासीन आश्रम, श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र
कुण्डलपुर जि. दमोह (म. प्र.)

१६. श्री अमर चन्द्र शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य
शाहपुर मगरौन
सागर (म. प्र.)

१७. श्री अरविन्द कुमार जैन
साथी एस.टी.डी.पी.सी.ओ.,
स्टेशन रोड़
दुर्ग (छत्तीसगढ़)-491001

१८. पं. अरुण कुमार जैन
सेठजी की नसियां
ब्यावर (राज.)-305901

१९. श्री अरविन्द कुमार जैन शास्त्री
हजारीमल जैन पुराना जनाना अस्पताल के
पास, मु. पो. सुजानगढ़, चूरू (राज.)

२०. श्री अरुण मोदी,
दलपतपुर, सागर (म. प्र.)

२१. डॉ अशोक कुमार जैन,
प्रवक्ता, जैन विश्वभारती संस्थान,
लाडनू (राज.)
जिला-नागौर-341306

२२. श्री अशोक कुमार शास्त्री,
श्री महावीर दिगम्बर जैन माध्यमिक
विद्यालय, चिकसंतर मुरार,
ग्वालियर, मध्यप्रदेश

२३. श्री अशोक गोयल शास्त्री
157, चन्द्र विहार,
मण्डावलि, फाजलपुर, दिल्ली-92

२४. अशोक कुमार जैन
C\o श्री दि. जैन आ. सं. कॉलेज
(मनिहारों का रास्ता) जयपुर-3

२५. श्रीमती आशा जैन
द्वारा डॉ. महेन्द्र कुमार जैन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी नगर,
तुकोगंज, इन्दौर (म. प्र.)

२६. श्रीमती आशा जैन
3118/71, एस.ए.एस. नगर
चंड़ीगढ़-160059

२७. श्री इन्द्र कुमार जैन
द्वारा गुलाबचन्द्र इन्द्रकुमार जैन क्लाथ मर्चेण्ट,
बहराइच (उ. प्र.)

२८. श्री इन्द्रसेन जैन
मदनपुरी कॉलोनी,
सहारनपुर (उ. प्र.)

२९. श्री उत्तमचन्द जैन, प्राचार्य
नेहरू वार्ड,
सिवनी (म. प्र.)-480661

३०. श्री उत्तमचन्द जैन, 'भारिल्ल'
मन्दिर वार्ड, सिवनी (म. प्र.)

३१. श्री उत्तमचन्द जैन, एडवोकेट
रामपुरा, सागर (म. प्र.)

३२. श्री उत्तमचन्द जैन 'राकेश', एम.ए.
23, सरदारपुरा,
ललितपुर (उ. प्र.)

३३. श्री उत्तमचन्द्र जैन, एम.ए.
पी. डब्ल्यू. डी. रोड़,
डीमापुर, नागालैण्ड-797112

३४. पं. उदयचन्द जैन शास्त्री
अंकुर कॉलोनी, रजाखेरी,
सागर (म. प्र.)-470003

३५. श्री उदयचन्द्र जैन, 'सर्वदर्शनाचार्य'
112 बी, रवीन्द्रपुरी लेन नं. 11
वाराणसी (उ. प्र.)-221005

३६ डॉ. (श्रीमती) उर्मिला जैन, एम. ए.
आवास-द्वारा डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन,
16, जैन कॉलेज स्टाफ क्वार्टर्स,
नेहरू रोड़, बड़ौत-250611

३७ श्रीमती उषा जैन
श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र
पावागिरि ऊन
जिला-खरगौन (म. प्र.)

३८. ऋषभ कुमार जैन
आफिसर्स कॉलोनी
खुरई (म. प्र.)-470117

३९. वैद्य ऋषभ कुमार जैन
अंकुर मेडिकल स्टोर
बड़ागाँव-धसान, टीकमगढ़ (म. प्र.)

४०. पं. ऋषभकुमार जैन, शास्त्री
नावापारा, राजिम,
रायपुर (छत्तीसगढ़)

४१. डॉ. ऋषभचन्द्र जैन, फौजदार,
प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली (बिहार)

४२. ऋषभ कुमार जैन
आफीसर्स कॉलोनी
खुरई (सागर) (म. प्र.)

४३. श्री कमलकुमार जैन, शास्त्री,
प्रधानपुरा, गांधीरोड़, कोतवाली के
पीछे, टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

४४. श्री कपूरचन्द्र जैन घुवारा
घुवारा सदन, राजमहल रोड़
टीकमगढ़ (म. प्र.)

४५. डॉ. कपूरचन्द जैन
अध्यक्ष संस्कृत विभाग, कुन्दकुन्द
दिगम्बर जैन डिग्री कॉलेज,
खतौली, (मुजफ्फरनगर) (उ. प्र.)

४६. डॉ. कपूरचन्द चन्द्र जैन 'भारिल्ल'
समयसार सदन, गाँधी चौक,
सिवनी (म. प्र.)

४७. डॉ. कपूरचन्द पठावाले
कुमार मेडिकल स्टोर,
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

४८. पं. कपूरचन्द बरैया, एम.ए.
कसेरा ओली, दाना अली टकसाल
गली, लश्कर, ग्वालियर (म. प्र.)

४९. श्रीमती कमलेश जैन
बी-173, सूरजमल विहार
दिल्ली-110092

५०. डॉ. कमलेश कुमार जैन
20वां कि.मी. कर्नाल, जी.टी. रोड़,
अलीपुर, दिल्ली

५१. डॉ. कमलेश कुमार जैन, प्राध्यापक
जैनदर्शन, आवास बी-2/246,
निर्माण भवन, रवीन्द्रपुरी लेन नं. 14
वाराणसी-221005

५२. पं. कन्हैयालाल जैन, शास्त्री
अरुण जनरल स्टोर,
गान्धीद्वार, कटनी (म. प्र.)

५३. डॉ. कस्तूरचन्द जैन "सुमन"
जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी,
जिला करौली (राज.)

५४. श्रीमती कस्तूरी देवी जैन
233, राजधानी एन्क्लेव, दिल्ली

५५. ब्रह्मचारी कल्याणदास धर्मचन्द
जैन, महावीर स्टोर एजेन्सी, सीहोरा
रोड़, जबलपुर (म. प्र.)

५६. डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन
W\o प्रकाश चन्द्र जैन "एडवोकेट"
सी बी. पैलेस के सामने,
शिन्दे की छावनी लश्कर
ग्वालियर (म. प्र.) 474009

५७. श्री कान्तीलाल शाह,
1-ए, जोशी भवन, पोद्दार स्ट्रीट,
मलाड़ (ईस्ट), बम्बई-64

५८. पं. कान्तिकुमार जैन, पाटनी,
22, साउथ यशवन्तगंज,
नवीन चित्रा टॉकीज,
इन्दौर (म. प्र.)

५९. श्रीमती कामिनी जैन, 'चैतन्य'
3/359, विद्याधर नगर,
जयपुर (राजस्थान)

६०. कुन्दनलाल जैन
श्रुतकुटीर, 68, विश्वास नगर, युधिष्ठिर
गली, शाहदरा, दिल्ली-110032

६१. श्रीमती कुन्ती जैन
द्वारा-अशोक कुमार जैन, "तूफान"
पुराना बस स्टैण्ड, बेगमगंज
रायसेन (म. प्र.)

६२. कु. कुसुम जैन
1620, मारवाड़ी कटरा नई सड़क,
दिल्ली-110006

६३. प्रो. के. के. जैन
शाकाहार सेतु
बीना, सागर (म. प्र.)

६४. श्री पं. कैलाशचन्द्र मलैया
जैन मुहल्ला,
फागी, जयपुर (राज.)

६५. श्री कैलाश चन्द्र जैन 'सर्राफ',
जैन मंदिर के सामने,
सतना (म. प्र)

६६. डॉ. कैलाश "कमल", एडवोकेट
चौक बाजार,
ग्वालियर (म. प्र.)

६७. पं. कैलाश चन्द्र जैन
445, मंगली बजरिया, हनुमानताल,
पवैनी का बाड़ा, जबलपुर (म. प्र.)

६८. पं. कोमल चन्द्र शास्त्री, "सुमन"
श्रुत सागर दि. जैन पाठशाला
फागी-जयपुर

६९. पं. कोमलचन्द जैन
मु. पो. लुहारिया,
जि. बांसवाड़ा (राजस्थान)

७०. पं. कोमलचन्द जैन
दि. जैन अतिशय क्षेत्र,
तिजारा, अलवर (राज.)

७१. श्री खुशालचन्द जैन, "सिंघई"
एस-17/331-बी, मलदहिया,
वाराणसी (उ. प्र)

७२. खुशालचन्द्र शास्त्री,
उप-डाकपाल, उप-डाकघर-
बड़ामलहरा, जिला-छतरपुर (म. प्र.)

७३. पं. खुशालचन्द जैन, "विशारद"
रजाखेड़ी, सागर (म. प्र.)

७४. पं. खूबचन्द जैन 'पुष्कल',
सीहोरा, सागर (म. प्र.)

७५ डॉ. खेमचन्द्र जैन
बड़ेराय
मु. पो. तेजगढ़
जिला-दमोह (म. प्र.)

७६. खेमचन्द्र जैन
रायल अस्पताल
गढ़ा रोड़, रेलवे क्रॉसिंग
जबलपुर (म. प्र.)

७७. डॉ. गंगाराम गर्ग,
110-ए, रणजीत नगर,
भरतपुर (राजस्थान)

७८. पं. गजेन्द्र कुमार जैन
मु. पो. मड़ावरा
जिला-ललितपुर (म. प्र.)

७९. श्री पं. गजेन्द्र जैन
ज्योतिष रत्न कार्यालय,
फरूखनगर-गुड़गाँव (हरि.)-375377

८०. डॉ. गुलाब चन्द जैन, शिक्षक
छोटे डोंगर (म. प्र.)

८१. पं. गुलाब चन्द्र जैन, निवार वाले
जैन मंदिर के सामने, शाहजहानाबाद,
भोपाल (म. प्र.)

८२. पं. गुलाबचन्द जैन,
तेलंग भवन के पास, राजमहल रोड़,
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

८३. पं. गुलाबचन्द जैन, दर्शनाचार्य
1436, राइट टाउन,
जबलपुर (म. प्र.)

८४. पं. गुलाबचन्द जैन, वैद्य
ढाना (सागर) (म. प्र.)

८५ डॉ. गुलाबचन्द्र जैन
भारतीय ज्ञानपीठ
18-ए, एन्स्टिट्यूशनल एरिया,
लोदीरोड़, नई दिल्ली-110003

८६. पं. गुलाबचन्द्र जैन 'पुष्प' प्रतिष्ठाचार्य
पुष्प भवन नगर सेठ मोहल्ला,
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

८७. श्री डॉ. गोकुलचन्द्र जैन
जैन बाला विश्राम,
आरा (बिहार)

८८. डॉ. गोकुल प्रसाद जैन
233, राजधानी इन्क्लेव, शकूरबस्ती,
दिल्ली-110034

८९. पं. गोपीलाल जैन, "अमर"
आचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ,
18 ए, इंस्टीट्यूशनल एरिया,
लोदी रोड़, नई दिल्ली-110003

९०. श्री घासीराम जैन "चन्द्र"
वन ठेकेदार, कमलागंज,
शिवपुरी (म. प्र.)

९१. श्री चन्द्रकुमार जैन
सी. ए. ग्लास वर्क्स, चौकीगेट
फिरोजाबाद (उ. प्र.)-283203

९२. पं. चन्द्रमौलि जैन शास्त्री
वर्णी निकेतन
207/11, प्रकाश मोहल्ला,
लाजपतनगर, नई दिल्ली-110065

९३. श्रीमती चन्द्र प्रभा पाँडे
7 लेखरापुरा
भोपाल (म. प्र.)

९४. श्रीमती चमेली देवी जैन
137, आराधना नगर, कोटरा
सुलतानाबाद, भोपाल-462003

९५. स्वास्ति श्री भट्टारक कर्मयोगी
चारुकीर्ति जी, जैन मठ, श्रवणबेलगाला,
कर्नाटक-573135

९६. पं. छोटे लाल जैन 'भायजी',
नगरपालिका के पास, कटरा बाजार,
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

९७. श्री छोटेलाल जैन 'एड्वोकेट'
E-8/123 शिवकुंज
रेलवे कॉलोनी बस स्टाप नं. 12 के पास
भोपाल (म. प्र.)

९८. डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन,
द्वारा-डॉ. कपूरचन्द जैन
के. के. जैन डिग्री कॉलेज क्वार्टर्स,
मोहल्ला-तगान, खतौली
मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

९९. श्री ज्योति बाबू जैन शास्त्री
जैन नसिया रोड़, जैन छात्रावास,
सांगानेर, जयपुर (राज.)

१००. ब्र. जतीश चन्द्र जैन शास्त्री
ए-4, बाबूनगर टोडरमल स्मारक भवन
जयपुर (राजस्थान)

१०१. डॉ. जगदीश प्रसाद जैन
ई-155, कालकाजी,
नई दिल्ली-110019

१०२. पं. जमुनाप्रसाद शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य
रघुनाथगंज, कटनी (म. प्र.)

१०३. पं. जगरूप सहाय, प्रवक्ता
पी.डी. जैन कॉलेज,
288, कटरा पठानान,
फिरोजाबाद (उ. प्र.)-283203

१०४. श्री जयपालसिंह
जयलक्ष्मी अपार्टमेन्ट
पटपडगंज, प्लाट नं. 59
दिल्ली-92

१०५. पं. जयकुमार जैन, साहित्याचार्य
महावीर दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय
साढूमल, ललितपुर (उ. प्र.)

१०६. पं. जयकुमार जैन
4/2, लेबर कॉलोनी,
मिर्जापुर (उ. प्र.)

१०७. श्री ब्र. जय कुमार निशान्त
'पुष्प भवन' नगर सेठ मुहल्ला
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

१०८. डॉ. जयकुमार जैन
261/3, संजय मार्ग, पटेल नगर,
नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)-1

१०९. श्री जयन्त कुमार जैन
श्री दि. जैन सीनियर माध्यमिक
विद्यालय, बजाज रोड़, सीकर (राज.)

११०. श्री जयकुमार जैन
जय किराना स्टोर, श्री दिगम्बर जैन
मन्दिर के सामने, स्टेशन रोड़
दुर्ग (छत्तीसगढ़)-491001

१११ श्री जयन्ती प्रसाद जैन
ओल्ड टाइम्स हाउस, 101, दरियागंज
नई दिल्ली

११२. डॉ. जिनेश कुमार जैन,
बी.ए., एम.एस., एम.डी.
शान्ति-क्लीनिक
मु. पो. घुवारा
जिला-छतरपुर-471313 (म. प्र.)

११३. डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन, प्रतिष्ठाचार्य
जैन इन्टर कालेज, सासनी
अलीगढ़ (उ. प्र.)-204216

११४. श्रीमती जिनमती जैन, एम.ए.
जैन बाला विश्राम
आरा (बिहार)
श्री जीवनकुमार जैन, 'सिंघई'
बड़ाबाजार, सागर (म. प्र.)

११५. श्री जीवनलाल जैन,
पंजाबी मोहल्ला
इटारसी (म. प्र.)

११६. श्री जीवराज राघवजी कोटड़िया,
67, पूर्व मंगलवार पेठ,
सोलापुर (महाराष्ट्र)-413002

११७. श्री जीवेन्द्र जड़े
बाहुबली वृद्ध आश्रम,
बाहुबली, कोल्हापुर-410116

११८. श्री ताराचन्द जैन, ''प्रेमी''
फिरोजपुर, झिरका, (हरियाणा)

११९. डॉ. ताराचन्द्र जैन, ''बख्शी'
बक्सी भवन, न्यू कॉलोनी (पांचबत्ती)
जयपुर (राजस्थान)-302001

१२०. पं. दयाचन्द जैन, साहित्याचार्य
प्राचार्य, गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत
महाविद्यालय, वर्णी भवन, मोराजी,
लक्ष्मीपुरा, सागर (म. प्र.)-470002

१२१. श्री दयाचन्द जैन
आयुष्मान हास्पिटल के पीछे, खजुरीय
टोला, सतना (म. प्र.)-485001

१२२ श्री दयाचन्द जैन बजाज,
ढाना, सागर (म. प्र.)

१२३. डॉ. दामोदर शास्त्री,
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, गणेश मार्ग
बापू नगर, जयपुर

१२४. श्री दीपक कुमार जैन 'दिव्य'
1061, टकसाली भवन, भट्टों की गली
चौड़ा रास्ता, जयपुर

१२५. पं. दीपचन्द, "विशारद"
घुवारा, छतरपुर (म. प्र.)

१२६. पं. दुलीचन्द जी शास्त्री
खुरई रोड़, बीना (इटावा)
सागर (म. प्र.)-470113

१२७. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन
भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
लोदी रोड़, नई दिल्ली-110003

१२८. श्री देवेन्द्रकुमार बड़कुल,
मुमुक्षु निवास, 63 लखेरापुरा
भोपाल-462001 (म. प्र.)

१२९. डॉ. धर्मचन्द्र जैन,
रेड़ियो कॉलोनी के पास, पन्ना रोड़,
छतरपुर (म. प्र.)-471001

१३०. ब्र. धन्य कुमार जैन
महावीर ब्रह्मचर्याश्रम
मु. पो. कारंजा (अकोला)
महाराष्ट-444105

१३१. धन्य कुमार जैन
बी-2/138 भरैना
वाराणसी (उ. प्र.)

१३२. डॉ. धर्मचन्द जैन,
ई-38, विश्वविद्यालय परिसर,
कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-132116

१३३. पं. धर्मदास जैन
रिटायर्ड प्रिन्सिपल, जैन मंदिर के पास,
नई बस्ती, ललितपुर (उ. प्र.)

१३४. पं. धर्मचन्द्र जैन,
बी-27, जागृतिनगर लश्कर,
ग्वालियर-474001

१३५. श्री मन्त सेठ धर्मेन्द्र कुमार जैन,
श्रीमन्त भवन,
खुरई, सागर (म. प्र.)

१३६. पं. धरेणन्द्र कुमार जैन शास्त्री
किराना मर्चेण्ट, हटा,
दमोह (म. प्र.)

१३७. डॉ. नन्दलाल जैन
12/644, बजरंग नगर,
रीवां-486001 (म. प्र.)

१३८. श्री नरेन्द्रकुमार जैन,
गली नं. 6, फूलबाग कॉलोनी,
मेरठ (उ.प्र.)

१३९. पं. नरेन्द्रकुमार जैन,
रीठी, कटनी (म. प्र.)

१४०. श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, प्राचार्य,
104 नई बस्ती,
फिरोजाबाद (उ. प्र.)-283203

१४१. श्री नरेन्द्र कुमार भंडारी, एडवोकेट
भंडारी भवन, तीन बत्ती,
सागर (म. प्र.)

१४२. श्री नरेन्द्र कुमार जैन,
महावीर भवन
महावीर दिगम्बर जैन, हाईस्कूल,
फैन्सी बाजार, गोहाटी (आसाम)

१४३. डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन, "भारतीय"
मायाचन्द दि. जैन हा. से. स्कूल, सनावद
खरगोन (म. प्र.)-451111

१४४. पं. नन्हे भाई शास्त्री,
माचिस ब्रान्च के पीछे, केशवगंज
सागर (म. प्र.)-470002

१४५. श्री नरेन्द्र कुमार जैन
द्वारा चन्द्रप्रकाश मित्तल, सुन्दर मंदिर
12, नुमाइश कैम्प, केशव नगर,
सहारनपुर (उ. प्र.)

१४६ पं. नरेन्द्र कुमार जैन शास्त्री
79/5, I.R.I कॉलोनी
रुड़की (उत्तरांचल)-247667

१४७. पं. नरेन्द्र कुमार शास्त्री
श्री वर्णी वाल संस्कार
शिक्षा केन्द्र वरुआसागर
जिला-झाँसी (उ. प्र.)

१४८ पं. नाथूराम डोंगरीय,
546, सुदामा नगर,
इन्दौर (म. प्र.)-452006

१४९. पं. नाथूलाल जैन, शास्त्री
संहितासूरि 40, मोती महल,
सरहुकुम चन्द्र मार्ग, इन्दौर (म. प्र.)

१५०. पं. नाभिराज नारकर,
श्रुति अपार्टमेण्ट, चण्डक बगीचा
वालीवेस, सोलापुर-413002

१५१. श्री निर्मल कुमार जैन,
सुषमा प्रेस,
सतना (म. प्र.)-485001

१५२. निर्मल कुमार जी बोहरा
श्री दि. जैन आचार्य संस्कृत
महाविद्यालय, मनिहारों का रास्ता
जयपुर-3

१५३. श्री डॉ. निहाचन्द जैन, एम.एस.सी.
प्राचार्य, शा.सी.सै. स्कूल, कच्चा रोड़,
बीना, सागर (म. प्र.)

१५४. श्री निर्मल कुमार जैन शास्त्री
66, मनिहारों का रास्ता,
जयपुर (राजस्थान)

१५५. श्री निर्मल जैन, एम.एस.सी.,
विक्रय कर कार्यालय,
नौगांव, छतरपुर (म. प्र.)

१५६. डॉ. नीलम जैन
K.I.20, कवि नगर
गाजियाबाद (उ. प्र.)-201001

१५७. श्री नीरज जैन, एम.ए.
शान्ति सदन,
सतना (म. प्र.)-485001

१५८. श्री नेमचन्द्र जैन बजाज
गांधी चौक, दमोह (म. प्र.)

१५९. श्री नेमचन्द जैन,
426, हनुमान ताल,
सोलर ऑफसेट, जबलपुर-482002

१६०. श्री नेमीचन्द जैन
किराना स्टोर्स, मस्जिद रोड़, नौगांव,
बुन्देलखण्ड, जिला-छतरपुर (म. प्र.)

१६१. श्री नेमीचन्द जैन सिंघई
गुलगंज
परवारपुरा इतवारी नागपुर (महा.)

१६२. श्री नेमीचन्द जैन, फोन इन्सपेक्टर,
गुरुभक्ति, रेडियो कॉलोनी,
छतरपुर (म. प्र.)-471001

१६३. श्री नेमीचन्द मोतीलाल, पाटनी,
कन्नड़, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

१६४. श्री नेमीचन्द जैन धन्नुसाव, न्यायतीर्थ
डोणगांवकर दि. जैन मंदिर के पास,
देउलगांवराजा
जिला-बुलढाणा (महाराष्ट्र)

१६५. श्री डॉ. नेमीचन्द्र जैन, प्राचार्य,
पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल सी. सै. स्कूल
खुरई, सागर (म. प्र.)-471001

१६६. पंकज कुमार जैन शास्त्री
लक्ष्मीपुरा
जिला - ललितपुर (उ. प्र.)

१६७. श्री पंचमलाल जैन
ढाना, सागर (म. प्र.)

१६८. पं. पन्नालाल जैन
C/o अरविन्द बुक डिपो
हरदा (म. प्र.)

१६९. पं. पन्नालाल जैन
12, पान दरीबा
इलाहबाद-221003

१७०. पं. पवन कुमार जैन
C/o के. डी. जैन स्कूल
मदनगंज किशनगढ़, अजमेर

१७१. पं. परमानन्द जैन, काव्यतीर्थ
सिंघई वार्ड, शाहगढ़,
सागर (म. प्र.)

१७२. पदम कुमार जैन
1266, फैयाज गेट, बहादुर रोड़
दिल्ली

१७३. डॉ. पदम कुमार जैन
सैक्टर नं. - 6, विवेकानन्द महाविद्यालय
स्टाफ फ्लैट्स, विवेक बिहार,
दिल्ली-110065

१७४. श्री पदम चन्द जैन शास्त्री
367/2 रोशन महल,
पानीपत (हरियाणा)

१७५. पं. पद्म चन्द्र जैन शास्त्री
वीर सेवा मन्दिर, 21, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

१७६. श्री पदम चन्द जैन, इंजीनियर
एफ. 11/3, माडल टाउन,
दिल्ली-1100007

१७७. श्री पद्कुमार जैन, लालजी
क्लाथ मर्चेन्ट, चौक बाजार
बहराइच (उ. प्र.)

१७८. पं. पवन कुमार जैन दीवान
गोपाल दि. जैन सं. महाविद्यालय
मुरेना (म. प्र.)

१७९. पं. प्रकाश चन्द जैन, विदास वाले
द्वारा श्री बाबूलाल प्रकाशचन्द्र जैन
कपड़े के व्यापारी
सागर (म. प्र.)

१८०. श्रीमती पुष्पा बाई
नये जैन मन्दिर के पास
नई बस्ती, ललितपुर (उ. प्र.)

१८१. डॉ. पुष्पलता जैन
न्यू एक्सटेन्सन एरिया
सदर बाजार, नागरपुर-6 (महाराष्ट्र)

१८२. पं. प्रकाश हितैशी, शास्त्री
सम्पादक-सन्मति संदेश,
जैन मन्दिर गली
535, गांधी नगर, दिल्ली-110031

१८३. श्री प्रकाशचन्द्र जैन
द्वारा बम्बईलाल प्रकाशचन्द जैन
बालकराम स्ट्रीट, खतौली
मुज्जफरनगर (उ. प्र.)-251201

१८४. श्रीमती प्रभावती जैन
संदीप स्टील इन्डस्ट्री के पास
चन्द्रशेखर वार्ड-470002
सागर (म प्र.)

१८५. श्रीमती प्रभा सिंघई W/o
प्रकाश सिंघई
सिंघई मशीनरी स्टोर
बड़ागाँव धसान
जिला-टीकमगढ़

१८६. श्री वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल
ए-28, जनता कॉलोनी
जयपुर (राजस्थान)-302004

१८७. पं. प्रद्युम्न कुमार जैन
शैलेष फोटो स्टूडियो
मु. पो. मडावरा,
जिला-ललितपुर (उ. प्र.)

१८८. प्रवीण कुमार जैन
सिद्धक्षेत्र पावागिरि ऊन
जि. खरगौन (म. प्र.)

१८९. श्रीमती प्रसन्न जैन
261/3, संजय मार्ग,
पटेल नगर, नई मण्डी
मुजफ्फरनगर, (उ. प्र.)

१९०. श्री पारसमल अग्रवाल
वी. 220, विवेकानन्द कॉलोनी
उज्जैन (म. प्र.)-456010

१९१. डॉ. (श्रीमती) पुष्पा जैन
डॉ. फूलचन्द, "प्रेमी"
अनेकान्त भवनम्, बी. 23/45, पी -6
शारदा नगर कालोनी
वाराणसी (उ प्र.)-221010

१९२. श्री पुरुषोत्तमदास रामचन्द्र राकलकर
अभिनव निवास, रामनगर
उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)-413501

१९३. पं. पूर्णचन्द्र जैन, "सुमन", काव्यतीर्थ
सुमन कुटीर, 14, जैन मन्दिर मार्ग
मैथिलपारा, दुर्ग (छत्तीसगढ़)-461001

१९४. सिंघई पूरनचन्द जैन "सोंरया"
मड़ावरा, ललितपुर (उ. प्र.)

१९५. श्री पी. सी. जैन
सेवानिवृत्त फूड आफिसर
न्यू एक्सटेंशन एरिया, सदर बाजार
बी. नं.-40, मुधबन, नीमच (म. प्र.)

१९६. डॉ. प्रेमचन्द जैन शास्त्री
3118/71, एस. ए. एस. नगर
चंडीगढ़-160059

१९७. पं. प्रेमचन्द जैन धर्मालंकार
मुख्य धर्माचार्य, श्री दि. जैन हाई स्कूल
डीमापुर कोहिमा (नागालैण्ड)-767112

१९८. श्री प्रेमचन्द जैन
जैन विक्रय केन्द्र, गुजराती बाजार
सागर (म. प्र.)-470002

१९९. डॉ. प्रेमचन्द्र जैन
37, चाहचन्द्रजीरो रोड़
इलाहबाद-211003

२००. डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका
22, वात्सल्य एकता पथ श्रीजी नगर,
दुर्गापुरा, जयपुर-3

२०१. श्री फूलचन्द जैन 'योगीराज'
संचालक, सत्यपथयोग संस्थान
सटईरोड़, छतरपुर (म. प्र.)

२०२. डॉ. फूलचन्द जैन "प्रेमी"
अनेकान्त भवनम्, बी-23/45 पी-6
नावावगंज मार्ग, शारदा नगर कॉलोनी
वाराणसी (उ. प्र.)-10

२०३. श्री फूलचन्द जैन "मधुर"
स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, 284
चकराघाट, सागर (म. प्र.)

२०४. पं. बच्चूलाल जैन
दिगम्बर जैन विद्यालय, बादशाही नाका
कानपुर (उ. प्र,)

२०५. श्री बाबूलाल जैन
पुराना बाजार, अशोक नगर
जि. गुना (म. प्र.)

२०६. श्री बाबूलाल जैन, वैद्य
वीर मेडिकल स्टोर्स, किले का मैदान
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

२०७. पं. बाबूलाल न्यायतीर्थ,
द्वारा बाबूलाल शान्ति कुमार, वारदाना
मर्चेण्ट, बम्बई बाजार,
खण्डवा (म. प्र.)

२०८. श्री बाबूलाल जैन 'फागुल्ल'
महावीर प्रेस, भेलुपूर
वाराणसी (उ. प्र.)

२०९. पं. बाबूलाल पाटोदी
70/3, मल्हारगंज
इन्दौर (म. प्र.)

२१०. श्री बाबू जैन, "आकुल"
जैन मंदिर के पास, दुर्ग, (छत्तीसगढ़)

२११. श्री बाबूलाल जैन "मधुर"
20, स्टेशन रोड, बडी बजरिया
बीना, सागर (म. प्र.)-470113

२१२. पं. बाबूलाल "फणीश", प्राचार्य
महावीर दि. जैन गुरुकुल, पावागिरि
ऊन, खरगोन (म. प्र.)-451440

२१३. डॉ. बाबूलाल सेठी 1246,
मनिहारों का रास्ता
जयपुर-302003

२१४. डॉ. बारेलाल जैन
द्वारा श्री दिग. जैन मन्दिर, कटरा कैम्पस
रीवा (म. प्र.)

२१५. डॉ. भागचन्द जैन, "भास्कर"
न्यू एक्सर्टेशन एरिया सदर
नागपुर (महाराष्ट्र)-470666

२१६. श्री भागचन्द शास्त्री
वर्णी दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय
मोराजी, सागर (म. प्र.)

२१७. डॉ. भागचन्द जैन
प्राइवेट प्रेक्टिशनर
मु. पो. पथरिया, दमोह (म. प्र.)

२१८. श्री भागचन्द्र जैन
घुवारा पो. आफिस के पास मकान
जिला-छतरपुर (म. प्र.) 471313

२१९. भागचन्द्र जैन
आवाँ
जिला-टोंक (राज.)

२२० पं. भागचन्द्र जैन इन्दु
मु. पो. गुलगंज
जिला-छतरपुर (म. प्र.)
पिन कोड-471301

२२१. श्री डॉ. भागचन्द भागेन्दु
28, सरोज सदन, सरस्वती कॉलोनी
दमोह (म. प्र.)

२२२. पं. भूपाल अ. दलाल, बी. ए. बी. टी.
बाहुबली ब्रह्मचार्याश्रम, बाहुबली
कोल्हापुर (महाराष्ट्र)-410116

२२३. श्री भानुकुमार जैन
ललितपुर (उ. प्र.)

२२४. श्री भैयालाल जी शास्त्री
कटरा वार्ड, इटावा बाजार
बीना, जिला-सागर (म. प्र.)-470113

२२५. श्री भरतकुमार धन्यकुमार, "भौरे"
बी. 14/5, सी. बी. डी. सेक्टर-1
कोंकण भवन के सामने
नवीन मुम्बई-400614

२२६. भरत कुमार काला
14/432 टेगौर नगर
विक्रोली ईस्ट बम्बई-83

२२७. श्रीमती भारती भौरे
बी. 14/5, सी. बी. डी. सेक्टर-1
कोंकण भवन के सामने
न्यू मुम्बई-400614

२२८. श्री मन्नूलाल जैन, एडवोकेट
नमक मण्डी, कटरा बाजार
सागर (म. प्र.)

२२९. श्रीमती मणिकान्ता जैन
स्याद्वाद महाविद्यालय
भदैनी, वाराणसी

२३०. Dr. M D. Vasanthraj
N 86, 9th Cross
Naveluraste
Kavenpu Nagar
My SORE 570023

२३१. मनीष कुमार जैन
नया जैन मन्दिर
फतेहपुर (शेखावाटी)
जिला-सीकर

२३२. श्रीमती मनोरमा जैन W/O
पं. पवन कुमार जैन दीवान
गोपाल दि. जैन विद्यालय
मुरैना (म. प्र.)

२३३. श्री मनोज कुमार
द्वारा श्री शीतल प्रसाद जैन
टिम्बर मर्चेण्ट, जी. टी. रोड़ खतौली
मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)-251201

२३४. श्री मनोज कुमार जैन, पेण्टर
प्रीतांगन, नावाघाट, हटा
दमोह (म. प्र.)

२३५. श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री
25 सी, पाकिट 4
मयूर विहार, दिल्ली-110061

२३६ श्री महेन्द्र कुमार जैन, प्राचार्य
गोपाल दि जैन सि. सं महाविद्यालय
मुरैना (म. प्र.)

२३७ महेन्द्र कुमार जैन
1268, वैद्यनाथ मालीवाड़ा
दिल्ली

२३८. पं. महेन्द्र कुमार जैन
पूनम प्रोविजन स्टोर्स,
जी. आई. सी, रोड़
हस्तिनापुर, मेरठ (उ. प्र.)

२३९. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन, ''मनुज''
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी रोड़
तुकोगंज, इन्दौर (म. प्र.)

२४०. पं. महेशचन्द जैन
द्वारा हिमांशुकुमार जैन
सी-85, शिवालिक नगर, रानीपुर
हरिद्वार (उ. प्र.)

२४१. श्री महावीर प्रसाद ''गदिया''
श्री दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

२४२. श्रीमती मनोरमा जैन, जैन दर्शनाचार्य
द्वारा डॉ. सुदर्शनलाल जैन, 1, सी. एस.
कालोनी,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी (उ. प्र.)-221005

२४३. पं. मल्लिनाथ जैन शास्त्री
23, पेरुमल कोयल स्ट्रीट
मद्रास-700015

२४४. श्री पं. मांगीलाल जैन शास्त्री
मु. पो. कूण, जिला-उदयपुर (राजस्थान)
पिन-313604

२४५. ब्र. पं. माणिकचन्द '' भिसीकर''
न्यायतीर्थ, बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम
पो कुम्भोज बाहुबली
जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

२४६. पं. माणिकचन्द्र जैन, ''निर्मल''
जनरल मर्चेण्टस्, बांसा तारखेड़ा
दमोह (म. प्र.)

२४७. ब्र. पं. माणिकचन्द जी शिवलाल शाह
बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम, कुम्भोज
बाहुबली, जि.-कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
पिन-410115

२४८. प्रो. माधव श्रीधर रणदिवे, श्री गुणसागर सूरी
प्राकृत विद्यापीठ, रत्नत्रय
गोडोली, सातारा-415001

२४९. श्रीमती माधुरी जैन 'ज्योति'
1137, सांगों का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर

२५०. श्रीमती मीना जैन
जैन कन्या शाला लुहारिया
जिला-बांसवाड़ा-327605

२५१. श्री मुन्नालाल जैन
रावत भवन, गोविन्दगढ़ (मलिकपुर)
जिला-जयपुर (राज.)

२५२. श्री मुन्नालाल जैन
मु. पो. सुरला खापा, तहसील-अमरवाड़ा
छिन्दबाड़ा (म. प्र.)-222048

२५३. डॉ. मुकेश जैन C/O संजय जैन
460 शिवनगर
दमोह नाका
जबलपुर-482002

२५४. मुकेश कुमार जैन
372 टिक्की वालों का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर

२५५. श्री मुकेश जैन
द्वारा श्री लक्ष्मीचन्द जैन, एम.एस. सी.
सूर्या इम्पोरियम, सर्राफा
जबलपुर

२५६. श्री मुकेश कुमार जैन शास्त्री
बस स्टेण्ड के पास घुवारा
जिला-छतरपुर (म. प्र.)-471313

२५७. पं. मोतीलाल जैन शास्त्री
वर्णी दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय
मोराजी, सागर (म. प्र.)-270666

२५८. श्री मोतीलाल जैन (आयुर्वेदाचार्य)
मु. पो. बक्सवाहा,
जिला-छतरपुर (म. प्र.)
पिन-471318

२५९. श्री मोतीलाल जैन "विजय"
(पुलिस थाने के पास)
कटनी (म. प्र.)-483501

२६०. ब्र. यशपाल जैन, एम. ए
टोडरमल स्मारक भवन,
ए-4, बापू नगर
जयपुर-302015

२६१. श्री यशवन्तकुमार जैन, शास्त्री
जैन हाई स्कूल,
ताराचंद शिक्षक के मकान में
कछयाना मोहल्ला, नरसिंह मंदिर के पास
फुटेरा, दमोह (म. प्र)-470661

२६२. श्री योगेश कुमार जैन
बी-17, पालिका कुंज, करबला
नई दिल्ली

२६३. डॉ. रतनचन्द जैन
137, अराधना नगर, कोटडा
सुल्तानाबाद, भोपाल (म. प्र.)

२६४. पं. रतनचन्द जैन, "सौगानी"
द्वारा मैसर्स मूलचन्द फूलचन्द जैन,
जुमेराती बाजार, भोपाल (म. प्र.)

२६५. पं. रतनचन्द जैन, शास्त्री
इन्द्र भवन, तुकोगंज
इन्दौर (म. प्र.)

२६६. पं. रतनचन्द 'भारिल्ल'
टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापू नगर
जयपुर-302015

२६७. पं. रतनचन्द जैन, "कौशल"
डॉ. राधाकृष्णन रोड़
मण्डला (म.प्र)-481661

२६८. पं. रतनचन्द जैन
शास्त्री सदन, नदी रोड़
रहली, सागर (म.प्र)

२६९. पं. रतनचन्द जैन
भारतीय स्टेट बैंक
दमोह (म प्र.)-470661

२७०. श्रीमती रंजना बंसल
C/O श्री राजेन्द्र कुमार बंसल
जी. 5, ओ. पी. मिल्स कालोनी
अमलाई
जिला-शाहडोल (म. प्र.)-484117

२७१. श्रीमती रमाबाई जैन, शास्त्री
दिगम्बर जैन महिलाश्रम, 103 सर्राफा
सागर (म. प्र.)

२७२. श्री आर. पी. जैन
सी-73, बी. एन. डी. एस. ई-2
नई दिल्ली-110049

२७३. श्री रमेशचन्द जैन, कासलीवाल, एम. ए.
साहित्यरत्न, 24/5, पारसी मोहल्ला
इन्दौर (म. प्र.)

२७४. श्री रमेश कुमार जैन "शास्त्री"
शान्तिवीर जैन गुरुकुल, जोबनेर
जिला-जयपुर (राज.)

२७५. डॉ. रमेश कुमार जैन, डी. लिट.
जैन मंदिर के पास
बिजनौर (उ. प्र.)-246701

२७६. श्री रमेश कुमार जैन
सांख्यिकी अध्ययनशाला
उज्जैन (म. प्र.)

२७७. श्री रमेश कुमार जैन "शास्त्री"
राजकीय प्राथमिक संस्कृत विद्यालय
विराट नगर, जयपुर (राजस्थान)

२७८. श्री रमेशचन्द्र जैन
8/1133 जैन बाग सहारनपुर (उ. प्र.)

२७९. पं. रविचन्द्र जैन शास्त्री
संचालक, प्रभात बर्तन भण्डार
387, नया बाजार नं. 2
दमोह (म. प्र.)-470661

२८०. डॉ. रविन्द्र कुमार जैन, एम. ए. डी. लिट्.
13, शाकीनगर, पल्लावरम
मद्रास-600043

२८१. श्री रविकान्त जैन
17/273, काला भवन
जाटियावास, मदार गेट, अजमेर (राज.)

२८२. डॉ. (श्रीमती) राका जैन
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय
पन्ना (म. प्र.)

२८३. श्री राकेश कुमार शास्त्री
प्रिण्टिंग हाउस, गुड़गंज, इतवारी
नागपुर (महाराष्ट्र)

२८४. राकेश जैन
सिंघई क्लीनिक, बस स्टेण्ड
मु. पो. मड़ावरा
ललितपुर (उ. प्र.)

२८५. श्री राजकुमार जैन, एडवोकेट
28, गोपालगज, सागर (म. प्र.)

२८६. आचार्य राजकुमार जैन
सूरजगंज, दूसरा चौराहा
इटारसी (म. प्र.)

२८७. श्री राजकुमार जैन "अजमेरा"
द्वारा श्री अशोक कुमार 'अजमेरा'
मिकी गारमेण्ट, स्टेशन रोड़
पो. झूमरी तलैया, जिला-हजारीबाग
(बिहार)-825406

२८८. श्री राजकुमार शास्त्री
दि. जैन आ. सं. महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता
जयपुर (राजस्थान)-302003

२८९. पं. राजकुमार शास्त्री
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, शाखा बरायठा
जि. सागर (म. प्र.)

२९०. पं. राजमल जैन, बी. कॉम.
दि. जैन मंदिर, 60, ललवानी गली
सर्राफा चौक बाजार, भोपाल (म. प्र.)

२९१. डॉ. राजाराम जैन
महाजन टोली नं. 2
आरा (बिहार)

२९२. पं. राजेन्द्र कुमार जैन
जैनदर्शनाचार्य, मु. पो. सुरलाखापा
छिन्दवाड़ा (म. प्र.)

२९३. श्री राजेन्द्र कुमार जैन
श्री पा. दि. जैन सं. विद्यालय
बरूआसागर, झाँसी (उ. प्र.)

२९४. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल
कार्मिक अधिकारी
ओरिन्टियल पेपर मिल, अमलाई
शाहडोल (म. प्र.)

२९५. श्रीमती रूक्मणि जैन
शान्ति नगर, 11-6बी
रायपुर (म. प्र.)

२९६. श्री लक्ष्मण स्वरूप जैन
253-बी, गली नं. 5, भोपालनाथ नगर
शाहदारा, दिल्ली-110032

२९७. श्री लक्ष्मण प्रसाद जैन शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य, मड़ावरा
ललितपुर (उ. प्र.)

२९८. श्री लालचन्द जैन
पो. टिकैतनगर
जिला-बाराबंकी (उ. प्र.)

२९९. श्री लालचन्द जैन, राकेश
नेहरु चौक, गली नं. 4
गंजवासौदा विदिसा (म. प्र.)

३००. श्री लालचन्द जैन
प्राकृत शोध संस्थान
वैशाली (बिहार)-844128

३०१. डॉ. लक्ष्मीचन्द, वैद्याचार्य
कुलुआ, पो. कुम्हारी
जिला-दमोह (म. प्र.)

३०२. श्री विजयकुमार जैन, एम. ए.
20, इमारत श्रीमहावीरजी
जिला-करौली (राजस्थान)

३०३. श्री विजय कुमार जैन
भण्डारी जी की गली, सुभाष चौक
नरायना (जयपुर)

३०४ श्री विजय कुमार जैन
5/77, विराम खण्ड, गोमती नगर
लखनऊ (उ. प्र)-226010

३०५ श्री विजय कुमार जैन, एम. ए
वर्णी दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय
मोराजी, सागर (म. प्र)-470002

३०६ श्री विजयकुमार जैन "भारतीय"
एडवोकेट, रघुनाथगंज,
कटनी (म. प्र.)

३०७. श्री विजय कुमार जैन
द्वारा कजोड़मल जी जैन, ओसवाल
मुहल्ला, मदनगंज, किशनगढ़ (राज.)

३०८. पं. विजय कुमार शास्त्री
संघी वाड़ा म. नं. 4114
रेवाड़ी (हरियाणा)-123401

३०९. श्रीमती विजया बाई
द्वारा जयन्त स्टोर्स (दिल्ली प्रेस के सामने)
महावीर ब्रह्मचर्य आश्रम, कारंजा
जिला-अकोला (महाराष्ट्र)-444105

३१०. श्रीमती विद्यावती जैन
राजकीय शास्त्रीय संस्कृत महाविद्यालय
मु. पो. गनौड़ा
जिला-बासवाड़ा (राज.)

३११. विद्याधर उमाठे
सर्वसेवासंघ कॉलोनी
मगनबाड़ी-वर्धा-442001 (महा.)

३१२. प्रो. श्री विनयकुमार जैन
38, सरस्वती कॉलोनी
दमोह (म. प्र.)-470661

३१३. श्री विनोदकुमार जैन मोदी
मोदी मेडिकल हॉल
दलपतपुर, जिला-सागर (म. प्र.)

३१४ श्री विनोद कुमार जैन
मु. पो. रजवास (बांदरी)
जिला सागर (म. प्र.)

३१५. श्री विनोद कुमार जैन
मु. पो. साँवला, जिला-डूंगरपुर (राज.)

३१६. डॉ. (श्रीमती) विमला जैन
1/344, सुहाग नगर,
फिरोजाबाद (उ. प्र.)

३१७. श्री विमलकुमार इन्द्रमल गांधी
नीमच, मन्दसौर (म. प्र.)-458441

३१८. श्री विमलकुमार जैन
मु. पो.-बमनपुरा (पटेरा)
तहसील-हटा, जिला-दमोह (म. प्र.)

३१९. पं. विमल कुमार जैन
5/216 मालवीय नगर, जयपुर-302017

३२०. डॉ. विमल प्रकाश जैन, निदेशक
बी. एल. आई. 20 वां कि.मी
जी. टी. करनाल रोड़, दिल्ली

३२१. श्री विमल कुमार ज़ैन
दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

३२२. डॉ. विमल कुमार जैन
एल. आई. जी. 52, पदमाकर नगर
सागर (म. प्र.)-470004

३२३. श्री विमल कुमार जैन
1137, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार
जयपुर (राजस्थान)

३२४. पं. विमल कुमार जैन "सोंरया"
प्रतिष्ठाचार्य,
प्रधान सम्पादक-वीतरागवाणी
सैलसागर रोड़, टीकमगढ़ (म. प्र.)
पिन-472001

३२५. श्री विमल कुमार जैन (वाखवाले)
मु. पो. घुवारा
जिला-छतरपुर (म. प्र.)

३२६. पं. वीरचन्द जैन शास्त्री
स्व:अयोध्या प्रसाद, दि. जैन पुस्तकालय
जादों बाबू चौक, रामनगर (अंसारी) रोड़
बीट नं. 7
हजारीबाग (बिहार)-825301

३२७. वीर चन्द्र जैन "प्रधान"
मु. पो. नेकोरा, (उ. प्र.)

३२८. वीरेन्द्र कुमार जैन "वीर"
C/O भवर लाल काला बाल मन्दिर
मु. पो. सुजानगढ़ (चुरु) राज.

३२९. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, इटोरिया
स्टेशन रोड़ दमोह (म. प्र.)-470661

३३०. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, "शिक्षक"
गौरीशंकर वार्ड
हटा, दमोह (म. प्र.)

३३१. श्रीमती शरबती देवी जैन
3838, गली जैन मंदिर
पहाड़ी धीरज, दिल्ली

३३२. श्रीमती शारदा जैन
द्वारा डॉ. शीतलचन्द जैन
दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता
जयपुर (राज.)-302003

३३३. श्री शान्तिकुमार रामलाल जी लुहाड़े
एडवोकेट, 407 हीराबाग,
अशोक स्तम्भ के पास
रविवार पेठ, नासिक (महाराष्ट्र)

३३४. श्री शान्तिकुमार शास्त्री
मु. पो. द्रोणगिरी
जिला छतरपुर (म. प्र.)

३३५. श्री शान्तिलाल जैन पोसेरिया
20/3, नार्थराज मोहल्ला
इन्दौर (म. प्र.)

३३६. चौ. शिखरचन्द जैन, साहित्यरत्न
रीठी, कटनी (म. प्र.)

३३७. श्री शिखर चन्द जैन, साहित्याचार्य
460, शास्त्री वार्ड, सुभाष नगर
सागर (म. प्र.)-470002

३३८. श्री शिखरचन्द जैन
126 गांधी वार्ड
सिवनी (म. प्र.)

३३९. श्री शिखरचन्द्र जैन, सर्राफ
सर्राफा बाजार, सागर (म. प्र.)

३४०. डॉ. शिखरचन्द जैन
श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र
कुण्डलपुर, दमोह (म. प्र.)

३४१. श्री शीतलप्रसाद मित्तल
35, इमामबाड़ा
मुजफ्फरनगर (म. प्र.)

३४२. श्री शीतलचन्द जैन
35 विद्यापुरम
मकरौनिया सागर (म. प्र.)-470004

३४३. डॉ. शीतलचन्द जैन, प्राचार्य
दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता
जयपुर, (राजस्थान)-302003

३४४. पं. शीलचन्द जैन, "मोदी"
दि. जैन मंदिर के पास
नरिया, वाराणसी-221005

३४५. श्री शीतलचन्द जैन
राजकीय संस्कृत विद्यालय
विराटनगर, जयपुर (राज.)

३४६. पं. शुभचन्द जैन, न्यायतीर्थ
क्लाथ मर्चेन्ट, स्टेशन रोड़
विदिशा (म. प्र.)

३४७. श्री शोभालाल जैन वैद्य,
मु. पो. घुवारा
छतरपुर (म. प्र.)

३४८. डॉ. शोभा लाल जैन
श्री दि. जैन आ. संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता
जयपुर (राज.)-302003

३४९. डॉ. शेखरचन्द जैन
25 सिरोमणी बंगपोल,
बडोदरा प्रेस के सामने
सी. टी. एम. चार रास्ता के पास
अहमदाबाद-380026 (गुजरात)

३५०. श्रीमती शशिप्रभा जैन
प्लाट नं. 4, भोगावीर कॉलोनी
लंका-वाराणसी (उ. प्र.)

३५१. श्रीमती स्नेहलता जैन
31 राजीव सदन, नेहरू वार्ड
खुरई, जिला-सागर (म. प्र.)-470117

३५२. ब्र. संजय जैन
श्री गोपाल दि. संस्कृत महाविद्यालय
मुरैना (म. प्र.)-476001

३५३. डॉ. सत्यप्रकाश जैन
बी. 173, सूरजमल विहार
दिल्ली-110092

३५४. पं. सनत कुमार जैन
मु. पो. रजवास (बांदरी)
जिला-सागर (म. प्र.)

३५५. डॉ. सनतकुमार जैन
दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता
जयपुर (राज.)-302003

३५६. सनत कुमार जैन
जैन मन्दिर के पास
मु. पो. खिमलासा
जिला-सागर (म. प्र.)

३५७. श्री सन्तोष कुमार जैन
श्री महावीर दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय
साढूमल
जिला-ललितपुर (उ. प्र.)-284404

३५८. पं. संतोष कुमार जैन
C/O रतन चन्द्र जैन नैकोरा वाले
घसान वड़ागाँव
टीकमगढ़ (म. प्र.)

३५९. पं. सन्तोष कुमार जैन बैटरी वाले
कटरा बाजार, सागर (म. प्र.)

३६०. श्री एस. पी. देशमुख
रमन रोड़
आरा (बिहार)-802301

३६१. श्रीमती समुद्री बाई जैन
विमल वकील के सामने
असाटीवाड, दमोह (म प्र.)

३६२. श्रीमती सरला देवी जैन
पंचायती धर्मशाला गली,
जैन मंदिर के सामने
मुरैना (म. प्र.)-476001

३६३. श्रीमती सरिता जैन
श्याम वीडियो के सामने,
मित्तल का मकान,
मुरैना (म. प्र.)-476001

३६४. श्रीमती सरोज जैन
श्री हजारीमल सरावगी
पुराना जनाना अस्पताल के पास
सुजानगढ़ (चूरू)-331507

३६५ श्रीमती (डॉ) सरोज जैन
शा. कन्या महाविद्यालय वीना (म प्र)

३६६ श्री सिंघचन्द जैन शास्त्री
6-5, गली, न्यू कॉलोनी
अदमवाकम, मद्रास-800088

३६७. श्रीमती सिन्धुलता जैन
दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनिहारों का रास्ता
जयपुर (राज.)-302003

३६८ श्री पं. सुखानन्द जैन, प्रतिष्ठाचार्य
मु. बड़मारई (रोरइ का मंदिर के पास)
पो. बहादुरपुर
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

३६९. श्रीमती सुदेश जैन
बी. डी. 173/ए शालीमार बाग
दिल्ली

३७०. पं. सुरेश जैन कोठिया
एस. पी. गुरुकुल
खुरई सागर (म. प्र.)-470117

३७१. श्री सुनील कुमार जैन
122/28, सरस्वती कालोनी
दमोह (म. प्र.)-470661

३७२. डॉ. सुदर्शनलाल जैन
1, सेन्ट्रल स्कूल कालोनी
बी. एच. यू., वाराणसी-221005

३७३. श्री सुनील कुमार जैन
श्री दिगम्बर जैन विद्यालय
निवाई जिला-टोंक (राज.)

३७४. सुनील कुमार जैन
श्री दि. जैन पाठशाला दाता
वायाँ रामगढ़ जयपुर (राज.)

३७५. डॉ सुपार्श्व कुमार जैन
16, स्टाफ क्वार्टर्स, नेहरु रोड़
बड़ौत, जिला-मेरठ (उ. प्र.)

३७६. श्री सुभाषचन्द जैन
पंकज प्रकाशन मंदिर
कृष्णानगर, मथुरा (म. प्र.)

३७७. श्री सुमत प्रसाद जैन, एम. ए.
वर्द्धमान ड्रग, 1617 दरीबा कलां
दिल्ली- 110006

३७८. श्री सुमत प्रसाद जैन, सी. ए.
172, सिविल लाइन्स, जैल चौराहा
झाँसी (उ. प्र.)

३७९. ब्र. सुमतिबाई शाह "पद्मश्री"
क्षु. राजुलमति दि. जैन श्राविकाश्रम
सोलापुर (महाराष्ट्र)-413002

३८०. पं. सुमति चन्द जैन, शास्त्री
गोपाल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय
मोरेना (म. प्र.)

३८१. श्रीमती सुमनलता जैन, एम. एड.
शासकीय कन्या हाई स्कूल
शाहपुर सागर (म. प्र.)-470669

३८२. श्रीमती सुभद्रा जैन
प्रधानपुरा, गांधी रोड़, कोतवाली के पीछे
टीकमगढ़ (म. प्र.)-472001

३८३. डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन,
एल-65, न्यू इन्द्रा नगर (ए)
अहिंसा मार्ग, बुरहानपुर (म. प्र.)

३८४. पं. वैद्य सुरेन्द्रकुमार जैन, आयुर्वेदाचार्य
सुरेन्द्र सदन, गांधी मूर्ति, सिनेमा तिराहा
बड़ी बजरियां बीना
जिला-सागर (म. प्र.)-470113

३८५. श्री सुरेन्द्र कुमार जैन, व्याख्याता
बड़ा मलहरा, छतरपुर, (म. प्र.)

३८६. श्री (डॉ.) सुरेश चन्द्र जैन
वीर सेवा मंदिर, 21, दरियागंज
नई दिल्ली

३८७. पं. सुरेश चंद जैन "शास्त्री"
मु. पो. शांतिवीर नगर (श्री महावीर जी)
जिला-करौली (राज.)

३८८. श्री सुरेन्द्र चन्द्र जैन
सेवा सदन, लखनादोन, सिवनी (म. प्र.)

३८९. सुशीलचन्द्र जैन
क्लॉथ मार्केट
इन्दौर (म. प्र.)

३९०. श्री सुशील कुमार ल. उपाध्ये
बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम, कुम्भोज, बाहुबली
जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र)-410115

३९१. श्रीमती सुशीला देवी, बाकलीवाल
बी-103, यूनवर्सिटी मार्ग
बापू नगर, जयपुर (राज.)

३९२. श्री सुशील चन्द्र जैन
ज्योति वस्त्रालय, क्लाथ मार्केट
इन्दौर (म. प्र.)

३९३. श्रीमती सुषमा जैन
द्वारा डॉ. कमलेश कुमार जैन
निर्वाण भवन, बी. 2/246, लेन नं. 14
रवीन्द्रपुरी कॉलोनी
वाराणसी (उ. प्र.)-221005

३९४. श्री सुलतान सिंह जैन
वीरकुंज, रामनगर शामली (उ. प्र.)

३९५. श्रीमती (डॉ.) सूरजमुखी जैन
35, इमामबाड़ा, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

३९६. श्री सोहनपाल जैन
भीम गली, विश्वासनगर, दिल्ली

३९७. श्री श्रवण कुमार जैन
जैन मंदिर के पास, कचेरी रोड़
वण्डा (वेलई) सागर (म. प्र.)-470335

३९८. पं. श्रीराम जैन बाकलीवाल, शास्त्री
काव्यतीर्थ, 4 शिक्षक नगर, भोघट मार्ग
खण्डवा (म. प्र.)-45001

३९९. डॉ. श्रीपाल जैन, एम. बी. एस.
मु. पो. हिंगोली, परभणी (महाराष्ट्र)

४००. पं. श्रेयांस कुमार जैन, शास्त्री
जैन मंदिर के पास,
महाजनान सर्राफा बाजार, पो. किरतपुर
जिला-बिजनौर (उ. प्र.)-246731

४०१. डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
12/544 गांधी रोड़
बड़ौत (उ. प्र.)-250611

४०२. श्री डॉ. हरिशचंद्र जैन
जैन दर्शनाचार्य
श्री गोपालदास वैरया दि. जैन महाविद्यालय
मोरेना (म. प्र.)

४०३. पं. हुकमचन्द जैन
सन्मति बर्तन भंडार
बड़ा बाजार, पन्ना (म. प्र.)

४०४. डॉ. हुकमचन्द्र, 'भारिल्ल'
टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापू नगर
जयपुर-302015

४०५. श्री एच. पी. संगवे
11-अ, मॉजी सैनिक नगर
विजापुर रोड़, सोलापुर-413004

४०६. श्री हीरालाल जैन पाण्डे
हीरक, 7 लखेरपुरा
भोपाल-462001

४०७. श्री हीरालल जैन, एम. कॉम.
बी/11, विकास टावर, इन्द्रा काम्पलेक्स
इन्दौर (म. प्र.)

४०८. श्री हीरालाल जैन
स्वर्ण भवन के पीछे, सिविल वार्ड नं. 3
दमोह (म. प्र.)-470661

४०९. पं. हेम चन्द हेमं
कुन्दकुन्द छाया, एम. आई. जी. 8
90 ए, सेक्टर, सोनागिरि कॉलोनी
भोपाल (म. प्र.)-262021

४१०. डॉ. हेमन्त कुमार जैन
बी. 32/78 ए-2
नरिया, वाराणसी-221005

४११ श्री हेमचन्द्र शास्त्री 'चेतन्य'
श्री दिगम्बर जैन मंदिर कुआ वाला
जैनपुरी रेवाड़ी-हरियाणा

४१२. श्रीमती क्षमा जैन
इरीगेशन वर्कशाप के पीछे, 8/662
बजाज नगर, रीवा (म. प्र.)-486001

४१३. श्रीमती क्षमाबाई जैन
शासकीय कन्याशाला, गुरगंज
भोपाल (म. प्र.)

४१४. पं. ज्ञानचन्द जैन, आयुर्वेदाचार्य
ढाना, सागर (म. प्र.)

४१५. पं. ज्ञानप्रकाश जैन
सिद्धान्तशास्त्री
पो. विकासनगर
देहरादून (उ. प्र.)-284168

20. राजेश कुमार जैन
पुत्र/श्री जितेन्द्र कुमार जैन,
वीर पुस्तक मंदिर श्री महावीर जी,
जिला करौली (राज.)

21. किरीटी भूषण जैन
उपा. ज्ञान सागर महाराज सराकोत्थान सेन्टर,
रजिस्ट्री ओपिस के पास रघुनाथपुर,
जिला पुरूलिया (प. बंगाल)

22. पंकज कुमार जैन
अजू टेक्सटाईल्स, लाल जी साड का रास्ता,
त्रिपोलिया बाजार जयपुर (राज.)

23. मुकेश कुमार जैन 'शास्त्री'
जैन गुरुकुल बड़ा मन्दिर,
हस्तिनापुर जिला मेरठ (उ.प्र.)

24 प. रमेश चन्द जैन
मध्य प्रदेश विद्युत मण्डल के पास
बड़ामलहरा, छतरपुर (म.प्र.)

25. प शीलचन्द जैन
म.प्र. विद्युत मण्डल के पास
बड़ामलहरा, छतरपुर (म.प्र.)

26. प. वीरेन्द्र कुमार जैन साहित्याचार्य
श्री गणेश दि. जैन सं. महाविद्यालय
सागर (म.प्र.)

27 प. सनत कुमार जी शास्त्री
शान्ति नगर, बण्ड़ा
जिला सागर (म.प्र.)

28. श्रीमति वीणा जैन
भारत भवन पुराना थाना के पास,
वैशाली (बिहार)

29. पं. सनत कुमार जैन
मु. पो. सोजना
ललितपुर (उ.प्र.) - 284405

30. पं. सुरेश चन्द जैन
30, नषाद कालोनी, भोपाल (म.प्र.)

31. पं. सुरेश चन्द्र जैन
मारौन, शिवपुरी (म.प्र.)

32. पं. सुरेन्द्र कुमार सिंघई, प्रतिष्ठाचार्य
बड़ागांव (भसान)
टीकमगढ़ (म.प्र.) 472010

33. प. राजीव कुमार चौधरी
मु. पो. रीठी
जिला कटनी (म.प्र.) 483990

34. प. विजय कुमार जैन, हितकरी
मु. पो. रीठी
जिला कटनी (म प्र.) 483990

35. प. महेन्द्र कुमार जैन सिघई
91, असाटी वार्ड न. 2,
दमोह (म.प्र.) 470661

36. पं. पवन कुमार जैन
जैन मन्दिर के पास
निवार, जिला छतरपुर (म.प्र.)

37 प. कमलेश कुमार जैन 'बसन्त'
मु.पो. डिकौली
जि. टीकमगढ़ (म.प्र.) 472111

38. डा. सुन्दरलाल जैन
मु. पो. ककरवाहा
टीकमगढ़ (म.प्र.)

39. प. अभिनन्दन साधैलीय
बाजार वार्ड, पाटन
जि. जबलपुर (म.प्र.) 483113

40. जिनेन्द्र कुमार जैन 'शास्त्री'
मु.पो. भगवाँ
जिला - छतरपुर (म.प्र.)

विद्वत् परिषद् के नए स्थायी सदस्य

1. सुरेन्द्र कुमार जैन
5 मैडानम टावर 16/1, साउथ तुकोगंज
(समवसरण जैन मन्दिर के पीछे)
इन्दौर (म.प्र.)

2. सुरेशचन्द जैन, प्रतिष्ठाचार्य
असाटी वार्ड नं. 2, दमोह (म.प्र.)

3. डॉ. सीमा जैन
390, खोवामण्डी,
जबलपुर (म.प्र.)

4. पं. राकेश कुमार जैन शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य
नयी आवारी गली नं.1,
भिण्ड (म.प्र.)

5. प. महेन्द्रकुमार जैन शास्त्री
शान्तिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र,
सिंहोनिया, जिला, मुरैना (म.प्र.)

6. प्रकाशचन्द जैन
1/344 सुहागनगर, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

7. पवनकुमार जैन
मु.पो. पारौन, जिला - ललितपुर (उ.प्र.)

8. पं. ऋषभकुमार शास्त्री
माता मढ़िया के नीचे,
मोती नगर वार्ड, सागर (म.प्र.)

9. आराधना जैन, स्वतन्त्र
मीलरोड़, गंजवासौदा (विदिशा) म.प्र.

10. सुरेन्द्र कुमार जैन शास्त्री
जैन दर्शनाचार्य, स्याद्वाद महाविद्यालय मदैनी,
वाराणसी

11. संजीवकुमार जैन शास्त्री
135 लक्ष्मीपुरा, ललितपुर (उ.प्र.)

12. ऋषभकुमार जैन शास्त्री
मोहारी, वाया खतियाधानो,
जिला - शिवपुरी (म.प्र.)

13. रवीन्द्र कुमार जैन, पितृछाया
समीदालगिर कम्पाउण्ड,
पुरानी हवेली के सामने,
टीकमगढ़ (म.प्र)

14. श्रीमति कान्ति जैन
डॉ अभयप्रकाश जैन,
एन-14, चेतकपुरी,
ग्वालियर (म.प्र.)

15. डॉ. पुष्पाराज जैन
चौक बाजार, ग्वालियर-3

16. प्रकाशचन्द जैन, एडवोकेट
शिन्देकी छावनी, ग्वालियर (म.प्र.)

17. श्रीमति सेना जैन
श्री यशवन्तकुमार शास्त्री,
जैन हायर सेकेण्डरी स्कूल, दमोह

18. डॉ. महेशचन्द्र जैन, प्रोफेसर
आर.के.पी.जी. कॉलेज, बलभद्र
मन्दिर के सामने, बुढ़ाना रोड़,
शामली, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

19. डॉ हुकमचन्द्र जैन
बी.क्यू./161ए, शालीमार बाग,
दिल्ली - 110052

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर
जैन विद्वत्परिषद्
स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह
15-17 जून 2001

विद्वत्परिषद् कार्यकारिणी के पदाधिकारी एवं सदस्यगण

प्रथम पंक्ति : डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, पं. गुलाबचन्द पुष्प, डॉ. शीतल चन्द जैन, डॉ. रमेश चन्द जैन, डॉ. सुरेश चन्द जैन, डॉ. नेमी चन्द जैन, डॉ. लाल चन्द जैन, डॉ. कपूर चन्द जैन, डॉ. अरुण कुमार जैन

द्वितीय पंक्ति : डॉ. प्रेमचन्द रावका, डॉ. हुकुम चन्द संगवे, डॉ. सुरेन्द्र कुमार भारती, डॉ. विजयकुमार जैन

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव (खेकड़ा) में विद्वत्परिषद् के 21वें साधारण सभा अधिवेशन के अवसर पर पू. उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में उपस्थित 155 विद्वानों का समूह।

अधिवेशन के अवसर पर गुरूवन्दना प्रस्तुत करती हुई
विदुषी ब्र. अनीता दीदी एवं ब्र. मंजुला दीदी।

विद्वत्परिषद् के 21वें साधारण सभा के अधिवेशन के मुख्यअतिथि श्रेष्ठी श्री योगेश कुमार जैन खतौली साथ में अध्यक्ष डॉ. रमेश चन्द्र जैन एवं समारोह के विशिष्ट अतिथि कामरेड श्री कपूरचन्द जैन घुवारा।

21वें साधारणसभा के अधिवेशन के अवसर पर परिषद् का विवरण प्रस्तुत करते हुए
श्री डॉ. शीतल चन्द्र जैन

अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत करते हुए डॉ. रमेशचन्द जैन

विद्वत्परिषद् के सदस्यगण एवं अन्य भक्तजन

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् स्वर्णजयन्ती वर्ष समापन समारोह एवं "20वीं शताब्दी की दिगम्बर जैन विद्वत्परम्परा का अवदान" विषय पर राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी का विवरण

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् स्वर्ण जयन्ती वर्ष समापन समारोह के अन्तर्गत विद्वत्परिषद् का 21वाँ साधारण सभा का अधिवेशन एवं "20वीं शताब्दी की दिगम्बर जैन विद्वत्परम्परा का अवदान" विषय पर समारोह आयोजित 15-17 जून 2001 तक सराकोद्धारक परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज, पूज्य 108 श्री मुनि वैराग्यसागर जी महाराज एवं पूज्य 105 क्षुल्लक सम्यक्त्वसागर जी महाराज ससंघ और आदरणीया विदुषी ब्र. अनिता दीदी एवं विदुषी ब्र. मंजुला दीदी के सान्निध्य मे श्री दि. जैन प्राचीन पार्श्वनाथ अतिशयक्षेत्र बड़ागाँव (खेकड़ा) बागपत (उ.प्र.) में अपार जनसमूह की उपस्थिति मे सम्पन्न हुआ।

उक्त तीन दिवसों में 15 जून 2001 को प्रात: 8 बजे ध्वजारोहण के साथ कार्य प्रारम्भ हुआ। ध्वजारोहण क्षेत्र कमेटी के मत्री श्री सुभाषचन्द जी जैन ने किया तदुपरान्त प्रथम सत्र **"20वीं शताब्दी की दिगम्बर जैन विद्वत परम्परा का अवदान"** विषय पर पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सानिध्य एव डॉ. भागचन्द जी 'भास्कर' की अध्यक्षता में पं. लालचन्द 'राकेश' गंजबासौदा के मंगलाचरण के साथ सगोष्ठी प्रारम्भ हुई। संगोष्ठी का मंगलकलशस्थापन क्षेत्र कमेटी के निर्माणमन्त्री पदमसैन जैन के किया एवं दीप प्रज्जवलन ब्र. पं. रतनलाल जी जैन (इन्दौर) ने किया।

इस सत्र में डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत), डॉ. फूलचन्द्र 'प्रेमी' (वाराणसी), डॉ. नेमीचद जैन प्राचार्य (खुरई) एवं पं. निर्मल कुमार जी 'सतना' ने महत्त्वपूर्ण पत्रवाचन किये। इस सत्र के अध्यक्ष डॉ. भागचन्द जी 'भास्कर' ने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि 20वीं शताब्दी की जैन विद्वत् परम्परा में एक लेखन काल, दूसरा परिशीलनकाल तथा तीसरा पिष्टपेषण काल चला। श्रद्धा और ज्ञान के क्षेत्र में नई पीढ़ी के विद्वानों की अपेक्षा न करके उन्हें कुछ देना है। पूज्य उपाध्याय श्री ने ज्ञान चेतना का अलख जगाया है। उन्होंने उपाध्याय श्री से निवेदन किया कि पंचकल्याणक हो किन्तु 10 प्रतिशत व्यय साहित्य सृजन एवं विद्यार्थियों के अध्ययन अध्यापन हेतु प्रयोग हो, ऐसी व्यवस्था में उपाध्याय श्री का आशीर्वाद एवं प्रेरणा प्राप्त हो।

पूज्य उपाध्याय श्री ने प्रथम सत्र के पत्रवाचकों के आलेखों की गहन एवं महत्त्वपूर्ण समीक्षा करते हुए कहा कि 20वीं सदी में विद्वानों ने अनेक कष्टों के बीच कार्य किया है। पं. पन्नालालजी 'साहित्याचार्य' पं. कैलाशचन्द 'सिद्धान्तशास्त्री', जगमोहनलाल जी, दरबारीलाल कोठिया, फूलचन्द शास्त्री, बालचन्द शास्त्री आदि ने साहित्यसृजन समर्पण भाव से किया है। उन्होंने समाज के मान सम्मान की परवाह नहीं की, उसी

प्रकार पं. मक्खनलालजी, पं. महेन्द्रकुमार जी, न्यायाचार्य पं. बाबूलाल जमादार आदि विद्वानों ने भी कार्य किये हैं। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणदिवस के प्रसंग में तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ था उसी प्रकार भगवान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक महोत्सव पर भी भगवान महावीर और उनकी 20वीं शताब्दी की विद्वत्परम्परा पर ग्रंथ प्रकाशित होना चाहिए। इस सत्र का सफल संचालन विद्वत्परिषद् के मंत्री डॉ. शीतल चन्द जैन जयपुर ने किया।

15 जून, 2001 दोहपर 1 बजे से संगोष्ठी का द्वितीय सत्र पूज्य उपाध्याय श्री के सान्निध्य एवं ब्र. पं. रतनलाल जी शास्त्री इन्दौर की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ।

इसमें निम्नलिखित माननीय विद्वानों ने आलेख प्रस्तुत किये –

(1) डॉ. भागचन्द जी 'भास्कर', नागपुर (2) डॉ. ऋषभचन्द जैन 'फौजदार', वैशाली (3) डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, सनावद (4) पं. शीतल जन्द जैन सागर, (5) श्रीमती सुमनलता जैन, शाहपुर (6) डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर (7) डॉ. पुष्पराज जैन, ग्वालियर (8) डॉ. कस्तूर चन्द 'सुमन', महावीर जी (9) श्री पदमचन्द शास्त्री, पानीपत (10) पं. विजयकुमार जी 'शास्त्री', श्री महावीरजी।

इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे ब्रं. पं. रतन लाल जी शासत्री ने कहा कि पूज्य उपाध्याय श्री की प्रेरणा से 20वीं शताब्दी के विद्वानों के अवदान को स्मरण कर विद्वत्परिषद् ने सराहनीय एवं प्रशंसनीय कार्य किया है विद्वानों ने जो आलेख प्रस्तुत किये वे शोधपूर्ण थे इन आलेखों के छपने से नई पीढ़ी के विद्वानों को लेखन की प्रेरणा मिलेगी।

पूज्य उपाध्याय श्री ने आलेखों की समीक्षा करते हुए कहा कि पं. परमानंद जी शास्त्री, जगदीश चन्द जी शास्त्री, मुन्नालाल जी समगौरया, पं. गोरेलाल जी शास्त्री आदि विद्वानों का साहित्यिक एवं सामाजिक अवदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। विद्वानों के परिश्रम को देखते हुए समाज को विद्वानों का अधिक से अधिक सत्कार करना चाहिए। समाज को चाहिए कि विद्वानों की कोई भी कृति अप्रकाशित न रह जाए। इस सत्र का सफल सचांलन विद्वत्परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ. फूलचन्द 'प्रेमी' वाराणसी ने किया।

15 जून, 2001 रात्रि 8 बजे संगोष्ठी का तृतीय सत्र प्रारम्भ हुआ। इसकी अध्यक्षता पं. सुमति चन्द 'शास्त्री' मुरैना ने की। इस सत्र में निम्नलिखित विद्वानों ने आलेख प्रस्तुत किये।

(1) पं. गजेन्द्र जैन, फर्रुखनगर (2) पं. पूर्णचन्द सुमन, दुर्ग (3) पं. निर्मल कुमार 'सत्यार्थी', जयपुर (4) श्रीमती प्रभा जैन (5) श्रेयांस कुमार शास्त्री, किरतपुर (6) प्रेमचन्द जी दिवाकर, डिमापुर (7) डॉ. कैलाशकमल ग्वालियर (8) पं. सरमनलाल दिवाकर हस्तिनापुर (9) पं. भागचन्द इन्दु, गुलगंज (10) डॉ. विमला जैन, फिरोजाबाद (11) डॉ. बारेलाल जैन, रीवा (12) पं. दयाचन्द शास्त्री, सतना (13) पं. कैलाश चन्द, मलैया (14) पं. छोटेलाल जी जैन, झांसी (15) पं. मुकेश कुमार जैन, जयपुर।

इस सत्र के अध्यक्ष पं. सुमति चन्द शास्त्री ने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि 20वीं शताब्दी के विद्वानों पर संगोष्ठी करके विद्वत्परिषद् के मंत्री डॉ. शीतलचन्द जैन ने सराहनीय कार्य किया है। आपके नेतृत्व में विद्वत्परिषद् का संगठन मजबूत हुआ है और परिषद् में चेतना आई है।

16 जून, 2001 को प्रात: 8 बजे पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में संगोष्ठी का चतुर्थ सत्र प्रारम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता पं. गुलाब चन्द जी आदित्य, भोपाल ने की। इस सत्र में निम्नलिखित विद्वानों ने आलेख प्रस्तुत किये।

(1) पं. लालचन्द जी जैन राकेश, गंजबासौदा (2) डॉ. विमल कुमार जैन, जयपुर (3) पं. सनतकुमार जैन खिमलासा (4) पं. माणिकचन्द जैन बांसा, तारखेड़ा (5) श्रीमती सरोज जैन, बीना (6) पं. जयोति बाबू जैन, जयपुर (7) पं. सनतकुमार जैन, जयपुर (8) श्री सुरेश चन्द जैन, मारौरा (9) पं. राजकुमार शास्त्री, जयपुर (10) पं. हेमचन्द जैन, रेवाड़ी (11) प्रो. के. के. जैन, बीना।

सत्र की अध्यक्षता कर रहे पं. आदित्यजी ने उद्‌बोधन में कहा कि विद्वत्परिषद् के स्वर्णजयन्ती समापन समारोह के अवसर पर 56 वर्ष के इतिहास में इस संगोष्ठी का आयोजन महत्त्वपूर्ण कार्य है वस्तुत: इस संगोष्ठी से विस्मृत विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। इस संगोष्ठी में अनेक विद्वानों पर महत्त्वपूर्ण आलेख प्रस्तुत हुए हैं। इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि का श्रेय पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज को है।

16 जून, 2001 रात्रि 8 बजे पं. निहालचन्द जी प्राचार्य, बीना की अध्यक्षता में निम्नलिखित विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण आलेख प्रस्तुत किये। (1) श्रीमती डॉ. ज्योतिजैन, खतौली, (2) डॉ. शिवदर्शन तिवारी, दमोह (3) कु. समता जैन, शिवपुरी (4) डॉ. जी.पी. स्वर्णकार (5) डॉ. लालचन्द जैन, वैशाली (9) डॉ. विजय कुमार, लखनऊ (10) पं. हरिश्चन्द जैन, मुरैना (11) पं. रतनचन्द जी, रहली (12) डॉ. सुरजमुखी जैन (13) पं. शीतलप्रसाद जैन, मुज्जफरनगर।

इस अवसर पर अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्राचार्य निहालचन्द जी ने उक्त विद्वानों द्वारा पठित आलेखो की समीक्षा करते हुए 20वीं शताब्दी के विद्वानों की अवदान की महत्त्वपूर्ण चर्चा की और विद्वानों के आलेखों की सराहना भी की। इस सत्र का सफल संचालन डॉ. सनत कुमार जैन जयपुर ने किया।

साधारण सभा का अधिवेशन

16 जून, 2001 दोपहर 1 बजे पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य एवं डॉ. रमेशचन्द जैन बिजनौर की अध्यक्षता में एवं 155 विद्वानों की उपस्थिति में विद्वत्परिषद् का 21वाँ साधारण सभा का अधिवेशन आयोजित हुआ। मंगलाचरण पं. ज्योतिबाबू जैन एवं गुरुवंदना आदरणीया विदुषी ब्र. अनिता दीदी एवं मंजुला दीदी ने की। समारोह के मुख्य अतिथि श्रेष्ठी श्री योगेश जैन, खतौली, अध्यक्ष प्राच्य श्रमण भारती एवं विशिष्ट अतिथि राकेश जैन खतौली थे।

समारोह के प्रारम्भ मे विद्वत्परिषद् की साधारण सभा का गतकार्यवाही विवरण एवं प्रगति रिपोर्ट मत्री डॉ. शीतल चन्द जैन ने पढ़कर सुनाई जिसकी अनुमोदना उपस्थित सभी सदस्यों ने की। डॉ. नेमी चन्द जैन उपमंत्री ने परिषद् के साहित्य प्रकाशन की गतिविधियों पर प्रकाश डाला। परिषद् के उपाध्यक्ष डॉ. सुरेशचन्द जैन ने परिषद् की भावी योजनाओं को प्रस्तुत किया। परिषद् के संयुक्त मंत्री डॉ. फूलचन्द प्रेमी ने अधिकांश विद्वानों की विद्याजननी स्याद्वाद महाविद्यालय की प्रगति को अवगत कराया और आर्थिक सुदृढ़ता के लिए विद्वानों से आर्थिक सहयोग देने की अपील की।

महाविद्यालय के आर्थिक सहयोग हेतु डॉ. सुरेश चन्द जैन डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, डॉ. शीतलचन्द जैन आदि विद्वानों ने विचारव्यक्त किये जिसके फलस्वरूप 60 से अधिक विद्वानों ने प्रति विद्वान 1100 रु. राशि देने के वचन दिये। यह स्वर्णजयन्ती समापन समारोह की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही।

इस अवसर पर निम्नलिखित विद्वानों ने विद्वत्परिषद् के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये (1) श्री वीरेन्द्र कुमार वीर, सुजानगढ़ (2) सुनीलकुमार, द्रोणगिरि (3) शान्तिकुमार, बड़ामलहरा (4) प्रो. विमल कुमार जी, सागर (5) डॉ. विजयकुमार मुजफ्फरनगर (6) पं. जयकुमार, दुर्ग (7) प्रद्युम्न कुमार शास्त्री, जयपुर (8) डॉ. जी.सी. शास्त्री, नरायणपुर (9) डॉ. प्रेमचन्द जी 'नगला', चंडीगढ़ (10) सुनील कुमार शास्त्री, निवाई (11) डॉ. भागचन्द जैन, भास्कर (12) अनन्दी लाल शास्त्री (13) पं. रविकान्त शास्त्री (14) सरमन लाल दिवाकर (15) श्रवण कुमार जैन शास्त्री (16) श्री हुकुमचन्द संगवे (17) डा. ऋषभकुमार फौजदार (18) मनीष कुमार शास्त्री (19) पकज कुमार शास्त्री (20) पं. राकेश कुमार शास्त्री (21) पं. जयन्तकुमार शास्त्री (22) पं. दयाचन्द शास्त्री, सतना (23) कोमलचन्द जैन शास्त्री 'फागी' (24) संजयकुमार शास्त्री आदि विद्वानों ने विद्वानों के उन्नयन, अधिवेशन में विद्वानों की दैनिक चर्या के सम्बन्ध में, प्रशिक्षण शिविर लगाना, नैतिक शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करना, विद्वानों का परिचय ग्रन्थ छापना, शिक्षण संस्थाओं की दशा सुधारने के संबंध में, अंग्रेजी भाषा में साहित्य का प्रकाशन आदि सुझाव विद्वानों ने प्रस्तुत किये। अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए डॉ. रमेश चंद जैन ने लगभग 20 मिनिट के लिखित भाषण में विद्वानों के उन्नयन, विद्वत्परिषद् का इतिहास एवं विद्वत्परिषद् द्वारा किये गये कार्यो को रेखाकिंत करते हुए समाज को कुछ बिन्दुओ द्वारा मार्गदर्शन दिया।

इस अवसर पर पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने मंगल आशीर्वाद मे विद्वानों की शीर्षस्थ संस्था विद्वत्परिषद् के विद्वानों की साहित्यसपर्या की चर्चा करते हुए परिषद् के विस्तार की चर्चा की और उन्होंने कहा कि विद्वानों के इस विशाल समूह को देखकर हमारा हृदय प्रफुल्लित हो जाता हैं आज भी समाज में विद्वानों की कमी महसूस की जा रही है। उस दिशा में सांगानेर छात्रावास द्वारा विद्वानों के निर्माण की सराहना की। विद्वानों को साहित्य संरचना के प्रति प्रेरणा देते हुए कहा कि प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद अधिकाधिक होना चाहिए। जैनसाहित्य का प्रचार-प्रसार विदेशों में भी विद्वानों द्वारा किया जाना चाहिए। अंत में विषय समिति द्वारा पारित एवं कार्यकारिणी द्वारा अनुमोदित निम्नलिंखित प्रस्ताव पारित हुए। जिसका संक्षिप्त विवरण अग्रिम पृष्ठों पर दिया जा रहा है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी समिति की बैठक

दिनांक 16-6-2001 शनिवार को रात्रि 9.00 बजे से अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी समिति की बैठक श्री पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव (खेकड़ा) बागपत (उत्तर प्रदेश) में आयोजित हुई, जिसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित हुए -

1. डॉ. लालचन्द जैन
2. डॉ. हुकुमचन्द पार्श्वनाथ संगवे
3. डॉ. कपूरचन्द जैन
4. डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'
5. डॉ. जयकुमार जैन
6. पं. अरुण कुमार जैन
7. डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन
8. डॉ. विजय कुमार जैन
9. डॉ. सुरेश चन्द जैन
10. डॉ. भागचन्द 'भास्कर'
11. डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'
12. डॉ. रमेश चन्द जैन
13. डॉ. प्रेमचन्द रावका
14. डॉ. शीतल चन्द जैन
15. पं. गुलाब चन्द 'पुष्प'
16. डॉ. नेमीचन्द जैन

सर्वप्रथम डॉ. फूलचन्द जी 'प्रेमी' द्वारा मंचलाचरण किया गया अनन्तर मंत्री (डॉ. शीतल चन्द जैन) द्वारा गत बैठक की रिपोर्ट पढ़कर सुनायी गयी जिसे सर्वसम्मति से अध्यक्ष महोदय द्वारा पास किया गया। तदनन्तर प्रातः 8.30 बजे विषय प्रवर्तन समिति द्वारा पारित निम्नलिखित प्रस्तावों की पुष्टि की गयी -

प्रस्ताव - 1

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् यह प्रस्ताव करती है कि तीर्थंकर भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक वर्ष पर बीसवीं शताब्दी की दिगम्बर जैन विद्वत् परम्परा का अवदान विषयक ग्रन्थ प्रकाशित करें ताकि दिगम्बर परम्परा के विद्वानों की जैन संस्कृति, साहित्य एवं समाज का प्रदत्त योगदान प्रकाश में आ सके।

प्रस्तावक - डॉ. फूलचन्द्र 'प्रेमी', वाराणसी।
समर्थक - डॉ. शीतल चन्द जैन, जयपुर।

प्रस्ताव - 2

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् यह प्रस्ताव करती है कि म.प्र. सरकार द्वारा जैन समाज को अल्पसंख्यक कोटि में रखे जाने की सराहना करती है तथा इसके लिए म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

जैन समाज अपनी विशिष्ट विचारधारा एवं धर्म के कारण संविधान प्रदत्त अल्पसंख्यकों के अधिकार पाने के लिए पूरी तरह पात्र है। अत: अन्य प्रान्तीय सरकारों को भी म.प्र. सरकार का अनुकरण होते हुए जैन समाज को अल्पसंख्यक मान्यता प्रदान करनी चाहिए।

प्रस्तावक - डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, सनावद (म.प्र.)।
समर्थक - डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' बुरहानपुर।

प्रस्ताव - 3

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् प्रस्ताव करती है कि वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में जैन समाज द्वारा संचालित संस्थाओं में नियुक्त जैन विद्वानों का वेतन कम से कम 5000/- मासिक निर्धारित किया जाये।

प्रस्तावक - पं. कोमलचंद शास्त्री, लोहारिया
समर्थक - पं. विनोद कुमार, साबला - डूंगरपुर
पं. अनन्दीलाल शास्त्री, बांसवाड़ा

प्रस्ताव - 4

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् प्रस्ताव करती है कि जैन साहित्य और संस्कृति के प्रचार प्रसार की दृष्टि से प्रतिवर्ष तीर्थंकर भ. महावीर स्वामी का ज्ञान कल्याणक विशेष उत्साह के साथ मनाया जाये इसके लिए-

(1) भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व के प्रति संस्कृत, प्राकृत विषय के अध्येता छात्रों को प्रेरित किया जाये।

प्रस्तावक - डॉ. भागचन्द 'भास्कर' नागपुर।
समर्थक - डॉ. सनतकुमार जैन, जयपुर।

प्रस्ताव - 5

अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् यह प्रस्ताव करती है कि केशू भाई पटेल (मुख्यमंत्री गुजरात) की पहल पर गुजराज सरकार ने भगवान महावीर 2600 वीं जन्म जयन्ती समारोह के अवसर पर सभी सरकारी अतिथिगृहों में मांस की आपूर्ति पर पूर्ण प्रतिबन्ध की घोषणा की है और इसका पालन त्वरित प्रभाव से लागू कर दिया गया है। विद्वत् परिषद् की यह सभा उनके एवं गुजरात सरकार के इस पावन कार्य की

प्रशंसा करती है तथा अन्य प्रदेशों की सरकारों से माँग करती है कि वह भी इस अनुकरणीय कार्य को लागू करे।

प्रस्तावक - डॉ. प्रेमचन्द जैन, चण्डीगढ़
समर्थक - डॉ. जयकुमार जेन, मुजफ्फरनगर

प्रस्ताव - 6

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् प्रस्ताव करती है कि विद्वत् परिषद् के कार्य क्षेत्र में वृद्धि, संचालन हेतु सुविधा एवं समाज सेवा के कार्यो में वृद्धि हेतु प्रान्तीय संयोजक नियुक्त किए जायें। इसको क्रियान्वित करने के लिए निम्नलिखित प्रान्तीय सयोजक बनाये जाने का प्रस्ताव करती है -

मध्यप्रदेश - डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, सनावद
राजस्थान - डॉ. प्रेमचन्द्र रावंका, जयपुर
महाराष्ट्र - श्री हुकुम चन्द संगवे, सोलापुर
बिहार - डॉ. लालचन्द जैन, वैशाली
उत्तरप्रदेश - डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन, बड़ौत
छत्तीसगढ़ - डॉ. गुलाबचन्द जैन, नारायणपुर, बस्तर
तमिलनाडु - पं. सिंह चन्द्र शास्त्री, चेन्नई
झारखण्ड - ब्र. राजेन्द्र जैन
दिल्ली - डॉ. सुरेश चन्द जैन
हरियाणा - पं. पदमचन्द शास्त्री, पानीपत
असम - पं. नरेन्द्र कुमार जैन, गौहाटी

प्रस्तावक - पं. हुकुमचन्द पार्श्वनाथ संगवे
समर्थक - पं. नेमीचन्द जैन, खुरई

प्रस्ताव - 7

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् यह प्रस्ताव करती है कि आगामी चातुर्मास काल में 'षट्खण्डागम' पर केन्द्रित एक संगोष्ठि आयोजित की जाये जिसका संयोजक डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत एवं डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर को बनाया जाये।

प्रस्तावक - डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ
समर्थक - डॉ. अशोक कुमार जैन, लाडनूं।

प्रस्ताव - 8

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् प्रस्ताव करती है कि कानजी पंथ को एकान्तवाद पोषक एवं मूल दिगम्बर आम्नाय के विपरीत आचरण वाला मानती है। इसके समर्थक जहां-तहां आगम परम्परा विरोधी मन्दिरों एवं अन्य आयतनों का निर्माण कर रहे हैं। दिनांक 6 दिसम्बर सन् 2000 को त्रयोदश अपर जिला

जज मेरठ ने अपने निर्णय में कानजी स्वामी के अनुयायियों को जैन धर्म से अलग स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में समाज को एकान्तवादी कानजी पंथ और उसकी समर्थक संस्थाओं से सावधान होकर जैन धर्म की प्रभावना करना चाहिए।

प्रस्तावक - डॉ. सुरेश चन्द जैन, दिल्ली
समर्थक - डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत

प्रस्ताव - 9

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् की यह सभा "बीसवीं शताब्दी की जैन विद्वत्परम्परा के अवदान" विषय पर गहन विचार हेतु आयोजित संगोष्ठी एवं विद्वत् परिषद् के साधारण सभा अधिवेशन में सत्प्रेरणा एवं मंलगमय सान्निध्य प्रदान करने हेतु सराकोद्धारक पर प. पू. उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं पूज्य मुनि श्री वैराग्य सागर जी महाराज क्षु. सम्यक्त्व सागर जी एवं क्षेत्रस्थ अन्य मनस्वीगणों के प्रति विद्वत समाज तथा श्रुताराधकों के प्रति अपूर्व वात्सल्य भाव के लिए उनके पावन चरणारविन्द में सश्रद्ध विनत हो सादर कृतज्ञता अभिव्यक्त करती है।

परिषद् की यह सभा देशव्यापी विशाल विद्वत अधिवेशन में सर्वविध सौविध्य प्रदान करके पूरे भारत से समागत विद्वानों की आतिथ्य व्यवस्था एवं सत्कार के लिए श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र, बड़ागाँव, कमेटी के पदाधिकारियों एवं सदस्यों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता एव आभार अभिव्यक्त करती है। कमेटी के पदाधिकारियों ने अधिवेशन की सांगोपांग सफलता में हर प्रकार से जो सहयोग/साहाय्य प्रदान किये, वह क्षेत्र के अधिकारियों की देव, शास्त्र, गुरु एवं संपोषक प्रचारक जिनवाणी सेवियो के प्रति विनयभाव का परिचायक है। श्री मुकेशकुमार जैन ने विद्वत्सत्कार में विशेष उत्साह दिखाया है। अतः वे साधुवाद के पात्र हैं।

प्रस्तावक - डॉ. शीतलचन्द जैन (मंत्री)
समर्थक - समस्त सदस्य

प्रस्ताव - 10 शोक प्रस्ताव

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् निम्नलिखित विद्वान सदस्यों एवं समाज सेवियों के असामयिक निधन पर हार्दिक शोक (दु:ख) व्यक्त करती हुई शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करती है -

1. पं. डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर
2. पं. जम्बू प्रसाद शास्त्री, मड़ावरा
3. पं. कैलाश चन्द सोंरया, मड़ावरा
4. पं. बाबूलाल 'अनुज' बण्डा
5. प्रो. प्रवीण चन्द जैन, जयपुर

6. पं. कैलाश चन्द शास्त्री, जयपुर
7. श्री कस्तूर चन्द, बकस्वाहा (सागर)
8. सिं. आनन्द कुमार 'आनंद', सिद्धक्षेत्र बड़ागाँव-धसान (टीकमगढ़)
9. श्री एस.के. जैन, नई दिल्ली
10. श्रीमती नंदिता जज, नई दिल्ली

प्रस्तावक एवं समर्थक-समस्त सदस्य, अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद्

सर्वसम्मति से तय किया गया कि वर्तमान कार्यकारिणी का अभी बहुत समय (लगभग 5 माह) शेष है। अतः चुनाव अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जा रही है।

संविधान संशोधन समिति की ओर से सभी संस्तुतियां प्राप्त नही हुई हैं। अतः भविष्य में संस्तुतियां आने पर ही विचार किया जायेगा।

नयी कार्यकारिणी के गठन हेतु चुनाव सम्बन्धी निर्णय अगली बैठक में किया जाये।

दिनांक 16/6/2001 को प्रातः 8.30 बजे विषय प्रवर्तन समिति में पारित एवं प्रबन्धकारिणी समिति में अनुमोदित उक्त सभी प्रस्ताव साधारण सभा के अधिवेशन में स्वीकृत किये गये।

विद्वत् परिषद् के निम्नलिखित माननीय सदस्यों ने उपस्थित होकर अधिवेशन को गरिमा प्रदान की।

माननीय विद्वान का नाम और स्थान

1. डॉ भागचन्द जैन 'भास्कर', नागपुर
2. डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी', वाराणसी
3. पं. अरविन्द कुमार शास्त्री, दुर्ग
4. पं. श्रेयांस कुमार जैन शास्त्री, किरतपुर
5. पं. बाबू लाल जैन फणीश, शास्त्री, ऊन
6. पं. लाल चन्द्र जैन 'राकेश', गंजबासौदा
7. पं. छोटे लाल जैन, झाँसी
8. पं. गजेन्द्र जैन, फर्रुखनगर
9. पं. जयकुमार जैन, दुर्ग
10. पं. पूर्णचन्द 'सुमन', दुर्ग
11. पं. विजयकुमार जैन शास्त्री, सागर
12. पं. विजयकुमार जैन, किशनगढ़
13. पं. कोमल चन्द शास्त्री, फागी-जयपुर
14. प्रो. हीरालाल पाँडे, भोपाल
15. डॉ. कमलेश कुमार जैन, दिल्ली
16. पं. प्रेमचन्द जैन 'दिवाकर', डीमापुर
17. पं. सनत कुमार जैन 'विशारद', खिमलासा
18. पं. श्रवण कुमार जैन, बण्डा (सागर)
19. पं. मुकेश कुमार जैन, जबलपुर
20. डॉ. जी.सी. जैन, नारायनपुर छत्तीसगढ़
21. पं. विजय कुमार जैन, नरायना (जयपुर)
22. डॉ. अशोक कुमार जैन, लाडनू (राज.)
23. पं. विनोद कुमार जैन, साबला - डूंगरपुर
24. पं. मनीष कुमार जैन, शास्त्री, बण्डा
25. पं. दयाचन्द जैन, शास्त्री, सतना (म.प्र.)
26. पं. सुरेश चन्द जैन, प्रतिष्ठाचार्य, दमोह
27. पं. हेमचन्द जैन, शास्त्री, रेवाडी (हरियाणा)
28. पं. यशवन्त कुमार शास्त्री, दमोह
29. पं. भागचन्द जैन, 'इन्दु' गुलगंज
30. पं. वीरेन्द्र कुमार शास्त्री, सुजानगढ़
31. पं. सरमनलाल जैन, 'दिवाकर', हस्तिनापुर
32. डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर

33. पं. प्रद्युम्न कुमार शास्त्री, जयपुर
34. पं. पदमचन्द जैन शास्त्री, पानीपत
35. पं. रविकान्त जैन, अजमेर
36. पं. निर्मल कुमार शास्त्री, जयपुर
37. डॉ. लाल चन्द जैन, वैशाली
38. श्री पन्नालाल जैन, हरदा
39. डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन, वैशाली
40. डॉ. कैलाश कमल जैन, ग्वालियर
41. पं. जयन्त कुमार जैन, सीकर (राज.)
42. पं. महेन्द्र कुमार जैन शास्त्री, मुरैना
43. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन भारती, सनावद
44. डॉ. बारेलाल जैन, रीवा (म.प्र.)
45. पं. कमलेश कुमार जैन 'बसन्त', बड़ागाँव
46. डॉ. नेमीचन्द जैन, प्राचार्य, खुरई
47. डॉ. विमल कुमार जैन, सागर
48. पं. शीतल चन्द जैन, सागर
49. पं. सुनील 'सुधाकर' शास्त्री, द्रोणगिर
50. डॉ. जय कुमार जैन, मुजफ्फरनगर
51. प. सुनील कुमार जैन शास्त्री, निवाई (टोंक)
52. पं. खुशाल चन्द जैन विशारद, रजाखेड़ी
53. प. कोमल चन्द जैन शास्त्री, लुहारिया
54. डॉ. हुकुमचन्द पा. संगवे, सोलापुर
55. प. कैलाशचन्द जैन, दिल्ली
56. प. वीरचन्द जैन, नैकोरा ललितपुर
57. प. अनिल जैन 'सौम्य' जयपुर (राज.)
58. डॉ. प्रेमचन्द जैन, चंड़ीगढ
59. पं. अजित कुमार शास्त्री, दिल्ली
60. पं. शिखरचन्द जैन, साहित्यरत्न, रीठी
61. प. नेरन्द्र कुमार जैन, रीठी
62. पं. प्रकाश चन्द जैन, ग्वालियर
63. डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर
64. डॉ. जयन्ती जैन, सागर
65. श्रीमती आशा जैन, चंडीगढ़
66. ब्र. डॉ. उषा जैन, पावागिरि (म.प्र.)
67. पं. पंकज कुमार, शास्त्री, ललितपुर
68. पं. नेमी चन्द जैन 'आचार्य', नौगाँव
69. प. धर्मचन्द्र जैन शास्त्री, उज्जैन
70. पं. कपूर चन्द बरैया, लश्कर
71. पं. शिखर चन्द जैन, सागर
72. पं. खेमचन्द जी जैन, जबलपुर
73. श्रीमती प्रभावती जैन, जबलपुर
74. पं. शीतल चन्द जैन, मुजफ्फरनगर
75. पं. ऋषभ कुमार सिंघई, सागर
76. पं. विजय कुमार जैन, श्री महावीर जी
77. पं. वीरेन्द्र कुमार, साहित्याचार्य, सागर
78. पं. गुलाबचन्द आदित्य, भोपाल
79. पं. रतनचन्द्र शास्त्री, रहली
80. डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर
81. पं. महेन्द्रकुमार जैन शास्त्री, सिहोनिया
82. पं. रमेश कुमार जैन, शास्त्री, जोबनेर
83. श्रीमती सुमनलाल जैन, सागर
84. पं. अनन्दीलाल जैन शास्त्री, बांसवाड़ा
85. पं. संजय जैन, खतौली (मु.नगर)
86. श्रीमती सरला शास्त्री, मुरैना
87. डॉ. अजित कुमार जैन, बीना
88. डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर
89. पं. सुरेन्द्र कुमार जैन, छतरपुर
90. पं. कैलाशचन्द्र जैन 'मलैया', जयपुर
91. प्रो. (मेजर) के.के. जैन, बीना
92. डॉ. सरोज जैन, बीना
93. प्राचार्य निहाल चन्द जैन, बीना
94. कामरेड कपूर चन्द्र घुवारा
95. पं. सुरेन्द्र कुमार सिंघई, बडागाँव
96. पं. सुरेश जैन, मारौरा, शिवपुरी
97. पं. ज्योति बाबू जैन, शास्त्री जयपुर
98. पं. मुकेश कुमार जैन, विशारद, जयपुर
99. प. धर्मचन्द्र शास्त्री, उज्जैन
100. पं. भागचन्द जैन, घुवारा

101. पं. अरूण कुमार जैन, ब्यावर (राज.)
102. डॉ. विमला जैन, फिरोजाबाद
103. पं. पवन जैन शास्त्री, शाहगढ़
104. डा. पुष्पराज जैन
105. पं. नरेन्द्र कुमार शास्त्री, बरूआ सागर
106. श्रीमती जैनमती जैन, आरा
107. श्रीमती पुष्पलता जैन, नागपुर
108. पं. दीपक जैन 'दिव्य' निवाई, जयपुर
109. पं. सनत जैन, सौजना ललितपुर
110. पं. मुकेश कुमार जैन, शास्त्री, जयपुर
111. पं. विमल कुमार जैन, जयपुर
112. डॉ. विमल कुमार जैन, जयपुर
113. श्रीमती सिन्धुलता जैन, जयपुर
114. पं. महावीर प्रसाद गदिया, जयपुर
115. डॉ. बाबू लाल सेठी, जयपुर
116. पं. वैद्य ऋषभ कुमार जैन, बड़ागाँव
117. पं. राजकुमार शास्त्री, जयपुर
118. ब्र. जयकुमार 'निशान्त' टीकमगढ़
119. पं. गुलाबचन्द्र जैन पुष्प, टीकमगढ़
120. डॉ. भागचन्द जैन भागेन्दु, दमोह
121. पं. मनीष कुमार जैन, टीकमगढ़
122. पं. उदय चन्द जैन 'प्रतिष्ठाचार्य', सागर
123. प. भगवान दास जैन शास्त्री, सरधना
124. पं. सिंघई खुशाल चन्द जैन, बनारस
125. पं. वीरेन्द्र कुमार जैन, सागर
126. पं. बाबूलाल जैन, मंडीदीप (भोपाल)
127. पं. विमल कुमार जैन, घुवारा (छतरपुर)
128. पं. अभिनन्दन साधेलीय, पाटन
129. डॉ. शीतल चन्द जैन, जयपुर
130. डॉ. कपूरचन्द्र जैन, खतौली
131. श्रीमती डॉ. ज्योति जैन, खतौली
132. पं. राकेश कुमार जैन, भिन्ड
133. डॉ. सुपार्श्व कुमार, बड़ौत
134. डॉ. श्रीमती उर्मिला जैन, बड़ौत
135. डॉ. कस्तूर चन्द्र सुमन, श्रीमहावीरजी
136. पं. विनोद कुमार जैन, रजवाँस
137. प. सनत कुमार जैन, रजवाँस
138. पं. रतन लाल इन्दौर
139. कु. समता जैन, शिवपुरा
140. पं. निर्मल जैन, सतना
141. डॉ. प्रेमचन्द राँवका, जयपुर
142. पं. संतोष कुमार साढूमल, ललितपुर
143. पं. नरेन्द्र कुमार जैन, शास्त्री, रूडकी
144. प. शीतलचन्द्र जैन, नैकोरा, ललितपुर
145. डॉ. सनत कुमार जैन, जयपुर (राज.)
146. डॉ. सुरेश चन्द्र जैन, दिल्ली
147. श्रीमती मणिकान्ता जैन, वाराणसी
148. डॉ. हरिश्चन्द्र जैन, शास्त्री, मुरैना
149. श्रीमती आशा जैन, चण्डीगढ़
150. डॉ. रमेश चन्द्र जैन, बिजनौर
151. डॉ. विजय कुमार, लखनऊ
152. पं. महेन्द्र कुमार सिंघई
153. डॉ. अनुमप जैन, इन्दौर
154. डॉ. सुन्दर लाल जैन, ककरवाहा
155. पं. पवन कुमार जैन, निवार

17 जून, 2001 को प्रात: 8 बजे पूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज ससंघ सान्निध्य एवं पं. धनराज जैन अध्यक्ष क्षेत्र कमेटी की अध्यक्षता में विद्वानों का सम्मान समारोह आयोजित हुआ। समारोह के विशिष्ट अतिथि श्रेष्ठी श्री इन्द्रसैन जैन कार्याध्यक्ष क्षेत्र कमेटी, पद्मप्रसाद कोषाध्यक्ष क्षेत्र कमेटी, सुभाषजैन मंत्री क्षेत्र कमेटी, रमेशचन्द जैन मेलामंत्री क्षेत्र कमेटी आदि पदाधिकारी और शामली से पधारे हुए श्री भोपालसिंह अशोककुमार जी (छपरौली वाले) श्री ज्ञानचन्द जी ढोलिया (रेनवाल वाले) श्री शेखर चन्द जी पाटोदी नावावाले मंचासीन थे।

पं. बाबूलाल फणीश के मंगलाचरणोपरान्त क्षेत्र कमेटी की ओर से उपस्थित 155 विद्वानों के सम्मान के संबंध के क्रम में विद्वत्परिषद् के संरक्षक, अध्यक्ष सहित समस्त पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी के सदस्यों का स्वागत शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र भेंट कर किया गया। तदन्तर समस्त उपस्थित विद्वतजनों का क्रम में हरियाणा प्रान्त समाज द्वारा भगवान महावीर का 2600 वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव पर फरीदाबाद में 26 विद्वानों को सम्मानित किया गया था जिसमें अवशिष्ट तीन विद्वानों का सम्मान यहाँ पर आयोजित हुआ जिसमें पं. गुलाबचन्द आदित्य भोपाल को प्रशस्ति आदि भेंट कर सम्मानित किया गया। पं. सागरमल जी विदिशा एवं उत्तमचन्द्र जी राकेश की अनुपस्थिति में उनके पुरस्कार डॉ. श्रेयांस कुमार जैन एवं महेन्द्र कुमार जैन ने प्राप्त किये।

ज्ञानायनी ग्रंथ का विमोचन

साधारण सभा के अधिवेशन के क्रम में अखिल भा.दि. जैन वि. परिषद् द्वारा तैयार ग्रंथ "ज्ञानायनी" ग्रंथ का विमोचन पूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसगार जी महाराज के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। ग्रन्थ के प्रकाशन में अर्थ सौजन्य श्री भोपालसिंह अशोककुमार जी, शामली, श्री ज्ञानचन्द जी ठोलिया, शामली, शेखरचन्द जी पटोदी शामली, ने प्रदान किया। इस अवसर पर उक्त श्रेष्ठियों का स्वागत भी किया गया।

इसी क्रम में विद्वत्परिषद के विद्वानों द्वारा लिखित "वर्णीवन्दना काव्यम्" पर्यावरणीयचेतना एवं पार्श्वज्योतिमंच द्वारा प्रकाशित परिषद् के अध्यक्ष डॉ. रमेशचन्द जैन द्वारा दिया गया कुण्डलपुर का अध्यक्षीय भाषण का विमोचन भी किया गया।

क्षेत्र कमेटी के कार्याध्यक्ष श्री इन्द्रसैन जैन ने इस अवसर पर देश के विभिन्न प्रदेशों से पधारे हुए विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए क्षेत्र का परिचय दिया और विद्वानों को क्षेत्र पर हमेशा आने के लिए आग्रह किया। इस अवसर पर पूज्य उपाध्याय श्री ने अपने मंगल आशीर्वाद में कहा कि क्षेत्र कमेटी द्वारा विद्वानों का किया गया सम्मान जिनवाणी का सम्मान है क्योंकि ये सभी विद्वान जिनवाणी के उपासक / सम्पोषक हैं। क्षेत्र पर विद्वानों के आने से क्षेत्र की प्रसिद्धि हुई है। अतः कमेटी को गौरवान्वित होना चाहिए। विद्वान हमेशा इसी प्रकार से जिनवाणी की सेवा करते रहें यही हमारा मंगल आशीर्वाद है।

17 जून, 2001 दोपहर 1 बजे शास्त्रीपरिषद् का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन हुआ एवं पं. गुलाबचन्द जी 'पुष्प' टीकमगढ़ का अखिल भारतवर्षीय पं. गुलाबचन्द्र 'पुष्प' अभिन्दन समारोह समिति द्वारा 'पुष्पांजलि' अभिनन्दन ग्रंथ लोकार्पण समारोह का आयोजन किया जिसमें विद्वत्परिषद् एवं शास्त्री परिषद् के समस्त विद्वज्जन उपस्थित हुए।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के २१वें अधिवेशन एवं स्वर्ण जयन्ती समापन वर्ष समारोह के सुअवसर पर अतिशय क्षेत्र, बड़ागाँव (खेकड़ा) में डॉ. रमेशचन्द जैन का द्वारा प्रदत्त अध्यक्षीय वक्तव्य :

सम्मत्तणाण दंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरूलघुमव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तव सिद्धेणय सिद्धे संजमसिद्धे चस्त्तिसिद्धेय ।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥
श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतवि, भावनापटु मतिभ्यः ।
सुचरित तपोनिधिभ्यो, नमो गुरूभ्यो गुणगुरूभ्यः ॥
छत्तीस गुणसमग्गे, पञ्च विहाचार करण संदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥३॥

सराकोद्धारक, अध्यात्म के प्रवक्ता, विद्वानों के मार्ग दर्शक वीतरागी संत उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज पूज्य मुनि श्री वैराग्यसागर जी महाराज, क्षु. सम्यक्त्व सागर जी महाराज एवं मञ्च पर विराजमान समस्त साधुवृन्द के चरणों में बारंबार नमोऽस्तु ब्रह्मचारिणी अनीता जी ब्र. मंजुला जी आदि के प्रति मेरा विनय भाव। विद्वत् परिषद् के विभिन्न अधिवेशनों में हमें बीसवीं शताब्दी के महान् सन्त आचार्य विद्यासागर तथा मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के चरण सान्निध्य में बैठने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

आज मेरे लिए परम हर्ष का विषय है कि मुझे दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव, जिला बागपत में पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं उनके संघ के सान्निध्य में विद्वत् परिषद् के समीपवर्ती और दूरस्थ स्थानों से पधारे हुए विद्वत्समुदाय के मध्य कुछ कहने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। पूज्य उपाध्याय श्री वर्तमान युग के जानेमाने सन्त हैं, जिनकी छत्रछाया में बैठकर समाज ने उनकी पावन चर्या और उपदेशों से मार्गदर्शन प्राप्त किया है। सरधना, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बिनौली, दिल्ली, तिजारा, शाहपुर, गया, राँची, फरीदाबाद, सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर, मथुरा आदि अनेक स्थानों पर विद्वत् गोष्ठी एवं शिविर आयोजित कराकर आपने पूर्वाचार्यों की रचनाओं के पठन-पाठन, अध्ययन और अनुशीलन का मार्ग प्रशस्त किया है। सराक भाईयों के पुनरुत्थान में आपके मार्गदर्शन में अनेक योजनाएं साकार रूप ग्रहण कर रही हैं। आपके सान्निध्य में माँ जिनवाणी की सेवा में अहर्निश तत्पर रहने वाले विद्वान निरन्तर पुरस्कृत होते रहते हैं एवं आपकी प्रेरणा से अनेक मूल एवं सन्दर्भ ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। आपके गुणगौरव का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। आपके साहचर्य में सदैव रहने वाले पूज्य श्री वैराग्यसागर जी महाराज के वैराग्य से ओतप्रोत जीवन से सभी वैराग्य की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

परम प्रसन्नता की बात है कि अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् ऐसे समय अपना स्वर्ण जयन्ती समारोह मना रही है। जबकि सारे देश और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देवाधिदेव भगवान् महावीर का 2600 वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव बड़े गौरव और आदर के साथ मनाया जा रहा है। भगवान् महावीर

अहिंसा के अवतार थे और उन्होंने दु:खों से पीड़ित संसार को त्याग, तप और शान्ति का सन्देश दिया था। उनके उपदेशों से मनुष्य ने मानवता का पाठ सीखा था और पशुओं को प्राण मिला था। आज भगवान् के सन्देश को विश्व स्तर पर दूर-दूर फैलाने की आवश्यकता है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के विद्वानों ने समाज की अनेक प्रकार से सेवा की है। इनके नि:स्वार्थ और पुनीत कार्यकलापों में कुछ प्रमुख हैं। जैसे :-

1. षट्खण्डागम तथा कषायपाहुड जैसे आगम ग्रन्थों का पुनरुद्धार, सम्पादन और प्रकाशन।
2. षट्खण्डागम और कषायपाहुड का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन।
3. जैन काव्य, अध्यात्म और न्याय ग्रन्थों का प्रकाशन/अनुशीलन।
4. जैन तीर्थ क्षेत्रों के विकास की प्रेरणा।
5. चारों अनुयोगों के ग्रन्थों का अनुशीलन और प्रकाशन।
6. प्राचीन जैन मन्दिरों और मूर्तियों का संरक्षण और नवीन मन्दिरों तथा मूर्तियों की प्रतिष्ठापना।
7. तत्त्वज्ञान के प्रचार हेतु पाठशालाओं और विद्यालयों में अध्यापन।
8. विश्वविद्यालयों तथा सरकारी और अर्द्धसरकारी कॉलेजों में अध्यापन।
9. महिलावर्ग और युवाओं में जागरूकता उत्पन्न करना।
10. पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज को दिशा-निर्देश देना।
11. कुरीतियों को दूर करना एवं मिथ्यात्व को हटाना।
12. साधर्मियों की सहायता करना।
13. छात्रों के अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति फण्ड स्थापित करने की प्रेरणा देना।
14. शोध छात्रों को मार्गदर्शन देना।
15. जैन विषयों पर संगोष्ठी आयोजित करना।
16. शाकाहार का प्रचार करना।
17. भारत के स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन में प्रमुख भूमिका
18. राष्ट्रीय विपदा के समय तन, मन, धन से राष्ट्र के प्रति समर्पण।
19. आकाशवाणी और दूरदर्शन से जैन सिद्धान्तों का प्रचार।

कहा जाता है कि विद्या के बिना मनुष्य पशु के समान है। असार इस संसार में विद्या के वैशिष्ट्य को विद्वान ही बतलाते हैं। विद्या से विनय की प्राप्ति होती है। विनय का फल गुरुसेवा है। गुरुसेवा से श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है। श्रुतज्ञान का फल विरति है। विरति का फल आस्रव निरोध हे। आस्रव निरोध के अनन्तर निर्जरा का मार्ग खुलता है, इससे क्रियाओं की निवृत्ति होती है और क्रियाओं की निवृत्ति से अयोगीपना प्राप्त होता है। अयोगीपन से संसार परम्परा का उच्छेद होता है। इस प्रकार विद्या के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

'सा विद्या या विमुक्तये' - विद्या वहीं है, जिससे मुक्ति की प्राप्ति होती है। आज लौकिक विद्या के द्वारा भौतिक अभिवृद्धि तो हो रही है, किन्तु मनुष्य विनाश के कगार पर जा रहा है। अत: अध्यात्म विद्या

के द्वारा जीवन को संयमित करने की आवश्यकता है। संसार में धन की उतनी महत्ता नहीं है, जितनी विद्या की महत्ता है। संसार के हजारों ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने धन को तृण के समान तुच्छ माना। उन्होंने सत्य अथवा धर्म की अपेक्षा धन को महत्त्व नहीं दिया। यही कारण है कि समाज में राजा की अपेक्षा विद्वान् को श्रेष्ठ माना गया -

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

अर्थात् विद्वत्ता और नृपत्व ये दोनों कभी भी समान नहीं हो सकते। राजा तो अपने ही देश में पूजा जाता है, किन्तु विद्वान् की पूजा सब जगह होती है।

'ज्ञान भर: क्रियां बिना' अर्थात् क्रिया के बिना ज्ञान भार है। अत: ज्ञान की शक्ति और वैराग्य का बल दोनों को साथ लेकर कल्याण हेतु साधना करने में ही विद्वानों का हित है। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में वात्सल्य और प्रभावना का विशेष महत्त्व है। आज श्रावक और साधु दोनों वर्गों में वात्सल्य का अभाव होता जा रहा है, फलस्वरूप जगह-जगह विखण्डन दिखाई दे रहा है। इस विखण्डन को रोकने के लिए पारस्परिक सहिष्णुता, प्रेम और वात्सल्य की आवश्यकता है।

हमारे धर्म का मूलाधार अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह है। यदि हमारे जीवन में ये दिखाई नहीं देगी तो फिर दूसरे से उसके पालन की आशा कैसे की जा सकती है। आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा है -

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सतत मेव।
दानतपो जिनपूजा विद्यातिशयैश्च जिनधर्म:॥३०॥

रत्नत्रय के तेज से सतत आत्मा की प्रभावना करना चाहिए। दान, तप, जिनपूजा और विद्या के अतिशयों से भी जिनधर्म की प्रभावना करना चाहिए। दान का रूप आज प्राय: बिगड़ चुका है। पहले सुकृत का पैसा धर्मकार्य में लगाकर श्रावक सन्तोष का अनुभव करता था। आज का श्रावक भी दिल खोलकर धर्मकार्यों में पैसा लगाता है, किन्तु वह पैसा उसका न्यायोपार्जित है या अन्याय का, इसकी चिन्ता न देने वाले को है, न लेने वाले को है, फलस्वरूप धर्म दिखावा और प्रदर्शन मात्र रह गया है। श्रावकों के काले धन ने कहीं-कहीं निष्परिग्रही मुनिराजों को भी अपने वश में कर लिया है। दिगम्बर वेषधारी अपने पीछे जब माल असबाब और बड़े-बड़े वाहन लेकर चलते हुए क्वचित् दृष्टि गोचर होते हैं तो मन को सखेद आश्चर्य होता है।

29 मार्च के जैन गजट में प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन ने ठीक ही लिखा है -

''आज हम सब दूसरों को प्रभावित करने में लगे हैं, किन्तु स्वयं को थोड़ा-सा भी संस्कारित नहीं करना चाहते। हम लोग धन के बल पर दिखाई देने वाली बाहरी चमक दमक को ही प्रभावना मान लेते हैं और यह भूल जाते हैं कि प्रभावना धन से नहीं, आचरण से होती है। रावण ने अपनी सोने की लंका में एक बड़ा भव्य मन्दिर बनवाया, जिसकी दीवारें सोने की, छत इन्द्रनील मणि की और फर्श चाँदी का था। सोलह दिनों तक वह उस मन्दिर में बैठकर पूजा पाठ करता रहा, लेकिन उसका उद्देश्य सीता (परस्त्री)

को अपना बनाना था। अन्तरंग दूषित होने से उसका इतना विशाल और भव्य मंदिर बनवाना तथा पूजा करना निष्फल ही सिद्ध हुआ। वह न लंका को बचा सका और न स्वयं को ही। वह मन्दिर भी नष्ट हो गया। मन: शुद्धि के बिना धर्मकार्य भी फलदायक नहीं होते।''

जैनधर्म को हम विश्वधर्म कहते हैं, किन्तु खेद की बात है कि महावीर के मन्दिर में हर आदमी की पहुँच नहीं है। वहाँ किसी के प्रवेश पर निषेध नहीं होना चाहिए। मन्दिरों का निर्माण मनुष्य मात्र के लिए है। पापी से पापी और दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को भी महावीर तक पहुँचने का हक देना होगा, तभी जैन धर्म विश्वधर्म बन सकता है। किसी अपरिहार्यकारण से यदि यह संभव न हो तो फिर भगवान महावीर की पहुँच हर आदमी तक होनी चाहिए। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भगवान् महावीर का दर्शन विनय मिथ्यात्व का विरोधी है। आज समाज में विनयमिथ्यात्व की प्रवृत्ति बढ़ रही है। देवों के नाम पर कहीं-कहीं कुदेव, शासन देवता और भूतों की पूजा हो रही है। हमारे देवत्व की कसौटी वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशीपना है। ये गुण जिनमें नहीं है, वे देव संज्ञा को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। महावीर विपरीतता के भी विरोधी हैं। उनके समवसरण में सैकड़ों वादी मुनिराज थे, जो विपरीत मान्यताओं का युक्तियों से खण्डन कर मानव को सत्य का दर्शन कराते थे। मिथ्यात्व जीव का सबसे बड़ा शत्रु है। मिथ्यात्वी स्वयं धर्म को नहीं जानता है, वह धर्म के भ्रम रूप का बखान करता है। वह पक्षपात् की लड़ाई लड़कर अपने को दीर्घ संसार में डुबाता है। अत: समाज में जहाँ विपरीत मान्यतायें फैल रही हैं, उनका त्याग होना चाहिए।

भगवान् महावीर के 2600वें जन्म कल्याणक के उपलक्ष्य में सरकार ने इस वर्ष 'अहिंसा वर्ष' घोषित किया है, किन्तु अहिंसा का अनुपालन ईमानदारी से नहीं हो रहा है। इस समय देश में 36000 पंजीकृत कसाईखाने हैं। इनके अलावा अनधिकृत कसाईखानों में बडी सख्या में पशुओं का वध किया जा रहा है। देश के दस बड़े यान्त्रिक कसाईखानों में प्रतिदिन ढाई लाख पशुओं का वध किया जाता है। इन कसाईखानों में प्रतिवर्ष एक करोड़ गाय-भैंसों तथा चार करोड़ भेड़ बकरियों की हत्या की जाती है। अकेले अलकवीर कसाईखानें को 6 लाख भेड-बकरे काटने का लाइसेन्स प्राप्त है। देवनार का यान्त्रिक कसाईखाना हर साल 25 लाख भेड़ बकरे, 1 लाख 20 हजार गौवध तथा 60 हजार भैंसों का वध करता है। कलकत्ता स्थित बूचड़खाना भी प्रतिवर्ष 12 लाख गाय-बैल का वध करता है। अलकवीर हर साल 15 हजार मीट्रिक टन मांस का निर्यात करता है। फ्रिगोरीफिको अकल लिमिटेड औरंगाबाद 24 हजार मीट्रिक टन, हिन्द इण्डस्ट्रीज अलीगढ़ 25 हजार मीट्रिक टन और अलना संस प्राइवेट लिमिटेड (दिल्ली, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र) 45 हजार मीट्रिक टन मांस निर्यात करता है। ये आँकड़े किसी भी दयावान पुरुष का दिल दहलाने वाले हैं।

हमारा प्राचीन इतिहास बहुत उज्ज्वल था, लेकिन आज का इतिहास लाल खून से सना है। कत्लखानों का इतिहास भारतीय इतिहास के धवल पन्नों को कलंकित कर रहा है और भारत के इतिहास को मिटाने में लगा है। गुरुवर आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने कहा था- ''मौत किसी को प्यारी नहीं है, मरना कोई नहीं चाहता, फिर भी यदि किसी को बेमौत मारा जा रहा हो तो मानव का कर्त्तव्य होता है कि वह उसकी रक्षाकर उसकी जान बचावे। हम किसी को अमर नहीं कर सकते लेकिन किसी को बेमौत मरने से बचा तो सकते हैं। जिस राष्ट्र की रीढ़ पशुधन हो। यदि धन के लोभ में उस पशुधन के मांस का निर्यात किया जा रहा हो तो वह राष्ट्र बिना रीढ़ के अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता।''

विदेशों में लोग शाकाहार का महत्त्व समझ रहे हैं। वहाँ शाकाहारियों की संख्या बढ़ रही है। हमारे देश में शाकाहार के स्थान पर मांसाहार को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। जगह-जगह मद्य की दुकानें खुलती जा रही है। जैनियों को इनके प्रति सतर्क रहना तथा आम आदमी को शाकाहार के गुणों से परिचित कराना है तथा मद्य और मांसाहार के दोषों से लोगों को अवगत कराना है।

आज जैनों के समाने विकट समस्या है कि हम अपनी पहिचान खोते जा रहे हैं। रात्रि भोजन नहीं करना, सत्य बोलना, ईमानदारी का व्यवहार करना, छने हुए जल का प्रयोग करना, शुद्ध खान पान करना आदि गुणों के कारण हमारी विशिष्ट पहिचान थी। जैनी यदि किसी अदालत में चला जाता था तो उसकी गवाही सबसे पहले ली जाती थी। कोषाध्यक्ष का पद प्राय: जैनों को दिया जाता था। जैन यदि किसी दूसरे के घर पंक्तिभोज में जाते थे तो उनके लिए अलग शुद्ध खान-पान की व्यवस्था होती थी। प्रतिदिन देवदर्शन और स्वाध्याय हमारी चर्या के नित्य अङ्ग थे। बुन्देलखण्ड में बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए गाँव-गाँव में रात्रिपाठशालायें चलाई जाती थीं। मातायें उँगली पकड़कर प्रतिदिन सुबह शाम बच्चों को मन्दिर ले जाती थी। समाज के झगड़े सामाजिक पंचायतों में ही तय होते थे। समाज के भय के कारण लोग गलत काम करने से डरते थे। अष्टमी, चतुर्दशी को घरों में हरी सब्जी नहीं बनाई जाती थी। घर के बड़े बूढ़े व्रत, उपवास और संयम का पालन करते थे। पशुओं पर दयाभाव रखा जाता था। घर से बाहर जाते थे तो लोटा डोर और शुद्ध भोजन साथ रखते थे। कहीं अधिक दिन रुकना हो तो भोजन बनाने का समान साथ ले जाते थे। आज सुविधायें तो बढ़ी है, किन्तु उनके मुकावले आदमी आलसी अधिक होता जा रहा है। पहले मोटा वस्त्र पहिनते थे, किन्तु भोजन अत्युत्तम करते थे। आज वस्त्र उत्तमोत्तम पहिनते हैं, किन्तु खाने के नाम पर बिस्किट और डबलरोटी मिल जाय तो उससे भी काम चला लेते हैं। यह सब हमारे नैतिक प्रतिमानों के ह्रास और बढ़ती हुई विलासिता के कारण हो रहा है।

गोरक्षा की जोर जारे से पुकार करने वाले चमड़े की वस्तुओं का परित्याग नहीं कर पाते। चमड़े के दस्ताने, जाकेट, टोपी, पर्स, जूते, बैल्ट, सूटकेस आदि से अनेक जैनी भी परहेज नहीं करते। जैनियों के बच्चे और युवा तथा युवतियाँ बड़े-बड़े होटलों में जाकर मद्यपान और डांस करते नजर आते हैं। अनेक पंचसितारा होटलों के मलिक जैन हैं। इनमें मांसाहार धड़ल्ले के चलता है। कुछ जैन जूतों का व्यापार करने से नहीं कतराते। उनकी पत्रिकाओं और अखबारो में चमड़े के और मांसनिर्वित या मांसमिश्रित अथवा चर्बीमिश्रित वस्तुओं के विज्ञापन छपते हैं। चर्बीमिश्रित साबुन का प्रयोग करना तो आम रिवाज हो गया है। महिलाओं के अनेक प्रसाधन रक्तरंजित हो गए हैं। सामूहिक रात्रि भोजों का चलन बढ़ता जा रहा है। धर्मशालायें अजैनों को विवाह हेतु किराए पर दी जाती हैं। इनमें रात्रिभोजन और खुलकर मद्यपान भी देखा जाता है। ये सब ऐसे अवरोध हैं, जिनसे हमारी संस्कृति दूषित हो रही है, हमारे संस्कार, हमारी आदतें मलिन हो रही हैं। यदि यही दशा रही तो हम अपनी अस्मिता खो देंगे।

भारतीय संविधान ने भारतीय धर्मों को दो श्रेणियों में बांटा हुआ है - 1. बहुसंख्यक अर्थात् हिन्दूधर्म, 2. अल्पसंख्याक धर्म, जिसमें वर्ष 1993 तक क्रमश: 1. मुसलमान, 2. ईसाई, 3. सिख, 4. बौद्ध, 5. जैन तथा 6. पारसी ये छ: अल्पसंख्यक माने जाते थे। वर्ष 1991 की जनगणना में 54 करोड़ हिन्दू धर्मावलम्बियों की तुलना में अल्पसंख्यक धर्मावलम्बी कुल 14 करोड़ 2 हजार थे, जिनमें जैनियों की जनगणना 33 लाख

बत्तीस हजार थी। तात्पर्य यह कि धार्मिक तौर पर जैन धर्मावलम्बी अलपसंख्यक हैं। इसमें 1993 के प्रारम्भ तक कोई विवाद नहीं था। 23 अक्टूबर 1993 की अधिसूचना के द्वारा उ.प्र. सरकार ने जैनों के अल्पसंख्यक स्वरूप को समाप्त सा कर दिया। जैन समाज को अपने अल्पसंख्यक स्वरूप को कायम रखने हेतु जगह-जगह संघर्ष करना पड़ रहा है। कर्नाटक तथा दिल्ली में न्यायालयों की सहायता से हमें अल्पसंख्यक की मान्यता मिली है। मध्यप्रदेश में हम अल्पसंख्यक घोषित हुए हैं। भारतीय संविधान में हम अल्पसंख्यक घोषित होने पर भी हमें जगह-जगह न्यायालय में जाना पड़ रहा है। इसके विषय में शीघ्र ही सरकार को निर्णय लेकर जैनों को अल्पसंख्यक घोषित करना चाहिए; क्योंकि जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र और मौलिक धर्म है। हमारे लिए यह भी चिन्तनीय विषय है कि जनसंख्या विस्फोट के इस जमाने में जबकि प्रत्येक धर्मानुयायियों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है, जैनों की जनसंख्या में तुलनात्मक रूप से कमी होती जा रही है। इसका एक कारण यह है कि नए जैनों का बनना बन्द है और जो पुराने जैन हैं, वे अपने नाम के आगे अपने गोत्र या जाति, उपजाति का नाम लिखाते हैं फलत: वे बहुसंख्यक हिन्दुओं की श्रेणी में गिन लिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हम अपने नाम के आगे जैन अवश्य लिखें।

दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्रों पर जैनेतर समाज का अतिक्रमण जारी है, जो चिन्ता का विषय है। बलदाना (जिला बिजनौर) उ.प्र.में भगवान पार्श्वनाथ की अत्युन्नत प्रतिमा पर बहुसंख्यक समाज ने कब्जा कर रखा है। उक्त मूर्ति और मन्दिर को प्राप्त करने के लिए न तो केन्द्रीय संगठनों ने कोई प्रयास किए, न ही स्थानीय स्तर पर किसी ने ध्यान दिया। सिद्धक्षेत्र सोनागिर पर दिगम्बर जैनों का अधिपत्य होते हुए भी पहाड़ पर स्थित तालाब में बहुसंख्यक वर्ग बलात् जानवरों का विसर्जन करता है। सिद्धक्षेत्र गिरनार पर भगवान नेमिनाथ के चरण चिन्हों के दर्शन पण्डे लोग दक्षिणा लेकर करने देते हैं। वहाँ भगवान् नेमिनाथ की जय बोलने पर पण्डे बौखला जाते हैं। मन्दारगिरि खण्डगिरी और उदयगिरी पर भी अतिक्रमण जारी है। आदितीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की निर्वाणस्थली बद्रीनाथ में जैन मन्दिर में मूर्ति स्थापना का विरोध किया जा रहा है। उत्तराञ्चल के मुख्यमंत्री ने अपने बयान में कहा है कि हम जैन मन्दिर निर्माण की इजाजत इसलिए नहीं देगें; क्योंकि इससे क्षेत्र की पवित्रता नष्ट हो जायगी। सम्मेद शिखर, पावापुर, मक्शी पार्श्वनाथ आदि क्षेत्रों पर जैनों में ही आपस में मुकद्दमेबाजी होती रहती है, इसमें समाज का करोड़ों रुपया व्यय हो चुका है। ये शाश्वत तीर्थ हमारे हैं और हमें इन पर पूजा पाठ का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए। प्राचीन चरणचिन्ह जिस रूप मे विद्यमान थे, उन्हें बदला नहीं जाना चाहिए। अतिशय क्षेत्र वैशाली पर भव्य स्मारक निर्माण होना चाहिए। यदि हम वैशली का सम्यक् रूप से विकास कर सके तो भगवान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक वर्ष की यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

यह प्रसन्नता की बात है कि जैन समाज में महिलायें लौकिक शिक्षा के क्षेत्र में काफी आगे आ रही हैं, किन्तु यह सोचनीय स्थिति है कि दिगम्बर जैन समाज में महिलाओं को संस्कृत, प्राकृत और जैनधर्म का अध्ययन कराने हेतु एक भी सुदृढ़ महाविद्यालय या शिक्षाकेन्द्र नहीं है, जहाँ महिलायें सम्मानपूर्वक रहकर अपना धार्मिक अध्ययन आगे बढ़ा सकें। अनेक छात्राऐं जैन विषयों पर पी.एच.डी उपाधि प्राप्त करना चाहती हैं, किन्तु समीपवर्ती क्षेत्र में सुयोग्य निर्देशक के अभाव में तथा समुचित मार्गदर्शन और साहित्य के अभाव में उन्हें शोध उपाधि से वंचित रहना पड़ता है।

जैन इतिहास का प्राचीन काल से लेकर अब तक विधिवत् तथा क्रमबद्ध विस्तृत लेखन नहीं हुआ। इस विषय में डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, डॉ. कामताप्रसाद जैन, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. ए.एन. उपाध्ये, पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री जैसे जैन विद्वानों तथा अन्याव्य अजैन विद्वानों ने जो कार्य किया, आज उसे सँजोने वालों की भी कमी हो गई है। प्रवचन साहित्य तो आज बहुत आ रहा है, किन्तु उच्चस्तरीय मानक जैन साहित्य का वैज्ञानिक ढंग से प्रकाशन नहीं हो रहा है। प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य श्रमसाध्य और बुद्धिसाध्य होने के कारण विद्वान् इसमें प्राय: संलग्न नहीं हैं। जब कि विद्वानों का कार्य ही विद्या की साधना करना है। यदि कोई विद्वान् इस दिशा में कुछ चेष्टा भी करता है तो किसी संस्था के द्वारा उसका प्रकाशन भी कठिन है।

जन साधारण में यथोचित साहित्य के प्रचार प्रसार के अभाव के कारण अजैन लेखक जैन तीर्थंकरों, मुनियों और जैनधर्म के विषय में भ्रामक सूचनायें देते हैं। स्कूल तथा कॉलेज के पाठ्यक्रमों में जैनधर्म के विषय में गलत जानकारी दी जाती हैं यदि अपेक्षित सुधार न कराया गया तो हमारी स्थिति हास्यास्पद हो जायगी और हम विड़म्बना के पास होंगे। कुछ हमारे ही साधर्मी बन्धु प्राचीन दिगम्बर जैन साहित्य को यापनीय सिद्ध करने हेतु दत्तचित्त हैं। हमारी ओर से उनका सही उत्तर दिया जाना चाहिए। इस विषय में शास्त्री परिषद् की ओर श्रीमान् डॉ. रतनचन्द्र जैन, भोपाल आदि विद्वानों ने कुछ कार्य किया है। विद्वत् परिषद् उनके कार्य की श्लाघा करती है। देश में अनेक स्थानों पर प्राचीन हस्तलिखित शास्त्र भण्डार उपलब्ध हैं, किन्तु उनके सूचीकरण का कार्य सम्पन्न नहीं हो पाया है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर ने इस विषय में कुछ पहल की है, जो प्रसन्नता का विषय है। कुछ सूचियाँ श्री महावीर जी, जयपुर, दिल्ली आदि स्थानों से प्रकाशित हुई थीं, किन्तु अभी बहुत कार्य करना शेष है। जैन न्याय के मौलिक ग्रन्थों के पठन पाठन का प्रचलन बन्द सा हो गया है। न्यायविनिश्चय विवरण, सिद्धिविनिश्चय, न्यायकुमुदचन्द्र आदि मौलिक ग्रन्थ अभी तक अनुदित नहीं हुए हैं न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार जैन के बाद इन ग्रन्थों का गहन अध्ययन भी नही हुआ है। जैनधर्म अपने विस्तृत आगम, समिर्पित क्रियाकलाप तथा उच्च आदर्शों के कारण समृद्ध हुआ था। इस समृद्धि में जैन साधुओं, विश्वस्त राजपुरुषों तथा श्रद्धालु श्रावकों का बड़ा हाथ था। जैन साधु बहुत बड़े विद्वान् ही नहीं थे, अपितु उनका चरित्र बड़ा उन्नत था। जो भी वे उपदेश देते थे, उसे अपने जीवन में उतारते थे। जैन धर्म के प्रचार के लिए वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण करते थे। वे जनता की भाषा में प्रचार करते थे। चूँकि ये सदैव भ्रमण करते रहते थे और आत्म विज्ञापन से दूर रहते थे, अत: उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। कुछ जैन श्रावक राजाओं और बादशाहों के विश्वस्त राजपुरुष थे। वे सत्यवादी और कर्त्तव्यपरायण थे। अपने कार्यों को वे निष्ठापूर्वक सम्पन्न करते थे। कुछ श्रावक अपने धर्म के परम भक्त थे। उन्होंने जगह-जगह मन्दिर बनावए और उनमें मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कीं। वे तीर्थों पर जाने वाले संघों का नेतृत्व करते थे। वे साधुओं को भेंट करने के लिए शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार कराते थे। वे इतने प्रबुद्ध थे कि उन साधुओं पर भी नियन्त्रण रखते थे, जो जैनधर्म के सिद्धान्तों से हटकर अपना आचरण करते थे।

परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने अपने प्रवचन में कहा था कि ''जीवन का विकास आस्था के माध्यम से होता है''। इसी आस्था के द्वारा सम्यक्त्व गुण की प्राप्ति होती है। हमें ज्ञान

आत्मावलोकन के लिए अर्जित करना चाहिए, न कि दुनियाँ के अवलोकन के लिए। जो श्रमण आत्मतत्त्व की आराधना में लीन रहता है, वह थोड़े से काल में मुक्ति श्री को वरण कर लेता है। आज अभ्यास का अभाव होने से हम मन की चंचलता को रोक नहीं पाते हैं। मन को साधना की ओर लगाने के लिए जिनवाणी का स्वाध्याय किया जाता है। इसलिए बार-बार स्वाध्याय करने की प्रेरणा हमारे आचार्यों, मुनियों ने दी है। ज्ञानी का उपयोग किताबों की ओर नहीं जाता है। वह अपनी आत्मा की ओर से मुख्य रखता है। वह ग्रन्थों को पढ़ते समय उनमें शब्द रूपी जो संकेत रहते हैं, उनका उपयोग सार तत्त्व के साथ कर लेता है। आत्मा की बात आते ही वह सीधा उसकी ओर चला जाता है। जैसे व्यक्ति किसी गूढ अर्थ को जानने के लिए शब्दकोश का सहारा लेता है, वैसे ही ज्ञानी अज्ञानी को समझाने के लिए व्यवहार का सहारा लेता है। लेख लिखना, ग्रंथ लिखना ज्ञानीपन नहीं है, राग-द्वेष नहीं करने वाला ज्ञानी होता है।''

जैन धर्म भारतवर्ष का सबसे प्राचीन धर्म है। उसकी अपनी विशिष्ट पहिचान है, जो उसकी पौराणिकता, दर्शन, धार्मिक और सामाजिक विधि-विधान तथा साहित्यिक परम्पराओं से प्रमाणिक होती है। ऐतिहासिक युग में अन्य व्यवस्थाओं के साथ जैनों का प्रमुख व्यवसाय आन्तरिक और बाह्य व्यापार रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप देश की समृद्धि और विकास में जैनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जैन समाज किसी न किसी रूप में साक्षर अवश्य रहा है। इस साक्षरता के फलस्वरूप ही वह अपनी साहित्यिक, दार्शनिक और पौराणिक रचनाओं के माध्यम से प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं को सुरक्षित रख सका। भारतीय कला, चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य के क्षेत्र में जैनों का विशिष्ट योगदान है। हिन्दुओं के समान जैनों के इतिहास में भी सातत्य है।

मध्ययुग मुगलकाल में जैनों का व्यापार उत्तर भारत, बंगाल, सिन्ध पंजाब और सारे देश में फैला हुआ था। जैन गाँव-गाँव मे फैले हुए थे। जिन दिनों फसल नहीं होती थी, उन दिनों गाँव के किसान जैनों से रुपया उधार लिया करते थे। इस प्रकार वे आधुनिक बैंकिंग का कार्य करते थे। अकबर की धार्मिक साहिष्णुता ने जैनों को उत्साहित किया। अकबर ने अपनी राजसभा में भट्टारक पद्मनन्दि, श्वेताम्बर मुनि हरि विजयसूरि तथा जिनचन्द्रसूरि को आमन्त्रित कर उनका बहुत बड़ा सम्मान किया था। जैन उस समय आगरा और उसके आस पास के इलाको में फैल गए। राजपूत राजाओं को रसद पहुँचाने का कार्य भी जैन किया करते थे। अकबर ने राज्यकाल में दीवान धन्नाराय के संरक्षण में पाँच सौ श्रीमान वैश्य कर संग्रह का कार्य किया करते थे। सत्रहवीं शताब्दी में हीरानन्द शाह और फतेहचन्द जगत सेठ जैसी उपाधियों से विभूषित थे। जैन पूर्व में भी फैले हुए थे, यह इस बात से प्रमाणित है कि 1675 ई. में ढाका में तीर्थंकर प्रतिभाओं की प्रतिष्ठापन्ना हुई थी। उत्तरी पश्चिमी भारत में जैन देहली और आगरा के अतिरिक्त लाहौर और मुलतान में भी फैले हुए थे। जिनचन्द्र सूरि मुलतान गए थे। बाद में वे जैसलमेर चले गए। जैसलमेर मुलतान के व्यापारिक मार्ग से जुड़ा था। जैन सिन्ध में भी फैले हुए थे। कहा जाता है कि तेरहवीं शताब्दी में जब गुजरात मे अकाल पड़ा था तो सिन्ध के जैनों ने गुजरात की सामान्य जनता को मदद पहुँचाई थी।

तेरहवीं शताब्दी से दिगम्बर जैनों में भट्टारकों का प्रभाव बढ़ा हुआ था। इन दिनों यद्यपि जैनों में अनेक सम्प्रदाय हो गए थे, फिर भी पारस्परिक सौहार्द्र था। विविध तीर्थकल्प से द्योतित होता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों मिलकर कई जगह एक ही तीर्थ पर पूजा और उपासना किया करते थे।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक जैन मुनि शिक्षा के केन्द्र रहे हैं। वे बहुत बड़े विद्वान् और लेखक थे। उन्होंने दर्शन, गणित, ज्योतिष, नक्षत्रविद्या, लोकानुयोग, नीति धर्मशास्त्र आदि पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे। उन्होंने न्यायशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण आदि पर विद्वत्तापूर्ण रचनायें की। वे बड़े-बड़े संघों का संचालन करते थे। उनका जीवन निष्कलुष था। उस समय संस्कृत उच्च ज्ञान की भाषा थी। जैन आचार्य संस्कृत में निष्ठान्त थे। वे वैद्यक और निमित्तशास्त्र में भी प्रवीण हुआ करते थे। उनका विविध विषयों पर हिन्दू पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ करता था। आचार्य समन्तभद्र, अकलंकदेव, वादिराजसूरि, वादीभसूरि, मानतुङ्गसूरि आदि अनेक शास्त्रार्थी आचार्य हुए तो खुले आम विरोधी मत वालों को चुनौती देने में सक्षम थे। संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त जैन आचार्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी त्रिपुण थे। उन्होंने क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रश्न साहित्य की रचना की। पं. बनारसीदास जी कर अर्द्धकथानक हिन्दी में लिखी गई प्रथम आत्मकथा है, इससे तत्कालीन समाज के विषय में विविध सूचनायें प्राप्त होती है। इससे तत्कालीन, व्यापारिक क्रिया कलाप, अधिकारियों की क्रूरता तथा सामान्य व्यक्तियों की कठिनाईयों का भी पता चलता है। मानसिंह तोमर के जमाने में 16वीं शताब्दी में ग्वालियर की तुलना स्वर्ण लंका से की जाती थी। उस समय वहाँ जैनों का प्राबल्य था। आगरा में जैनविद्वानों की स्थान-स्थान पर गोष्ठियाँ हुआ करती थीं, जिनमें धार्मिक विषयों पर चर्चा होती थी इन गोष्ठियों को शैली कहा जाता था। ऐसी शैलियों की चर्चा पं. बनारसीदास जी ने की है। पं. बनारसीदास की शैली में संघी जगजीवन, कुँवरपाल, पण्डित हेमराज, रामचन्द, संघी माथुरदास, भवालदास तथा भावतीदास प्रमुख थे। पं. बनारसीदास जी ने दिगम्बर जैनों में तेरापन्थ की स्थापना की थी।

बनारसीदास सायंकाल के समय साहित्य रसिकों के सामने अपनी रचना मधुमती और मृगावती भी सुनाया करते थे। बनारसी दास जी ने जैन समाज में धार्मिक चेतना का भी संचार किया था। महाराणा प्रताप के युग में भामाशाह जैसे धनकुबेरों को इतिहास सदा याद करेगा। गुजरात के जगडूशाह अपनी दानवीरता के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं।

जैनों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं को आश्रयों, मन्दिरों, मठों ग्रन्थभण्डारों आदि में सुरक्षित रखा। उनके साहित्य प्रेम के कारण ही आज बड़े-बड़े शास्त्रभण्डार सुरक्षित हैं। ग्रन्थों की प्रतिष्ठापना जैनी पुण्यकर्म मानते थे। इन ग्रन्थों की प्रशस्तिओं में तत्कालीन समाज की जीवन झाँकी की बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित हैं। इन प्रशस्तियों का अभी पूरा अध्ययन नहीं हो सका है। पुरुषों के समान जैन श्राविकायें धार्मिक कार्यों में आगे रही है। उनके द्वारा अनेक मन्दिर, धर्मशालाओं, औषद्यालयों तथा उपाश्रयों का निर्माण कराया गया। पुरुषों की अपेक्षा उपवास करने में भी श्राविकायें प्राय: आगे रही है। जैन विद्वान् मन्त्र-तन्त्र के भी अच्छे ज्ञाता रहे हैं। मन्त्रविद्या के कई चमत्कार आज भी लोगों के मुख से सुने जाते हैं।

प्राचीन काल में शिक्षार्थी बालक को शिक्षा का प्रारम्भ 'ॐ नम: सिद्धम्' से कराया जाता था। महाराष्ट्र में यह प्रथा आज भी है, जो कि जैन प्रभाव की सूचक है। यह प्रभाव जैन मन्दिरों, मठों और जैन

गुरुओं से आया। पहाड़पुर का 478 ई० का ताम्रलेख इस बात को प्रमाणित करता है कि वाट गोहाली में एक जैन विहार जो कि बनारस के पञ्चस्तूपानितकाय के गुरू गुहनन्दिन के शिष्यों द्वारा संचालित था। 637 ई० में महान् कवि रविकीर्ति ने मेघुटी (ऐहोल) में एक जैन मन्दिर बनवाया था। जो जैन अध्ययन का बहुत बड़ा केन्द्र था। ग्यारह सौ अठासी के दूबकुण्ड के शिलालेख से ज्ञात होता है कि दूबकुण्ड में जैन मठ था। यह स्थान ग्वालियर से दक्षिण पश्चिम में 114 किलोमीटर है। यहाँ जैन गुरु रहते थे। वे ललितवागड गण के थे। उनका नाम देवसेन था, उनके शिष्य कुलभूषण थे और कुलभूषण के भी शिष्य दुर्लभ सेनसूरि थे। उनसे प्रेरणा पाकर गुरु शान्तिसेन ने शास्त्रार्थियों को बाद में पराजित कर दिया था। यह शिलालेख वहाँ के मन्दिर दीवाल से उपलब्ध हुआ है। धारा का पार्श्वनाथ जिनविहार तथा नलछा का नेमि चैत्यालय ज्ञान के अच्छे केन्द्र थे। चौहान शासक विग्रहराज ने सरस्वती मन्दिर का अजमेर में निर्माण कराया था। यह "अढ़ाइ दिन कर झौपड़ा" के नाम से प्रसिद्ध है। यह जैन महाविद्यालय की इमारत थी, जहाँ दूर-दूर से छात्र पढ़ने आते थे। 13वीं शताब्दी में उज्जैन में एक जैन मठ था। देवधर, विद्यानन्दसूरि तथा धर्मकीर्ति उपाध्याय क्रमशः इसके प्रमुख थे। मध्ययुग में भट्टारकों की गद्दी ज्ञान का केन्द्र हो गई। मद्दलपुर, उज्जैन, बारन, ग्वालियर, चित्तौड़ बघेरा, देहली, अजमेर, नागौर, आमेर अदि में मूलसंघ के भट्टारक थे। इनके मठों में पुस्तकालय भी होते थे। ग्रन्थों की प्रतिलिपि में बहुत सारे व्यक्ति लगे रहते थे। भट्टारक आचार्य और पण्डितों की नियुक्ति भट्टारक करते थे। ये सबको शिक्षा देते थे। जैनों के पवित्र तीर्थ उजूब, उज्जैन पावागिरी ऊन, सोनागिर, तथा श्रवणबेलगोल शिक्षा के अच्छे केन्द्र थे; क्योंकि यहाँ श्रावक और मुनि आते जाते रहते थे। इन स्थानों पर मन्दिर और मठ बनाए गऐ थे। धीरे-धीरे ये बहुत बड़े शिक्षा केन्द्र बने। इन स्थानों को अध्ययन हेतु शास्त्र भेंट किए जाते थे।

जैनों पर यह आरोप लगाया जाता है कि निष्परिग्रही भगवान् महावीर के अनुयायी होते हुए सर्वाधिक परिग्रही है। यथार्थ में जैनों की समृद्धि का कारण उनका अपरिग्रही धर्म है। जैन गुरु अपने पास कुछ भी नहीं रखते हैं तथा वे कुछ भी नहीं चाहते हैं। वे भय और इच्छाओं से रहित हैं। यह स्वाभाविक था कि जो उनके प्रगाढ़ परिचय में आए वे उनके त्याग के उदाहरण से प्रभावित थे। इसके परिणामस्वरूप बहुत सारे राजा, मंत्री तथा धनी व्यापारी सादा जीवन व्यतीत करते थे। वे यह मानते थे कि धन और बल का प्रयोग समस्त जीवों के कल्याण के लिए है। उनकी व्यक्तिगत आवश्यकतायें बहुत सीमित थी। वे अपने ऊपर कम से कम खर्च करते थे। आवश्यकता से अधिक वे शिक्षा, भोजन, दवा तथा उपाश्रयों पर खर्च करते थे। ये सामान्य व्यक्तियों की आवश्यकतायें हैं। इनकी पूर्ति कर वे सामान्य व्यक्तियों की श्रद्धा अर्जित करते थे। इसी कारण जैन धर्म ने नवीं से 12 वीं शताब्दी में अत्यधिक उन्नति की। आहार, औषधि, ज्ञानदान और अभयदान जैनों के प्राथमिक कर्त्तव्यों में सम्मिलित हैं। अपने इन्हीं कर्त्तव्यों को करते हुए उनके पुण्य के फलस्वरूप इतना धन इकट्ठा हो जाता था कि मुस्लिम काल और अंग्रेजी काल में वे जगत् सेठ की उपाधियों से विभूषित होते थे। 1660 ई. में सूरत के वीर जी वोरा का व्यापार अंग्रेजों और उचों के बीच फैला हुआ था। उस समय व्यापारिक वस्तुओं के भाव वीर जी वोरा पर निर्भर रहते थे। अंग्रेजों को भी उनके रेट्स मानने को बाध्य होना पड़ता था। वे रुपया उधार देने, रुपए का विनिमय करने और बैंकिंग का कार्य करते थे। उस मसय के जैनों का प्रमुख व्यापार बैंकिंग था। सामुद्रि बन्दरगा हों, उत्तर और पश्चिमी भारत, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और तटवर्ती इलाकों में उनका व्यापार फैला था। देश के गाँव-गाँव

और बड़े शहरों में फैले हुए थे। वे हीरे जवाहरात, सोना, चाँदी, मसाले, रुई तथा अनाज, घी आदि अनेक वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे हुण्डियों को निर्गमित करते थे। हुंडियों के माध्यम से वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन ट्रांसफर करते थे। एक उच्च व्यापारी ने वीर जी की सारी सम्पत्ति का आँखों देखा वर्णन किया है। वह कहता है - He carried six barrels of gold, money, cereals, gems and other precious commodities। एक उच्च व्यापारी ने उन्हें विश्व का सबसे बड़ा व्यापारी कहा था। उनका उस समय की सभी व्यापारिक कम्पनियों पर ऋण रहता था। सरकार और व्यपारियों के बीच कोई समस्या होने पर मुगल अधिकारी वीर जी वोरा की सलाह लेते थे।

अहमदाबाद के शान्तिदास हीरे जवाहरात का व्यापार करते थे। उनसे शाहजहाँ भी खरीददारी करते थे तथा उन्हें मामा सम्बोधन करते थे। वे भी यूरोपीय लोगों को ऋण देते थे। हीरानन्दशाह, माणिकचन्द्र, फतेहचन्द करमशाह (चितौड़), भामाशाह रजिया तथा विजय, अभयराज, गूलराज (नखर) खड़गोज, सदास अग्रवाल (जौनपुर), बनारसीदास, सबलसिंह कोठिया, साव जी कबन जी पारेख (पोरबन्दर) नानू गढ़ा, मूलदास, जैन शाह, मुहलैत नैनसी आदि ऐसे व्यापारी थे, जिनका राजाओं और बादशाहों के साथ व्यापार चलता था।

जैनों का संघ सुदृढ संघ था। श्रावक और साधु कठोरता से धार्मिक नियमों का पालन करते थे। मुनियों का आचरण आदर्श माना जाता था। मुनि यथार्थ में निर्देशक, संरक्षक तथा समाज के नेता थे। श्रावक यद्यपि महाव्रतों का पालन नहीं कर सकते थे, किन्तु वे अणुव्रतों का पालन करते थे। श्रावक और साधु के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इसके परिणाम स्वरूप श्रावक और श्राविकायें अत्यधिक सजग, अनुशासनवद्ध तथा प्रबुद्ध हो जाते थे। इस संघीय शक्ति ने जैनों की जड़ें इस देश में मजबूत की। यही कारण हैं कि साम्प्रदायिक आंधी में बौद्ध धर्म इस देश से उखड़ गया, जब कि जैन धर्म जीवित रहा। राजनीति में महत्त्वपूर्ण पदों पर रहते हुए जैनों ने समय-समय पर भारतीय समाज को नेतृत्व प्रदान किया और उसका मार्गदर्शन किया।

राजनीतिक क्षेत्र में जैनों का योगदान उल्लेखनीय है। राजाओं के सिंहासनाधिष्ठित होने में भूमिका के कारण जैन आचार्यों ने जैनों की अनेक पीढ़ियों को राजकीय संरक्षण दिया। जैन साधु राजाओं को राजनीति का उपदेश भी देते थे। प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु भ्रदबाहु थे। खारवेल ने जैन श्रमणों को जैन धर्म प्रचार हेतु बाहर के देशों में भेजा। गंगराज्य आचार्य सिंहनन्दि की देन था। गंग शासन को मुनिवर्ग ने सिंहनन्दि के नेतृत्व में अपने राज्य को सुरक्षित रखा। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष आचार्य जिनसेन के प्रभाव से जैनी हो गया था। उसने अपनी प्रजा पर कुशलतापूर्वक शासन किया। कुरूरपाल राजा ने हेमचन्द्राचार्य के प्रभाव से अपने राज्य को आदर्श जैन राज्य बनाया था। जैनों ने सेनापतिपद के महत्त्वपूर्ण दायित्व को भी निभाया है। इन सेनापतियों ने अपने राष्ट्र की शत्रुओं से सुरक्षा की है। जैनों के प्रभाव से समाज को मद्यादि व्यसनों से मुक्त होने में मदद मिली है।

भगवान् महावीर ने जातिवाद को प्रश्रय नहीं दिया। उनके गणधर ब्राह्मण थे। लिच्छवि, मल्ल, वज्जि, उग्र, भोज आदि क्षत्रिय जाति के थे। उन्होंने विशाल स्तर पर व्यापारियों को अपने धर्म की ओर आकृष्ट किया। नन्द राजा किसी बड़ी जाति के नहीं थे। शक राजा नहपान ने जैनमुनि की दीक्षा ली थी।

हरिगुप्त हूणराजा तोरमाण का गुरु था। मध्ययुग में प्राय: प्रत्येक शासक जैनधर्म से प्रभावित था। ए.एस. अल्तेकर का कहना है कि 1/3 दक्षिणभारत जैनधर्म का अनुयायी था। उत्तरभारत की ओसवाल, अग्रवाल, खण्डेलवाल, पोरवाल आदि जातियों ने जैनधर्म अपनाया था। मथुरा के श्रेष्ठी, वणिक्, मणिकार, लौहवणिक, हैरव्यक (सुभर), अर्थ वाह, गन्धिक, मणिकाओं, नृत्यकारों, वाचकों और वस्त्र विक्रेताओं तथा जुलाहों में जैनधर्म लोकप्रिय था। भगवान् महावीर के धर्म में नारी को सम्मानपूर्ण स्थान था। चन्दना उनके संघ की साध्वी प्रमुख थी। जैनों ने मन्दिरों, मठों, वसदियों, उपाश्रयगृहों तथा स्तूपों के निर्माण में विशिष्ट शैली को जन्म दिया। मूर्ति निर्माण कला में जैनियों का कोई मुकाबला नहीं है। तिरनेलबेल्ली की तमिल गुफायें, उड़ीसा की खण्डगिरी, उदयगिरी की गुफायें, आन्ध्रप्रदेश की गुण्टपल्ली की गुफायें, महाराष्ट्र की पाले की गुफायें, उत्तरप्रदेश की पसोसा की गुफा मध्यप्रदेश की उदयगिरि, कर्नाटक की चन्द्रगिरि गुफा तमिलनाडु की सित्तनवासल गुफा तथा बदामी, ऐहोल छोटा कैलाश, जगन्नाथ सभा, ग्वालियर की गुफायें हमारे देश की धरोहर है।

आज समाज के नैतिक और धार्मिक मूल्यों में निरन्तर ह्रास हो रहा है। दिशाहीन समाज को साधुजन और विद्वतवर्ग ही मार्गदर्शन दे सकता है। परम प्रमोद का विषय है कि बिखरे हुए दिगम्बर जैन कवियों को संगठित करने हेतु पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से एक कवि परिषद् का गठन किया गया है। आशा है कवि सम्मेलन प्रेमी समाज को कवियों के एक बड़े समूह से सम्पर्क करने में सुविधा होगी। उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के तत्त्वावधान में सराक जाति के विकास का महान् कार्य सम्पन्न हो रहा है। विद्वानों और समाज को इस कार्य में निरन्तर सहयोग देना चाहिए।

विद्वान् समाज के मुख है। बीसवीं सदी के दिगम्बर जैन विद्वानों की सेवा आतुलनीय है। उनके कार्यों को आगे लाने में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज की प्रेरणा से श्रीमान् पं. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य डॉ. हीरालाल जैन, पं. जुगल किशोर मुख्तार तथा डॉ. ए.एन. उपाध्ये पर विद्वत् संगोष्ठियाँ आयोजित हो चुकी हैं अनेक महनीय विद्वानों के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर आगे भी अनेक गोष्ठियाँ आयोजित होगी तथा ऐसे अन्य कार्य सम्पन्न होंगे, जो जैन विद्या और समाज के विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी होंगे।

स्वर्ण जयन्ती अधिवेशन के समारोह के अवसर पर बीसवीं सदी के अ.भा.दि. जैन विद्वानों की बहुमूल्य सेवाओं पर गोष्ठी सम्पन्न हो रही है, आगे अन्य अवशिष्ट विद्वानों पर संगोष्ठी का अयोजन होगा। विद्वानों की चर्चा और लेखन से जो नवीन नवनीत निकलेगा, वह आगे के इतिहास की धरोहर होगा।

परम प्रसन्नता की बात है कि अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् और अ.भा.दि. जैन विद्वत परिषद् कन्धे से कन्धा लगाकर जन-जागरण का कार्य सम्पन्न कर रही हैं। इसका श्रेय शास्त्री परिषद् के लोकप्रिय अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन एवं महामंत्री डॉ. जयकुमार जैन को है। विद्वानों ने दूर-दूर से पधारकर स्वर्ण जयन्ती समारोह को गरिमा प्रदान की। क्षेत्र कमेटी तथा उसके सुयोग्य पदाधिकारी और कार्यकर्त्ताओं एवं आदरणीय श्रोताओं ने उपस्थित रहकर उत्सव की श्रीवृद्धि की। सभी को मेरा हार्दिक धन्यवाद। अभी-अभी हमें एक सूचना प्राप्त हुई है कि डॉ के.के. जैन को शाकाहार पुरस्कार 21000/- का अहिंमा इन्टरनेशनल द्वारा घोषित किया गया है। सभी विद्वानों की ओर से हार्दिक बधाई।

जैनं जयतु शासनम्।

विद्वत् परिषद् द्वारा प्रकाशित साहित्य एवं विद्वत्संगोष्ठियों का आयोजन तथा सम्मान

डॉ० फूलचन्द जैन "प्रेमी",
संयुक्तमंत्री, विद्वत्परिषद्

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् ने अपनी स्थापना काल (सन् 1944) से ही जहाँ एक ओर जैन शासन के संरक्षण, विकास और विद्वानों की सामयिक उन्नति हेतु सतत् अग्रणी रहकर समाज में गौरव और सम्मान प्राप्त किया वहीं अपने अनुपम और गौरवशाली प्रकाशनो के द्वारा जैन धर्म-साहित्य सिद्धान्त, संस्कृति और इतिहास के प्रचार-प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। आज यदि दिगम्बर परम्परा के सिद्धान्तो और इतिहास को यदि राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर सन्दर्भित किया जाने लगा है तो इसमें बीसवीं सदी के सातवे-आठवें दशक मे प्रकाशित इन दो ग्रन्थों को यह प्रमुख श्रेय जाता है। इनमें प्रथम है भारतीय ज्ञानपीठ से पाँच खण्डों मे प्रकाशित पूज्य जिनेन्द्रवर्णी जी द्वारा लिखित "**जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश**" तथा दूसरा ग्रन्थ है अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् से चार खण्डो में प्रकाशित एवं डॉ. नेमिचंद जी शास्त्री ज्योतिषाचार्य द्वारा लिखित "**तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा**"।

इन दो ग्रन्थो में एक प्रमुख ग्रन्थ के प्रकाशन का गौरव विद्वत् परिषद् को भी प्राप्त है। इतना ही नही परिषद् ने अपने अन्य श्रेष्ठ प्रकाशनों के द्वारा भी कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इनमें प्रमुख है - 1. गुरू गोपाल दास वरैया स्मृति ग्रन्थ (1967), 02. श्रुत सप्ताह नवनीत (1971), 03. रजत-जयन्ती पत्रिका (1973), 4. श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ (1974), 5. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (चार खण्ड - 1974), 6. भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान दो खण्ड (1982-83), 7. देव-शास्त्र-गुरू (1994)। इनके अतिरिक्त श्री पं. जुगल किशोर जी मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व आदि और भी अन्य सामाजिक अनेक लघु ग्रन्थों अध्यक्षीय भाषणों आदि का प्रकाशन भी हुआ है। इन प्रमुख प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :-

01. गुरू गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ :

गुरूणा गुरू प. गोपालदास जी वरैया की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में परिषद् के फरवरी 1965 मे सम्पन्न सिवनी में पचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय हुए अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के अनुसार सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ, पं. जगमोहनलाल जी सिद्धान्तशास्त्री, डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया, डॉ. नमिचंद्र जी शास्त्री। इन विद्वानों के सम्पादाकत्व में ऐसा अनुपम साढ़े छह सौ पृष्ठों का बृहदांकार ऐतिहासिक स्मृतिग्रन्थ का महावीर प्रेस, वाराणसी से 1967 में उसकी टक्कर का प्रकाशन हुआ कि जैन समाज में और कहीं वैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ इस प्रकाशन के युग में भी आज तक प्रकाशित नहीं हो सका। इसके सम्पादन का मुख्यकार्य डॉ. नेमिचन्द जी शास्त्री आरा (बिहार) ने किया।

इस ग्रन्थ में चार खण्ड हैं - प्रथम खण्ड में पृ. 1 से 126 तक विभिन्न विद्वानों श्रीमन्तों एवं सन्तों द्वारा लिखित गुरू जी का जीवन परिचय, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ समाहित हैं। द्वितीय खण्ड में पृष्ठ 131 से 306 तक गणमान्य विद्वानों द्वारा लिखित गुरू जी की प्रवृत्तियाँ, विचार तथा गुरूजी द्वारा सामयिक विषयों, समस्याओं और सिद्धांतों पर लिखित निबंध तथा गुरुजी द्वारा सृजित साहित्य जैसे सुशीला उपन्यास, जैन सिद्धान्त दर्पण, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका आदि रचनाओं की श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षायें और विशेषतायें संकलित हैं। तृतीय खण्ड में पृ. 307 से 464 तक ''धर्म और दर्शन'' खण्ड में गणमान्य 22 विद्वानों के जैन धर्म, दर्शन और सिद्धान्तों पर लिखित मौलिक एवं शोधपरक निबंधों का संकलन है। अन्तिम चौथे खण्ड में पृ. 465 से 627 तक जैन साहित्य, इतिहास, पुरातत्व और संस्कृति के विभिन्न पक्षों में 23 चर्चित विद्वानों के अनुसंधानात्मक और समीक्षात्मक निबंधों का संकलन है।

इस तरह यह साहित्य जगत् का ऐसा बेजोड़ सन्दर्भ और ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ बन गया है कि इसे जितना पढ़ा जाय नित नवीन-नवीन तथ्य सामने आते हैं। इसकी यह भी विशेषता है कि इसे परिषद् की ओर से भारत की सभी विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में भेट-स्वरूप भेजा गया था, जिसका बहुत समादर हुआ।

02. श्रुत सप्ताह नवनीत :

विद्वत्परिषद् का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि श्रुत (जिनवाणी) का सवंर्द्धन और प्रसार हो। तदनुसार दिनाक 25 से 31 मई 1971 को श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, वर्णी भवन, सागर (म.प्र.) में श्रुत सप्ताह का आयोजन किया गया। इस श्रुत सप्ताह मे पूज्य 105 ऐलक कुन्थुसागर जी क्षुल्लक सहजानन्द जी (मनोहरलाल जी) वर्णी, ब्र.पं. वंशीधर जी न्यायालंकार, इन्दौर, ब्र. राजाराम जी भोपाल, प. वशीधर जी व्याकरणचार्य बीना, ब्र. डालचंद्र जी इन्दौर तथा सागर के समादरणीय विद्वान् सर्वश्री स्याद्वादवारिधि पं. दयाचंद जी शास्त्री, पं. माणिकचद जी न्याय-काव्यतीर्थ, पं. दयाचंद्र जी साहित्याचार्य तथा पं. धर्मचंद्र जी शास्त्री ने अपने सारगभित प्रवचनों एवं वक्तव्यों से इस श्रुत साधना को सफल बनाने में महनीय योगदान किया।

इस श्रुत साधना यज्ञ में शताधिक बच्चों, श्रावक एवं श्राविकाओं ने छहढाला, द्रव्य-संग्रह एवं समयसार का अध्ययन किया। वैसे भी बुन्देलखण्ड में कोई भी कहीं धार्मिक आयोजन हो वहाँ सारी समाज को आबाल वृद्ध नर-नारी के साथ सोत्साह इकट्ठे होने में देर नहीं लगती। फिर ऐसे श्रेष्ठ संयमी वर्ग और सम्मानित विद्वानों का समागम हो, तब तो कुछ कहना ही क्या?

इस श्रुत सप्ताह में एक सप्ताह तक दिनभर और रात्रि में समयानुसार जिन विद्वानों ने जो प्रवचन और वक्तव्य प्रस्तुत किये, उनके सारगर्भित अंशों को इस 75 पृष्ठीय लघु ग्रन्थ में संकलित करके परिषद् के मंत्री पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने इस नवनीत को ''श्रुत सप्ताह नवनीत'' के नाम से प्रकाशित किया। यह भी एक रोचक, ज्ञानवर्द्धक लघु ग्रन्थ के रूप में चर्चित है।

03. श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ :

पूज्य वर्णी जी की जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में विद्वत्परिषद् की ओर से सन् 1974 में परिषद् के मंत्री विद्वद्वर्य डॉ. पन्नालालजी साहित्याचार्य एवं श्रीमान् पं. नीरज जी जैन, सतना के सम्पादकत्व में चार

खण्डों में यह महत्वपूर्ण स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह परिषद् के शिवपुरी में सम्पन्न रजतजयन्ती अधिवेशन में स्वीकृत शुभ संकल्प सुफल है। सम्पूर्ण जैन समाज पूज्य वर्णी जी के उपकार को कभी भूल नहीं सकती। विद्वानों को देखकर पूज्य वर्णी जी का रोम-रोम पुलकित हो जाता था। सभी विद्वानों ने भी उनके प्रति स्वाभाविक पूर्ण सम्मान और पूज्य भाव सदा रखा। आज भी उनका स्मरण करते ही प्रत्येक विद्वान् उनके प्रति नतमस्तक हो उनके उपकार के प्रति अतीव कृतज्ञता व्यक्त करते थकता नही है। यह स्मृति ग्रन्थ भी बहुत कुछ इसी तरह बन गया है।

इसके प्रथमखण्ड में 108 विद्वानों ने अपने संस्मरणों, श्रद्धांजलियों और काव्य-कुसुमांजलियों के माध्यम से जो सहृयोद्गार व्यक्त किये हैं - उन्हें बार-बार पढ़कर प्रत्येक पाठ्य पूज्य वर्णी जी की स्मृमियों में खोकर उनसे हुए सम्पर्क- साहचर्य को अपने जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता और उपलब्धि मानने लगता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय खण्ड ''पूज्य वर्णी जी के व्यक्ति और कृतित्व'' से संबंधित है। इसमें अठारह विद्वानों के द्वारा पूज्यवर्णी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित विभिन्न पक्षों पर निबन्ध संकलित हैं। अन्त में 'श्रुतपंचमी : त्यागियों और विद्वानों से''। इस शीर्षक से वर्णीजी के विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

तृतीय खण्ड में पूज्य वर्णी जी द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों में दिये गये प्रवचनों के संकलन के साथ ही उनके चिन्तन के अन्तर्गत सारगर्भित विभिन्न सामयिक 21 विषयों पर वर्णी जी के चिन्तन को प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ खण्ड में संकलित लेखमाला मे गणमान्य पाँच विद्वानों के महत्वपूर्ण निबंध जैनधर्म दर्शन से संबंधित प्रस्तुत किये गये हैं।

04. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा :

विद्वत्परिषद् की ओर से प्रकाशित ग्रन्थो में यह एक अमूल्य और अनुपम ग्रन्थरत्न है, जिसके लेखक डॉ. नेमिचन्द्र जी शास्त्री ज्योतिषाचार्य हैं। यह ग्रन्थ तीर्थंकर महावीर के पच्चीस सौं वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में सन् 1974 में चार खण्डों में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रबुद्ध वर्ग को इतनी प्रतीक्षा और इसके प्रति सम्मान एवं प्रामाणिकता का भाव था कि प्रकाशन के पूर्व ही डॉ. कोठिया जी प्रेरणा से इसके सात सौ अग्रिम ग्राहक बन गये थे।

इसके आद्य मिताक्षर में पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के ये भाव इसकी विशेषता कह देतें हैं- ''इस ग्रन्थ के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान् की लेखनी में बल और विचारों मे तर्क संगता है। समाज इनकी अनेक कृतियों का मूल्यांकन कर चुका है। प्रस्तुत कृति से जहाँ पाठकों को स्वच्छ श्रमण-परम्परा का परिज्ञान होगा, वहाँ ग्रन्थ में दिये गये टिप्पणों से उनके ज्ञान में प्रामाणिकता भी आवेगी। यह ग्रन्थ सभी प्रकार से अपने में परिपूर्ण एवं लेखक की ज्ञान गरिमा को इंगित करने में समर्थ हैं। विद्वत्परिषद् का यह प्रकाशन-कार्य परिषद् के सर्वथा अनुरूप है। ऐसे सत्कार्य के लिए भी हमारे शुभाशीर्वाद।

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद जी शास्त्री ने अपने प्राक्कथन में इन थोड़े शब्दों में इस ग्रन्थ और ग्रन्थकार विद्वान् के विषय में सब कुछ कह दिया है- ''यह बृहत्काय ग्रन्थ चार खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। इसमें भगवान महावीर और उनके बाद के पच्चीस सौ वर्षो में हुए विविध साहित्यकारों का परिचयादि इनकी साहित्य साधना का मूल्यांकन करते हुए विद्वान् लेखक ने निबद्ध किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ के लेखन में कितना श्रम किया, यह तो इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ने वाले ही जान सकेगें। मेरे जानते में प्रकृत विषयों से सम्बद्ध कोई ग्रथ या लेखादि उनकी दृष्टि से ओझल नहीं रहा। तभी तो इस अपनी कृति को समाप्त करने के पश्चात् ही वे स्वर्गत हो गये और इसे प्रकाश मे लाने के लिए इनके अभिन्न सखा डॉ. कोठिया ने कितना श्रम किया है, इसे वे देख नहीं सके। ''भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'' में लेखक ने अपना जीवन उत्सर्ग करके जो श्रद्धा के सुमन चढ़ाये हैं, उनका मूल्यांकन करने की क्षमता इन पंक्तियों के लेखक में नहीं है। वह तो इतना ही कह सकता है कि आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपनी इस कृति द्वारा स्वयं अपने को भी उस परम्परा में सम्मिलित कर लिया है।''

वस्तुत: दो हजार पृष्ठों के इस ग्रन्थ के लेखक शास्त्री जी ने इसे लिखने में पाँच वर्ष की कठिन साधना की है। मुझे याद है जब मैं श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में आचार्य कक्षा में अध्ययनरत था तब अक्टूबर सन् 1973 में आ. डॉ. कोठिया जी के घर पर प्रकाशन के पूर्व इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के आधार पर चारो विद्वानों (पं. कैलाश चद जी शास्त्री, डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन लखनऊ, डॉ. कोठिया जी एवं स्वय लेखक) की सन्निधि मे लगातार कई दिनों तक वाचना चलती थी। उस समय मुझे वहाँ कई बार जाने-सुनने के अवसर प्राप्त हुए। मैंने पूर्व में ही लिखा है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद से साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में दिगम्बर परम्परा के आचार्यो और उनके साहित्य को अधिक सन्दर्भित किया जाने लगा है, उसके पूर्व भी किया जाता था, किन्तु उतना नहीं। इस ग्रन्थ के चारों खण्डों में सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित रूप में मिल जाने से लेखक विद्वानों को तत्संबंधी विषयों को सन्दर्भित करने में सुविधा रहती है।

इस ग्रन्थ के चार खण्डो में से प्रथमखण्ड मे तीर्थकर महावीर से पूर्व की परम्परा, जन्म-जन्म की साधना, समसामयिक परिस्थितियो, जन्मभूमि, जन्म और किशोरावस्था, युवावस्था, संघर्ष और सकल्प, तपश्चरण, वर्षावास, कैवल्यप्राप्ति, गणधर, समवशरण, शिष्य एवं निर्वाण। अन्त में देशना के अन्तर्गत श्रेयतत्व, ज्ञानमीमांसा, धर्म आचारमीमांसा एंव समाज व्यवस्था आदि विषयों का आगम सम्मत मौलिक प्रतिपादन करते हुए उपसंहार के अन्तर्गत महावीर व्यक्तित्व विश्लेषण आदि का विवेचन 640 पृष्ठों में किया गया है।

''तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'' ग्रन्थ का द्वितीय खण्ड ''श्रुतधराचार्य और सारस्वताचार्य'' शीर्षक से है। इसके प्रथम परिच्छेद : श्रुतधराचार्य के अन्तर्गत आचार्य गुणधर धरसेन पुष्पदन्त-भूतबलि आदि से लेकर आ. शिवार्य, स्वामिकुमार और आचार्य गृद्धपिच्छ तक के उन आचार्यो के व्यक्तित्व और कृतित्व को रेखांकित किया गया है, जिन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थ, कर्म साहित्य और आध्यात्मिक वाङ्मय का सृजन करके युग संस्थापक और युगान्तकारी बनें।

इसके द्वितीय परिच्छेद में आचार्य समन्तभद्र स्वामी से लेकर काणभिक्षु और कनकनन्दि जैसे आचार्यो के जीवनवृत्त, गुरू परम्परा, समय निर्णय और रचनाओं को विशद परिचय प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ सारस्वत-आचार्यों से तात्पर्य उन आचार्यों से है जिन्होंने श्रुत की पूर्व परम्परा प्राप्त करके उसी आधार पर मौलिक एवं व्याख्यात्मक ग्रन्थों का प्रणयन और उनका प्रचार-प्रसार किया है।

दो परिच्छेदों में विभक्त प्रस्तुत ग्रन्थ तृतीय खण्ड प्रबुद्धाचार्य और परम्परापोषकाचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित है। इनमें प्रथम परिच्छेद में प्रबुद्धाचार्यों के अन्तर्गत उन आचार्यों का परिचय है जिन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा ग्रन्थ-प्रणयन के साथ विवृतियों और भाष्यों की रचना की है। इनमें आचार्य जिनसेन प्रथम से लेकर मल्लिषेण का परिचय प्रस्तुत किया है।

इसी तरह द्वितीय परिच्छेद में परम्परापोषक उन पचास आचार्यों का परिचय दिया गया है, जिन्होंने दिगम्बर परम्परा की रक्षा के लिए प्राचीन आचार्यो द्वारा निर्मित ग्रन्थों के आधार पर नये साहित्य का सृजन करके परम्परा को गतिमान बनाये रखा। इस श्रेणी में मुख्यत: हमारे पूज्य भट्टारकों की लम्बी परम्परा के प्रभावी व्यक्तित्व और उनकी रचना-संसार को रेखांकित किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड को चार परिच्छेदों में क्रमश: 1. संस्कृत कवि और ग्रन्थ-लेखक, 2. अपभ्रंश कवि और लेखक, 3. हिन्दी तथा देशज भाषा कवि और लेखक तथा चतुर्थ परिच्छेद में पट्टावलियाँ संकलित हैं।

इस प्रकार यह एक बहुउद्देशीय सन्दर्भ एवं संग्रहणीय महान् ग्रन्थरत्न है। यह ग्रन्थ पिछले डेढ़ दशक से दुलर्भ (अलभ्य) हो गया था, पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने गया (बिहार) चातुर्मास के समय सन् 1991 में समाज को इसके पुन: प्रकाशन हेतु प्रेरित किया। इसके फलस्वरूप सन् 1992 मे प्रशान्त मूर्ति शान्ति सागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थालय, बुढ़ाना चारों खण्ड पुन: प्रकाशित होकर उपलब्ध हैं।

05. भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान :

प्रस्तुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ दो खण्डों में विद्वत्परिषद् की ओर से सन् 1982 तथा 1983 में प्रकाशित किया गया। प्रो. राजाराम जी एवं डॉ. देवेन्द्रकुमार जी शास्त्री के संपादक एवं विद्वत् परिषद् के तत्कालीन प्रकाशन मंत्री डॉ. फूलचंद जैन प्रेमी की देखरेख में प्रकाशित इस ग्रन्थ के दोनों खण्डों में डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य के मुख्यत: अप्रकाशित उन अनुसंधानपरक निबंधों का संकलन है, जो उनकी साहित्य साधना के द्वारा प्रसूत हुए थे। यदि परिषद् के विद्वान् चिन्तापूर्वक इन निबंधों को इस ग्रन्थाकर रूप में प्रकाशित न करते, तो न मालूम वे सब निबंध कब के समाप्त हो जाते और हम बहुत बड़े ज्ञानलाभ से सदा के लिए वंचित रह जाते।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के प्रारम्भ में परिषद् के तत्कालीन मंत्री डॉ. हरीन्द्रभूषण जी जैन, उज्जैन का प्रकाशकीय वक्तव्य है। इन्होंने लिखा है – "डॉ. शास्त्री विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्हें साहित्य सृजन का व्यसन था। अपने शरीर और स्वास्थ्य के प्रति निमर्म होकर वे सतत् साहित्य साधना में संलग्न रहे। यही कारण है कि परिषद् ने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के निमित्त उनके अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने का निर्णय लिया। प्रकाशनमंत्री डॉ. फूलचंद जैन प्रेमी ने "दो शब्द"

शीर्षक से अपने वक्तव्य मे लिखा कि ''प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्वान् लेखक द्वारा लिखित इन निबंधों में अतीत के प्रयत्नों का मूल्यांकन और उनकी वर्तमान उपयोगिता तथा महत्व का दिशा निर्देश विद्यमान है। प्राक्कथन के रूप में पं. सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद शास्त्री ने इसमें संकलित प्रमुख निबंधों की समीक्षा करते हुए लिखा कि ''इन निबंधों में खोज की भी बहुत सामग्री है। विद्वानों और स्वाध्याय प्रेमियों को इन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक की विस्तृत और अनुसंधानपरक सम्पादकीय वक्तव्य इस ग्रन्थ की गरिमा के अनुसार है। ''अन्तर्ध्वनि'' के रूप में परिषद् के अध्यक्ष पं. डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के संक्षिप्त वक्तव्य ने ग्रन्थ के महत्व को बढ़ा दिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम खण्ड (भाग 1) में तीन विभाग हैं - प्रथम-भाषा विज्ञान से संबंधित है। इसमें संस्कृत, प्राकृत एवं भोजपुरी भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन विषयक डॉ. शास्त्री जी के सात निबंध संकलित हैं। इनमें ''संस्कृत के सर्वांगीण अध्ययन हेतु प्राकृत के अध्ययन की उपयोगिता - ''विषयक निबंध को हिन्दी में तथा इसी विषय को ''सक्कय अज्झयणत्थं पाइय-अज्झयणस्सावसिगदा उवजोगिदा य'' शीर्षक से प्राकृत भाषा की गद्य विद्या में लिखकर आधुनिक युग में प्राकृत भाषा को पुन: प्रचलन में लाने का एक सफल प्रयास किया है।

द्वितीय विभाग ''साहित्य'' से सबंधित है इसमें ''संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी की साहित्यिक विधाओं का समीक्षात्मक अध्ययन'' से संबंधित 17 निबंधों का संग्रहण है। तृतीय विभाग जैन-धर्म-दर्शन विषय से संबंधित है, जिसमें सात निबंध संकलित हैं। इनमें भी ''भगवदी आराहणाए वसधि-वियारो'' विषयक अन्तिम निबंध प्राकृत भाषा में निबद्ध महत्वपूर्ण निबंध है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय खण्ड (भाग 2 सन् 1983) में प्रकाशित हुआ था। इसके चार विभागों में प्रथम जैन न्याय एवं तत्वमीमांसा से संबंधित है, जिसमें छह निबंध तथा द्वितीय विभाग जैन तीर्थ, इतिहास, कला, संस्कृति एवं राजनीति से संबंधित है, जिसमें 14 निबंध संकलित हैं। अन्तिम निबंध अंग्रेजी भाषा में लिखित है। तृतीय विभाग भक्ति, संगीत एवं ललित कला विषयक है, इसमें तीन निबंध तथा चतुर्थ विभाग ज्योतिष एवं गणित विषय है, जिसमें 14 निबंध संकलित है।

प्रथम खण्ड में लगभग सवा पाँच सौ पृष्ठ तथा द्वितीय खण्ड में साढ़े चार सौ पृष्ठ हैं। इस तरह लगभग एक हजार पृष्ठों से युक्त यह संदर्भ ग्रन्थ संग्रहणीय ग्रन्थ है। इन निबंधों का अध्ययन डॉ. शास्त्री जी का बहुभाषावेत्ता एवं बहुशास्त्रवेत्ता स्वरुप का दिग्दर्शन कराता है। यह ग्रन्थ भी परिषद् का एक शिरोमणि ग्रन्थ है।

06. देवशास्त्र और गुरू :

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् के नवम्बर 1992 में सम्पन्न अधिवेशन के प्रस्तावानुसार परिषद् के मंत्री डॉ. सुदर्शनाल जी ने प्रस्तुत पुस्तक का सफल लेखन शास्त्रानुसार किया है तथा 1994 में परिषद् की ओर से यह पुस्तक प्रकाशित हुई। लगभग 150 पृष्ठ की इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में पृ. 1 से 26 तक (अर्हन्त और सिद्ध) का स्वरूप प्रतिपादित है। द्वितीय अध्याय में शास्त्र (आगम-ग्रन्थ) का विस्तृत स्वरूप पृष्ठ 27 से 46 तक प्रतिपादित किया गया है। तृतीय अध्याय में गुरू (साधु) का विस्तृत विवेचन पृष्ठ

47 से 115 तक किया गया है। वस्तुतः इसमें श्रमणाचार का सांगोपांग अच्छा विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय उपसंहार के रूप में है जिसमें दो परिशिष्टों में दिगम्बराचार्य एवं उनकी कृतियों को सूचीबद्ध किया गया है। यह पुस्तक आबाल वृद्ध सभी जनों के लिए उपयोगी है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में गणमान्य विद्वानों की सम्मतियाँ तथा लेखकीय एवं प्रकाशकीय वक्तव्य भी प्रस्तुत किया गया है।

07. रजतजयन्ती पत्रिका :

खतौली (उ.प्र.) में सम्पन्न परिषद् के नैमित्तिक अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार शिवपुरी में आयोजित अधिवेशन के समय परिषद् की ओर से आयोजित रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर ''रजत जयन्ती पत्रिका का प्रकाशन किया गया था। इसमें स्थापना से लेकर अब तक विद्वत्परिषद् की सम्पूर्ण प्रगति का परिपूर्ण विवरण सभी अधिवेशनों की कार्यवाही, स्वीकृत प्रमुख प्रस्ताव सम्मान, पुरस्कार तथा अध्यक्षीय भाषणों को समाहित किया गया है। परिषद् की अभ्युन्नति तथा अन्य सामयिक विषयों पर गणमान्य विद्वानों के कुछ लेखों के संकलन से पत्रिका की शोभा बढ़ गयी है।

08. स्वर्ण जयन्ती पत्रिका

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् की स्वर्ण जयन्ती का भव्य समारोह सांगानेर (जयपुर) में 1999 में परमपूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ के सान्निध्य में यक्षरक्षित जिन बिम्बों के मस्तकाभिषेक महोत्सव पर आयोजित हुआ तथा स्वर्ण जयन्ती का समापन समारोह परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सान्निध्य में बड़ागाँव में आयोजित है। परिषद् निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ती हुई अपनी शताब्दी समारोह भव्यता पूर्वक मनाये, इन्हीं मंगलकामनाओं के साथ!

09. भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में जैन धर्म का योगदान

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन परिषद् की ओर से 1996 में हुआ था। इस ग्रन्थ में प्रभाषगिरि (इलाहाबाद) में पञ्चकल्याणक महोत्सव पर 15 से 19 अप्रैल 1995 तक अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् की ओर से आयोजित विद्वत् संगोष्ठी में गणमान्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत शोध-आलेखों का संकलन है। इसके सम्पादक डॉ. सुदर्शनलाल जी, सह सम्पादक डॉ. कमलेश कुमार जैन तथा प्रबन्ध सम्पादक डॉ. प्रेमचंद जैन एवं श्रीमती मृदुला जैन हैं।

इस ग्रन्थ में संकलित आलेखों को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में इतिहास है जिसमें प्राग्वैदिक संस्कृति से लेकर आधुनिक परिवेश तक के शोधात्मक आलेख हैं। द्वितीयभाग में साहित्य, संगीत एवं कला विषयक आठ आलेख हैं। तृतीय भाग में परिषद् द्वारा आयोजित अ.भा. निबन्ध प्रतियोगिता में पुरस्कृत चार श्रेष्ठ आलेख संकलित हैं। इस तरह कुल 25 आलेख इस ग्रन्थ में संकलित हैं।

विद्वत्-संगोष्ठियों का आयोजन

तत्त्वसंगोष्ठी, शिक्षण शिविर, शिक्षा सम्मेलन आदि के माध्यम से अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् ने जहाँ जैन धर्म-दर्शन, साहित्य तथा तत्त्व प्रचार में अपना महनीय योगदान किया है, वहीं अ.भा. विद्वत् संगोष्ठियों (सेमिनारों) के माध्यम से भी इन क्षेत्रों में अध्ययन-अनुसंधान के प्रयासों में जागृति उत्पन्न की है।

(1) विद्वत् संगोष्ठी, कटनी, दि. 22-24 अक्तूबर 1994

यद्यपि इस संगोष्ठी के पूर्व भी कई संगोष्ठी परिषद् की ओर से आयोजित हुई किन्तु तत्काल जो विवरण उपलब्ध कर सकता, उसे ही प्रस्तुत कर रहा हूँ।

दि. 22 से 24 अक्तूबर 1994 को कटनी (म.प्र.) में जैन समाज के अध्यक्ष, सवाई सिंघई जयकुमार जैन एवं दि. जैन समाज के सौजन्य तथा श्रद्धेय बड़े प. जी - पं. जगमोहन लाल जी शास्त्री के निर्देशन तथा पूज्य मुनि श्री समतासागर जी तथा पूज्यमुनि श्री प्रमाण सागर जी की पावन सान्निधि में प. जगमोहन लाल जी द्वारा लिखित पुस्तक ''कर्मबंध और उसकी प्रक्रिया'' विषय पर यह संगोष्ठी आयोजित हुई। इसमें देश के विभिन्न प्रान्तों से पधारे विद्वानों में सर्वश्री पं. प्रकाश हितैषी शास्त्री, दिल्ली, पं. धन्यकुमार मौरे, कारंजा, डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच, प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला, वाराणसी, ब्र. राकेश जी, कुण्डलपुर, पं. अमरचंद जी सतना, डॉ. शिखरचंद जी जैन, श्री बाबूलाल जी इंजीनियर कोटा, पं. हमेचंद जी 'हेम', भोपाल, पं. सत्यंधर कुमार जी सेठी, उज्जैन, डॉ. शीतलचंद जैन, डॉ. सुदर्शनलाल जैन, डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी एवं डॉ. कमलेश कुमार जैन आदि सभी ने समीक्ष्य विषय पर चर्चाओं में भाग लिया तथा इनमें से अनेक विद्वानों ने अपने शोध निबन्ध प्रस्तुत किये। साथ ही पूज्य बड़े पं. जी द्वारा उपस्थित की गई इस विषयक शंकाओं का विचार-विमर्श पूर्वक आगम पद्धति से समाधान दिया गया। पूज्य मुनिराज ने भी चर्चाओं में भाग लिया एव संगोष्ठी की सफलता हेत शुभाशीष दिया। कुछ विद्वानों के इस विषय में परस्पर सैद्धान्तिक मतभेद भी प्रस्तुत हुए किन्तु इस तरह की चर्चाओं में इन्हें स्वाभाविक शुभ लक्षण माना गया।

(2) विद्वत् संगोष्ठी, प्रभाषगिरि - इलाहाबाद दि. 15 से 17 अप्रैल 1995

दि. 15 से 17 अप्रैल 1995 को अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् की ओर से श्री प्रभाषगिरि दि. जैन अतिशय जैन, जैन विद्यालय एवं जैन बालादर्श पत्रिका, प्रयाग के संयुक्त प्रयास से यह संगोष्ठी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर आयोजित हुई। प्रयाग के डॉ. प्रेमचंद जैन इसके आयोजक तथा परिषद् के मंत्री डॉ. सुदर्शन लाल जी जैन इस सगोष्ठी के संयोजक थे। छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु की जन्मभूमि कौशाम्बी का ही एक भाग प्रभाषगिरि है। यहाँ इनका दीक्षा एवं ज्ञान कल्याणक हुए थे। ऐसे पवित्र तीर्थ पर 'भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में जैन धर्म का योगदान' यह संगोष्ठी बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही।

संगोष्ठी का उद्घाटन एवं प्रथम सत्र प्रभाषगिरि में तथा दो सत्र जैन विद्यालय प्रयाग में हुए। समापन सत्र राजर्षि मंडपम प्रयाग में हुआ। समापन सत्र के बाद जैन विद्यालय के बाल कलाकारों ने मंत्रमुग्ध कर देने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं आकर्षक झाँकियाँ प्रस्तुत कीं।

इसमें सर्वश्री डॉ. सुदर्शन लाल जैन, डॉ. रमेश चन्द जैन, बिजनौर पं. निर्मल जैन सतना, डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसत अमलाई, प्रो. जगदीश गुप्त इलाहाबाद, डॉ. शीतलचंद जैन, जयपुर, डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, डॉ. सुरेशचंद जैन, डॉ. प्रेमचंद रांवका, जयपुर, डॉ. कमलेश कुमार जैन, पं. पन्नालाल जैन प्रयाग, प्रो. खुशालचंद गोरावाला, पं. नीरज जैन सतना, डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल, जयपुर, डॉ. नेमिचंद जैन, खुरई, पं. अनूपचंद जैन जयपुर, डॉ. मालती जैन, मैनपुरी, डॉ. महेन्द्रराजा जैन प्रयाग, आदि विद्वानों ने अपने-अपने निबंध प्रस्तुत किये।

बाद मे इस संगोष्ठी में प्रस्तुत प्रमुख निबंधों को डॉ. प्रेम चंद जैन के सौजन्य से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित भी किया गया है।

(3) पं. जुगल किशोर मुख्तार व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद के तत्त्वाधान एवं परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज, मुनि श्री वैराग्य सागर जी महाराज के सान्निध्य में दिनांक 28 अक्टूबर से 1 नवम्बर, 1998 तक पं. जुगल किशोर मुख्तार व्यक्तित्व कृत्तित्व पर देहरा-तिजारा (राज.) स्थित श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर प्रांगण में डॉ. शीतल चन्द्र जैन ''प्राचार्य'' के संयोजन में त्रिदिवसीय राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें देश के लगभग 50-60 प्रख्यात विद्वानों ने जुगल किशोर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विभिन्न पक्षों पर अपने शोध पूर्ण आलेखों का वाचन किया। मंगलाचरण पं. ज्योतिबाबू जैन, जयपुर ने किया। पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज का उद्बोधन हुआ।

(4) आदिपुराण पर राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी, अलवर, 1999

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान एवं परमपूज्य मुनिश्री सुधासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में दि. 24 से 26 अक्टूबर 1999 तक आचार्यश्री जिनसेन कृत आदिपुराण पर अलवर (राजस्थान) स्थित दिगम्बर जैन भवन में जयन्ती परिवार एवं दि. जैन समाज, अलवर की ओर से डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी के संयोजन में त्रिदिवसीय राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें देश के लगभग साठ प्रख्यात विद्वानों ने आदिपुराण के विभिन्न पक्षों पर अपने शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत करके भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्ये के प्रतिनिधि ग्रन्थ, जीवन्त विश्वकोश एवं प्रथमानुयोग के शिरोमणि इस इतिहास ग्रन्थ रत्न पर देश में पहली बार हुई इस प्रकार की बृहद् संगोष्ठी को गरिमा प्रदान की।

दिनांक 24 अक्टूबर 1999 के प्रात: उद्घाटन डी.आई. जी श्री नरेन्द्र पाटनी ने ज्ञानदीप प्रज्वन पूर्वक किया। मंगलाचरण सुप्रसिद्ध कवि श्री ताराचंद जी प्रेमी ने किया। संगोष्ठी के प्रमुख संयोजक डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी वाराणसी ने संगोष्ठी के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए आदिपुराणकार नौवीं शती के आचार्य जिनसेन को महान् क्रान्तिकारी एवं श्रमण संस्कृति और साहिता का महान् संरक्षक प्रतिपादित किया। सत्र की अध्यक्षता प्रो. श्री रंजन सूरि देव ने की। पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी ने अपने उद्बोधन में कहा

कि जैन साहित्य संस्कृति और सिद्धान्तों की समसामयिकता सिद्ध करते हुए इनके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु सभी विद्वानों को एकमत होकर आगे आने के लिए आह्वान किया।

त्रिदिवसीय संगोष्ठी के विभिन्न दस सत्रों में जिन विद्वानों ने अपने शोध आलेख प्रस्तुत किये उनमें सर्वश्री प्रो. राम जी सिंह, पूर्व कुलपति एवं पूर्व सांसद, प्रो. श्री रंजनसूरि देव, प्रो. शिवसागर त्रिपाठी, डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी वाराणसी, डॉ. रमेशचंद जैन, डॉ. लालचंद जैन, डॉ. शीतल चंद जैन, पं. शिवचरणलाल जैन, डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, डॉ. कमलेशकुमार जैन, डॉ. कपूरचंद जैन, डॉ. सुरेशचंद जैन, डॉ. कृष्णकान्त शर्मा, डॉ. वृषभप्रसाद जैन, डॉ. शेखर जैन, डॉ. राजमल जैन, डॉ. सुरेन्द्र भारती, प्राचार्य निहालचंद जैन, डॉ. नरेन्द्र भारती, डॉ. हुकमचंद पार्श्वनाथ संगवे, डॉ. राजहंस गुप्ता, डॉ. रमाकान्त शुक्ला, डॉ. हुकमचंद जैन, दिल्ली, डॉ. रामनारायण झा, डॉ. महेश कुमार शर्मा, श्री मूल चंद लुहाड़िया, डॉ. अभयप्रकाश जैन, डॉ. कस्तूरचंद सुमन, डॉ. राजमती दिवाकर, श्रीमती डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन वाराणसी, डॉ. ज्योति जैन, डॉ. आराधना जैन, डॉ. सीमा जैन, डॉ. सुषमा अरोड़ा, डॉ. हरिश्चन्द्र जैन जामनगर, डॉ. विजयकुमार जैन, डॉ. अशोक जैन ग्वालियर, डॉ. ऋषमचंद जैन वैशाली, श्री रामजीत जैन ग्वालियर, डॉ. कमलेश जैन, दिल्ली, डॉ. महिमा वासल्ल, श्री लालचंद जैन राकेश, डॉ. उदयचंद जैन, डॉ. अरूणकुमार जैन, डॉ. संतोषकुमार जैन, अनेकान्त कुमार जैन, पं. कोमलचंद शास्त्री इत्यादि।

समापन सत्र में सभी विद्वानों का सम्मान दि. जैन समाज अलवर द्वारा संगोष्ठी पुण्यार्जक जयन्ती परिवार के श्री मंगतुराम जैन, श्री ताराचंद जैन, श्री नरेशचंद जैन, श्री अशोक जैन आदि भाईयों द्वारा किया गया। इसी अवसर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली द्वारा नेट परीक्षा से ''प्राकृत एवं जैन विद्या'' विषय समाप्त किये जाने पर कुमार अनेकान्त जैन द्वारा प्रस्तुत विरोध प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया।

(5) विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष डॉ. रमेशचंद जैन का विशेष सम्मान एवं पुरस्कार

दि. 26-10-1999 को इसी संगोष्ठी के प्रात: कालीन सत्र में सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष डॉ. रमेशचंद जैन बिजनौर को उनकी बहुमूल्य जैन साहित्य की सेवाओं के लिए ''महाकवि आचार्य ज्ञानसागर'' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसमें उन्हें सभी विद्वानों एवं विशाल जन समुदाय के समक्ष प्रशास्तिपत्र, अंगवस्त्र, श्रीफल के साथ ही इक्यावन हजार रूपये की सम्मान निधि भेंट की गई। इसी अवसर पर डॉ. उदयचंद जैन उदयपुर का भी विशेष सम्मान किया गया। डॉ. रमेशचंद जैन द्वारा लिखित 'सुधासागर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्द कोश' एवं डॉ. जयकुमार जैन द्वारा अनुदित ''पार्श्वनाथ चरित'' का विमोचन किया गया।

संगोष्ठी के अन्त में संगोष्ठी की पूर्ण सफलता हेतु एवं मुनिश्री सुधासागर जी महाराज क्षु. द्वय गम्भीरसागर जी एवं धैर्यसागर जी, ब्र. संजय भैया, ब्र. अजित जी एवं स्थानीय जैन समाज तथा पुण्यार्जक जयन्ती परिवार द्वारा किये गये इस तरह के आयोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इसी अवसर पर संगोष्ठी के सफल संयोजन के लिए अहर्निश प्रयत्नशील डॉ. फूलचंद जैन प्रेमी को विशेष सम्मान किया गया।

आदिपुराण पर आयोजित इस संगोष्ठी में प्रस्तुत सभी आलेखों का संकलन करके जयन्ती परिवार की ओर से डॉ. फूलचंद जैन प्रेमी के सम्पादकत्व में बृहद् ग्रन्थ के रूप में प्रकाशन का कार्य सम्पूर्णता की ओर है।

शंकासमाधान-विभाग

स्वाध्यायशील जनता के स्वाध्याय में उठने वाली शंकाओं का समाधान करने के लिए विद्वत्परिषद् की ओर से एक शंकासमाधान-विभाग संचालित था। प्रारम्भ में इसका संचालन डा॰ दरबारी लाल जी कोठिया, न्यायाचार्य वाराणसी और उसके बाद पं॰ रतनचन्द्र जी मुख्त्यार सहारनपुर तथा पं॰ हुकुमचन्द्र जी सलावा करते रहे।

इसके बाद संचालन श्रीमान पं॰ कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, वाराणसी जैन संदेश के माध्यम से यह कार्य जीवन पर्यन्त तक करते रहे।

तत्व गोष्ठियाँ

विवादास्पद विषयों पर विचार करने के लिये विद्वत्परिषद् की ओर से समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर तत्वगोष्ठियों का आयोजन होता रहा है इसके फलस्वरूप कटनी, ईसरी और बीना में स्वतन्त्र आयोजन हुए तथा शिक्षण-शिविरों विद्धत्सम्मेलनों शिक्षा सम्मेलनों और श्रुतसप्ताह के समय सागर में कई बार उपर्युक्त गोष्ठियां भी सम्पन्न हुई हैं। विद्धानों और श्रावकों ने आयोजनों से लाभ उठाया है।

विद्वत्परिषद् के विद्वान् एवं सम्मान

समाज में सत्साहित्य के निमार्ण में वृद्धि हो तथा लेखक के लिये उचित सम्मान मिले। इस भावना से प्रेरित होकर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने पुरस्कार योजना को प्रचारित किया है। इसका अपना विधान है तथा उस समय इसकी समिति के निम्नालिखित 7 सदस्य थे -

1. श्री अध्यक्ष जी भारतवर्षीय दि. जैन वि. प.
2. श्री सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री वाराणसी
3. श्री डॉ. ए.एन. उपाध्ये एम. ए., पी-एच. डी., कोल्हापुर
4. श्री पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी
5. श्री डॉ. दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य, एम.ए., पी-एच.डी., वाराणसी
6. श्री डॉ. प्रेमसागरजी एम.ए., साहित्याचार्य, वाराणसी (सयोजक)
7. श्री पं. खुशालचन्द्रजी गोरावाला, एम.ए., साहित्याचार्य, वाराणसी (सयोजक)

समिति के द्वारा निर्मित तीन सदस्यीय निर्णायक-समिति के निर्णयानुसार आमन्त्रित पुस्तक पर एक-एक वर्ष के अन्तर से श्रीगोपालदास वरैया और श्री गणेशप्रसाद वर्णी नाम के एक-एक हजार के पुरस्कार दिये जाते थे। अब पाँच हजार इस योजना में भारतीय ज्ञानपीठ एक हजार (अब पाँच हजार) रूपये का वार्षिक अनुदान देती है। इस योजना के अन्तर्गत 1972 तक निम्नालिखित विद्वान् पुरस्कृत हो चुके हैं। वर्तमान में अब पाँच-पाँच हजार रु. के हैं।

	पुरस्कार नाम	पुरस्कृत विद्वान्	पुरस्कृत ग्रन्थ	पुरस्कार-प्राप्ति काल
1.	बरैया-पुरस्कार	स्व. धन्यकुमारजी सुधेश,	'परमज्योति महावीर'	18-4-1967
2.	वर्णी-पुरस्कार	पं. बालचन्द्रजी शास्त्री, दिल्ली	'लोक विभाग'	8-5-1968
3.	बरैया-पुरस्कार	डा. कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल	'राजस्थान के संत : व्यक्तित्व और कृतित्व'	21-1-1969
4.	वर्णी-पुरस्कार	श्री पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर	'गद्यचिन्तामणि'	मई 1972

सम्मान

गुणग्राहकता के नाते विद्वत्परिषद् की ओर से विभिन्न अवसरों पर समाज द्वारा निम्नलिखित विद्वान् अभिनन्दित हुए हैं।

(1) पूज्यवर श्री 105 क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी
वीरनिर्वाण सं. 2480, ईसरी (बिहार) में वर्णी जयन्ती के अवसर पर

(2) श्रीमान पं. वंशीधर जी न्यायालंकार इन्दौर
दि. 9-6-1955 सागर (म.प्र.), शिक्षण शिविर के प्रसंग पर

(3) पं. जुगल किशोर जी मुख्त्यार, दि. 5-11-1968 एटा; अभिनन्दन के प्रसंग पर

(4) श्री पं. माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य, फिरोजाबाद
17, 18-5-1967 दिल्ली, बरैया, शताब्दी-समारोह के अवसर पर

(5) श्री पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, सागर
25-1-1970 जयपुर, राष्ट्रपति-पुरस्कार प्राप्ति के उपलक्ष्य में

(6) श्री ब्र. सुमति बाई जी शहा, न्यायतीर्थ सोलापुर
17-4-1970 खतौली (उ.प्र.) 'पद्मश्री' उपाधि प्राप्ति के उपलक्ष्य में

इस प्रकार हम इस प्रगति विवरण से अ.भा. दि. जैन, विद्वत्परिषद् के स्वर्णिम इतिहास की परख कर सकते हैं। विद्वानों की सूचनाओं और अन्मान्य विवरण उपलब्ध होने पर उन्हें भी इस इतिहास में सादर सम्मिलित कर लिया जायेगा। ताकि हम सबकी यह विद्वत् परिषद दिनों-दिन प्रगति करती हुई धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति समाज और विद्वत्-जगत् की सेवा करती रहे। स्वर्ण जयन्ती पर हमारी यही सभी के प्रति मगल कामनायें हैं।

अन्त में पूज्य गुरुवर्य पं. कैलाशचंद जी शास्त्री के ये वचन रजत जयंती पत्रिका (पृ. 74) से उद्धृत कर विराम लेता हूँ - ''आज अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् इस प्रकार के सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त करके उन्हें जैन समाज और जैन धर्म की सेवा में आकृष्ट करने का ही प्रयत्न करती है। वह विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले विभिन्न विचार के जैन विद्वानों का ऐसा गुलदस्ता है, जिसमें विविध रंग और गंध के फूल एकत्र होकर समाज की शोभा बढ़ाते हैं और अपनी सुबास से उसे सुवासित करते हैं। समस्त दिगम्बर जैन समाज के समस्त विद्वानों का यह संगठन सदा सबकी अभ्यर्थना करता आया है। जिन्हें वह नहीं रूचता उन्हें भी वह अपनाये, यही उसकी गरिमा है। हमारी समाज से यही अपील है कि वह विद्वानों की इस परम्परा को सदा संरक्षण प्रदान करती रहे। यह संरक्षण समाज का ही सरंक्षण है।

सराक क्षेत्र में अप्तिम आयोजन के बीच मेरे अनुभव

मुकेश कुमार जैन ''शास्त्री''
जयपुर

मानव मन कल्पनाओं का काल्पनिक रूप नहीं वास्तविक रूप है प्रत्येक मन में असीम कल्पनाएं नभ चपलावत् कोंधकर भूर्त के गर्त में समा जाती हैं। मन में अनेक कल्पनाऐं उद्भूत होकर अनजानी राहों पर चली जाती है। किन्तु कल्पनाऐं केवल कल्पनाऐं नहीं होती, कई कल्पनाऐं वास्तविकता की प्रतिरूप बनकर मानव मन का चरम लक्ष्य प्रतिभाषित होने लगती हैं। किन्तु कल्पनाओं का भविष्य मानव मन के आश्रित होता है। आशावादी मन कल्पनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए कटिबद्ध होकर संसार के समस्त सुखों का होम करके कल्पनाओं का भविष्य ललासता है। इसके विपरीत निराशावादी हृदय उनकी कठिन पृष्ठभूमि का अवलोकन कर कुटिल कल्पनाओं की इति श्री कर देता है। संघर्ष के अभाव में निराशावादी जीवन का सत्य नहीं खोज पाता स्वर्ण भीषण ऊष्मा से लगातार संघर्ष करता हुआ, विजय श्री प्राप्त कर मस्तिष्क का अलंकरण बनता है। निराशा केवल अंधकार है। जबकि आशा एक प्रकाश पुञ्ज जिसमें जीवन का प्रत्येक पहलू दैदीप्यमान होता है। सच तो यह है कि आशावादी ही संसार में जीवित रहता हुआ दुसरों को संदेश देता है।

आशा ही जीवन जीवन में ऐसा कुछ हम करके जाये।
घोर निराशा की उगती झाड़ी-फूसी को आग लगाये।।

संदेश देने वाले उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने सराकोत्थान की अनगढ़न्त कल्पनाओं को मूर्तरूप प्रदान कर, मानव कल्याण की महान भावना का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। वास्तव में सराकोत्थान के विचार किसी कल्पना से कम नहीं थे। इसके पहले भी सराकोत्थान के विचारों का क्रियान्वयन हुआ, किन्तु सहत्रों कठिनाईयों के साथ चलते मिशन का मूर्तरूप प्रदान करने में कोई सक्षम नहीं हुआ। निश्चित ही संस्कार विहीन का पुर्न संस्कार ऐतिहासिक हैं। संस्कार विहीन को संस्कारित करना फिर भी आसान है, मगर जो संस्कारित घट कपोल में परिवर्तित होकर संस्कार विलीन हो जाय, उस घट का निर्माण निश्चित ही अलौकिक शक्ति से प्रेरित होगा। संस्कार विलीन का पुर्नसंस्कार उपाध्याय श्री जैसे नर श्रेष्ठों के ही वश की बात है।

जब सराक बन्धुओं के उत्थान एवं संस्कारों की बुनियाद का संकल्प किया गया, तुरन्त साथ अनेकों ज्वलन्त समस्याऐं समुपस्थित हो गई। किसी निराशावादी के पास जिसका समाधान ही एक समस्या थी। साधन विहीन संस्कार मृत जिन्हें जैनत्व की महिमा का आभास तक नहीं, क्या वह संस्कारित समाज का अंग बन सकते हैं। क्या हम उन्हें समाज का ही अंगमानकर स्नेह दे पायेंगे? क्या हम समाज विरोधी तत्वों का सामना कर सकेंगे? इतना ही नहीं बल्कि उपाध्याय श्री के उपर भी प्रश्न उपस्थित हो गया। क्या उपाध्याय श्री संस्कार विहीन क्षेत्र में मुनीत्व के संस्कार सुरक्षित रख पायेंगे? इत्यादि कुछ ऐसे ज्वलन्त प्रश्नों

एवं समस्याओं ने उत्पन्न होकर कार्य की जटिल प्रवृत्ति यात्रा स्पष्ट कर दी। किन्तु समस्याओं के बवंडर में भी अपने विवेक के अवलोकन से सराकोत्थान की मशाल प्रजज्वलित रखकर उपाध्याय श्री ने महापुरूषों के उच्चतम आदर्श को प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण त्याग अदम्य साहस दृढ़ इच्छा शक्ति की त्रिवेणी जिस अंतस में प्रवाहित होती है, आन्तरिक द्वन्द ऊहापोह की स्थित उस अंतस में क्षण मात्र स्थित नहीं रह सकती है। उसी साहस, विवेक एवं दृढ़ता का प्रतिफल जब मैने अपनी चर्म चक्षुओं से देखा तो यह ह्रदय समाजोत्थान भावना एवं उपाध्याय श्री के प्रति श्रद्वा से भर गया।

कोतूहल पूर्ण यात्रा :

संस्कृति का अपना कोई स्वतन्त्र रूप नहीं है। सांस्कृतिक आयतन, सांस्कृतिक गतिविधियां मन्दिर शास्त्रागार में ही संस्कृति, पोषक एवं संवर्धक हैं। आयतनों का प्रतिपात् होते ही संस्कृति का प्रतिपात् हो जाता है, संस्कृति प्रतिपात् का अर्थ संस्कारों का आधार ही न होना। बंगाल प्रान्त में भूगर्भ से प्राप्त मूर्तियाँ यही तथ्य प्रदर्शित करती हैं। जैन आयतनों का विनाश होते ही सराक बन्धुओं के जैनत्व सम्मत संस्कार विलीन हो गये। अत: संस्कारों की पुनरावृत्ति के लिए देवायतनों का निर्माण नहीं होगा, जैनत्व संस्कारों के पुनरागमन की कल्पना ही व्यर्थ है। क्योंकि श्रावक का प्रथम कर्तव्य ही देव पूजा है। इसी तथ्य के आधार स्वरूप सराक क्षेत्र में देव प्रतिष्ठाओं का क्रियान्वयन गतिशील है। उसी श्रृखला में श्री प्रेमचन्द्र जैन (तेल वाले) मेरठ, द्वारा राजड़ा एवं बोदमा (पुरूलिया) में नवीन मन्दिर का निर्माण करवाया यह श्रृखला दिन प्रतिदिन गतिमान करती रही, और सराकोत्थान समिति, कवि नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.) ने अपनी चंचला लक्ष्मी से काशीवेड़िया (पुरूलिया) में नवीन मन्दिर का निर्माण कराया, दिसम्बर 1999 में वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। देव प्रतिष्ठा के कार्य को गतिशील बनाते हुए। 26-28 फरवरी 2001 को एक फिर कड़ी जुड़ना तय हो गया। सराकक्षेत्र के घनियाडांगा गाँव में 26 फरवरी से प्रारम्भ भव्यवेदीप्रतिष्ठा महोत्सव की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई। सारा घनियाडांगा इस अप्तिम आयोजन की एक-एक धड़िया गिन रहा था। उसी समय उपाध्याय श्री के मन में एक विचार कौंध गया।

वास्तु के यथार्थ ज्ञान बिना उसका यथार्थ उपयोग असम्भव हैं। अत: देव स्थान की प्रतिष्ठा से पहले लोगों के मन में देव स्थान के प्रति चेतना की आवश्यकता प्रतिभाषित हुई। उसी समय उपाध्याय श्री के दर्शनार्थ प्राप्त मेरे आन्तरिक मित्र सुनील कुमार शास्त्री (द्रोणगिरि) एवं आशीष कुमार शास्त्री (शाहगढ़) को घनियाडांगा जाकर व्यवहारिक ज्ञानोपलब्धि कराने की आज्ञा उपाध्याय श्री द्वारा प्राप्त हुई। वेदी प्रतिष्ठा में व्यवस्थाओं की जिम्मेदारी मेरे ऊपर होने के कारण मुझे भी इस अलौकिक अवसर में सम्मलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ चूकि सराकोत्थान गतिविधियों से मैं पहले ही परिचित थात्थादिय सराक संस्कृति से अपरिचित था। अतएव यह यात्रा मेरे लिए किसी कौतूहल से कम नहीं थी। अविलम्ब ही मैं 16 फरवरी को नवीन अनुभवों की कौतुहल पूर्ण यात्रा पर निकल पड़ा।

सराक क्षेत्र में संस्कृति सेवा का अवसर

जब मैं रघुनाथपुर (सेन्टर पर) पहुँचा, सुनील कुमार जी शास्त्री एवं आशीष कुमार जी शास्त्री के सहयोग से घनियाडांगा ग्राम में ''संस्कार शिक्षण शिविर'' का शुभारम्भ हो गया। बच्चों, बूढ़ों, युवकों ने महत्

उत्साह एवं लगन के साथ अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। सुबह शाम दोनों नियत समय से पूर्व ही ज्ञान पिपासुओं का सम्मर्द उमड़ने लगा। ज्ञानार्जन की ऐसी ललक पहली बार देखने को मिली। सराक बन्धुओं को देखकर कई प्रकार के विचार भ्रमर मस्तिष्क में मडराने लगे। कुछ समय तो मैं एक दार्शनिक की भांति गहन चिन्तनलीन हो गया। समय चक्र की विचित्रता लोगों को किन निर्जनों में भटकाती है कब क्या चपलावत् बदले, कब निर्माण ध्वंस हो जाय यह सब मानव बुद्धि अगम्य है। इस निष्ठुर समय को कौन प्रिय है? बड़ी-2 सत्ताऐं समय चक्र में पिसकर अपने अस्तित्व के लिए तरस जाती है, तुरन्त ही अन्तस से दो उद्गार निकल पड़े।

बाघ बाल ज्यों भेड झुन्ड में, मिल निज शक्ति देत विसार।
त्यो निज वैभव भुला समय ने, तुमको भटका दिया सराक।।

संस्कारों का प्रारंभिक पाठ णमोंकार के विशद ज्ञान से प्रारम्भ हो गया, अनन्तर देव दर्शन विधि, सप्तव्यसन त्याग, पाप कषाय त्याग, व्यवहारी जीवन के मूलभूत सिद्वान्त इत्यादि के बारे में विशद ज्ञान प्राप्त कराता हुआ। अष्ट दिवसिय शिक्षण-शिविर अष्टकर्मों की विचित्रता को चित्रित करते हुए समाप्त हो गया।

भव्य आयोजन :

सूर्य के शक्ति प्रभाव से प्रतियोगिता करता हुआ केसरिया ध्वज 26 फरवरी को गगन में लहरा उठा। ध्वजारोहण के साथ ही विद्वत परिषद् के महामन्त्री एवं मेरे विद्या/संस्कार गुरू डॉ० शीतल चन्द्र जी "प्राचार्य" जयपुर के आचार्यत्व में वेदी प्रतिष्ठा का त्रिदिवसीय कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। कार्यक्रम के प्रमुख आयोजक श्री विनय कुमार जी कृष्णा नगर, दिल्ली सपरिवार भक्ति विभोर दिखाई दिये। संजय एण्ड पार्टी, दिल्ली द्वारा संगीत की लहरे गुंजाय मान होने लगी। नृत्य, गान, संगीत की त्रिवेणी हर दर्शक के मन में बहती हुई, प्रत्येक को अपने में निमग्न करने लगी। इन्द्र वेष-भूषा में सराक महिला पुरुष उपाध्याय श्री के मनोगत साकार रूप दिखने लगे। समय-समय, पर आदिनाथ से महावीर तक चौबीसों तीर्थंकरों उवं उपाध्याय श्री की जयकारों से पाण्डाल गूंजने लगा, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि साक्षात् उपाध्याय श्री ससंघ विराजमान हो। समस्त ग्राम-वासियों के लिए यह आयोजन कौतूहल का विषय था। त्रिदिवसीय भव्य आयोजन निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रभावना की अनुठी मिशाल था। इस प्रभावक आयोजन में आदरणीय गुरू जी एवं विनय कुमार जी समान पात्र थे। निश्चित ही वे श्रीमन्त धन्य हैं। जो लक्ष्मी के द्वारा संस्कारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन का पुनीत कार्य आयोजित करते हैं। अन्यथा कौन धनिक चंचल लक्ष्मी को विषैले विषयों में विसर्जित नहीं करता? रात्री कालीन नृत्य आरती ने पृभावक कार्यक्रमों में चार चांद लगा दिये। आदरणीय गुरू जी सरल एवं आकर्षक प्रवचन करते थे जिनको किरीटी भूषण जैन ने बंगलानुवाद करके उनके लिए सरल एवं सौम्य बना दिया। संस्कार मिशन से समन्वित होकर प्रत्येक ह्रदय में उतर रहे थे। नृत्य गान, हर्षोल्लास पूर्वक वेदी प्रतिष्ठा के भक्ति परक दो दिन दो घन्टे की तरह व्यतीत हो गये। जल यात्रा (घटयात्रा) में मस्तक पर मुकुट कंठ में हार धारण किये सराक युवतियां देव ललनाओं से प्रतिद्वन्दिता करती दिखाई दे रही थी। मानो जिनाभिषेक आज्ञा प्राप्त न होने पर मस्तक पर कलश धारण कर जिन न्हवन की भावना भा रही हो। प्रभावना का पर्याय मंगल जन समूह सारे ग्राम में घुमता हुआ। नियत स्थान पर पहुँच गया। वेदी शुद्वि, गुरू जी एवं

अन्य महानुभावों के आर्शीवचन के साथ भव्य आयोजन सम्पन्न हो गया। उपाध्याय श्री के उस अनुपम उपहार पर सारा ग्राम कृतज्ञ दिखाई देते हुए उपाध्याय श्री की जयकारा चारों ओर के वातावरण को गुन्जाय मान कर रही थी।

अन्तस प्रतिक्रिया :

समाज सेवारत होते हुए मुझे अनेकों आयोजनों में सम्मिलित होने का अवसर मिलता रहा है। किन्तु इस अप्तिम आयोजन के बीच निश्चित ही मेरा नवीन अनुभव था। किसी संस्था या कार्य विशेष उन्नति की लिए जिन मूलभूत सिद्वान्तों की आवश्यकता होती है, उन समस्त तत्वों का सत् विशद रूप में अनुभव किया। सराकोत्थान में तल्लीन संस्था की कार्यकारणी का नि:स्वार्थ समर्पण देखकर महात्मा गाँधी के युग का स्मरण हो आया। निश्चित ही पतितोत्थान का नि:स्वार्थ कार्यकर्ता किसी महात्मा गाँधी से कम नहीं है। श्री कमल कुमार जी ''साड़म'' श्री श्रीकिशोर जैन दिल्ली, प्रेमचन्द्र जी मेरठ, की दूरदर्शीता, प्रमोद कुमार जी सरघना की सूझबूज एवं हंस कुमार जी मेरठ, संजय कुमार जी बुढ़ाना, की सरलता सराकोत्थान की प्रबल आकाक्षओं को अम्बर का आसियाना प्रदान करने वाली सावित होगी। सराकोत्थान के पावन यज्ञ में क्षण और कण की आहुति देने वाले श्री साहू रमेश चन्द्र जी, सुमेरमल जी चूड़ीवाल आदि भी उपाध्याय श्री का कृपा पात्र बनकर अपना जीवन धन्य मान रहे है। निश्चित ही सराक बन्धु संस्कृति का परिज्ञान करके संस्कृति संरक्षण में निकलंक बनकर प्रकट होगे। आओ हम भी भी मिलकर सराकोत्थान के पावन यज्ञ में कण और क्षण की आहूती प्रदान करें। हम कल्पना भी नहीं कर पायेगें कि हमारा कण और क्षण का त्याग मात्र ही लाखों भाईयों को उन्नति का प्रण प्रदान करेगा। आओं हम सब दृढ़प्रतिज्ञा करें।

पतितोन्नति के पुनीत प्रण मैं, तन, मन, धन से रण भर देगे।
दलित, पतित संतप्त जनोका, जीवन हम पावन कर देगे।।

स्वार्थ अन्ध होकर हम सबने, जाने कितनी उमर गवाई।
अब सराक उत्थान करें, मिल गुरूवर की हमें दुहाई।।